इकाई- 1 : हिन्दी नाटक : विकास एवं प्रवृत्तियाँ

संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 हिन्दी नाटक : विकास के चरण

- 1.2.1 भारतेन्दु युग
- 1.2.2 प्रसाद युग
- 1.2.3 प्रसादोत्तर नाट्य-साहित्य
- 1.2.4 साठोत्तर हिन्दी नाटक

1.3 नाटक शिल्प

- 1.3.1 समस्या नाटक की परिभाषा
- 1.3.2 समस्या नाटक की विशेषताएँ

1.4 नाटक के प्रमुख तत्त्व

- 1.4.1 भारतीय आचार्यों की दृष्टि में नाटक के तत्त्व
- 1.4.2 आधुनिक आचार्यों की दृष्टि में नाटक के तत्त्व

1.5 अभ्यास प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.0 प्रस्तावना

हिन्दी के नाट्य साहित्य को संस्कृत की समृद्ध नाट्य परम्परा विरासत में मिली है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र इस बात का प्रमाण है कि भारत में रंगमंच व रूपक का विकास ईसा से सैकड़ों वर्ष पहले हो चुका था। नाटकों की व्युत्पत्ति के संदर्भ में मुख्य रूप से दो प्रकार के मत हैं। कुछ लोगों की मान्यता है कि नाटक की व्युत्पत्ति में यूनान की देन महत्त्व रखती है। किन्तु यह वास्तव में भ्रम है। सही व दूसरा मत है कि नाटक का उद्भव भारतीय परिवेश की प्रमुख देन है। ईसा से लगभग 400-500 वर्ष पूर्व की अनेक रचनाओं, जैसे—वाल्मीकि कृत ''रामायण'', पाणिनि विरचित ''अष्टाध्यायी'' और बौद्ध-जैन ग्रंथों में नटों के नामों, रंगशालाओं और नर्तकियों के उल्लेख मिलते हैं। परवर्ती युग में यह नाट्य परम्परा लगभग लुप्त प्राय: हो गई थी। हिन्दी प्रदेश में मध्य युग नाटकों के अभाव का युग है, किन्तु मिथिला और नेपाल प्रदेश में मिथिला में कुछ नाटक लिखे गये थे। हिन्दी के सर्वप्राचीन नाटक मैथिली नाटक ही हैं। लोक रंगमंच के कारण हिन्दी में 17वीं शताब्दी विक्रमी में कुछ पद्यवद्ध संवाद प्रधान नाटकों की परम्परा का श्रीगणेश हुआ था। हृदयराम का ''हनुमान्नाटक'', प्राणचन्द चौहान का ''रामायण महानाटक'', बनारसीदास विरचित ''समयसार नाटक'', प्रबोध चन्द्रोदय तथा 19वीं शती में ''माधव विनोद नाटक'', ''जानकी रामचरित नाटक'', ''रामलीला विहार नाटक'', ''प्रद्युम्नविजय नाटक'', ''नहुष नाटक'' आदि अनेक पद्यवद्ध नाटकों की रचना आधुनिक युग के आगमन तक हो चुकी थी। वास्तविकता तो यह है कि इनको हम पूर्ण नाटक नहीं कह सकते हैं, किन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि हिन्दी नाटक जब से लिखा गया, तब से इसका एक विधिवत विकास का सिलसिला प्रारम्भ होता हुआ दिखाई देता है।

1.1 उद्देश्य

हिन्दी नाटक-विकास एवं प्रवृतियां इस पाठ के अध्ययन से आप—

- हिन्दी नाटक के विकास से परिचित हो सकेंगे।

- हिन्दी नाटक के आज तक के स्वरूप की कालक्रमानुसार विशेषताएं जान सकेंगे।
- नाटक के तत्त्वों को समझ सकेंगे। यह आपको नाटक कबिरा खड़ा बाजार में के अध्ययन में सहायक होगा।

1.2 हिन्दी नाटक : विकास के चरण

हिन्दी नाटक के विकास की कहानी अत्यन्त स्पष्ट दिखाई देती है। प्रारम्भ में जो नाटक अथवा नाटकनुमा प्रस्तुतियाँ हुई, वे हिन्दी नाटक के विकास के लिये एक पीठिका का काम करती हैं। हिन्दी नाटक के विकास क्रम को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं –

1.2.1 भारतेन्दु युग

इसमें किसी प्रकार की दो राय नहीं है कि हिन्दी नाटक का वास्तविक श्रीगणेश भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। सन् 1853 में नवाब वाजिद अलीशाह के दरबार में ''इन्द्रसभा'' नाम का नाटक अभिहीत किया गया। यह नाटक उर्दू शैली में लिखा गया था और इसी को हिन्दी का प्रथम नाटक माना गया। इसके बाद में जो नाटक लिखे गये उनमें स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक विशेष महत्त्व रखते हैं। भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी में अनुवादों की परम्परा प्रारम्भ हो चुकी थी और अनेक नाटक अनुवादों के रूप में सामने आये। ऐसे नाटकों में राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनूदित ''अभिज्ञानशाकुन्तलम'' का हिन्दी अनुवाद उल्लेखनीय है। भारतेन्दु द्वारा ''विद्यासुन्दर'' नाटक भी बंगला नाटक का छायानुवाद था। इसके बाद भारतेन्दु ने अनेक मौलिक नाटकों का प्रकाशन किया और कुछ नाटकों के अनुवाद भी किये गये। ''पाखण्ड विडम्बना'', ''वैदिकी हिंसा न भवति'', ''प्रेम योगिनी'', ''विषयस्य विषमौषधम'', ''चन्द्रावती'', 'भारतदुर्दशा'', ''नील देवी'', ''अंधेरी नगरी'' आदि भारतेन्दु युग के मौलिक नाटक-प्रहसन हैं। ''धनंजय विजय'', ''मुद्रा राक्षस'', ''सत्यवादी हरिश्चन्द्र'', ''कर्पूर मंजरी'' उनके सुप्रसिद्ध नाटक हैं।

भारतेन्दु ने सभी प्रकार के ऐतिहासिक (नील देवी), सामाजिक (पाखण्ड विडम्बना), राष्ट्रीय (भारत दुर्दशा), पौराणिक (सती प्रताप सत्य हरिश्चन्द्र) आदि। हास्यप्रधान (अंधेर नगरी), प्रेम प्रधान (चन्द्रावली) आदिविविध विषयों पर नाटक लिखकर हिन्दी नाटक की परम्परा का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने नाटक, नाटिका प्रहसन, आकाशभाषित, एक यात्री, कई प्रकार के नाटक रचकर नाट्य-शिल्प का वैशिष्ट्य प्रकट किया। इनके अतिरिक्त इस युग के अन्य नाटकों में लाला श्रीनिवासदास द्वारा ''रणधीर प्रेममोहिनी'', संयोगिता, स्वयंवर राधाकृष्णदास द्वारा विरचित ''महारानी पद्मावती'', महाराणा प्रतापसिंह, बालकृष्ण भट्ट द्वारा विरचित नाटक ''दमयन्ती स्वयंवर'', ''कलिराज की सभा'', ''रेल का विकट खेल'', ''बाल विवाह'' आदि बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन द्वारा विरचित ''भारत सौभाग्य'', ''वृद्ध विलाप'' आदि, राधाचरण गोस्वामी द्वारा विरिचत ''अमर राठौड़'', ''बूढ़े मुँह मुहासे'', प्रताप नारायण मिश्र द्वारा विरचित ''भारत दुर्दशा'', ''गौ संकट'', ''हठी-हम्मीर'', ''कवि कौतुक'' आदि, अम्बिका दत्त व्यास द्वारा रचित ''भारत सौभाग्य'', ''गौ संकट'' आदि तथा किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा रचित नाटक ''चौपट चपेट'', ''प्रहसन'' आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु युग में जो नाटक लिखे गये थे, वे विषय की दृष्टि से ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक नाटक कहे जा सकते हैं। प्रवृत्ति की दृष्टि से यदि इस युग के नाटकों का विश्लेषण करें तो यह बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि ये नाटक या तो आदर्शवादी हैं और या ये सुधारवादी हैं। जो कुछ नाटक इस युग में लिखे गये, उनमें समाज की बुराइयों, जैसे – छुआ-छूत, बेमेल विवाह, विधवा जीवन की विडम्बना, मध्यपान तथा धार्मिक बाह्य आडम्बर आदि की आलोचना की गई है। कुछ ऐतिहासिक नाटकों में ऐसे भी नाटक हैं, जिनमें शौर्य, बलिदान, सतीत्व रक्षा, सत्यवादिता आदि का उदात्त रूप परिलक्षित होता है। भारतेन्दु युगीन नाटक ऐसे नहीं लगते हैं जो सामाजिक बुराइयों को गहराई से पकड़ते हों। अतीत के गौरव का स्मरण और वर्तमान की अधोगति से खिन्नता का स्वर इस काल की नाट्य रचनाओं में देखने को अवश्य मिलता है। भारतेन्दु युग के हिन्दी नाटक पर लोक नाट्य परम्परा और संस्कृत नाट्य शास्त्री परम्परा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भारतेन्दु की ही रचना 'भारत दुर्दशा'' और ''अंधेर नगरी'' में किंचित सामाजिक परिवेश और राजनीतिक परिवेश को उभारने का प्रयास किया गया है।

1.2.2 प्रसाद युग

भारतेन्दु युग के पश्चात् द्विवेदी युग के प्रारम्भ में नाटकों के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ। जयशंकर प्रसाद ने सन्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1910 में नाटक लिखना प्रारम्भ किया था। इसी कारण भारतेन्दु युग के पश्चात् नाटक लेखन युग को प्रसाद युग कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। द्विवेदी युग में हिन्दी नाटक लेखन का अभाव रहा है। इसी अभाव की पूर्ति प्रसाद के नाटकों के द्वारा की गई। जयशंकर प्रसाद ने लगभग एक दर्जन नाटक लिखकर हिन्दी नाट्य साहित्य को समृद्धि प्रदान की। उन्होंने ''सज्जन'', ''कल्याणी'', ''परिणय'', ''करुणालय'', ''प्रायश्चित'', ''राज्य श्री'', ''विशाख'', ''अजात शत्रु'', ''जनमेजय का नागयज्ञ'', ''स्कन्द गुप्त'', ''एक घूँट'', ''कामना'', ''चन्द्रगुप्त'' तथा ''ध्रुव स्वामिनी'' जैसे नाटक लिखकर हिन्दी नाट्य साहित्य की गरिमा बढ़ाई।

जयशंकर प्रसाद ने सभी भारतवासियों में आत्मगौरव व राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने के लिए भारत के स्वर्णिम अतीत को अपनी नाटक कृतियों का मुख्य विषय बनाया। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक चेतना, इतिहास और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य, दार्शनिक गम्भीरता और साथ में काव्यात्मक सरसता, वीरता, साहस व प्रेम का रोमानी संघर्षपूर्ण वातावरण, देशकाल का सजीव चित्रण, अतीत के संदर्भ में वर्तमान की समस्याओं का अवलोकन, कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद आदि सभी नाट्य तत्त्वों का पहली बार कलात्मक सफल नियोजन, भारतीय और पाश्चात्य नाट्य कला का समन्वय, एकांकी (एक घूँट), तीनांकी (ध्रुव स्वामिनी), प्रतीक नाटक (कामिनी) तथा गीतिनाट्य (करुणालय) आदि नवीन नाट्य परम्परा का निर्माण प्रसाद की कृतियों की विशेषताएँ रही हैं। निःसंदेह प्रसाद ने हिन्दी नाटक कला को न केवल परिष्कार प्रदान किया अपितु नाट्य रचना के तत्वों का भी उत्कर्ष रूप प्रस्तुत किया। उनकी नाट्य कला की प्रशंसा में डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि ''प्रसाद की ट्रेजडी की भावना उनकी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना, उनके महान् कोमल चरित्र, उनके विराट मधुर दृश्य, उनका काव्य स्पर्श, हिन्दी में तो अद्वितीय है ही, अन्य भाषाओं और नाटकों की तुलना में भी उनकी आभा मालिन नहीं हो सकती है।''

जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी नाटक को एक नई दिशा प्रदान की जो रुमानियत की थी। उनके नाटकों की कथावस्तु चरित्र शिल्प और अभिनेयता आदि में भी इस रूमानी दृष्टि का प्रभाव देखा जा सकता है।

इनके नाटकों में काव्यत्व के कारण भी भव्यता और उदात्ता पाई जाती है जो हिन्दी नाटक के लिये एक अनूँठी उपलब्धि है। प्रसाद का जीवन दर्शन काफी विकसित था, अतः उनके नाटकों की यह उल्लेखनीय उपलब्धि रही कि उन्होंने जीवन दर्शन और विज्ञान तथा उनकी रहस्यमयता को अपने नाटकों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की। प्रसाद के समकालीन नाटककारों ने जो कुछ हिन्दी के साहित्य में वृद्धि की, वह उल्लेखनीय है। प्रसाद युग में सुदर्शन का ''दयानन्द'', 'बेचन शर्मा 'उग्र' का ''महात्मा ईसा'', मुंशी प्रेमचन्द का ''कबीला'' आदि ऐतिहासिक नाटकीय प्रकाश में आये। इसी युग में गोविन्द बल्लभपन्त का ''वरमाला'', सुदर्शन का ''अंजना'', मैथिलीशरण गुप्त का ''चन्द्रहास'' आदि पौराणिक नाटक भी प्रकाशित हुए। कुछ प्रहसन और अनूदित नाटक भी इस युग में लिखे गये थे। इन नाटकों में नाट्यशिल्प का अभाव रहा, क्योंकि इनमें संवादों की योजना तो की गई है किन्तु नाटक कला की पूर्ण उत्कृष्टता का अभाव रहा है।

1.2.3 प्रसादोत्तर नाट्य-साहित्य

जयशंकर प्रसाद के बाद में जिस हुई नाट्य साहित्य की रचना की गई, उसके अनेक रूप सामने आये। कुछ नाटक तो ऐसे हैं जो प्रेम प्रधान हैं, कुछ पौराणिक विषयों को आधार मानकर लिखे गये हैं और कुछ सामाजिक कुरीतियों से सम्बन्धित हैं। बहुत से ऐसे भी नाटक हैं जिन्हें हम समस्या प्रधान नाटक भी कह सकते हैं। विशेष बात यह है कि प्रसादोत्तर काल में नाटकों के कथानक में स्वाभाविकता बनाने के प्रयास किये गये। कथा वस्तु को संगठित और सुसम्बद्ध रूप भी प्रदान किया गया। चरित्र चित्रण में मनोवैज्ञानिक यथार्थ, प्राचीन तत्त्वों की बौद्धिक व्याख्या, आधुनिक समस्याओं के संकेत तथा संस्कृत नाट्य शिल्प के अत्यधिक प्रभाव के स्थान पर पाश्चात्य नाट्य विधान का प्रभाव आदि पौराणिक नाटकों की विशेषताएँ कही जा सकती हैं। उदयशंकर भट्ट के ''अम्बा'', ''सागर'', ''विजय'', ''विश्वामित्र'', ''मत्स्यगंधा'', ''राधा'' आदि नाटक सेठ गोविन्ददास के ''कर्ण'', ''कर्तव्य'' आदि, राधेश्याम कथावाचक के ''सती पार्वती'', ''भक्त प्रहलाद'' आदि, लक्ष्मीनारायण मिश्र द्वारा ''नारद की वीणा'' और ''चक्रव्यूह'', गोविन्द बल्लभ पन्त द्वारा रचित ''ययाति'', चतुरसेन शास्त्रीकृत ''मेघनाद'', ''राधाकृष्ण'', पृथ्वीनाथ शर्माकृत ''उर्मिला'', रामवृक्ष बेनीपुरी कृत ''सीता की माँ'', कैलाशनाथ भटनागर द्वारा रचित ''भीष्म प्रतिज्ञा'', ''श्रीवत्स'', बेचेन शर्मा कृत ''गंगा का बेटा'', डॉ. रामकुमार वर्मा का ''राजरानी सीता'' भगवती चरण वर्मा कृत ''तारा'' हरिकृष्ण प्रेमी कृत ''पाताल विजय'' देवराज दिनेश कृत ''रावण'' आदि इस युग के सुप्रसिद्ध और उल्लेखनीय पौराणिक नाटक हैं। उदयशंकर भट्ट, भगवती चरण वर्मा आदि ने पौराणिक प्रसंगों को अपनाकर अपने नाटकों में नवीनतम प्रयोग किये हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसादोत्तर युग में जो नाटकों का सृजन हुआ, उनकी संख्या पर्याप्त रही है। पश्चिम के इब्सन, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ और गाल्र्सवोर्दी आदि लेखकों का विशेष प्रभाव प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य पर पड़ा। यही कारण है कि प्रसादोत्तर युग में न केवल सामान्य सामाजिक नाटकों की रचना हुई, अपितु पाश्चात्य शिल्प से प्रभावित समस्या प्रधान नाटकों की भी प्रचुर रचना हुई।

प्रसादोत्तर कालीन सामाजिक नाटककारों में गोविन्द वल्लभ पन्त (अंगूर की बेटी, सिंदूर की बिन्दी), सुदर्शन (भाग्यचक्र), गोविन्ददास (सिद्धान्त स्वातन्त्र्य, दलित कुसुम, पतित कुसुम, पाकिस्तान, सेवापथ, विकास, गरीबी और अमीरी, बड़ा पापी कौन आदि), वृन्दावन लाल वर्मा (धीरे-धीरे, बाँस की फाँस), हरिकृष्ण प्रेमी (बन्धन, छाया), चन्द्रशेखर पाण्डेय (जीत में हार), उपेन्द्रनाथ अश्क (स्वर्ग की झलक), बेचन शर्मा (चुम्बन, आवारा आदि) उल्लेखनीय हैं, जिनमें आदर्शवादी ढंग से समाज की बुराइयों और समस्याओं पर प्रकाश डालने की प्रवृत्ति विद्यमान थी। प्रसादोत्तर युग के समस्याप्रधान नाटककारों में लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृथ्वीनाथ शर्मा, भुवनेश्वर, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्ददास आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इन रचनाकारों ने क्रमश: ''सिन्दूर की होली'', ''संन्यासी'', ''राक्षस का मन्दिर'', ''मुक्ति का रहस्य'' आधी रात जैसे नाटकों की रचना की। उपेन्द्रनाथ अश्क ने जिन समस्या प्रधान व सामाजिक नाटकों की रचना की, उनमें ''कैद'', ''उड़ान'', ''छोटा बेटा'', ''अलग-अलग रास्ते'', ''अंजो दीदी'', ''भँवर'', ''पैंतरे'' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। सेठ गोविन्ददास ने ''प्रेम या पाप'' और ''ग्रहण या त्याग'' जैसे नाटक लिखे, जिनमें समस्याओं का यथार्थ प्रतिपादन हुआ है। उदयशंकर भट्ट का ''कमला'', पृथ्वीराज शर्मा का ''द्विविधा'', वृन्दावन वर्मा का ''खिलौने की खोज'' आदि प्रमुख हैं। विष्णु प्रभाकर और चतुरसेन शास्त्री ने भी कुछ समस्या प्रधान नाटकों की रचना की है। अत: हम कह सकते हैं कि प्रसादोत्तर युग में जो नाटक साहित्य लिखा गया, वह प्रसाद की भावुकता के ध्वंस पर बौद्धिकता व यथार्थ की पताका फहराता हुआ दिखायी देता है।

1.2.4 साठोत्तर हिन्दी नाटक

साठोत्तर वर्षों में सृजित साहित्य, जैसे कविता, कहानी उपन्यास के क्षेत्र में नवीनता और परिवेश व्यापी यथार्थ को निरूपित करता रहा है, वैसे ही नाट्य साहित्य भी यथार्थ सूक्ष्म से सूक्ष्मतम स्थितियों का प्रस्तुतीकरण करने, व्यक्ति मन पर पड़े बोझ और दबाव बौद्धिकता के विकास के परिणाम स्वरूप मानवीय सम्बन्धों में आई रिक्तता तथा अर्थशून्य और विसंगत स्थितियों को अभिव्यक्ति देने में सफल है। साठोत्तर वर्षों में जो नाट्य साहित्य लिखा गया उसके प्रमुख उल्लेखनीय बिन्दु इस प्रकार हैं –

1. साठोत्तर वर्षों में सृजित नाटक की विशेषता यह रही कि यह मानवीय सम्बन्धों के कटु यथार्थ को व्यक्त करता हुआ जीवन के एकाकी, रिक्तता बोध, अस्तित्वहीनता की स्थिति और मानवीय सम्बन्धों की जड़ता को अभिव्यक्ति देने में सफल हुआ है।

2. इस युग का नाट्य साहित्य आधुनिक बोध की भूमिका पर लिखा गया, जिसकी अभिव्यक्ति के लिये कुछ नाटककारों ने पौराणिक प्रसंगों को आधार बनाकर उनकी आधुनिक व्याख्या की है और कुछ नाटककारों ने आधुनिक परिवेश से सम्पृक्त होकर परिवेश के दबाव और बोझ को अनुभव करते हुए व्यक्ति के अकेलेपन, उसकी खिन्न मनोदशा और निरन्तर बढ़ती जा रही पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

3. साठोत्तर नाट्य साहित्य की एक विशेषता यह भी है कि स्त्री और पुरुषों के बदलते सम्बन्धों या उनमें आयी जड़ता या विषमता को यथार्थ के धरातल पर आधुनिक शिल्प में प्रस्तुत किया है।

4. साठोत्तर वर्षों का नाट्य साहित्य शिल्प की दृष्टि से भी अभिनवता को लिये हुए है। यही कारण है कि इन नाटकों में प्रतीकात्मकता, सांकेतिकता, बिम्बधर्मिता की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। नाटकों को रंगमंच की दृष्टि से लिखा गया है और समसामयिक हिन्दी नाटक हिन्दी रंगमंच को समृद्धि प्रदान करते हुए अग्रसर हुआ।

5. साठोत्तर नाटक में प्रयोगशीलता जैसी विशेषता भी दिखाई देती है। हिन्दी का नया नाटक और उसका नया रंगमंच विभिन्न रंग प्रयोगों के उदाहरण हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने इस संदर्भ में लिखा है कि ''यह नाटक किसी एक परम्परा का नहीं है और न यह किसी बासी समास रंग पद्धति का हैंगओवर ही है। हिन्दी का नया नाटक अपने सही अर्थों में प्रयोगशील है, जिसने नाटककार तथा रंगकर्मी को एक विशाल और अपूर्व कर्मक्षेत्र प्रदान किया है। इस रंग उल्लास तथा नवजीवन के पीछे व्यावहारिक रंगमंच का सामर्थ्य है, केवल बौद्धिकता का नहीं और यह सामर्थ्य अपने रंग अन्वेषण तथा रंगमंच प्रतिष्ठा में हिन्दी अथवा भारतीय रंगमंच की नवीन पद्धतियाँ निर्धारित कर रहा है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.3 नाटक शिल्प

हिन्दी में समस्या-नाटक का अविर्भाव पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से हुआ। पाश्चात्य साहित्य में भावुकता एवं आदर्श के प्रति एक साथ प्रतिक्रिया हुई और साहित्यकार ने उसके स्थान पर एक यथार्थ और अकृत्रिमता से अपना सम्बन्ध स्थापित किया। अतएव शास्त्रीय साहित्य की जगह जन-साहित्य का सृजन होने लगा। साहित्यकार ने उन सभी नियमों की श्रृंखला को तोड़ दिया, जिनमें वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को जकड़ा हुआ अनुभव करता था। शास्त्रीयता की इस प्रतिक्रिया के साथ ही समस्या-नाटकों का श्रीगणेश हुआ। इन नाटककारों का मूल उद्देश्य जनता की तत्कालीन समस्याओं से परिचय कराना और उनका समाधान खोजना था।

समस्या नाटकों में शास्त्रीयता का तिरस्कार किया गया है। इन नाटकों में नान्दी, प्ररोचना, प्रस्तावना, भरत-वाक्य, सूत्रधार, नट और नटी सभी का बहिष्कार किया गया। नाटककार केवल नाटक की समस्या को पाठकों के सम्मुख रखने के लिये आतुर रहता है। इसके लिये आरम्भ में एक परिस्थिति का निर्माण किया जाता है, फिर उसकी व्याख्या की जाती है और अन्तत: वस्तुस्थिति में अन्तर्निहित किसी व्यक्ति विशेष अथवा सामाजिक समस्या को प्रस्तुत किया जाता है। यह समस्या विभिन्न चरित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त की जाती है। इस संदर्भ में डॉ. शान्ति मलिक ने लिखा है कि ''स्वाभाविकता का आग्रह इन कृतियों की सर्वप्रमुख विशेषता है। इसी कारण इनमें अस्वाभाविक रूढ़ियों, यथा-स्थगत कथन, एकान्त भाषण मंगलाचरण और भरत-वाक्य आदि का पूर्ण बहिष्कार किया जाता है। इसके अतिरिक्त गीत और नृत्य आदि की संस्थिति भी नहीं है। भाषा सरल और स्वाभाविक तथा शैली मनोविश्लेषणात्मक और व्यंग्यात्मक होती है। इसमें दृश्य वर्णनों और नाटकीय निर्देशों की सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचना मिलती है। समस्या नाटकों में संयोग से घटित होने वाली घटनाओं को कोई स्थान नहीं दिया जाता है।

इस संदर्भ में अर्नाड शॉ ने कहा है – ''As a matter of fact no accident can produce a moment of real drama.'' एक अन्य समीक्षक ने नाटकों की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि – ''One of it's qualities lies in ability to make people think by making them laugh.''

1.3.1 समस्या नाटक की परिभाषा

नाटक की परिभाषा देते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि – ''ऐसे नाटकों का उद्देश्य होता है, समाज को अधिकतर जैसा है, वैसा ही उसके सामने रखना, उसके भीतर की नाना विषमताओं से उत्पन्न प्रश्नों का जीता जागता रूप खड़ा करना तथा यदि सम्भव हो तो समाधान के स्वरूप का भी आभास देना।''

डॉ. बब्बन त्रिपाठी ने इस सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा– ''समस्या नाटक शब्द से ही यह आभास होता है कि कुछ ऐसे विशिष्ट नाटक, जिनमें समस्याओं की प्रधानता हो या जिनके आधार समस्याएं हों, समस्या नाटक कहलाते हैं। ये समस्याएं क्या थीं या क्या हैं ? इनकी प्रधानता इन कृतियों में रहती हैं।''

1.3.2 समस्या नाटक की विशेषताएँ

1. इस प्रकार के नाटक किसी भी कृत्रिमता के पोषक नहीं हैं, ये समाज के नंगे या यथावत् चित्र के प्रदर्शक हैं।

2. इन नाटकों का अप्रत्यक्ष प्रभाव यह है कि इनका क्षेत्र सीमित हैं। अधिकांशत: नाटकों की मूल समस्या सेक्स-यौन सम्बन्धी है। अन्य भी अनेक समस्याएँ भी हैं किन्तु उनका मूल स्रोत इसी में है।

3. इन नाटकों की शैली मनोविश्लेषणात्मक है। इनके पात्र अपने या दूसरों के भावों की तह का स्पष्टीकरण करते हैं। इनके वक्तव्यों में प्राय: सस्वर विचार होते हैं।

4. इन नाटकों की तकनीकि पाश्चात्य नाटकों की पद्धति से प्रभावित है। परिणामत: इनमें भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमों का उल्लंघन हुआ है, अस्तु कथा के विभाजन में नियंत्रण का अभाव रहता है, साथ ही इनका अन्त प्राय: दुखान्त होता है, क्योंकि समस्या का उठाना ही इनका उद्देश्य होता है, उसका निवारण नहीं।

5. इस प्रकार के नाटकों में स्वतंत्र चिन्तन का विशेष महत्त्व होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.4 नाटक के प्रमुख तत्त्व

भारतीय काव्यशास्त्र में नाट्य लक्षण तथा उसके भेदोपभेदों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया है। इसी प्रसंग में संस्कृताचार्यों ने नाटक के विभिन्न तत्त्वों का विवेचन किया है, किन्तु इन तत्त्वों को लेकर भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों में मतभेद हैं जो वस्तुत: नामकरण और दृष्टिकोण के कारण है –

1.4.1 भारतीय आचार्यों की दृष्टि में नाटक के तत्त्व

भरत मुनि को नाट्य-शास्त्र का प्रणेता माना गया है। उन्होंने नाटक के प्रमुख तत्त्वों का विषद् विचार किया है, जिसके अन्तर्गत परवर्ती आचार्यों ने नाटक के मुख्य रूप से तीन तत्त्व माने हैं – 1. वस्तु, 2. पात्र या नायक, 3. रस। जबकि भरत मुनि ने चार तत्त्व स्वीकार किये हैं – 1. संवाद, 2. गान, 3. नाट्य और 4. रस। कुछ विद्वानों ने अभिनय और वृत्ति को भी नाट्य-तत्त्वों में स्वीकार किया है।

वस्तु से तात्पर्य नाटक की कहानी, कथा या कथात्मक होता है, जिसमें पाँच नाट्य संधियाँ तथा पाँच अवस्थाएँ समाविष्ट होती हैं। कथानक भी दो प्रकार का होता है – 1. अधिकारिक और 2. प्रासांगिक। अर्थ प्रकृतियों के द्वारा ही कथानक का विकास होता है। संस्कृताचार्यों ने नायक, नायिका, उपनायक, विदूषक, चेट आदि पात्रों की योजना कथानक और रस के अनुसार स्वीकार की है। नाट्य-रचनाओं में चार प्रकार के अभिनय के साथ ही विभिन्न प्रकृतियों को माना है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय आचार्यों ने अभिनय और रस को प्रधानता देते हुए नाटक के प्रमुख तत्त्वों का संयोजन किया है।

1.4.2 आधुनिक आचार्यों की दृष्टि में नाटक के तत्त्व

वर्तमान कालीन अनेक समीक्षकों ने पाश्चात्य आचार्यों के अनुसरण पर नाट्य तत्त्वों का विवेचन किया है। इनके अनुसार नाटक के छ: तत्त्व माने गये हैं – 1. कथावस्तु, 2. पात्र और चरित्र-चित्रण, 3. कथोपकथन, 4. देशकाल, 5. उद्देश्य और 6. भाषा-शैली।

1.4.2.1 कथावस्तु – यह तत्त्व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसे कथात्मक साहित्य का मूल विधायक तत्त्व माना है। पाश्चात्य आचार्यों का कथावस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोण प्राय: भारतीय आचार्यों के ही समान है। अधिकाधिक और प्रासांगिक भेद भी उन्होंने स्वीकार किये हैं, उनके द्वारा दी गई कार्यावस्थाएँ भी व्यवस्थित की गई हैं – प्रारम्भ, विकास, चरमसीमा, निर्गत और समाप्ति। यह विन्यास अपेक्षाकृत सरल है।

1.4.2.2 पात्र और चरित्र-चित्रण – यह तत्त्व भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण से अन्तर नहीं रखता है। इस संदर्भ में विशेष बात यह है कि भारतीय दृष्टिकोण में रस को अधिक महत्त्व दिया है, वैसे ही पाश्चात्य ने चरित्र-चित्रण पर अधिक बल दिया है।

1.4.2.3 कथोपकथन – यह तत्त्व भारतीय वाचिक अभिनय के समान माना गया है। पाश्चात्य आचार्यों ने कथा विकास और चरित्र-चित्रण के लिये कथोपकथन पर विशेष बल दिया है। इन्हें नाटक का एक मूल विधायक या यों कहें कि विशेषता शरीर विधायक तत्त्व माना है।

1.4.2.4 देशकाल – इस तत्त्व से अभिप्राय कथावस्तु के अनुरूप स्वाभाविक वर्णनों से है। संकलन-त्रय (स्थान, समय और कार्य की एकता) की गणना भी इसी तत्त्व के अन्तर्गत: होती है। कथानक के अनुरूप वातावरण का समावेश करने में नाटक अधिक सम्प्रेषण बन जाता है। अत: वातावरण वर्णित कथानक के देशकाल से मेल रखने वाला दर्शाया जाता है।

1.4.2.5 उद्देश्य – पाश्चात्य नाटकों में नाट्य-रचना का अनिवार्य उद्देश्य एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इस उद्देश्य के अनुरूप पाश्चात्य नाटकों में संघर्ष को भी प्रधानता मिलती है, जिसे भारतीयों ने उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया है।

1.4.2.6 भाषा शैली – शैली आचार्यों द्वारा वर्णित 'वृत्त' तत्त्व के समान है। भाषाशैली से अभिप्राय नाटककार की अभिव्यक्ति प्रणाली है।

1.4.2.7 अभिनेयता – नाटक को रंगमंच पर अभिनीत किया जाता है और उसमें अभिनेयता के गुण की अनिवार्यता है। इसके लिये आवश्यक है कि नाटक के सभी तत्त्व सुव्यवस्थित और सुसंगत हों, छोटे संवाद हों तथा जिसमें आकर्षण और सम्प्रेषणता का गुण होना आवश्यक है। दृश्यों की संख्या सीमित होनी चाहिये, साथ ही दृश्य विधान ऐसा होना चाहिये कि जिसे आसानी से रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भारतीय आचार्यों ने अभिनय के मुख्य रूप से चार अंग माने हैं –

i. आंगिक-अभिनय – इसमें पात्र अपने अंगों का उचित संचालन करके हाव भावों का प्रकाशन करते हैं। इसे कायिक अभिनय भी कहा जाता है। आचार्यों ने इसके तीन प्रकार बताये हैं – 1. शारीरिक, 2. मुखज और 3. चेष्टागत।

ii. वाचिक-अभिनय – वाणी के द्वारा भावों को व्यक्त करना, जैसे – प्रेम, क्रोध, विद्रोह आदि को प्रकट करने के लिये वाणी आदि के माध्यम से विशेष ध्वनि या शब्द विशेष का प्रयोग किया जाता है, इन्हें वाचिक-अभिनय कहा जाता है।

iii. आहार्य अभिनय – जिस पात्र का अभिनय किया जा रहा हो, उस पात्र के अनुरूप वेश-भूषा धारण करना, उसके अनुरूप सिंगार करना आहार्य अभिनय कहलाता है। इसमें पात्रों के अनुरूप रूप-विधान आवश्यक होता है।

iv. सात्विक – रोमांच, कम्प, स्वेद, अश्रुपात आदि भावों व मनोविकारों की सही-सही अभिव्यक्ति करना सात्विक अभिनय माना जाता है।

1.4.2.8 संकलन-त्रय – यद्यपि नाटक कुछ विस्तृत कथानक पर आधारित होता है। एकांकी में संकलन-त्रय कथानक पर आधारित होता है। एकांकी में संकलन-त्रय का निर्वाह अपेक्षित माना जाता है, इसमें- 1. स्थान की एकता, 2. कार्य की एकता तथा, 3. काल की एकता का पूरा-पूरा ख्याल रखा जाता है, अर्थात् घटित घटना का स्थान उसके घटित होने का समय और उसका लक्ष्य समन्वित होना आवश्यक है।

भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों की दृष्टि में नाट्य तत्वों में विशेष अन्तर नहीं है। भारतीय दृष्टिकोण रस परक है और पाश्चात्य दृष्टिकोण उद्देश्यपरक है और दोनों ने ही दृश्य विधान पर विशेष बल दिया है।

1.5 अभ्यास प्रश्न

अतिलघुतरात्मक प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें –

1. हिन्दी में सबसे प्राचीन नाटक ....में मिलत हैं।

2. ....के दरबार में ....नाटक अभिनीत किया गया।

3...................ने अंधे र नाटक लिखा।

4. सामाजिक विषमताओ एवं विकृतियों को ....नाटक कहते हैं।

5. प्रसाद कालीन नाटकों में 1.............2..............3............4..........आदि विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारतेन्दु युगीन नाटक में किस प्रवृति की प्रधानता है।
2. प्रसाद युग के पाँच नाटककार और उनकी कृतियों के नाम लिखिए।
3. साठोतर हिन्दी नाटक की तीन विशेषताएं स्पष्ट कीजिए।
4. भारतीय आचार्यो और पाश्चात्य आचार्यों द्वारा उल्लिखित नाटक के तत्वों का नाम लिखिए।
5. भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण में नाटक के सन्दर्भ में क्या अन्तर है ?
6. अभिनेयता की दृष्टि से नाटक में क्या आवश्यक है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 2 : ''कबिरा खड़ा बजार में''
(भीष्म साहनी)

संरचना

2.0 लेखक परिचय

2.1 ''कबीर'' एक परिचय

2.2 नाटक की संक्षिप्त कथा

2.2.1 उद्देश्य

2.2.2 प्रस्तावना

2.2.3 प्रथम अंक

2.2.4 द्वितीय अंक

2.2.5 तृतीय अंक

2.3 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

2.4 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

2.4.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

2.4.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

2.4.3 निबन्धात्मक प्रश्न

2.5 सारांश

2.6 अभ्यास प्रश्नावली

2.0 लेखक परिचय

सुप्रसिद्ध फिल्म अभिनेता बलराज साहनी के अनुज, मध्यवर्गीय कथा-सृष्टि के चतुर चितेरे, साम्यवादी विचारक और समकालीन हिन्दी कथाकारों में शीर्षस्थ डॉ. भीष्म साहनी का जन्म 1915ई. में रावलपिण्डी में हुआ था। देश विभाजन से पूर्व उन्होंने कुछ समय व्यापार किया और साथ ही मानद अध्यापन भी। विभाजन के पश्चात पत्रकारिता 'इप्टा' नामक मण्डली में काम करते हुए अम्बाला और अमृतसर में अध्यापन सेवा में जुड़े रहे। आपने लाहौर से पी-एच.डी. के सम्मान को प्राप्त किया। आप लगभग सात वर्ष तक मास्कों में रहे, जहाँ पर कई ऐसी रचनाओं का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया। दिल्ली विश्वविद्यालय के दिल्ली कॉलेज में एक लम्बा सोपान अध्यापन कार्य में लगाया। सेवानिवृत्ति के पश्चात् डॉ. साहनी प्रगतिशील लेखक संघ और अफ्रो एशियाई लेखक संघ से घनिष्ठ ताल्लुक रखते थे। आस्था की दृष्टि से ये एक साम्यवादी विचारक हैं, किन्तु यह धारणा इनकी रचनाओं में संवेदना के स्तर पर उभर कर प्रभावी रूप से सामने आती है।

स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी कहानीकारों अथवा यों कहें कि अच्छे कथाकारों में डॉ. साहनी का अपना एक उल्लेखनीय स्थान है। इनके आठ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं – 'भाग्यरेखा, भटकती राख, पटरियाँ, बाँगचू, पाली, पहला पाठ, शोभायात्रा और निशाचर। डॉ. साहनी ने चार उपन्यास भी लिखे – झरोखे, कड़ियाँ, तमसँ, बसंती भैया दास की मडी। उन्होंने तीन नाटकों का सृजन किया – हानूश, कबिरा खड़ा बजार में और माधवी। इसके अतिरिक्त विभिन्न रूसी पुस्तकों का अनुवाद भी किया है, बीस हिन्दी कहानियों का अंग्रेजी अनुवाद भी डॉ. साहनी ने किया है। जिस कथाशिल्प का परिचय उन्होंने अपनी कहानियों में दिया है, वह उनके 'झरोखे', 'कड़ियाँ' और 'तमस' आदि रचनाओं में व्यक्त हुआ है। 'झरोखे' पर उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा तथा 'तमस' पर साहित्य अकादमी द्वारा सन् 1975

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में पुरस्कार के साथ-साथ पंजाब के श्रेष्ठ कथा लेखक के रूप में सम्मानित किया गया। टाल्स्टॉय की अनेक रचनाओं को हिन्दी भाषा में अनूदित करने के अतिरिक्त उन्होंने 'हानुश' शीर्षक रंगधर्मी नाटक का सृजन किया जो कि अपने आप में एक उल्लेखनीय कृति है। भीष्म साहनी ने अपनी कहानियों में मूल्यों के विघटन, मानसिक तनाव, अविश्वास, घुटन भरी जिन्दगी की विसंगतियों आदि को नितान्त यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत किया है। विषमताओं से जूझते हुए मध्य वर्गीय व्यक्ति के परिवेश को उन्होंने जिस सजीव ढंग से उभारा है, उसमें कहीं तो संवेदना की सहजता है तो कहीं पर व्यंग्य की सार्थकता है। विषयानुरूप भाषा में सहजता और व्यावहारिकता समाहित है, जिसमें चित्रात्मकता और अभिव्यक्ति के तीखेपन को भी देखा जा सकता है।

यह एक सामान्य-सी बात है कि रचना में रचनाकार का सम्पूर्ण व्यक्तित्व समाहित होता है। उसकी अनुभूति, कल्पना, धारणा, विचार, संकल्प, विकल्प, द्वन्द्व और स्वभाव आदि किसी-न-किसी कोण से, किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्त हो ही जाते हैं। डॉ. साहनी का व्यक्तित्व इसका अपवाद नहीं हैं। उनका बचपन माँ की नमता, कर्त्तव्य परायणता और पिता की धर्मभीरुता व आर्य समाजी संस्कार-सम्पन्नता की छाया में व्यतीत हुआ था। उन्होंने आदर्शों और उपदेशों के साथ रहना सीखा था, इसलिये आशावाद, पुरुषार्थ प्रेम, मानवीय चरित्र में विश्वास, भाग्यनिर्माण की शक्ति, सदाचार के नियमों का पाठ और अनुशासन आदि से युक्त सभी संस्कार उन्हें अपने परिवार से ही प्राप्त हो गये, जिन्हें हम रचनात्मक सृजन में पा सकते हैं। प्रारम्भ में वे अपने व्यक्तित्व की कोई स्वतंत्र रेखा नहीं बना पाये अत: अपनी जिज्ञासु किन्तु संकोची मनोवृत्ति के कारण बहुत कुछ ऐसी शुरुआत नहीं कर सके जो उनके अग्रज बलराज साहनी ने की। इतना अवश्य कहा जायेगा कि स्वतन्त्रता आंदोलन और गाँधीवादी विचारधारा ने उनके समस्त व्यक्तित्व और जीवनदृष्टि को आन्दोलित किया।

अंग्रेजी शासन की क्रूरता और अमानवीयता ने, अंग्रेजों के द्वारा किये जाने वाले भारतीयों के अपमान ने, हिन्दु-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगों और धर्म भेद से उत्पन्न अमानवीयता ने डॉ. साहनी को अधिक प्रभावित किया। इस कथन में किसी प्रकार संदेह नहीं है कि "अपने समय और भाग्य को लाँघकर आज तक कोई जीवत नहीं रहा है, चाहे वह कोई कलाकार हो अथवा कोई अन्य बुद्धीजीवी। इस दृष्टि से लेखक भी एक ऐसा ही सामान्य जीव है। इसी दृष्टि से एक कलाकार अपनी कला को कला के दर्पण में आँकता है, अपने काल के जीवन, उसकी विषमताओं और उसके विरोधाभासों को भी उतारता है। भीष्म साहनी के काल में उसी पीढ़ी के सभी साहित्यकारों के मन-मस्तिष्क से यही प्रभाव, अनुभव और परिस्थितियाँ टकरा गई।

स्वतन्त्रता प्राप्त के साथ हुए भारत विभाजन और साम्प्रदायिक वैमनस्य के कारण भीष्मजी को अपना जन्म स्थल रावलपिण्डी छोड़कर दिल्ली आना पड़ा, जिससे उनके अनेक विश्वासों, संस्कारों और प्राचीन मानव मूल्यों पर प्रहार-सा हुआ और उनकी मानसिकता द्वन्द्व ग्रस्त हो गई। अपनी जमीन से कट जाने की पीड़ा उनके अन्त:करण को छू गई और नूतन अनुभवों के लिये एक रचनाकार मन तैयार हुआ। दिल्ली में प्रोफिसरशिप के साथ विदेशी भाषा प्रकाशन गृह व मास्को से सम्बन्ध रखते हुए इन्होंने अपने बड़े भाई बलराज साहनी के साथ 'गुंजन' फिल्म तथा अन्य नाटकों में भी काम किया। भावुक आत्म केन्द्रित किन्तु मानव जीवन के प्रति उन्मुख उनका संस्कार युक्त, आत्मीय उदार व्यक्तित्व और मन की उड़ान उनके साहित्य के रूप में मुक्त गगन की ऊँचाई को तय करती हुई दिखाई दी। जीवन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया सचमुच ही भावात्मक है। भीष्म साहनी ने अपने साहित्यिक व्यक्तित्व पर सुदर्शन और प्रेमचन्द के प्रभाव को स्वीकार किया, क्योंकि प्रेमचन्द के पास व्यापक दृष्टि और भारतीय जीवन चित्रण की ईमानदारी रही है, किन्तु साथ ही प्रेमचन्द की समाजोन्मुखी तथा यथार्थोन्मुखी दृष्टि से वे पूर्णत: संतुष्ट नहीं थे। "उनकी सुधारवादी दृष्टि आज हमारी सहायता नहीं कर सकती" भीष्म जी का यह वाक्य उनकी सचेत मानसिकता और विचारशीलता को उजागर करता है। भीष्मजी के साहित्य में समस्याएँ और समाधान दोनों ही प्रेमचन्द से भिन्न हैं। फ्रांसीसी लेखक मोपासाँ और रूसी लेखक गोर्की तथा टाल्स्टाय ने भी डॉ. साहनी को काफी हद तक प्रभावित किया। इन सभी प्रभावों के बीच अपनी मौलिकता के साथ उन्होंने विविध प्रकार के साहित्य का सृजन किया।

मार्क्सवादी जीवन-जगत् सम्बन्धी दृष्टिकोण से प्रभावित होते हुए भी जीवन अनुभवों की विविधता और व्यापक संघर्ष जैसे-जैसे उनके सामने खुलते गये, वैसे-वैसे मार्क्सवादी दर्शन के विभिन्न आयाम उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होने लगा। एक सत्यान्वेषी कलाकार के रूप में भीष्म साहनी ने जीवन की वास्तविकता को अपने युग की विषमता, पीड़ा, तनाव और जहर को पचाकर इस प्रकार लिखा है कि उनके साहित्य में आशा के फूटते हुए स्वर जीवन के प्रति अनुराग, सघन संवेदना और मनुष्य के अस्तित्व को प्रभावित करने वाली निष्ठा दिखाई देती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आज के हर क्षेत्र में व्यक्ति अनिश्चितता, मूल्यों की संदिग्धता, भय, आशंका, तनाव, विरोध और उसमें उत्पन्न मानसिकता में जीवित रहकर अपना संतुलन बनाये रखने का प्रयास करता है। इसी समकालीनता को भीष्म साहनी ने अपने उपन्यास, कहानी और नाटकों में चित्रित किया है। उनके साहित्य में दुविधा, द्वन्द्व और संघर्ष तो है किन्तु खामोश आत्मसमर्पण नहीं है। उसमें आह्वान का स्वर भी है और आत्मशोधन का बोध भी। उनका आत्मबोध आधुनिक मानव का, शोषित व पीड़ित मानव का आत्मबोध है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न त्रासदी और उससे मुक्त होने की छटपटाहट दोनों ही उनमें है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भीष्म साहनी ने साहित्य की विविध विधाओं में अपने रचनात्मक कौशल का परिचय दिया है। उनका लेखन गाँधीवादी चिन्तन और जीवन-दृष्टि से प्रभावित है। अमानवीय के विरूद्ध विद्रोहात्मक व्यंग्य उनकी रचना दृष्टि का मूल्य है। सही जीवन के प्रति सच्चा अनुराग, घनी संवेदना और मानवीय अस्तित्व के प्रति निष्ठा उनके समस्त लेखन में देखी जाती है।

2.1 ''कबीर'' एक परिचय

संत कबीर की जीवनी का निर्धारण अभी तक जनश्रुतियों और किंवदन्तियों पर ही आधारित है। कबीर पंथी इन्हें सत्पुरुष कहते हैं। इनका जन्म कब और कहाँ हुआ, इस संदर्भ में आज तक विद्वानों में मतभेद रहा है। ऐसा माना जाता है कि इनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी की कोख से हुआ था। चूँकि नारी लोक-लाज और सामाजिक मान-मर्यादा के कारण इन्हें एक अज्ञात स्थान पर ''लहरतारा'' नामक तालाब के किनारे छोड़ दिया गया था। कबीर पंथियों का यह विश्वास है कि सत्पुरुष कबीर का तेज लहरतारा नामक तालाब में सं. 1455 वि. ज्येष्ठ सुदी सोमवार को अवतरित हुआ था। इस तालाब को 'तरणतारा' भी कहा जाता है। जुलाहा दम्पत्ति नीमा और नीरू ने कमल पत्र पर सोये इस बालक को प्राप्त किया और उसका लालन-पालन किया। कबीर का परिचय ''प्रसंग परिजात'' नामक ग्रंथ में मिलता है। इस ग्रंथ में उनकी जन्मतिथि का सही उल्लेख तो नहीं मिलता है, परन्तु इनके जन्म-मरण काल के विषय में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। मैकालिफ ने उनका जन्म समय 1398-1518 ई. माना है तो बील ने 1490ई. और हंटर ने 1300 से 1420 तथा फर्कुहर ने 1400-1518 तक तथा स्मिथ ने 1440 से 1518ई. माना है। इनके जन्म के संदर्भ में एक दोहा भी प्रसिद्ध है—

चौदह सौ पचपन साल गये, चन्द्रवार एक ठाठ ठये।
जेठ सुदी बरसागत को, पूरनमासी प्रकट भये॥

अर्थात् 1455 वि. की ज्येष्ट पूर्णिमा को कबीर का जन्म हुअ था। विद्वानों का विचार है कि इस वर्ष की ज्येष्ट पूर्णिमा सोमवार को नहीं थी। ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार की सं. 1456 वि. में पड़ती है। यदि इसे माना जाये तो कबीर का जन्म सं. 1456 वि. (1399ई.) में हुआ था। डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने कबीर के काल निर्धारण में मैकालिफ को प्रमाण मानकर लिखा है कि वे 1398 से 1518 तक विद्यमान थे। कबीर की मृत्यु के विषय में भक्तमाल की टीका में लिखा है—

पन्द्रह सौ उनचास में, मगहर कीन्हो गौन।
अगहन सुदी एकादशी, मिलौ पौन सों पौन॥

कबीरदास का विवाह बाल्यावस्था में 'लुई' नामक कन्या के साथ सम्पन्न हुआ और इन्हें एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति भी हुई जिसका नाम 'कमाल' था। कबीरदास अनपढ़ थे। इस बात को प्रस्तुत पंक्ति से स्पष्ट किया जा सकता है—

मसि कागद छुऔ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।

कबीर के गुरु रामानन्द थे, उन्हीं से राम नाम का गुरु मंत्र प्राप्त किया था। सत्संगति में रहकर ही उन्होंने अपने ज्ञान में निरन्तर वृद्धि की थी। चूँकि कबीर साधु-संतों के साथ रहते थे तो उनकी भाषा भी अनेक भाषाओं का सम्मिश्रण बन गई। विद्वानों ने कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा का नाम दिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि ''पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर सबसे अधिक शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व के धनी थे। वे न मुसलमान थे और न हिन्दू ही थे।'' उस समय कबीर उस मिलन-बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ हिन्दुत्व और मुस्लिमत्व का कोई अर्थ नहीं था। कबीर अधिकतर मन्दिरों में रहकर सन्तों से ज्ञानार्जन करते रहे, जिससे राम के प्रति उनका आध्यात्म दृष्टिकोण प्रबल बना। किन्तु जब उन्होंने समाज की दयनीय स्थिति को देखा तो उनका मन विचलित हो गया। उस समय समाज की अनेक कुरीतियाँ जन-साधारण को खोखला किये जा रही थी, जिनमें आर्थिक असमानता का अन्तराल, धार्मिक आडम्बर, छुआ-छूत, जातिभेद, बाल-विवाह, सतीप्रथा आदि परवान चढ़े हुए थे। इधर कबीर राम उपासक थे किन्तु उनके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राम दशरथ नन्दन नहीं बल्कि निराकार ब्रह्म के रूप में बन गए थे। उन्होंने कहा कि उनके राम अनुभव गम्य हैं, जिनका वर्णन संभव नहीं है। वे सर्वव्यापी हैं, उन्हें ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, अज्ञान के रहते राम को प्राप्त करना असंभव है –

कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूँढे बन माहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि॥

कबीर के राम निर्गुण निराकार हैं –

''जाके मुँह माथा नहीं, नाही रूप कुरूप।
पहुप बास ते पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप॥''

पुष्प के पत्तों में जिस प्रकार खुशबू का अनुभव किया जा सकता है, उसी प्रकार ईश्वर राम का अनुभव ज्ञान के द्वारा गूँगे के गुड़ की भाँति आनन्दानुभव किया जा सकता है।

कबीर सिद्धों और नाथों की चिन्तनधारा और साधना विधि से प्रभावित रहे हैं। सिद्धों की रचनाओं में जिस सहज समाधि का परिचय हम प्राप्त कर चुके हैं, उसका अवलम्ब अपनी साधना में कबीर ने भी ग्रहण किया है। कबीर की रचनाओं पर विचार करने से इस प्रकार की धारणा बनती है कि वे अद्वैतवादी सिद्धान्त से भी किसी-न-किसी रूप में प्रभावित थे। अद्वैतवादी सिद्धान्त के अनुकूल ही वे अपनी रचना में जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध को हिम और जल, कुम्भी और जल के पारस्परिक सम्बन्धों को दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत कर स्पष्ट करते हैं –

पानी ही से हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाय।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाय॥
जल में कुम्भ-कुम्भ में जल, सो भीतर बाहर पानी।
फूटा कुम्भ जल-जल ही समाना, यह तत बुझै गियानी॥

कबीर की रचनाओं से यह ज्ञात होता है कि वे इस्लामी एकेश्वरवाद से भी प्रभावित थे, साथ ही सूफी दर्शन से भी उन्होंने अपने चिन्तन स्वरूप का निर्धारण किया था। इस साधना के प्रभाव के कारण ही कबीर ने रहस्यवाद को भी अपनाया था। अपनी भक्ति में प्रेम तत्त्व का समन्वय कर उसे मधुर, भावना-प्रधान या प्रेम-प्रधान रूप दिया था।

कबीर ने साधना में गुरु का स्थान सर्वोपरी माना है। गुरु का स्थान ब्रह्म से भी श्रेष्ठ है। गुरु के लिये कबीर ने ''सूरखाँ'' शब्द का प्रयोग और ज्ञान के लिये ''सबद'' शब्द का प्रयोग किया है। ''सूरखाँ गुरु सबद'' बाण से अज्ञान का विनाश करता है। इस प्रकार का भाव कबीर की अनेक रचनाओं में मिलता है।

कबीर के काव्य में उनके समाज-निर्माता व्यक्तित्व का उद्घाटन सम्पूर्ण रूप में मिलता है। कबीर ने अपने ज्ञान और आत्मविश्वास से समाज के नव-निर्माण का प्रयास किया, परम्परागत सामाजिक रूढ़ियों और अंध-विश्वासों की उन्होंने कटु आलोचना की। कबीर ने इस सत्य का उद्घोष किया कि संसार का सबसे बड़ा सत्य मनुष्य है, कोई जाति या वर्ग नहीं है। उन्होंने राम-रहीम, केशव-करीम के भेद को समाप्त कर इन्हें एक-दूसरे के अभिन्न मानने की उद्घोषणा की। इस प्रसंग में कबीर उपदेशक रूप में सम्मुख आते हैं। इन विचारों के परिप्रेक्ष्य में कबीर आज भी प्रासंगिक लगते हैं। भीष्म रच्ति कबिरा खडा बाजार में इन्हीं संत कबीर की जीवनी पर आधारित नाटक है।

2.2 नाटक की संक्षिप्त कथा (अंकानुसार)

2.2.1 उद्देश्य

इस पाठ नाटक की संक्षिप्त कथा के माध्यम से आप –

- कबिरा खडा बाजार में नाटक की कथा से परिचित हो पायेंगे।
- कथावस्तु अंकवाद वर्णित हे अस्तु नाटक के सन्दर्भ में आपको पूर्ण ज्ञान हो सकेगा।
- भावपूर्ण स्थलों की व्याख्या भी प्रस्तुत है इसके माध्यम से आप नाटक की गहराइयों से अवगत होकर रसास्वादन में सक्षम होंगे।
- अन्त में प्रश्न उतर हाली में नाटक के समस्त पक्षों का उद्घाटन किया गया है इनके कारण नाटक सहजता से ग्राह्य होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.2.2 प्रस्तावना

डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित प्रस्तुत नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के कुल तीन अंक हैं और तीनों अंकों के नौ दृश्य हैं। जिसका मुख्य नायक कबीर है। इस नाटक में समकालीन क्रान्तिपुरुष कबीर की क्रांतिकारी विचारधारा, उनकी मान्यता और उनके द्वारा किये जाने वाले परिवर्तन को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नाटक के रचनाकार का कबीर के प्रति दृष्टिकोण यह है कि उनका आध्यात्म मूलत: मानवत मात्र के प्रति प्रेम, समता, भक्ति और धर्मेत्तर दृष्टि निर्दे शित है। उनके बाह्याचार विरोधी पद भक्तिभाव के पद और आध्यात्मिक पद एक ही पृष्ठभूमि से उत्पन्न हुए हैं और वे एक-दूसरे से अलग न होकर एक-दूसरे में गुँथे हुए हैं। यह निश्चय है कि जो साधक अन्तरिक्ष को छूते हैं, वे धरती पर से उठकर ही उन ऊँचाइयों को छूते हैं। इस नाटक की मूल चेतना भी कुछ यही है कि मानव सिर्फ मानव है, वह चाहे किसी भी जात अथवा धर्म विशेष को मानने वाला हो। कबीर की यह मान्यता है कि हिन्दु और मुसलमान एक ही माटी के बने हुए भाँडे हैं, तथा उनका बाह्याचार-विरोध और सहज समाधि के मार्ग का निर्देश व अनहद नाद में लीन होना एक ही व्यक्तित्व की रचनात्मक दृष्टि की उपज है। डॉ. साहनी ने प्रस्तुत नाटक के प्रस्तुतीकरण में यही दृष्टिकोण रखा है। इस नाटक की कथावस्तु को अंकों के अनुसार संक्षिप्त में हम इस प्रकार से प्रस्तुत कर सकते हैं—

2.2.3 प्रथम अंक

प्रथम अंक में पाँच दृश्य समाहित हैं।

2.2.3.1 प्रथम दृश्य

प्रथम दृश्य में डॉ. साहनी ने जुलाहा बस्ती का चित्रण प्रस्तुत किया है। उनकी जीवन शैली, उनका स्तर आदि का उल्लेख किया गया है। छोटे-छोटे झोंपड़ों का उल्लेख करके यह स्पष्ट किया है कि उनकी जीवन चर्या किस प्रकार की है, किस प्रकार लोग अपने पुश्तैनी धन्धे में व्यस्त है, कहीं पर सूत पकाया जा रहा है, कहीं पर लोग अपनी खड्डी चला रहे हैं। सीमित आकार वाले झौंपड़ों में उनका रहना-खाना-पीना व कमाना समाहित है। इन्हीं झोंपड़ों में नूरा नामक जुलाहा सूत पका रहा है, उसी समय एक अन्य जुलाहा अपने कंधे पर सूती कपड़े का थान डाले आता है और नूरा के साथ में कुछ बातचीत करता है। उनकी बातचीत का मुद्दा बजार की बिक्री व मन्दी है। वार्तालाप से यह भी पता चलता है कि इन दिनों बजार में उल्लू बोल रहे हैं, सामान बिकता नहीं है। इसी दौरान नूरा अपने कबीर के बारे में जानकारी करता है और आज होने वाली बिक्री के संदर्भ में पूछताछ करता है तो वह जुलाहा एक थान नूरा को दे देता है और कहता है कि यह कबीर ने तुम्हारे पास भिजवाया है और कबीर थोड़ा देरी से घर पर आयेगा। वह नूरा से यह भी कहता है कि मैं उसे बार-बार समझाता हूँ कि वह केवल अपने काम से ही काम रखे और व्यर्थ के प्रपंचों में न पड़े किन्तु वह मानता ही नहीं है। वही जुलाहा यह भी बताता है कि उसने कबीर को सराफा बजार से निकलकर मस्जिद की ओर जाते हुए देखा था और वह अपना मजमा लगाये हुए था और उसने दूसरे के प्रपंच में पड़कर अपने आपको एक नई समस्या खड़ी कर दी है। जब नूरा पूछता है तो वह बताता है कि जब महन्त के लोग किसी लड़के को बेंत से मार रहे थे तो कबीर बीच में आ गया। उन लोगों ने उस लड़के को तो छोड़ दिया किन्तु कबीर पर टूट पड़े। इसी संदर्भ में वह जुलाहा नूरा से भी यही कहता है कि कबीर को समझाना जरूरी है, यदि किसी ने कबीर की शिकायत यदि शहर के कोतवाल से कर दी तो मुसीबत हो जायेगी क्योंकि कोतवाल बहुत ही संगदिल, बे-रहम व्यक्ति है।

दोनों की बातें सुनकर कबीर की माँ नीमा दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई, तब नूरा नीमा से कहता है कि जरा तुम भी अपने लख्तेज़िगर के कारनामों को सुन लो और उसे अपनी भाषा में समझाओ। इसने तो हमारी नाक में दम कर दिया है। हमारी तो वह एक ही नहीं सुनता है, दो बार घर से भाग चुका है। नीमा भी इस लाल का समर्थन करती हुई कहती है कि अब तो हमें भी कबीर से डर लगने लगा है, कहीं ऐसा न हो कि हमारे द्वारा समझाये जाने पर वह फिरसे कहीं भाग न जाये। नूरा अपने किये पर पछताने लगता है और बार-बार कहता है कि उसे हमने अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करके बहुत बड़ी गलती की है। नूरा अपनी पत्नी पर भी यह दोषारोपित करता है किन्तु नीमा माँ होने के नाते उसका बार-बार पक्ष लेती है और उसके विरूद्ध बातें सुनकर उसे कष्ट होता है। यहाँ तक कि वह इसी चिन्ता के कारण से रोती रहती है। वह यह भी कहती है कि उसके खिलाफ वह कोई भी बात सुनना पसन्द नहीं करती है क्योंकि कबीर कोई साधारण बालक नहीं है। ऐसा बालक तो ढूँढ़ने से भी कहीं नहीं मिलेगा। वह कबीर को पुत्र रूप में पाकर अपने आप को धन्य मानती है। नूरा अपनी पत्नी की बातें सुनकर दु:खी होता है और कहता है कि हम लोग जुलाहे हैं और वह जुलाहा का जुलाहा बेटा है, जुलाहों का काम शास्त्रार्थ करना नहीं होता है बल्कि अपना कपड़ा बेचना है। नूरा कहता है कि भाँग-धतूरा खाना इतना बुरा नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है,जितना बुरा शास्त्रार्थ करना है। शास्त्रार्थ करने वालों के घर उजड़ते हुए देखे हैं। नूरा लगातार कबीर की बुराई करता रहता है, किन्तु नीमा पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता है। इसी दौरान कबीर का आगमन होता है। काफी देरी से घर पर लौटने के कारण नीमा बड़े प्यार से कबीर को सत्तू खिलाती है। उधर नूरा थान बिकने के बारे में कबीर से पूछता है किन्तु कबीर साफ-साफ कह देता है कि कुछ भी नहीं बिका। नूरा कहता है कि आज के बाद मैं स्वयं ही बजार जाया करूँगा और स्वयं ही कपड़े का थान बेचकर आया करूँगा। मैं अब तुम्हारे भरोसे पर कोई काम नहीं छोड़ना चाहता हूँ।

नीमा और कबीर अन्दर जाकर के बातें करने लगते हैं। नीमा कबीर से ही सारी बातें सुनना चाहती है किन्तु कबीर अपने मित्र रैदास, पीपा व सेना के बारे में ही पूछता रहता है। जब कबीर अपनी माँ के प्रश्नों के उत्तर देने में टालमटोल करता है तो नीमा यह समझ जाती है कि लगता है आज भी कबीर किसी के झगड़े में कूद पड़ा लगता है। कबीर अपनी सफाई में कहते हैं कि मैंने तो कसाई से कुछ भी नहीं कहा था, केवल एक कवित्त ही बोला था। नीमा उसे कवित्त बोलने के लिये भी मना करती है। वह कहती है कि आये दिन ऐसा ही होता है, तू क्यों लोगों से सवाल पूछता है ? वे यदि तेरी गतिविधियों को गलत मानते हैं तो तुझे ऐसा नहीं करना चाहिये। उनके हाथों में हमारी रोजी-रोटी है। अगर वे हमसे नाराज हो जायेंगे तो हम भूखों मर जायेंगे। क्या कोई बेटा अपने माँ-बाप को भूखों मारता है ? फिर मौलवियों-मुल्लाओं से कोई सवाल थोड़े ही पूछे जाते हैं। नीमा उसे समझाती हुई कहती है कि यह काशी नगरी हिन्दुओं की तीर्थ स्थली है। यहाँ पर हिन्दुओं की गतिविधियों का विरोध करना या उनका खण्डन-मण्डन करना एक प्रकार से अपराध है। इस सब वार्ताओं के साथ ही कबीर अपनी असली माँ के बारे में जानकारी लेने की पेशकश करते हैं। नीमा बार-बार उनसे यह कहकर टाल देती है कि बच्चे का जो लालन-पालन करते हैं वही असली माता-पिता होते हैं। कबीर अपनी माँ के उन आश्वासनों से संतुष्ट नहीं हो पाते हैं और मजबूर कर देते हैं तो नीमा भी कबीर को साफ-साफ बता देती है कि मैंने तो तुझे केवल पालन-पोषण कर बड़ा किया है, जन्म नहीं दिया है। वह यह भी बता देती है कि मैं जिस दिन विवाह कर अपने श्वसुराल में आ रही थी तो गंगा के उस पार जुलाहा बस्ती के रास्ते में ''तरणतारा'' नामक तालाब के पास कमल-पत्र पर तुझे लावारिस पाया था। उस समय तेरे मुँह पर तेरी माँ का दूध लगा हुआ था। मैंने कुछ समय प्रतीक्षा की, किन्तु जब तुझे लेने कोई नहीं आया तो मैंने तुझे अल्लाह का तोहफा समझकर अपने पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया था। इस समय मुझे ऐसा लगा था मानो कि विवाह के पहले ही मेरी सूनी गोद भर दी हो। नीमा ने बातों ही बातों में यह भी स्पष्ट कर दिया था कि तुझे जन्म देने वाली माँ एक ब्राह्मिणी थी अतः तू हिन्दु है, एक ब्राह्मण का बेटा है। साथ में नीमा यह भी समझा देती है कि हमेशा मनुष्य को अपनी औकात के अनुसार ही सारे काम करने चाहिये और उसी के अनुसार बोलना-चालना चाहिये। कबीर अपनी वास्तविक स्थिति को समझ जाते हैं और हँसने लगते हैं। वे कहते हैं कि ''माँ मैं तेरी सारी बातें मान लूँगा और आगे से मैं वही करूँगा, जो तू कहेगी। यदि कोई हिन्दु मुझे पूछेगा तो कहूँगा कि मैं हिन्दु हूँ और कोई मुसलमान पूछेगा तो कहूँगा कि मुसलमान हूँ, जिससे कोई भी मुझे कोड़े नहीं मारेगा।'' नीमा माँ होने के नाते कबीर की भावना को समझ जाती है और कबीर भी माँ को आश्वस्त करते हैं कि मैं अपना काम मन लगा कर करूँगा। इन सबके बाद कबीर का मन उद्विग्न रहता है। जब नीमा वहाँ से चली जाती है तो कबीर की चिन्तन स्थिति और अधिक तीव्र हो जाती है।

कबीर सोचते हैं कि ''अंधेरा उतरने लगता है, एक और दिन डूबने लगा है। माँ भी समझती है कि मैं हीं लोगों को परेशान करता फिरता हूँ। माँ को मेरी पीठ पर पड़े घाव तो नज़र आते हैं लेकिन मेरा दिल कैसा छलनी हो रहा है यह कोई नहीं देख पाता है। सभी समझते हैं, मैं आवारा हूँ, लोगों से उलझता फिरता हूँ। मेरी यह भटकन कब खत्म होगी मेरे मालिक ? क्या फिर वन में निकल जाऊँ ? मुझे शांति नहीं चाहिये। मुझे इस अंधेरे में रोशनी की लौ चाहिये। हर समय एक ही सवाल मेरे मन में घूँमता रहता है अगर यह सब झूँठ है तो फिर सच क्या है ? मैं भी तेरा बन्दा हूँ मालिक, फिर मेरी ठौर कहाँ पर है ?'' कबीर इसी प्रकार एक दीवार के सहारे खड़े होकर चिन्ता मग्न हो जाते हैं। कबीर का यही चिन्तन, इसी सत्य की खोज और यही सवाल उनकी मुख्य चेतना है।

2.2.3.2 दूसरा दृश्य

इस दृश्य में काशी नगर के कोतवाल को वहीं के नागरिक के साथ वार्तालाप करते हुए दर्शाया गया है। एक शिवालय में शिव महिमा स्त्रोत का पाठ चल रहा है। वहाँ के बड़े महन्त काशी में पहुँचे गये हैं। एक नागरिक जो कायस्थ है वह कोतवाल को बताता है कि महन्त जी की सवारी पूरे साज-बाज और गाजे-बाजे से आई है। कोतवाल महन्त के संदर्भ में अनेक प्रकार की जानकारी प्राप्त करता है और कायस्थ उसे सारी जानकारी दे देता है। दोनों के बीच हुई वार्ता का कुछ अंश इस प्रकार है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कायस्थ – धर्म के तो सब हिन्दू ही हैं साहिब, पर हिन्दू धर्म के अन्दर भी बहुत से धर्म-सम्प्रदाय हैं। अब आपको कैसे समझायें। यह शैव है हुजूर, शिव की उपासना करते हैं।

कोतवाल – सुना है बहुत पहुँचे हुए महन्त हैं, कहाँ से आ रहे हैं ?

कायस्थ – कुरुक्षेत्र में इनका अखाड़ा है साहिब। वहीं से साल में एक बार काशी धाम करते हैं।

कोतवाल – मैंने सुना है, शहर में बड़ी सजावट की गई है। आपके यहाँ मठ-मन्दिर, जात-पात बहुत है। हम तो इन्हें समझ भी नहीं पाते हैं।

कायस्थ – बहुत है, मालिक, ब्राह्मणों की ही एक सौ आठ जातियाँ हैं। एक-एक जाति की फिर उपजाति है, हजारों जाते हैं।

कोतवाल – इतनी जातों का हिसाब कौन रखता होगा ? हमें यहाँ आये महिना भर हो गया, मगर हम तो इन्हें अभी तक नहीं समझ पाये हैं।

कायस्थ – पूछिये मालिक। हम सब बताएँगे।

कोतवाल – इस आदमी ने सफेद रंग का टीका लगा रखा है, कुछ लोग लाल रंग का टीका लगाते हैं, कुछ लाल और सफेद दोनों, यह माजरा क्या है ?

कायस्थ – सफेद टीका लगाने वाले वैष्णव हैं हुजूर। और लाल टीका लगाने वाले देवी की पूजा करते हैं,वे शाक्त हैं। और सीधे रूख टीका लगाने वाले शैव होते हैं।

कोतवाल – मगर किसी के माथे पर एक रेखा होती है, किसी पर दो और किसी पर तीन भी ?

कायस्थ – एक रेखा वे लगाते हैं जो केवल ब्रह्म को मानते हैं। जो जीव और ब्रह्म दोनों को मानते हैं, वे दो रेखाएँ लगाते हैं और जो तीन रेखाएँ अपने मस्तक पर लगाते हैं वे जीव, ब्रह्म और प्रकृति तीनों को ही मानते हैं। और जो ब्राह्मणों में टीका न लगाये उसे तो चाण्डाल माना जाता है।

कोतवाल – इसका मतलब हम चाण्डाल हुए।

कायस्थ – आप तो कोतवाल हैं मालिक, मैं तो ब्राह्मणों की बात कर रहा हूँ।

कायस्थ – सवारी आ पहुँची। महन्त नये मठ की नींव रखने आये हैं और बड़े मन्दिर में मूर्ति की स्थापना करेंगे।

कोतवाल – मैंने सुना है, मन्दिर की मूर्तियाँ तो मुसलमान कारीगर बनाते हैं।

कायस्थ – जी। पर स्थापित करने से पहले उन पर गंगाजल छिड़कर कर उन्हें पवित्र किया जाता है। प्राण-प्रतिष्ठा तो बाद में होती है। प्राण-प्रतिष्ठा के बाद मूर्ति देवता बन जाती है, उसके पहले तो पत्थर है।

कायस्थ और कोतवाल के बीच मूर्तियों के बारे में और अन्य विषयों के संदर्भ में भी बातें होती हैं जो कि धर्म से सम्बन्धित हैं। इस दृश्य के अन्त में कुछ अन्य नागरिकों की बातचीत भी दर्शाई गई है जिनका विषय महन्त जी की गुणवत्ता, ज्ञान-गरिमा और अलौकिकता है। नागरिक यह मानते हैं कि महन्तजी के पास दिव्य शक्ति है, वे कुछ भी कर सकते हैं। एक नागरिक यह भी बताता है कि महन्तजी इतने पहुँचे हुए हैं कि एक ही सिलसिले में सौ-सौ स्त्रियों के साथ संभोग कर लेते हैं फिर भी वीर्य पात नहीं होता है। उनके चेहरे पर बड़ा तेज है। इसके बाद कबीर को कुछ लोगों के साथ उल्झते हुए दिखाया गया है। कुछ लोगों को साधुओं पर पत्थर फेंकते और अश्लील गालियाँ देते हुए दिखाया गया है और इसी के साथ दूसरा दृश्य समाप्त होता है।

2.2.3.3 तीसरा दृश्य

इस दृश्य में कोतवाल की बैठक को दर्शाया गया है। उनके प स दो-तीन मुसाहिब बैठे हुए हैं और अखाड़े का महन्त भी बैठा हुआ है। महन्त और कोतवाल के बीच वार्ता होती है, जिसमें कोतवाल महन्तजी का गुणगान करता है और उनके आगमन पर उनका आभार भी व्यक्त करता है। महन्त कोतवाल से एक प्रार्थना करते हैं कि मठ की जमीन तो उनके नाम पर हो गई है और जल्दी ही वहाँ पर इमारत बनने लग जायेगी किन्तु उसके ठीक सामने नीच लोगों की बस्ती है, वह वहाँ पर नहीं रहनी चाहिये। वे कहते हैं कि हमारे यहाँ पर ऊँच-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नीचे को बहुत महत्त्व दिया जाता है। महन्त की पेशकश के बाद कोतवाल शेख साहब को उस बस्ती की जानकारी करने का आदेश देता है। महन्तजी को यह कहकर शान्त कर दिया जाता है कि वह उनकी बात पर विचार करेंगे। इसी दौरान कोतवाल के पास एक मौलवी आ जाता है वह उससे कबीर नामक जुलाहे की बातचीत करता है। मौलवी कहता है कि यह जुलाहा कपटी है, क़ाफ़िर है और मनचाही बेढ़ंगी बातें करता है। वह किसी भी व्यक्ति को या उसके धर्माचार को किसी प्रकार का महत्त्व नहीं देता है। मौलवी की बातें सुनकर कोतवाल केवल यह कहकर उसे शान्त करने का प्रयास करता है कि कबीर तो केवल शायरी करता है, कवित्त पढ़ता है उसे बकने दें। इससे किसी पर कोई फ़र्क नहीं पड़ता है। इसी बीच कोतवाल किसी दूसरे मुसाहिब से बातें करने लग जाता है।

कोतवाल हिन्दुओं के प्रति बहुत-सी जिज्ञासाएँ रखता है, उनकी बहुत-सी जानकारी करना चाहता है। मौलवियों के बारे में उसकी धारणा यह है कि मौलवी लोग जजबाती होते हैं और वे जजबात की रौ में बह जाते हैं, जबकि हाक़िम कभी भी जजबाती नहीं होता है, वह केवल दिमाग से काम करता है। वह अपनी अक्ल से काम लेता है और मौलवी भावना से काम लेता है। हाक़िम अपने अज़ीज़ से अज़ीज़ दोस्त को भी फाँसी की तख्ते पर चढ़ा सकता है। कोतवाल कहना चाहता है कि वह हाक़िम है, किसी भी बात को भावावेश में मान लेना उसके लिये असम्भव है। मुसाहिब से उसके बारे में पूछता है तो पता चलता है कि वह कबीर का पद गा रहा है। कबीर के पद बहुत से लोग गाते रहते हैं। कोतवाल कहता है कि कबीर को रोकना आवश्यक नहीं है बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि इस शहर में उसका प्रभाव कम हो। कोतवाल यह भी जानता है कि इस शहर में हिन्दुओं और मुसलमानों का समान रूप से वर्चस्व है। साथ ही कोतवाल यह भी समझता है कि काशी हिन्दुओं की धर्मस्थली है और यहाँ का राजा हिन्दु है और वह लोदी बादशाह को ख़िराज़ देता है। अगर हम मज़हब के नाम पर इस व्यक्ति को सजा देंगे तो किसी को भी बुरा लग सकता है। मौलवी कोतवाल को यह कहकर समझाना चाहता है कि कबीर को सजा अवश्य ही मिलनी चाहिये क्योंकि उससे हिन्दु लोग भी नाराज़ हैं। अन्त में कोतवाल कहता है कि ''ज़रूरत इस बात की नहीं है कि कबीर को सज़ा दी जाये। ज़रूरत इस बात की है कि उसकी बात सुनने वालों के दिल में इतनी दहशत फैलाई जाये कि लोग ख़ुद-ब-ख़ुद उससे दूर रहने लगे। अगर हम कबीर को सज़ा देंगे तो उसकी बात सुनने वालों के दिल में उसके लिये हमदर्दी पैदा होगी। इसी को हिक़मत कहते हैं।''

2.2.3.4 चौथा दृश्य

प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य में कबीर को एक झोंपड़ी के आगे अपनी खड्डी पर बैठे हुए बताया गया है। वे खड्डी की लय के साथ-साथ एक मनमोहक और मर्मस्पर्शी पद गुनगुना रहे हैं- ''झीनी झीनी बीनी चदरिया'' पद गुनगुनाते-गुनगुनाते वे उसी में डूब जाते हैं, तभी वहाँ पर उनके मित्र रैदास, पीपा और सेना आ जाते हैं। रैदास कबीर से कल हुई मुलाक़ात के सिलसिले में जानकारी करना चाहते हैं।

कबीर बताते हैं कि कल मैं जिस महात्मा से मिलने गया था, वे दक्षिण से आये थे। मैं उनका प्रवचन चुपचाप सुनता रहा तो मेरे मन में कई प्रश्न उठे। जो भी प्रश्न उठे उनके बारे में मैंने उनसे पूछा किन्तु उन्होंने कोई संतोषजनक जवाब नहीं दिया। कबीर अपने मित्रों से वार्ता करने के बाद इस निर्णय पर पहुँचे कि हमारे पद गाये जाने वालों को दण्डित किया जाता है। कल अन्धी माँ के बेटे पर कोड़े बरसाये गये, यह न्यायोचित नहीं है। सेना ने यह निर्णय लिया कि हम सभी से यह कह देंगे कि कोई भी गली या बजार में हमारे पद न गाया करे, अन्यथा उन पर किसी भी प्रकार की मुसीबत आ सकती है। कबीर इस प्रस्ताव से सहमत नहीं होते हैं। वे चाहते हैं कि हमारी आवाज बन्द न हो। वह किसी-न-किसी माध्यम से सारे समाज में गूँजती रहे। अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कबीर प्रतिदिन सत्संग तथा समागम करने की बात करने लगे। अब तो प्रश्न यह उठता है कि सत्संग कहाँ पर किया जाये ? कबीर कहते हैं कि सत्संग तो किसी भी चबूतरे पर या सड़क के किसी भी किनारे पर किया जा सकता है, जहाँ पर भी जगह मिलेगी, सत्संग वहीं पर कर लिया जायेगा। कबीर कहते हैं कि कुछ-न-कुछ तो हमें करना ही पड़ेगा। बिना कुछ किये सुधार होना असंभव है। हमें चाहे कितना भी संघर्ष करना पड़े घबराना नहीं है।

2.2.3.5 पाँचवाँ दृश्य

प्रस्तुत दृश्य में बशीरा और सेना के बीच में वार्तालाप दर्शाया गया है जिसका मुख्य बिन्दु साधु-महात्मा व उनके क्रिया-कलाप हैं। एक व्यक्ति कहता है कि गाँव में कुछ साधु-महात्मा पधारे हैं और वे पहुँचे हुए साधुजन हैं। किन्तु उनकी बातें अनुचित हैं। जब उनसे पूछा जाता है कि योग-साधना करने वालों को घर-गृहस्थ छोड़ देना चाहिये अथवा नहीं ? तो वे इस बात का उत्तर न देकर प्रश्नकर्ता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से उसकी जाति पूछते हैं और यह कहकर चुप कर देते हैं कि नीच जाति को इस प्रकार के प्रश्न पूछने का कोई अधिकार नहीं है। तत्पश्चात सेना और बशीरा सत्संग करने की स्थिति, उसके परिणाम आदि के बारे में बातचीत करने लगते हैं। इसी दौरान तैमूरलंग व उसके सिपाहियों तथा उनके द्वारा की गई लूटपाट के बारे में भी बातचीत होने लगती है। बशीरा बताता है कि तैमूर बादशाह जिस शान-शौकत से आया था, वह उससे दुगनी शान से लौटा था। जब वह आया था तब उसके साथ घोड़े थे और जब वह लौटा तो उसके साथ हाथी थे। इतना ही नहीं जब वह लौटा तो उसके साथ कई खूबसूरत औरतें भी थी, कई कलाकार थे। तत्पश्चात बशीरा, सेना, रैदास और कबीर सत्संग की बातें करने लगे। वार्ता में यह तय किया गया कि पंचगंगाघाट पर सत्संग किया जायेगा। इसी दौरान कबीर ने अपनी गुरु-दीक्षा के संदर्भ में बिस्तार से बताया। कबीर कहते हैं कि "हम जिन गुरु से दीक्षा प्राप्त करना चाहते थे वे पौ फटने से पहले प्रतिदिन स्नान करने के लिये पंच गंगाघाट पर उतरते हैं, हमने कहा, बस ठीक है। रात पड़ते ही हम वहाँ पहुँच गये और घाट की एक सीढ़ी पर पर पसर गये और चादर ओढ़ ली। वहाँ की सीढ़ियाँ बहुत ही सँकरी हैं, हमने सोचा, महाराज इधर से उतरेंगे तो हमें छुए बिना तो निकल ही नहीं सकते, उनका पाँव हमसे जरूर ही टकरायेगा। बस उनके चरण हमें छू जाये, हमारी गुरु दीक्षा पूर्ण हो जायेगी..........बस वही हुआ। पास से गुजरे तो उनका पाँव हम पर पड़ गया। वे स्वयं तो जानते भी नहीं कि कबीर नाम का कोई जुलाहा है, जिसे उन्होंने दीक्षा दी है। हम तो उन्हें दूर से ही पहले भी निहारा करते थे और अब भी निहारा करेंगे। उनके चेहरे का नूर देखकर ही हमने कहा –

लाली मेरे लालकी जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

कबीर और उनके मित्रगण सत्संग करने के लिये जमीन को बुहारते हैं। उनके सत्संग में हिस्सा लेने के लिये और भी बहुत से लोग आ जाते हैं। कुछ लोग भंगियों की बस्ती से भी आते हैं। नन्दू की अंधी माँ भी वहाँ पर आ जाती है। सत्संग में आकर बैठने से पहले एक भक्त कबीर से प्रश्न करता है कि किस ओर मुँह करके बैठा जाये ? और क्या यहाँ भी घंटी बजेगी, जैसे कि मन्दिरों में बजा करती है ? सेना कबीर की ओर से उत्तर दे देता है कि यहाँ घंटी बजाने की कोई आवश्यकता नहीं है। कबीर उस भक्त को यह समझाते हैं कि भगवान तो चारों तरफ है, किसी भी दिशा में मुँह करके बैठा जा सकता है, किन्तु फिर भी भक्त को जब शांति नहीं मिलती हैं तो वह कबीर से पूछता है कि तुम किस ओर मुँह करके बैठोगे ? कबीर ने मुस्कुरा कर कहा कि मैं तो तुम्हारी ओर मुँह करके बैठूँगा, क्योंकि मुझे तो तुममें ही भगवान नज़र आते हैं। इसके बाद सत्संग प्रारम्भ हो जाता है। रैदास और कबीर पद गाते हैं –"मो को कहा ढूँढे बंदे, मैं तो तेरे पास में" इसी बीच एक लड़का कबीर को खोजता हुआ वहाँ पर आ पहुँचता है, वह सूचना देता है कि कबीर तुम्हारा सारा का सारा झौंपड़ा जल गया है और आग बस्ती में फैलती जा रही है। कबीर बड़े धैर्य और शान्त मन से अपने माता-पिता के बारे में पूछते हैं। उसी लड़के से यह पता चलता है कि उसके बापू के हाथ जल गये हैं। कबीर सोचते हैं कि ऐसा तो एक न एक दिन होना ही था। इसी घटना के साथ प्रथम अंक का अन्तिम दृश्य समाप्त होता है।

2.2.4 द्वितीय अंक

प्रस्तुत नाटक "कबिरा खड़ा बजार में" की यह अंक तीन दृश्यों में प्रस्तुत किया गया है।

2.2.4.1 प्रथम दृश्य

प्रथम दृश्य में कबीर के मित्र पीपा सेना और बशीरा सड़क के किनारे पर बने हुए एक चबूतरे पर बैठे हुए दिखाये गये हैं। सभी इस विषय पर बात कर रहे हैं कि महन्त के आदमियों ने गोरखनाथियों के पाँच आदमी खत्म करा दिये हैं। इसका कारण यह है कि महन्त यह नहीं चाहते हैं कि दोनों मठों के दरवाजे साथ-साथ हों। अब तो दोनों मठों की गलियाँ भी सूनी पड़ी हुई हैं। साधु लोगों ने भी बरछे उठा लिये हैं, किसी भी समय कोई भी दुर्घटना घटित हो सकती है। बशीरा सलाह देता है कि ऐसे लोगों को मुँह नहीं लगना चाहिये। वह यह भी कहता है कि कबीर मुँहफट है। सेना ऐसी स्थिति में यह व्यवहार करता है कि साधु महाराज आप भले ही मेरी पीठ पर कोड़े मार लीजिये पर इस मासूम को कुछ न कीजिये। और जहाँ तक कबीर का प्रश्न है, वह तो लट्ठामार भाषा बोलता है। महन्त का आगमन, उसका प्रभाव व उसकी स्थिति को लेकर कबीर की मण्डली आपस में बातचीत करते रहते हैं। कबीर अपने साथियों को निर्भीक रहने की सलाह देते हैं, वे कहते हैं कि अपना काम करो और ईश्वर का गुणगान करो।

पीपा यह बताता है कि कबीर तुम्हारे पिताजी तुमसे पूरी तरह से विपरीत हो गये हैं। मुझे देखकर तो वे मुझसे सीधे मुँह बात करने को तैयार ही नहीं होते हैं। तुम्हारी माँ के मन में तुम्हारे प्रति ममता अवश्य है। उन्होंने कल मुझसे कहा था कि बेटा ! कबिरवा को समझाओ,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उससे कहो कि वह व्यर्थ की बातें छोड़े और अपनी खड्डी चलाये और अपने काम में मन लगाये। कबीर ने पीपा से कहा कि कल मैं जब तुम्हारे घर पर गया तो तुम्हारे बापू ने भी मुझसे यही कहा था। कबीर की मण्डली के सभी लोग फक्कड़ हैं, अपना अपना घर छोड़कर बैठे हैं, उनका काम केवल घर की रोटी खाना, सत्संग करना और पद गाना बस। सभीलोग निम्न जाति के हैं और समाज को सही दिशा दिखाने के लिये पौराणिक व सड़ी-गड़ी मान्यताओं पर प्रहार करते रहते हैं। कबीर को इसी दौरान अपनी माँ का खयाल आ जाता है और वे कुछ समय के लिए थोड़े भावुक हो जाते हैं। वे कहते हैं कि मेरा व मेरी माँ का बन्धन भी अजीब है। वह मेरी माँ नहीं है, फिर भी वह मुझे हर संकट से बचाना चाहती है, उसके मन में मेरे प्रति प्रेम की वर्तिका जलती रहती है। कबीर कहते हैं कि जिसके हृदय में प्रेम होता है, उसके हृदय में भगवान का बास है।

सेना यह बताता है कि कुरुक्षेत्र के महन्त कोतवाल से मिलने गये और डोमों की बस्ती को हटाने के लिये उससे प्रार्थना की, क्योंकि वह बस्ती महन्तजी के मठ के बिल्कुल सामने पड़ती है। डोम और चमार इस बात से प्रसन्न हैं कि यदि पास में मठ बनेगा तो उन्हें भी रोजगार मिल जायेगा। पीपा कोतवाल की जालिमाना हरकतों की बातें करता है। साधु लोग इन लोगों को डाँटते-फटकारते रहते हैं। कबीर स्पष्टवादी होने के कारण इनको आड़े हाथों लेते रहते हैं। कभी वे व्यंग्य करते हैं तो कभी आक्रामक शैली में साधुओं की पोल खोलते रहते हैं –

कहिये महाराज, पहुँच गये काशी ? कै दिन की लूट-पाट रहेगी काशी में ? अगर हम नहीं आये होते तो आपने तो उस बच्चे को ठिकाने लगा दिया होता। कहाँ से मिली इतनी बड़ी चाबुक महाराज ? भगवान का नाम लेते हो और चाबुक चलाते हैं –

''माला फेरी तिलक लगाया,
लम्बी जटा बढ़ाता है।
अन्तर तेरे कुफर कटारी,
यों नहीं साहिब मिलता है।''

कबीर की इस बात को सुन कर साधु तिलमिला जाते हैं और उन्हें डाँटने लगते हैं। कबीर यह भी कहते हैं कि महाराज आप तो ब्राह्मण हैं, आपकी धमनियों में तो रक्त की जगह अमृत बहता है तो आप यह तो बताइये कि जब माँ के पेट से जन्म लिया था तो क्या उस समय भी तिलक लगाये हुए ही थे ?

कबीर जी इस व्यंग्य से यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि यहाँ कोई छोट या बड़ा नहीं है। सभी एक ही बिन्दु से बने हुए हैं। सबका मल-मूत्र एक जैसा है और सभी का शरीर भी एक जैसा है। सबकी जाति एक जैसी है और वह जाति मानव जाति है जो भगवान की है। कबीर की ऐसी बातों को सुनकर साधु महाराज और अधिक क्रुद्ध हो जाते हैं। इसी दौरान कबीर के साथी कबीर से पूछते हैं कि जब तुम कल ज्ञानी महाराज से मिलने गये थे तो उनसे क्या-क्या बातें हुईं ? कबीर कहते हैं कि ज्ञानी महाराज ने कोई भी ऐसी बात नहीं कही थी जो कि ग्रहण करने योग्य हो। मैंने ही उनसे प्रश्न पूछे थे और कहा था कि महाराज कोई ऐसा मार्ग बताइये जो सबके लिये हो तथा जिस पर गृहस्थ, साधु, हिन्दू, तुर्क आदि सभी चल सकें। वे केवल इतना कहकर चले आये कि ईश्वर केवल उन लोगों को प्राप्त हो सकते हैं जिनके मन में दया हो और जो धर्म का सही अर्थ ग्रहण करता हो, जिनका आचरण पवित्र हो।

2.2.4.2 द्वितीय दृश्य

इस दृश्य में कबीर अपनी पत्नी लोई से बातचीत करते हुए दिखाई गये हैं। नाटककार ने स्पष्ट किया है कि कबीर का जो झोंपड़ा जल गया था, उसकी सामान्य मरम्मत कर दी गई है और उसे रहने लायक बना दिया गया है। कबीर अपनी नव विवाहिता पत्नी को लेकर आ जाते हैं। वे लोई से कहते हैं कि यह मेरी कैसी विडम्बना है कि मैं तुम्हें ब्याह कर लाया हूँ तो इस बिना छत के जले हुए झोंपड़े में। कबीर एक-एक करके अपने बारे में, अपने पिता की खड्डी के ब रे में भी बताते हैं। कबीर प्रेम पूर्वक यह भी कह देते हैं कि अगर यह झोंपड़ा जल गया है तो क्या है। इस घर में अब तुम आ गई हो तो लगता है कि कुछ भी नहीं जला है। तुम्हारे आने से तो इस झोंपड़े में उजाला सा हो गया है। मेरी माँ ने इस जले हुए झोंपड़े में भी बड़ी-बड़ी इच्छाएँ व्यक्त की है। कल मेरे कुछ साथी यहाँ आ जएँगे और इसकी सजावट कर देंगे तथा यदि कुछ फूस मिल गया तो इस पर छप्पर भी बना देंगे। लोई कबीर की बातें सुनती रहती है।

लोई कबीर के सामने यह भाव भी व्यक्त करती है कि जब उन्हें गंगाजी में डुबोया गया था तो उसे बहुत दुःख हुआ। इसी दौरान वहाँ पर नीमा आ जाती है और वह कबीर के बारे में लोई को समझाती है। लोई भी कुछ समय कबीर से बातें करती रहती है और कबीर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उसे सत्संग की बातें बताते रहते हैं। लोई सत्संग के बारे में यह जानना चाहती है कि सत्संग क्या होता है। इससे लोई की निश्छलता व सादगी का पता चलता है। कबीर को गंगा में डूबो दिये जाने वाले दृश्य को देख कर आज तक अभिभूत है। उस समय उसकी जो हालत होती हे उसका वह कबीर के सामने स्पष्ट उल्लेख करती है। कबीर भले ही गंगा में डुबो दिये गये थे किन्तु वे बच निकले थे। अपनी बची हुई जिन्दगी से कबीर खुश हैं और वे लोई से यही कहते हैं कि उस समय मैंने तेरे हाथ का दूध पिया था, इसीलिये बच गया हूँ। कबीर और लोई के बीच कुछ समय रोचक व मनोरंजक वार्तालाप होता है उसे इसी दृश्य में दर्शाया गया है। वार्ता का कुछ अंश प्रस्तुत है –

कबीर – तू कुछ भी तो नहीं कहती। मैं बहुत बोलता हूँ। सभी कहते हैं, कबीर तू बहुत बोलता है, बहुत बोला न कर।

लोई – जब तुम्हें गंगाजी में डुबोया था तो हमने देखा था।

कबीर – ओ तू बोली तो। मैं समझे बैठा था, लोई गूँगी है। तूने देखा था। (हँसकर) पर मुझे तो तीन बार डुबोया था।

लोई – हम भीड़ में खड़े थे। हमने सोचा तू डूब जायेगा।

कबीर – मुझे तेरे दर्शन जो करने थे, मैं कैसे डूब सकता था।

लोई – मेरे बापू कहते थे, कबीर को एक दिन मार डालेंगे।

कबीर – तेरे बापू बड़े मेहरबान हैं।

लोई – तू घर से भागा था ना ?

कबीर – तुम्हें यह भी मालूम है, हाँ मैं घर से भाग गया था, बनों में चला गया था।

लोई – अब फिर से भाग जायेगा ?

कबीर – नहीं, अब नहीं भागूँगा।

लोई – तेरे जैसों का क्या भरोसा ? तूँ माँ-बाप को छोड़कर भाग गया था तो हमें भी छोड़कर भाग सकता है।

कबीर – (अथाह प्रेम से मुस्कुराता है।)
तेरे हाथ से दूध पिया तभी मैं बच गया।

लोई – क्यों ? बच गये थे तभी तो दूध पिया, मर गये होते तो दूध कैसे पीते ?

कबीर – तू चाहती तो यही थी ना कि मैं नहीं मरूँ ?

लोई – हम कैसे चाहते थे, हम तो तुम्हें जानते ही नहीं थे। बापू ने कहा दूध ले आओ। हम क्या बोलती हम न ले आएँगी ?

कबीर – अब तो जान गई हो ना !

लोई – नहीं तो जानते होते तो तुमसे पूछते क्यों ?

कबीर – कुछ तो जानती हो न !

लोई – हम तो उतना ही जानती हैं, जो बापू ने घर में बताये रहे।

कबीर – बापू क्या बताये रहे ?

लोई – बापू बताये रहे कि तुम पर कोड़े पड़ते रहे। तुम गली, बजार में कवित्त गाते फिरते हो।

कबीर – बस इतना ही ?

लोई – बापू सारे वख्त तुम्हारी बातें करते रहे हैं। कहते हैं, बड़े गुर्दे वाला आदमी है, उन्हें तुम पर दया भी आती है।

कबीर – (हँसकर) और तुम्हें नहीं आती ?

लोई – हमें क्यों आये ? हम तुम्हें जानते थोड़े ही थे।

कबीर – मैं तुम्हें पागल नजर आता हूँ ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लोई –हम क्या जाने ? लोग-लुगाई यों ही थोड़े ही कहते फिरते हैं। पूरे पागल नहीं तो आधे पागल होंगे। आधे पागल भी तो होते हैं।

लोई – तेरा घर-दुबार नहीं था तो तैंने बियाह क्यों किया ?

कबीर – कहती तो ठीक हो। (कुछ सोचकर) तुम्हें यहाँ आना अखर रहा है ?

लोई – अखरेगा नहीं तो अच्छा लगेगा ? सभी लोग घर-कुटिया में रहते हैं, जहाँ छाँव होती है, हमारे झोंपड़े में तो पानी नहीं गिरता।

कबीर – यहाँ भी नहीं गिरता था, मगर झोंपड़ा जल जो गया। अब मरम्मत हो जायेगी तो ठीक हो जायेगा।

(कुछ सोचकर)

कबीर : लोई !

लोई : क्या है ?

कबीर : तेरे बाप ने जबरदस्ती तेरी शादी की है, तू मेरे साथ रहना नहीं चाहती थी ।

लोई : यह भी कोई पूछने वाली बात है ?

कबीर : क्यों ?

लोई : बापू ने हमसे पूछा थोड़े ही था।

कबीर : और अगर हम पूछें तो ?

लोई : पूछ भी रहा है तो शादी के बाद। अब क्या तुक है ? फिर भी बता दूँ सुनेगा।

कबीर : बता दे।

लोई : हमारे पिछवाड़े एक साहुकार का छैल-छबीला बेटा रहता था। वह हमें ब्याहना चाहता था, उससे हमारा परेम था।

कबीर : फिर ?

लोई : बापू हमसे पूछता तो हम तो सच्चा कहती, हम उस से ब्याह करेंगे । उससे हमारा परेम है। उसे पता चला कि तुमसे हमारा ब्याह होने जा रहा है तो उसने कहा, भाग कर हमारे यहाँ चली आओ। और क्या मालुम हम चले भी जाते।

कबीर : तू उससे ब्याह करना चाहती थी?

लोई : और नहीं तो क्या। उसे हम जानती थी, वह हमें जानता था, तुम्हें तो हम जानती भी नहीं थी।

(कबीर सोच में पड़ जाता है)

कबीर : यह तो बड़ा अनरथ हुआ।

लोई : अनरथ तो हुआ ही, पर इसका दोस हम तुम्हें थोड़े ही दे रही हैं। बापू ने ब्याह कर दिया तो हम यहाँ चली आई।

कबीर : अब तुझे घर पर रखा तब तो दोस मेरा ही होगा।

लोई : (कबीर की ओर देखती है) फिर तू क्या करेगा ?

कबीर : उसके साथ तू खुश रहेगी तो तू जरूर उसी के पास चली जा। तूने पहले कहा होता तो मैं तुम्हें लाता ही नहीं।

लोई : अब अकेली उसके घर चली जाऊँ ? रात के वखत, बारिस में ?

कबीर : भाग कर जाती तो भी तो अकेली ही जाती ना। पर नहीं तू अकेली मत जा, मैं तुम्हें पठाने ले चलता हूँ।

लोई : कहाँ पठाने जायेगा ?

कबीर : उस साहूकार के बेटे के पास छोड़ आऊँगा। उसने कहा भी तो था कि भाग कर मेरे पास में चली आना।

लोई : (हैरानी से) तू हमें पठाने जायेगा ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कबीर : जो कहेगी, वही करूँगा। अपने आप जाना चाहती है तो अपने आप चली जा और चाहती है कि मैं लिवा ले जाऊँ तो मैं ले चलूँगा।

लोई : सच ! तू मुझे वहाँ छोड़ आयेगा ?

कबीर : हाँ, हाँ ! तू चिन्ता नहीं कर, मैं ही तुझे ले चलूँगा।

कबीर : अरे ? तू लौट आई ? क्या कुछ बिसर गई थी ?

लोई : हम कहीं नहीं जायेगे।

कबीर : मगर लोई ! तुम्हें तो उससे परेम है ?

लोई : हम यहाँ तेरे ही संग रहेगी।

कबीर : वहाँ खड़ी-खड़ी क्यों भीग रही है ?

लोई : हाथ पकड़ कर अन्दर लिवा ले।

(कबीर हाथ बढ़ा देता है, लोई हाथ पकड़ कर अन्दर आती है।)

2.2.4.3 तृतीय दृश्य

इस दृश्य में कायस्थ और कबीर का वार्तालाप दिखाया गया है जो काफी लम्बा चलता है। कायस्थ कबीर को बार-बार यह समझाता है कि उसे अपनी प्रतिभा को पहचानना चाहिये। वह कवि है, गायक है तथा ईश्वर ने उसे विलक्षण प्रतिभा दी है जिसकी उसे रक्षा करनी चाहिये। कायस्थ कबीर को कविता के लक्षण सीखने की सलाह देता है, भाषा के सही प्रयोग की सलाह देता है तथा वह यह भी बताता है कि उसे खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति को त्याग देना चाहिये, उसे केवल उच्च स्तरीय कविता करनी चाहिये। वह अपने संदर्भ में बताता है कि भले ही वह स्वयं कवि नहीं है, किन्तु उसके पास कवि हृदय अवश्य है। इसलिये वह कबीर की कविता को अच्छी प्रकार से समझता है, उनमें व्यक्त भावों की अच्छाई को भी समझता है तथा उसे स्वीकार भी करता है। कायस्थ कबीर को यह भी सलाह देता है कि उन्हें अच्छे-अच्छे लोगों के साथ मेल-मिलाप बढ़ाना चाहिये। विद्वजनों से मिलना चाहिये, कविता के पारखी लोगों से भी सम्पर्क बढ़ाना चाहिये जिससे उनका कवित्व गुण परिष्कृत हो सके। कविताओं को अवसरानुकूल अच्छा पद प्राप्त हो सके। वह यह भी कहता है कि उन्हें हिन्दुओं और मुसलमानों को न तो समर्थन करना चाहिये और न विरोध करना चाहिये बल्कि उन्हें निष्पक्ष रहना चाहिये तथा अपने कविता सृजन में एकाग्रचित्त कार्य करना चाहिये। कबीर तो हिन्दु और तुर्कों को एक जैसा मानते हैं। अपने आपको अनपढ़ जुलाहा कहकर इस बात यह जोर देते हैं कि मानव को मानव रूप में ही देखा जाना चाहिये। कबीर सत्संग के पक्ष में हैं और हर स्थिति में अपना सत्संग बनाये रखना चाहते हैं यहाँ तक कि वे तो अब सत्संग के साथ-साथ भण्डारा भी लगाने की तैयारी भी कर रहे हैं। इसी दौरान कोतवाल कबीर और उनके साथियों को गिरफ़्तार करने की तैयारी करता है। ठीक उसी समय वहाँ पर कुछ अधिकारी लोग आ जाते हैं। उनमें से दो नम्बर का अधिकारी यह कहता है कि ''बादशाह सलामत ने ख़्वाहिश ज़ाहिर की है कि काशी में अपने निवास के दिनों वे कबीरदास नामक फ़क़ीर से मिलना चाहते हैं।''

यकायक कोतवाल अधिकारी की बात सुनकर परेशान हो जाता है, इसकी परेशानी का कारण यह है कि उसने अभी-अभी कबीर और उसके सभी साथियों को हवालात में बन्द कर दिया है। उस समय कोतवाल कहता है कि सारी स्थिति ही बदल गई है। हम तो कबीर को बादशाह सलामत के रास्ते से हटा देना चाहते थे। कोतवाल की इस स्थिति और परेशानी को देखकर अधिकारी कहता है कि ''बादशाह इसलिये बादशाह होते हैं कि ये इंसान को पहचानते हैं। उन्होंने कबीर की खूबियों को देख लिया है, किन्तु हम लोग नहीं देख सके। कायस्थ भी अधिकारी की बात का समर्थन करता है और स्पष्ट करता है कि ''किसी में गुण होते हैं लोग उसे तब ही तो आँखों पर बिठाते हैं। बीसियों लोग उसके सत्संग में बैठने लगे हैं तो यह बिना किसी कारण के तो नहीं हो सकता है।'' कबीर की ज़िन्दादिली, उसके साहस, उस पर किये जाने वाले अत्याचारों की चर्चा भी की जाती है। आज कबीर को एक पहुँचा हुआ फ़क़ीर कह करके बात समाप्त कर दी जाती है। परिवर्तित स्थिति में कोतवाल कबीर और उनके साथियों को रिहा करने के आदेश देता है और जहाँ पर ये लोग बैठकर सत्संग आदि करते थे, उस जगह की सफाई का इन्तज़ाम भी कोतवाल कराता है। इतना ही नहीं कोतवाल यह भी कहता है, ''कुछ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गुलाब, केवड़ा भी उस स्थान पर छिड़कवा देना। बादशाह सलामत मुमकिन है उससे वहीं पर मिलना चाहें। वह अपने लोगों को यह भी आगाह कर देता है कि, ''सुनो। बादशाह सलामत को इस बात की ख़बर नहीं लगनी चाहिये कि कबीरदास का झौंपड़ा जला दिया गया है, उसके साथ किसी भी प्रकार की ज्यादती की गई है, नहीं तो लेने के देने पड़ जायेंगे।

उपर्युक्त बातचीत की स्थिति में एक अधिकारी आकर के सूचना देता है कि बादशाह सलामत का लश्कर आ गया है वह यह भी बताता है कि काशी नरेश अपने मंत्रियों के साथ पहले से ही वहाँ के लिये प्रस्थान कर चुके हैं। वह कोतवाल साहब को सम्बोधित करते हुए कहता है कि ''हुजूर ! पूरे लश्कर के खान-पान के लिये शहर में मुनादी कर दी जाये कि सभी दुकानदार छावनी में रसद पहुँचाये और कबीर के साथ पूरी मान-मर्यादा का सलूक किया जाये।'' सभी लोग इन बातों को सुनते हैं, समझते हैं और कायस्थ जैसे लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कबीर का सितारा कैसा चमका है, अवश्य वे कोई पहुँचे हुए पीर-पैगम्बर हैं। इस प्रकार यहीं पर तीसरा दृश्य समाप्त हो जाता है।

2.2.5 तृतीय अंक

नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' का यह तीसरा अंक अपने कलेवर में केवल एक दृश्य को समाहित किये हुए है। दृश्य के आरम्भ में सड़क के किनारे कबीर और रैदास झाड़ू लगाते हुए दिखाई देते हैं। भण्डारे का आयोजन भी किया गया है जो कि पिछवाड़े में है। कबीर का सत्संग सुनने के लिये बहुत से लोग आ गये हैं। श्रोताओं की संख्या कबीर की अपेक्षा से कहीं अधिक है। आगन्तुकों में कबीर की पत्नी लोई भी है, जिसने लाल चुनरी ओढ रखी है। रैदास लोई भाभी के भण्डारे में आने की प्रसन्नता ज़ाहिर करता है। लोई भी यही कहती है कि ''हमने सोचा भण्डारा लग रहा है तो हमें चुनरी ओढकर ही जाना चाहिये। इसी दौरान कुछ हँसी-मज़ाक भी होता है। सभी लोग अपना-अपना काम करने में लगे हैं। वहाँ पर बशीरा, सेना, नूरा सभी लोग उपस्थित हैं। नूरा एक ही बात कहता है कि कबीरा ! तूने हमें कभी चैन से नहीं बैठने दिया। नूरा भी काम कर रहा है। भण्डारे में सभी लोग शामिल हो चुके हैं। उसी समय सिकन्दर का आगमन होता है। आते ही वह कोतवाल से पूछता है कि यहाँ क्या हो रहा है। कोतवाल उन्हें कबीर के सत्संग के बारे में जानकारी देता है। सिकन्दर तुरन्त कबीर से मिलने की इच्छा प्रकट करता है। वह पालकी से नीचे उतर आता है और कुर्सी पर बैठ जाता है। कबीर बड़े अदब से सिकन्दर के सामने उपस्थित होता है और दोनों में काफी सवाल-जवाब होने लगते हैं। सिकन्दर फ़कीरों की काफ़ी इज़्ज़त करता था वह उन्हें अपने आप में फ़नकार मानता था। सिकन्दर ने कबीर से जो भी कुछ कहा उसमें उन्होंने यही कहा कि लोग अपने दिल में एक जज़्बा लिये हुए होते हैं और उसी को अपनी शैली में कवित्तों या पदों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। सिकन्दर कबीर से पूछता है कि ''केवल दरवेशी ही करते हो या कोई और काम धन्धा भी करते हो ?'' कबीर इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि ''मैं कपड़ा बुनता हूँ।'' साथ ही वे अपने साथियों का परिचय भी करा देते हैं। उसके बाद उन दोनों में सभी के समक्ष कुछ बातें भी होने लगती हैं, जिनके कुछ अंश इस प्रकार हैं –

कबीर : आप जिस फ़क़ीरी की सोच रहे हैं वह जरूर एक धन्धा ही है।

सिकन्दर : तुम्हारी फ़क़ीरी कोई दूसरी तरह की है क्या ?

कबीर : मेरी फ़क़ीरी के लिये घर-बार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है, मेरी नज़र में हर काम इबादत है।

सिकन्दर : बड़ी पैनी बात कही है, बड़े समझदार मालूम होते हो जादा तफसील के साथ कहो। हर काम इबादत कैसे बन सकता है ? यह बताओ, कपड़ा बुनना इबादत कैसे हुआ ?

(कोतवाल से) सभी फ़क़ीर ज़ूनुनी होते हैं।

(कबीर से) अब हम जंग करते हैं, क्या इसे भी इबादत कहोगे ?

कबीर : नहीं ! जंग इबादत नहीं। इंसान की ख़िदमत करना उसे सुखी बनाना इबादत।

सिकन्दर : हम बिहार पर अपनी फ़तह का झण्डा गाड़ कर लौटे हैं तो क्या यह छोटी-सी बात है ? क्या यह क़ौम की ख़िदमत नहीं है ? दीन की ख़िदमत नहीं है ?

कबीर : (मुस्करा देता है) नहीं यह ख़िदमत नहीं है। यह तो दीन की, ख़ुदा की तौहीन है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सिकन्दर : तुम पहले इंसान हो, जो हमारे सामने इस तरह बोलने की ज़ुर्रत कर रहे हो, लेकिन हम तुम्हारे साथ नरमी से पेश आयेंगे, क्योंकि किसी हक़ीर-फक़ीर पर हम हाथ नहीं उठाते हैं।

(पैनी नजर से कबीर की ओर देखते हुए)

तेरा मज़हब क्या है ?

कबीर : मैं ख़ुदा का बन्दा हूँ। मेरा मज़हब इन्सान की मुहब्बत है। ख़ुदा की बन्दगी है।

सिकन्दर : लेकिन तेरा कोई दीन भी तो होगा ? तू इबादत भी तो करता होगा ?

कबीर : मैं उस ख़ुदा की इबादत करता हूँ जो हर इंसान के दिल में बसता है।

सिकन्दर : कौन है वह ख़ुदा ?

कबीर : मेरा परबर दिग़ार मेरे चारों ओर हैं, वह मेरे दिल में बसता है। इसकी नज़र में न कोई हिन्दु है न तुर्क। मैं अल्लाह का नूर बस हर इंसान में देखता हूँ, इंसान के दिल में देखता हूँ।

सिकन्दर : बातें तो ऐसे कर रहे हो जैसे तुम्हारा दिल, दिल न हो, ज़न्नत हो।

कबीर : ज़न्नत से भी ज्यादा ख़ूबसूरत है। मेरे दिल में मेरा मालिक रहता है।

डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित प्रस्तुत नाटक के तीसरे अंक में इस अकेले दृश्य में सिकन्दर और कबीर की जो वार्तालाप हुई है उससे यह प्रमाणित होता है कि दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति आदर भाव है। कबीर सिकन्दर को यह समझाते हैं कि जन्म से सभी इन्सान होते हैं, जिनमें न कोई छोटा है और न कोई बड़ा है। कबीर की इन सब बातों को सुनकर सिकन्दर आश्चर्यचकित हो जाता है। वह कोतवाल की ओर देखता है और पूछता है कि यह सब क्या कह रहा है ? कबीर से भी मुखातिब होकर के सिकन्दर यही कहता है कि ''हे फकीर तुम्हारा यह फ़लसफ़ा तुम्हें बहुत दूर नहीं ले जायेगा।'' इस बात पर कबीर कहते हैं ''मुझे तो दूर जाना ही नहीं है, मुझे तो केवल अपने मालिक के चरणों तक जाना है। एक इंसान से दूसरे इंसान के दिल तक जाना है।'' कोतवाल कबीर की बातें सुनकर बादशाह से यह कहता है कि हुज़ूर ! यह आदमी दीन की तौहीन करता है, रोज़ा नमाज़ को भला-बुरा कहता है। यहाँ तक कि मस्जिद की सीढ़ियों पर खड़ा होकर उलटी-सीधी बातें करता है।'' सिकन्दर सारी स्थिति से अवगत होता है और कबीर की इन सारी बातों से वह आश्चर्य में डूब जाता है। अन्त में कबीर स्वयं अपना एक पद उसे सुनाते हैं जो इस बात का प्रतीक है कि हिन्दु और तुर्क दोनों में कोई अन्तर नहीं है। सिकन्दर इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं है। अतः वह कोतवाल से कहता है कि ''इस आदमी पर कड़ी नजर रखो और हमें इत्तला करते रहो।'' वह क्रोध में आकर यह भी कह देता है कि ''उठ फ़कीर। आज के बाद मुझे कभी शिकायत मिली कि तूने दीन की तौहीन की है तो मैं तेरी टाँगें चीर दूँगा।'' यह कह कर सुल्तान प्रस्थान कर जाता है और सुल्तान के सिपाही भाले की नोंक पर कबीर को वहाँ से ले जाते हैं। कबीर निर्भीक बने रहते हैं और अन्त में बहुत से लोग कबीर का पद गाते हुए दिखाई देते हैं। जिसका भाव यह है कि ''हे वन्दे ! तू परमात्मा को कहाँ खोज रहा है वह तो तेरे दिल में है।''

शब्दार्थ –

हाकिम	-	अधिकारी
हिकमत	-	युक्ति
तफसील	-	विस्तार
जन्नत	-	स्वर्ग
इबादत	-	पूजा
मजहब	-	धर्म
फलसफर	-	दर्शन
तौहीन	-	अपमान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.3 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''हमारी कहाँ सुनता है। दो बार घर से भाग चुका है। एक बार तो कहाँ, हरिद्वार के पास से पकड़ कर लाये थे। सच पूछो तो मैं इसे लिवाने भी नहीं जाता, लेकिन इसकी माँ रो-रो कर आधी हुई जा रही थी। आठ पहर का रोना कौन सुने। मैं जंगलों में खाक छानता, मिन्नत-समाजत करके इसे लौटा लाया तो सात महिने बाद फिर भाग खड़ा हुआ। अब इसे रस्सियों से बाँधकर तो नहीं रखा जा सकता न।''

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक भीष्म साहनी द्वारा विरचित ''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटक के प्रथम अंश से लिया गया है जो प्रथम दृश्य से अवतरित है। जिसमें स्पष्ट किया है कि कबीर की फक्कड़ व घुमक्कड़ प्रवृत्ति से उसके माता-पिता काफी परेशान है और सदैव चिन्तित रहते हैं।

कबीर की माँ अपने घर के द्वार पर खड़ी-खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही है, उसके घर पर आने में देरी हो जाने के कारण चिन्तित है, उसी समय एक जुलाहा कबीर के पिता को बताता है कि कबीर को उसने मस्जिद की ओर जाते हुए देखा था। जहाँ पर वह था वहाँ पर पूरा मजमा जमा हुआ था। उसने यह भी बताया कि उसी स्थान पर कबीर ने जब कुछ बच्चों को पिटते हुए देखा तो वह बीच-बचाव करने लगा और फिर उसी की पिटाई होने लगी।

व्याख्या – कबीर के पिता नूरा कहते हैं कि कबीर जिस प्रकृति का बालक है, वह प्रकृति आये दिन कोई-न-कोई समस्या खड़ी करती रहती है। हम इसे कितना ही समझाएँ, किन्तु उसकी समझ में कुछ भी नहीं आता है। वह कहते हैं कि हमने अनेक बार उसे यह समझाया कि वह अपना काम निपटा कर जल्दी घर लौट आया करे किन्तु वह हमारी एक नहीं सुनता है और जब हम अधिक समझाने या डाँट-डपट की बात करते हैं तो वह घर से निकल जाता है। पहले भी ऐसा हो चुका है। एक बार जब वह घर से भागा था तो काफी खोज-बीन के बाद उसे हम हरिद्वार के पास से पकड़ कर लाये थे। नूरा ने झुंझलाते हुए कहा कि मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं थी कि उसकी खोजबीन करूं, किन्तु विवशता यह थी कि कबीर की माँ उसके बिना रो-रोकर अधीर हो गई थी। माँ की ममता के कारण ही मैं उसे खोज कर लाया था। नूरा ने कहा कि मुझे कबीर की माँ का आठ पहर का रोना देखा नहीं गया। हमेशा की इस चिक-चिक को समाप्त करने की वजह से मैं कबीर को ढूँढने के लिये जंगल की खाक छानता फिरा और जब मुझे यह मिला तो मैंने इसे घर पर लौट आने की मिन्नते की, इसे समझाया, माँ के दु:ख का हवाला दिया तब कहीं यह लौट पाया। लौटने के बाद भी यह अधिक समय नहीं रुका और सात महिने बाद ही फिरसे भाग गया। नूरा कहने लगा कि इसे रस्सियों से बाँधकर तो नहीं रखा जा सकता है। इसे तो जितना बन्धन में रखेंगे, यह उतना ही भागने का प्रयास करेगा। कबीर भी इसी प्रकृति का घुमक्कड़ व्यक्ति है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कबीर की स्वच्छन्द, घुमक्कड़ प्रवृत्ति और नीमा की ममतामयी भावना को स्पष्ट किया है।

2. बोल चाल की सहज और साधारण भाषा का प्रयोग है।

3. आठ पहर का रोना, खाक छानना आदि मुहावरों का प्रयोग कर भाषा गाम्भीरता की वृद्धि हुई है।

4. रो-रोकर आधा हो जाना भाषा की लाक्षणिकता को व्यक्त करने वाला प्रयोग है।

(2)

''इसे न उठा लाती तो क्या मालूम मैं दूसरा निकाह कर लेता। घर में अपना बच्चा तो होता। इसे पाल-पोस कर बड़ा किया तो यह फल भोग रहे हैं। दो दिन चैन के नहीं मिलते। करेजे पर होरहा भुनता रहता है।''

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक भीष्म साहनी द्वारा सृजित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' से किया गया है, जो प्रथम अंक के प्रथम दृश्य का अंश है। जिसमें नूरा कबीरा की उच्छृंखला प्रवृत्ति से बहुत ज्यादा परेशान हो जाने और अपने आपको कोसने की स्थित को स्पष्ट किया गया है।

नीमा और नूरा कबीर केसंदर्भ में चर्चा करते हैं। नीमा दोनों ओर सेपरेशान है। एक ओर उसका पति नूरा उसे कबीर की हरकतों और उसके नि:संतान होने के कारण कोसता है और दूसरी ओर कबीर घर से भाग जाने को कहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – नीमा को कबीर के प्रति परेशान देखकर कहता है कि जिस समय तुम इसे उठाकर लाई थी तभी मुझे लगा था कि निश्चित रूप से इसे घर पर ले आना परेशानी का कारण बन सकता है और तुम रोने लगी थी। इतना ही नहीं बल्कि इसके पाने के लिये अनेक प्रकार की मनौतियाँ मनाने लगी थी। नूरा अपनी मनोगत भावना को प्रकट करते हुए कहता है कि कबीर को उठाते समय तुमने यह भी कहा था कि मैं इसके लिये किसी प्रकार का बुरा लब्ज न कहूँ। वह उसी दृश्य को याद करते हुए कहता है कि यदि मैं उस समय इसको नहीं लाने देता तो शायद तुमको छोड़कर दूसरा निकाह कर लेता। शायद इसीलिये तुम इसे लेकर आई थी क्योंकि तुम्हारे तो कोई सन्तान नहीं थी। वैसे आज मैं यही सोचता हूँ कि यदि तुम इसे उठाकर नहीं लाती तो मैंने निश्चित रूप से दूसरा विवाह कर लिया होता। कम से कम जो बच्चा होता वह अपना तो होता और उसे हमारे संस्कार तो मिलते।

नूरा कहता है कि हमने आज तक कबीर को बचपन से पाल-पोस कर बड़ा किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि यह अब रात-दिन हमें परेशान करता है। शायद यह भी ईश्वर हमारी भूल का फल दे रहा है। अब तो स्थिति यह हो गई है कि हम दो दिन भी चैन से नहीं रह सकते हैं। यह तो नित नई कोई-न-कोई समस्या उत्पन्न करता रहता है और हमारे कलेजे पर होरहा भुनता रहता है अर्थात् परेशानियाँ पैदा कर हमें वेदना पहुँचा रहा है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में नूरा की मानसिकता के विकृत रूप को स्पष्ट किया है।

2. कबीर की उच्छृंखलता को नूरा अपनी भूल का परिणाम बताता है और कबीर को अपने साथ लाना अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल मानता है।

3. दो दिन भी चैन न मिलना वाक्य में नीमा और नूरा की व्यथित मनोदशा को स्पष्ट किया गया है।

4. ''कलेजे पर होरहा भुनना'' भाषा की लाक्षणिकता को व्यक्त करने वाला वाक्य है।

5. भाषा सहज और अर्थ गर्भित होने के साथ-साथ शैली की प्रवाहपूर्णता व सोद्देश्यता से युक्त है।

(3)

''हाँ जी, उसके मुँह में तो जबान ही नहीं। हर ऐरे-गैरे से उलझता फिरता है। ....ज़ुलाहे का बेटा है तो ज़ुलाहा बन कर रहे। घर से कपड़ा बेचने जाता है तो घण्टों अपने निगोड़े साथियों के साथ बैठक बाजी करता फिरता है। जहाँ देखो कबिरवा का दरबार लगा है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अंश हमारी पाठ्य-पुस्तक भीष्म साहनी द्वारा रचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के प्रथम दृश्य से अवतरित है जिसमें नूरा कबीर की हरकतों से अपनी परेशानी को व्यक्त करता हुआ अपनी किस्मत को कोसता है और नीमा अपने कबीर के लिये एक भी खिलाफ शब्द सुनने को तैयार नहीं है। यहां तक कि वह इतना कह देती है कि कबीर जैसा बालक तो दिया लेकर ढूंढने से भी नहीं मिल सकता है। वह कबीर को पाकर अपनी किस्मत की सराहना करती है और कहती है कि वह कभी भी हमसे ऊँची आवाज में नहीं बोलता है।

व्याख्या – जब नूरा कबीर के प्रति अपना क्रोध प्रकट करता है और उसे अपने घर में लाना अपनी सबसे बड़ी भूल बताता है तो नीमा कबीर के प्रति अपना स्नेह भाव दर्शाती हुई कहती है कि कबीर जैसा बालक तो सोना जैसा है, जिसे दिया लेकर खोजें तो भी नहीं पाया जा सकता है और वह ऊँची आवाज में तो बोलना ही नहीं जानता है। इस पर नूरा क्रोध में आकर कहता है कि ''तुम्हारा यह कहना कतई गलत है कि कबीर को तो ऊँची आवाज में बोलना ही नहीं आता है। तुम तो ऐसे कह रही हो कि जैसे उसके मुँह में तो जबान ही नहीं है।

नूरा कहता है कि कबीर अपनी जबान से ही तो आये दिन बखेड़ा करता रहता है। उसका जैसे जी चाहता है, वैसे ही बोलता रहता है। इतना ही नहीं, बल्कि वह तो हर किसी ऐरे-गैरे के साथ अर्थात् परिचित या अपरिचित से किसी-न-किसी प्रसंग पर उलझनें लग जाता है। ऐसा कोई दिन नहीं है जिस दिन वह किसी-न-किसी से किसी-न-किसी बात पर झगड़ा नहीं करता हो। और शायद यही उसका जीता जागता सबूत है कि उसके मुँह में जुबान नहीं है या वह बोलना नहीं जानता है। नूरा कहता है कि बोलते समय कम-से-कम उसे यह तो देखना चाहिये कि उसकी स्थिति क्या है ? वह एक मामूली घर का मामूली लड़का है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नूरा कहता है कि कबीर एक साधारण जुलाहे का लड़का है और उसे जुलाहे के साधारण बेटे की तरह से ही रहना चाहिये। उसे कपड़ा बेचकर ही सीधे घर पर आ जाना चाहिये। जबकि कबीर की स्थिति यह है कि कपड़ा बिके या न बिके लेकिन अपने साथियों के साथ घंटों बैठ कर गप-शप लड़ाना बहुत आवश्यक है। वह अपने साथियों को इकट्ठा कर कोई-न-कोई ऐसा प्रसंग छेड़कर तरह-तरह की बातें करने लगता है। अब तो आलम यह है कि जहाँ पर देखो वहाँ पर कबीर का दरबार लगा ही रहता है। नूरा के इस वक्तव्य का तात्पर्य यह है कि यदि कबीर के मुँह में जुबान नहीं होती तो वह अपने मित्रों की मण्डली में बैठकर बड़ी-बड़ी बातें कैसे करता।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में नूरा के माध्यम से कबीर की मनोवृत्ति व उसकी मानसिकता को स्पष्ट किया है।

2. साथियों के साथ बैठक बाजी करने व गपशप लड़ाने के द्वारा कबीर के व्यक्तित्व को स्पष्ट किया गया है।

3. मुँह में जुबान न होना, बैठक बाजी करना, दरबार लगाना आदि वाक्यों के प्रयोग से भाषा की सहजता को स्पष्ट किया है। इन वाक्यों से शैली में सरसता का गुण स्वतः आ गया है।

(4)

''बस, एक ही बात रगेदे जा रही है। मुझसे पूछ, भाँग-धतूरा इतना बुरा नहीं है, जितना यह शास्त्रार्थ! यह तो कभी छूटता ही नहीं, घरों के घर तबाह हो जाते हैं। सिर-फुटौव्वल अलग होती है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक आलोच्य नाटक ''कबीरा खड़ा बजार में'' से लिया गया है, जिसे डॉ. भीष्म साहनी द्वारा लिखा गया है। यह अंश प्रस्तुत नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य से सम्बन्धित है। इसमें नाटककार ने कबीर के सन्दर्भ में नीमा और नूरा के बीच हो रही वार्ता को स्पष्ट किया है।

व्याख्या – नूरा कबीर की हरकतों को गलत बताते हुए स्वयं अपने आपसे खिजता है और नीमा को भी खरी-खोटी सुनाता है और कहता है कि दिन भर दोस्तों के साथ मजमा लगाये रहता है, जिस पर नीमा कबीर का पक्ष लेती हुई कहती है कि दोस्तों के साथ बैठना कोई बुरी बात तो नहीं है। वह कोई भांग-धतूरे का नशा तो नहीं करता है और साथियों के साथ जुआ तो नहीं खेलता है। तब नूरा कहता है कि आजकल जिस समाज में हम रह रहे हैं उसमें भाँग-धतूरा का नशा करना उतना बुरा नहीं है, जितना कि शास्त्रार्थ करना बुरा है। शास्त्रार्थ एक ऐसा बुरा नशा है कि जिसकी एक बार आदत लग जाये तो वह आदत छूटती ही नहीं है। वह कहता है कि इस शास्त्रार्थ के कारण तो न जाने कितने घर तबाह हो गये हैं। व्यक्ति को अपनी हैसियत के अनुसार ही बातचीत करनी चाहिये। बड़े-बड़े व्यक्तियों, साधु सन्तों, महन्तों, अधिकारियों आदि के सामने जाकर शास्त्रार्थ करना और उनकी व्यवस्था के बीच टाँग अड़ाने की प्रवृत्ति ही शास्त्रार्थ का बुरा फल है। इसी के कारण कभी-कभी तो स्थिति ऐसी उत्पन्न हो जाती है कि आपस में सिर फूटने लगते हैं। निश्चय ही भाँग-धतूरे का नशा तो केवल एक ही व्यक्ति को ही कष्ट देता है किन्तु शास्त्रार्थ का नशा सारे घरपरिवार को ही कष्ट में डाल देता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कबीर कालीन सामाजिक स्थिति को स्पष्ट किया गया है।

2. कबीर के समय में शास्त्रार्थ का अधिकार केवल बड़े-बड़े लोगों को ही था,छोटे या निम्न जाति के लोग शास्त्रार्थ करने का अधिकार नहीं रखते थे। समाज की इस बुराई को प्रस्तुत अंश में स्पष्ट किया है।

3. सामाजिक जीवन की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है।

4. अवतरण में निहित रंगेदे चुभना जा रही है, सिर फुटौब्बल मारपीट आदि शब्दों का प्रयोग आंचलिक जीवन की थाती है, इनसे भाषा में सहजता और शैली में विश्वसनीयता समाहित हुई है।

(5)

''यह आज की बात थोड़े ही है, आये दिन ऐसा ही होता है। तू क्यों लोगों से सवाल पूछता फिरता है ? मौलवी-मुल्लाओं से भी कभी कोई सवाल पूछता है। वे चिढ जाते हैं। इन लोगों के हाथ में हमारी रोटी है, कबिरा, तू कब समझेगा ? क्यों अपने माँ-बाप को भूखों मारता है ?''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''कबिरा खड़ा बजार में आलोच्य नाटक के प्रथम अंक से लिया गया है, जिसमें नाटककार डॉ. भीष्म साहनी ने कबीर और उसकी माँ नीमा के बीच हुई वार्ता को स्पष्ट किया है। जब कबीर बाजार से घर लौटता है तो नीमा ममतावश कबीर को अनेक प्रकार से समझाते हुए लोगों से न उलझनें की हिदायतें देती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – जब कबीर बाजार से घर लौटता है तो उसकी माँ नीमा उसे बहुत प्यार करती है और उसे लोगों से न उलझने के लिये समझाती है और कहती है कि तू किसी से कुछ भी मत बोला कर। कबीर अपने मित्र पीपा और रैदास के बारे में अपनी माँ से पूछता है तो वह उसकी इस बात का कोई भी जवाब नहीं देती है और अपनी ही बात कहती जाती है। जब नीमा उससे घटना के बारे में पूछती है तो कबीर सच-सच बता देता है कि उसने गाय को बाँधकर निर्दयता पूर्वक ले जाते हुए कसाइयों को देख लिया था तो उसने एक कविता सुना दी थी। नीमा ने कबीर की सारी बात सुनकर कहा कि यह बात कोई आज की तो है नहीं कि जिसके बारे में कोई तुझसे समझा कर कहेगा। बल्कि यह तो आये दिन होता रहता है। तू हर रोज बड़े-बड़े लोगों से मनमाने सवाल पूछता है, जैस हीं तू पूछता है इन सब बातों से उनको क्रोध आता है, और वे चिढ़ जाते हैं और वैसे भी किसी को छोटे मुँह बड़ी बात नहीं करनी चाहिये। नीमा उसे ऊँच-नीच का ज्ञान कराती हुई कहती है कि बेटा! तू यह नहीं जानता है कि ये जो मौलाना और मौलवी हैं ये बड़े लोग हैं और उन्हीं के सहारे से हमारी रोजी-रोटी चलती है और यदि ये लोग हमसे नाराज हो जाएँगे तो हम सब भूखों मर जायेंगे। मैंने तो ऐसा बेटा न तो देखा और न सुना कि अपने व्यवहार से कोई अपने माँ-बाप को भूखों मारता है। अत: इन लोगों से इस प्रकार के प्रश्न पूछना अपने परिवार के हित में नहीं है और ऐसा करने पर हमारे सामने कभी भी कोई भी कष्ट आ सकता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कबीर की प्रश्निल मनोवृत्ति और छोटी-छोटी बातों पर विचार करने व उस पर विमर्श करने की स्थिति को स्पष्ट किया है।

2. कबीर की स्वाभाविक अक्खड़ और जिद्दी मिज़ाज की पुष्टि हुई है।

3. नीमा का मातृत्व युक्त व्यवहार स्पष्ट हुआ है।

4. भाषा सरल और प्रभावशाली है।

(6)

''कुछ सोच समझ कर बात किया कर। यह काशी है बेटा, हिन्दुओं का तीरथ है। और यहाँ का कोतवाल मुसलमान है। सभी कहते हैं, बड़ा बे-रहम आदमी है, ज़िन्दा दफ़न देता है। तू हर किसी से दुश्मनी मोल लेता फिरता है, बेटा, मेरा दिल बहुत डरता है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. भीष्म साहनी कृत ''कबिरा खड़ा बजार में'' आलोच्य नाटक से अवतरित है, जिसमें नीमा अपने पुत्र कबीर को समझाती है किन्तु कबीर बार-बार अपनी माँ के समक्ष यह स्पष्ट करता है कि उसने किसी से कुछ भी नहीं कहा है और न किसी से गलत व्यवहार किया है। वह स्पष्ट करता है कि जब-जब उसके मन में जो-जो प्रश्न उठे हैं, वह उन्हीं का समाधान पाने के लिये मुल्ला व मौलवियों से सवाल किये हैं।

व्याख्या – नीमा जब उपर्युक्त प्रसंगानुसार कबीर की दलीलें सुनती हैं तो वह पुन: उसे समझाती हुई कहती हैं कि मैं तो केवल इतना जानती हूँ कि हमेशा सोच-समझ कर बातें करनी चाहिये। यह काशी नगरी है। यह वह नगरी है जिसे हिन्दू लोग अपना बहुत बड़ा तीर्थ-स्थल मानते हैं। यदि कोई ऐसा आचरण हो जाये जो हिन्दू धर्म के विपरीत हो तो निश्चय ही कोई बड़ा संकट खड़ा हो सकता है। इस काशी नगर का जो कोतवाल है, वह मुसलमान है। ऐसी स्थिति में हिन्दुओं और मुसलमानों में विरोध का वातावरण बन सकता है। इस नगर के सभी लोग इस बात को अच्छी प्रकार से जानते हैं कि यह कोतवाल बहुत ही निर्दयी और बेरहम आदमी है। इसके दिल में किसी के प्रति भी दया भाव नहीं है। इसकी क्रूरता तो इतनी है कि वह अपराधी को ज़िन्दा दफ़न कर देता है। मेरा दिल तुम्हारे प्रति बहुत चिन्तित और भयभीत रहता है। अत: तुझे सोच-समझ कर नपे-तुले शब्दों में निश्पक्ष बात करनी चाहिये, जिससे तुम पर किसी प्रकार की आँच न आये।

विशेष –

1. प्रस्तुत अवतरण में नीमा के सहज-मातृत्व भाव की अभिव्यक्ति हुई है।

2. काशी को हिन्दुओं का तीर्थ-स्थल बताकर नाटककार डॉ. साहनी ने स्पष्ट किया है कि यही उस समय सच था।

3. दुश्मनी मोल लेना, जिन्दा दफनाना जैसे प्रयोग अभिव्यक्ति शैली की प्रभावी स्थिति को स्पष्ट कर रहे हैं।

4. भाषा सहज और स्वाभाविक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(7)

''जिस दिन तू मुझे मिला, उस दिन मैं ब्याह कर तेरे बाप के घर आई थी। यह मुझे ब्याह कर पालकी में ला रहा था। हम गंगा पार कर जुलाहों की बस्ती की तरफ जा रहे थे। तभी मैं पानी पीने के लिये एक तालाब के पास उतरी। तू मुझे वहाँ पड़ा मिला। तेरे ओठों पर अभी भी तेरी माँ का दूध लगा था। तेरा बाप और मैं तुझे निहारते ही रह गये थे। मेरी गोद तो अल्ला-ताला ने मेरे ब्याह के पहले दिन ही भर दी थी।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक आलोच्य नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' से लिया गया है, जिसके रचयिता डॉ. भीष्म साहनी हैं। डॉ. साहनी ने बताया कि कबीर की घुमक्कड़ और मुँहफट प्रवृत्ति से तंग आकर जब नूरा अपनी पत्नी नीमा को कबीर के संदर्भ में अपने आप को कोसता है और कुछ ऊँची-नीची सुनाता है तो कबीर उस बात को सुन लेता है कि वह सही माने में नीमा व नूरा का अपना पुत्र नहीं है। इस बात को कबीर पहले से नहीं जानता था। कबीर इसी रहस्य को उद्घाटित करने के लक्ष्य से नीमा को बार-बार दवाब देकर के पूछता है तब नीमा सब कुछ स्पष्ट कर देती है।

व्याख्या – जब कबीर पूछा नीमा से अपनी असली अर्थात् जन्म देने वाली माँ के बारे में और उसके जुलाहा परिवार में आने की स्थिति के बारे में तो नीमा उसे सब कुछ स्पष्ट शब्दों में बता देती है, वह कहती है कि मैं शादी होने पर पहली बार अपने पति के साथ पालकी में बैठकर आ रही थी। गंगा पार कर जुलाहा बस्ती की ओर आई तो मुझे प्यास लगी। मुझे पालकी से उतर कर पानी पिलाने के लिये लाया गया तो वहीं एक तालाब के किनारे कमल पत्र पर तुझे मैंने लावारिस स्थिति में देखा था। मुझे लगा कि तुझे अभी-अभी तेरी माँ ने यहाँ पर छोड़ा है क्योंकि उस समय तेरे मुँह पर तेरी माँ का दूध लगा हुआ था। मैं और तेरा बाप तुझे देखते ही रह गये थे। हमने कुछ समय वहाँ यह सोच कर प्रतीक्षा की कि शायद तुझे यहाँ सुला कर तेरी माँ कहीं आस-पास गई होगी और कुछ समय में लौटे आएगी। किन्तु काफी समय बाद तक वह जब नहीं लौटी तो मैंने तुझे वहाँ पर अकेला नहीं छोड़ा और अपनी किस्मत समझ कर मैं तुझे अपने साथ ले आई। मैंने तुझे पाकर अपनी संतान के सुख की अनुभूति की और ऐसा लगा, जैसे – उस परवरदिगार, उस अल्ला-ताला ने मेरी गोद शादी के साथ-साथ ही भर दी हो।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कबीर के प्रारम्भिक जीवन की वास्तविकता के रहस्य का उद्घाटन किया है।

2. नीमा का सोतेली मां होने पर भी उसके स्वाभाविक ममत्वपूर्ण हृदय को स्पष्ट किया है।

3. भाषा सरल व प्रभावशाली है।

(8)

''कोई हिन्दू पूछेगा तो कहूँगा ब्राह्मणी का बेटा हूँ, कोई तुर्क पूछेगा तो कहूँगा नीमा मुसलमानिन का बेटा हूँ, यही ना इससे हिन्दू भी कोड़े नहीं मारेंगे और तुर्क भी कोड़े नहीं मारेंगे। तू यही चाहती है ना ?''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक आलोच्य नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' से लिया गया है, जिसमें नाटककार भीष्म साहनी ने स्पष्ट किया है कि नीमा कबीर को अनेक प्रकार से समझाती है कि वह धर्मों व उनके नियमों के खिलाफ कुछ न बोला करे। वह इस बात से भी सशंकित रहती है। आये दिन कबीर के स्पष्टवादी व्यवहार से मुल्ला मौलवी व पुजारी लोग उसे मौका देखकर दबोच देना चाहते हैं। कहीं अनहोनी कबीर के साथ में घटित न हो जाये, वह बेचैन रहती है। नीमा कबीर को यह भी कह देती है कि वह ब्राह्मिणी का बेटा है।

व्याख्या – जब नीमा कबीर की घायल पीठ को देखती है तो से बहुत अधिक पीड़ा होती है, किन्तु कबीर की इन उखाड़-पछाड़ की हरकतों के आगे अपने आप को बेबस भी मानती है। नीमा अपनी सोच के स्तर के अनुसार कबीर को यह भी समझाती है कि तू एक ब्राह्मिणी का बेटा है क्योंकि उसने तुझे जन्म दिया है और तू मुसलमानिन का भी बेटा है, क्योंकि मैं मुसलमानिन हूँ और मैंने तुझे पाल-पोस कर बड़ा किया है। अत: मैं तुझे एक राय और भी देती हूँ कि जब तुझसे कोई हिन्दू पूछे कि तू किसका बेटा है तो कह देना कि मैं हिन्दू का बेटा हूँ और मुसलमान पूछे तो कहना कि मुसलमान हूँ, जिससे कोई तुझे मारेगा नहीं। कबीर अपनी भोली माँ के इस भोले सुझाव को सुनकर के हँस पड़ता है और उसे खुश करने के इरादे से वह यह मान लेता है और कहदेता है कि ठीक है माँ ! तू जैसा सोचती है, मैं वैसा ही करूँगा। जिससे हिन्दू भी कोड़े नहीं मारेंगे और मुसलमान भी नहीं मारेंगे। तू भी शायद यही चाहती है ना ? कबीर की इस सहमति में इस बात का स्पष्टीकरण होता है कि ऐसा कहने से जातीयता का भेद-भाव नहीं होगा। क्योंकि व्यक्ति चाहे हिन्दू हो या

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मुसलमान वे मानव हैं और मानव-मानव एक समान होते हैं क्योंकि उनमें एक ही रक्त है और सभी एक जैसे पाँच तत्त्वों से निर्मित हुए हैं। देखा जाये तो कबीर का यह उत्तर उनकी मूल चेतना के अनुकूल है। यही सोचकर अन्त में कबीर यह भी कह देता है कि माँ! मैं वैसा ही कहूँगा जैसा तू चाहती है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कबीर का समतावादी व मानवतावादी व्यक्तित्व स्पष्ट होता है।

2. प्रस्तुत अवतरण में निहित यह समन्वयवादी दृष्टि कबीर के सम्पूर्ण काव्य में देखी जा सकती है।

3. अवतरण की भाषा सीधी, सरल और स्पष्ट है जो पाठकों के सीधे गले उतरती है।

(9)

''अन्धेरा उतरने लगा है। एक और दिन डूबने लगा है। माँ भी समझती है कि मैं ही लोगों को परेशान करता फिरता हूँ। माँ को मेरी पीठ पर पड़े हुए घाव तो नज़र आते हैं, लेकिन मेरा दिल कैसी छलनी हो रहा है, यह कोई नहीं देख पाता है। सभी समझते हैं, मैं आवारा हूँ, लोगों से उलझता फिरता हूँ। मेरी यह भटकन कब खत्म होगी मेरे मालिक ? क्या फिर से बन में निकल जाऊँ ? मुझे शान्ति नहीं चाहिये, मुझे इस अंधेरे में रोशनी की लौ चाहिये। हर समय एक ही सवाल मेरे मन में घूमता रहता है, अगर यह सब झूँठ है तो फिर सच क्या है ? मैं भी तेरा बन्दा हूँ मालिक, फिर मेरी ठौर कहाँ है ?''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक सुप्रसिद्ध नाटककार डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित आलोच्य नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के प्रथम अंक के अन्तिम दृश्य से लिया गया है जिसमें कबीर के चिन्तनवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। इसी प्रसंग में नीमा का प्रस्थान तथा नूरा के आगमन का समय भी उजागर किया है। नीमा जाते-जाते कबीर को यह बताती है कि वह अपने पिता की बातों को गलत ढंग से न समझे। वे आखिर पिता होने के नाते भला ही सोचते हैं। जिस समय यह सब समझा कर नीमा वहाँ से प्रस्थान करती है तो अन्धकार बढने का समय होता है और वह एक दीवार के सहारे खड़ा हो जाता है तथा सूर्यास्त की बात कहकर स्पष्ट किया है कि मानवता व समानता का सूर्य भी मानो अब अस्त हो गया हो। उसके साथ ही कबीर की चिन्तन स्थिति भी प्रारम्भ हो जाती है।

व्याख्या – नीमा के प्रस्थान के पश्चात् एक दीवार के सहारे खड़े होकर कबीर सोचने लगते हैं कि मेरी यह कैसी विचित्र स्थिति है कि सभी लोगों की धारणा मेरे प्रति गलत बनी हुई है। यहाँ तक कि माँ भी यही सोचती है कि मैं ही लोगों को परेशान करता रहता हूँ और सभी लोग, विशेषकर हिन्दु व मुसलमान जाति के लोग मेरी पीठ पर बे-रहमी से कोड़े बरसाते हैं जिसके निशान मेरी पीठ पर सभी को दिखाई देते हैं। इसी सन्दर्भ में कबीर चिन्तन स्थिति में सोचते हैं कि मेरी पीठ के निशान तो मेरी माँ को दिखाई देते हैं किन्तु उन्हें यह दिखाई नहीं देता है कि आज समाज में कितनी दिल दहला देने वाली विकृतियाँ व्याप्त हैं जिनमें पशुता, क्रूरता और निर्ममता के साथ-साथ मानव और मानव के बीच कितनी बड़ी खाई बन चुकी है और भेदभावों को देखकर मेरा दिल कितना छलनी हो गया है। कबीर सोचते हैं कि आखिर वह तो मेरी माँ है। यदि उसे मेरा छलनी हुआ दिल दिखाई नहीं देता है तो कोई खास बात नहीं है किन्तु लोगों को भी यह सब कुछ समझ में नहीं आता है कि आखिर मैं दुःखी क्यों हूँ और मैं लोगों की असहनीय यातना को सहन करते हुए भी इतना विरोध क्यों करता हूँ। ऐसा लगता है कि सभी लोग यह मानते हैं कि मैं आवारा हूँ और लोगो से व्यर्थ ही उलझता रहता हूँ। मैं तो सत्य को पाना चाहता हूँ जो कि मानवता व समाज के लिये आवश्यक है।

कबीर अपने चिन्तन क्रम में सोचते हैं और इस श्रृष्टि के रचयिता, नियन्ता और मालिक अर्थात् ईश्वर से प्रश्न पूछते हैं कि हे परम पिता! तू ही बता कि मेरी यह भटकन कब समाप्त होगी ? क्या मुझे इस भटकन को दूर करने के लिए बन में चला जाना चाहिये ? किन्तु यह अब अनुचित होगा क्योंकि वन में जाने पर शायद मुझे शान्ति मिलेगी किन्तु मुझे शान्ति नहीं चाहिये। मुझे तो प्रकाश चाहिये, ऐसा प्रकाश जो आज के चारों ओर के व्याप्त अन्धकार से मुझे निकाल कर रोशन कर सके। कबीर यह भी सोचते हैं कि इसी अन्धकार से रोशनी प्रस्फुटित होगी। मुझे इस अन्धकार से घिरे हुए समाज में ही रोशनी को प्राप्त करना होगा। वास्तव में यही वह प्रश्न है जो कबीर को उलझाये रखता है। इसमें कबीर अंधकार से प्रकाश की ओर आने की भावना से प्रभावित है।

कबीर इस सृष्टि से सृजनकर्ता से यह भी आत्म निवेदन करते हैं कि हे मालिक! मैं तो तेरा एक छोटा-सा बन्दा हूँ। अब तू ही बता कि अगर यह सब जो मैं देख रहा हूँ, झूँठ है तो फिर सत्य क्या है ? इस सत्य को जानने के लिये मुझे क्या करना चाहिये और मुझे कहाँ जाना चाहिये ? इसी प्रश्न से आन्दोलित हृदय लेकर कबीर अपने आप में डूब जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष – 1. भीष्म साहनी ने प्रस्तुत अवतरण में कबीर के प्रश्निल व्यक्तित्व, परम शक्ति में आस्था तथा सत्य को जानने की जिज्ञासा जैसी महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को पुष्ट किया है।

2. अंधकार का उतरना, सूर्यास्त का होना आदि शब्द लाक्षणिक रूप में प्रयुक्त किये गये हैं।

3. कबीर के हृदय पर पड़े हुए घावों को किसी के द्वारा न देखा जाना तथा दिल का छलनी होना जैसे वाक्यों के द्वारा प्रयोग शैली के सौन्दर्य में वृद्धि करने में सहायक है।

4. प्रस्तुत अवतरण में नाटककार का मूल उद्देश्य ''अंधेरे में रोशनी की तलाश'' सम्प्रेषित किया गया है।

5. भाषा परिष्कृत व सहज है।

(10)

''परबति परबति मैं फिरिया
नैन गवाये रोये
सो बूटी पाऊँ नहीं
जाते जीवन होये
सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोये
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोये।''

प्रसंग – प्रस्तुत पद का अंश हमारी पाठ्य-पुस्तक ''कबिरा खड़ा बजार में'' आलोच्य नाटक के प्रथम अंक के अंतिम दृश्य से लिया गया है जिसमें नाटककार डॉ. साहनी ने कबीर के चिन्तन को स्पष्ट किया है। यह अंश काव्यमय है किन्तु कबीर के पूर्व चिन्तन के क्रम में पूर्ण औचित्य लिये हुए है क्योंकि कबीर अन्धकार में प्रकाश की खोज में दुःखी है। वे अपने आप को खुदा का मामूली बन्दा मानते हुए इस मूल्य को पाना चाहते हैं जिससे मानव जीवन का वास्तविक रूप साकार हो सके।

व्याख्या – उक्त प्रसंग के क्रम में कबीर कह रहे हैं कि इसी सत्य की खोज में लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। एक पर्वत शिखर से दूसरे पर्वत शिखर सोपान पर भटकते रहते हैं, किन्तु इन्हें जीवन का यह सत्य नहीं मिलता है। इतना ही नहीं लोग दुःखी होते हुए और मन में असहनीय पीड़ा को सहन करते हुए दिन-रात रोते रहते हैं। वे अपनी आँखों की ज्योति तक गँवा देते हैं किन्तु इन्हें इस सत्य का साक्षात्कार नहीं हो पाता है। कहीं से कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता है।

कबीर कहते हैं कि इस प्रकार का भटकाव जीवन सत्य को प्राप्त करने का सार्थक प्रयास नहीं है। यह संसार तो केवल भौतिक सुखोपलब्धि चाहता है, विलासिमय जीवन जीना चाहता है और उसी में सुख का अनुभव करता है। सांसारिक जीवन में अच्छा खाने और चैन की नींद सोने को ही यह संसार जीवन का सत्य मानकर चल रहा है। कबीर कहते हैं कि यदि शास्वत सत्य को पाना है तो भोजन भोग और निद्रा को त्यागना अनिवार्य है क्योंकि यह सत्य क्षणिक है और इसका सुख क्षणिक है। यह सत्य और सुख दोनों ही हमारा अज्ञान है। कबीर संसार के इस क्षणिक सुख को देखकर अनुभव करते हैं कि केवल वे ही ऐसे मनुष्य हैं जो इस संसार में सर्वाधिक दुःखी हैं। वे संसार को देख कर आहत हैं, रोते हैं। संसार हँसता है, वे रोते हैं। संसार सोता है, वे जागते हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में कबीर ने अपने चिन्तन के आधार पर जीवन सत्य का स्वरूप प्रस्तुत किया है।

2. भोजन, भोग और शयन का सुख मात्र भ्रम है।

3. प्रस्तुत अंश में कबीर का संकेत है कि जो जितनी पीड़ा सह सकता है वह उतना ही अपनी आत्मा को जागृत रखता है और आत्मा जितनी जागृत रहेगी, उतनी ही जल्दी जीवन सत्य को प्राप्त कर सकेगी।

4. प्रस्तुत अंश में निहित 'बूटी' शब्द जीवन सत्य के लिये प्रयुक्त हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(11)

''ज़ुनूनी है या क़ाफ़िर, इसका मुँह तो बन्द कराइये। लौहालबिलाक़ुव्वत, लोग क्या कहेंगे कि आप एक ख़बती से डर गये। आपके रहते किसकी मजाल कि दीन की तौहीन करे ? आप यहाँ पर दिल्ली के शाहनशाह के ही नुमाइन्दा नहीं हैं, आप दीन के भी नुमाइन्दा हैं, आप चुप रहेंगे तो लोग कहेंगे कि यहाँ का राजा चूँकि हिन्दू है इसलिये दीन के ख़िलाफ़ कोई कुछ भी कह ले, कोतवाल कुछ नहीं कर सकता है। इस आदमी के शेअर और काफ़िये लोगों की जबान पर चढ़ जाते हैं। जहाँ खड़ा होता है, मजमा इकट्ठा कर लेता है। छोटे तबके के लोगों को इश्तआल दे रहा है।''

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित आलोच्य नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' से लिया गया है जो प्रथम अंक के तीसरे दृश्य का अंश है जो काशी के मौलवी साहब का कथन है। मौलवी साहब और शहर के कोतवाल के बीच वार्ता चल रही है। मौलवी साहब कोतवाल को शिकायती मुद्रा में कहते हैं कि आप न जाने क्यों चुप हैं ? कबीर नाम के एक मामूली व्यक्ति ने मेरे दीन की तौहीन की है और अब तो इसके साथ कुछ लोग और आकर मिल गये हैं। सबके साथ मिलकर मसजिद शरीफ़ की सीढ़ियों पर खड़ा होकर दीन की खुलेआम तौहीन करता है और हमें आश्चर्य है कि आपके होते हुए यह सब हो रहा है और आप चुपचाप यह सब सहन कर रहे हैं।

व्याख्या – मौलवी साहब कोतवाल से कबीर की शिकायत करते हुए कहते हैं कि कबीर चाहे ज़ुनूनी हो या फिर क़ाफ़िर हो, उसका मुँह बन्द होना ही चाहिये। हमें इस बात का अफ़सोस है कि आप जैसे व्यक्ति के होते हुए यह सब हो रहा है। लोग तो यही कहेंगे कि एक ख़बती आदमी से आप भयभीत हो गये हैं। उसके ख़िलाफ किसी प्रकार की कार्रवाई नहीं कर रहे हैं। मौलवी यह भी कहते हैं कि आप के होते हुए किसी की यह मजाल कि वह हमारे ही मज़हब की आस्था को सरेआम बदनाम करता रहे। आपको यह नहीं भूलना चाहिये कि आप दिल्ली के शहनशाह के प्रतिनिधि के रूप में यहाँ काम कर रहे हैं इसलिये आप न केवल शहनशाह के नुमाइन्दा हैं बल्कि आप धर्म के भी नुमाइन्दा हैं। यदि आप चुप रहे तो लोग यही कहेंगे कि काशी नगरी का राजा हिन्दू है, इसलिये दीन के ख़िलाफ़ कोई कुछ भी कहे, कोतवाल साहब उसके विरोध में कुछ भी नहीं कह सकते हैं। आप शायद भूल रहे हैं कि जो दीन हमारा है, वही दीन आपका है। आपको इस बात की फ़िक्र करनी चाहिये। अब आप ही देखिये कि कबीर जैसे आदमी के कवित्त धीरे-धीरे लोगों की ज़ुबान पर चढ़ते जा रहे हैं। वह अपने कवित्तों के माध्यम से बहुत-सी ऊल-जुलूल बातें करने लगा है। वह हर रोज किसी भी जगह पर खड़ा होकर भीड़ इकट्ठी कर लेता है। उनके साथ मिलकर हमारे मज़हब की तौहीन करता है। यदि वह तौहीन करता है तो अमलदारी आपकी है और आप ख़ामोश हैं। आपको उसके ख़िलाफ़ कुछ-न-कुछ करना चाहिये, उसे दण्डित करना चाहिये, यह आपका फ़र्ज है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में डॉ. भीष्म साहनी ने मौलवी और कोतवाल की वार्ता के माध्यम से समाज में व्याप्त धर्म के नाम पर हो रही भेद नीति को स्पष्ट किया है।

2. मौलवी की मानसिकता और कबीर के प्रति उनका दृष्टिकोण बड़ी सरलता से स्पष्ट किया गया है।

3. प्रस्तुत अवतरण में उर्दू, फ़ारसी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है।

4. अवतरण की भाषाशैली उत्तेजनात्मक है।

(12)

''लेकिन अगर मज़हब की खिदमत उन्हीं लोगों तक रहती तो कोई भी मज़हब आगे नहीं बढ़ पाता। मज़हब के नाम पर सल्तनतें बनती हैं और सल्तनतों के साये में मज़हब पनपते हैं, हाकिम की तलवार दीन की खिदमत करती है। क्या समझे ? यह बड़ी फलसफे की बातें हैं।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक भीष्म साहनी द्वारा विरचित आलोच्य उपन्यास ''कबिरा खड़ा बजार में'' से प्रथम अंक के तीसरे दृश्य से अवतरित है। यह अवतरण स्वयं कोतवाल का ही कथन है। पहले तो मौलवी कोतवाल को भड़काता है, किन्तु कोतवाल यह कहकर मौलवी को चुप कर देता है कि ''आप यह मत समझिये कि हम इन सब बातों से बेखबर हैं।'' फिर कोतवाल किसी दूसरे मुसाहिब से बातचीत करता प्रारम्भ कर देता है जिसमें मज़हब के सन्दर्भ में ही चर्चा होने लगती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – कोतवाल कहता है कि मज़हब में बहुत बड़ी ताकत होती है। मज़हब के नाम पर सल्तनतें बनती हैं और बिगड़ती हैं। ऐसी स्थिति में हमें यह कतई नहीं सोचना चाहिये कि मज़हब कोई सामान्य चीज है या उसका किसी पर कुछ खास असर नहीं होता है। जिस मज़हब पर सल्तनत का साया होता है या जो सल्तनत य बादशाहत किसी मज़हब को पनपाती है तो इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि उस मज़हब का विकास भी तीव्र गति से होता है। जहाँ तक हाकिम का प्रश्न है, तो उसके पास शक्ति होती है और वह अपनी शक्ति के बल पर दीन की रक्षा करता है और उसकी खिदमत करता है। इसमें भी किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि प्रशासन की शक्ति एवं समर्थन से ही धर्म का प्रचार-प्रसार अच्छे पैमाने पर होता है। प्रशासन की तलवार ही दीन की रक्षा करती है, उसकी खिदमत करती है। यदि तुम समझ गये हो तो ठीक है वरना यह सब फलसफे (दर्शन) की बातें हैं जिन्हें समझना हर किसी सामान्य की बातें नहीं हैं। जो समझ सकता है वही अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से सही व्यवहार भी करता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में कोतवाल की वैचारिकता व उसकी तर्क शक्ति का खुलासा किया गया है।

2. प्रस्तुत अंश में उर्दू, फारसी आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है जो समकालीन प्रचलित प्रशासनिक भाषा में प्रयुक्त होते थे। सम्प्रेषणीयता की वृद्धि करने में सहायक हैं।

(13)

''बहुत मिले मोहि नेमी धरमी, प्रात करे असनाना,
पीपर पाथर पूजन लागै, तीरथ बनै भुलाना।
बहुत ही देखे पीर औलिया, पढै किताब कुराना,
करै मुरीद कबर बतलावै, उनहू खुदा न जाना।।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''कबिरा खड़ा बजार में'' आलोच्य नाटक से लिया गया है जो कि प्रथम अंक के अंतिम दृश्य से सम्बन्धित है। स्पष्ट होता है कि कबीर के द्वारा रचे गये कवित बहुत से लोगों को प्रभावित करने लगे हैं और सभी लोग उन्हें गाने भी लगे हैं। इस पद को एक भिखारी द्वारा गाया जाता है जिसे कबीर ने ही तैयार किया है। प्रस्तुत पद एक ऐसे सत्य को प्रकाशित करता है जिस सत्य को कोई भी नहीं जानता है।

व्याख्या – प्रस्तुत पद कबीर का ही है जो एक भिखारी के द्वारा गाया जाता है। भिखारी इस पदके माध्यम से कहता है कि कितने ही लोगों से मुलाकात हुई है जो पीपल के वृक्ष की पूजा करते हैं, पत्थरों की पूजा करते हैं, तीर्थ यात्राएँ करते हैं, व्रत-उपवास करते हैं तथा अपने आपको इन क्रियाकलापों में भरमाये रहते हैं किन्तु यह सब करने के बाद भी वे सभी लोग उस परम सत्य को नहीं जान पाते हैं, जिसे जानना चाहिये। इतना ही नहीं, कितने ही पीर, औलिया, मुल्ला, मौलवी ये अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ते हैं, वेद और क़ुरान पढ़ते हैं, किन्तु इतना सब करने के बाद भी वे ख़ुदा को नहीं जान पाते हैं। नाटक के लेखक कबीर के इस पद के माध्यम से स्पष्ट करते हैं कि प्रातः स्नान कर नियम-धर्म का पालन करते हुए पाठ-पूजा करना, तीर्थाटन करना तथा बड़ी-बड़ी धर्म और ज्ञान की पुस्तकें पढ़ना उस परम तत्त्व ईश्वर को जानने में पूरी तरह से सहायक सिद्ध नहीं होती हैं। ईश्वर को तो वही व्यक्ति जान सकता है जो समदृष्टि रखता है, सभी को समान भाव से देखता है तथा सभी के हित की बात सोचता है। भेदभाव से रहित पाखण्ड और ढोंग से दूर तथा अन्धविश्वासों से विरहित होकर ही व्यक्ति उस परम सत्य से रू-ब-रू हो सकता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद के माध्यम से कबीर के दृष्टिकोण की सहज अभिव्यक्ति हुई है।

2. समता, मानवता, समदृष्टि रखते हुए ही व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक बना सकता है।

3. प्रस्तुत पद वर्ण्य विषय और शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त सहज है। भाषा सामान्य व सहज है।

(14)

''जरूरत इस बात की नहीं कि कबीर को सजा दी जाये। जरूरत इस बात की है कि उसकी बात सुनने वालों के दिल में दहशत फैल जाये। अगर हम कबीर को सजा देंगे तो इसकी बात सुनने वालों के दिल में उसके लिये हमदर्दी पैदा होगी। इसी को हिकमत कहते हैं।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित ''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटक के प्रथम अंक के तीसरे दृश्य से लिया गया है जो कि कोतवाल का कथन है। मुसाहिब और कोतवाल में वार्ता हो रही है जिसमें मुसाहिब कोतवाल को यह समझाने का प्रयास कर रहा है कि कबीर के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की जाये। कोतवाल मुसाहिब से कहता है कि हम हाक़िम हैं, हमारे पास ताक़त है और इसी ताक़त के द्वारा हम कुछ भी कर सकते हैं। कबीर एक साधारण आदमी है, उसे सजा देना हमारे लिये, कुछ खास नहीं है फिर भी हम उसे सजा नहीं दे रहे हैं, जिससे पीछे कोई-न-कोई कारण तो है ही।

व्याख्या – जब मुसाहिब कबीर को दण्डित करने के लिये दबाव डालता है तो कोतवाल कहता है कि आज जरूरत इस बात की नहीं है कि कबीर को सजा दी जाये, उसके आचरण को शक्ति से रोका जाये। ऐसा करने से कुछ भी नहीं होगा बल्कि लोगों में उसके प्रति हमदर्दी की भावना बढ़ेगी। और भी कई लोग अपने-अपने तरीके से उसके ही विचारों को व्यक्त करने लगे। ऐसी स्थिति में आवश्यक यह है कि हम उन लोगों के मन में दहशत पैदा करें जो कि कबीर की बात सुनते हैं और उसके प्रभाव में आकर उसके कवित्तों और पदों को गाते हैं। यदि कबीर के साथ कड़ाई बरती या उसे सजा दी जाय, तो उससे सहानुभूति रखने वाले लोग इकट्ठे हो जायेंगे और एकजुट होकर उसकी रक्षा का प्रयास करेंगे। कोतवाल यह नहीं चाहता है कि समाज में कबीर के प्रति हमदर्दी रखने वालों की संख्या अधिक हो क्योंकि इससे उसका प्रभाव और अधिक बढ़ेगा तथा उसके प्रति हिकमत रखने की भावना भी पनपने लगेगी। इसीलिये कोतवाल कबीर से हमदर्दी रखने वाले लोगों को डराना-धमकाना चाहता है, उनमें भय जागृत करना चाहता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में कोतवाल की विचारधारा व हिकमत करने वाली नीति को स्पष्ट किया गया है।

2. प्रस्तुत अवतरण की भाषा सरल व सहज है।

(15)

''झीनी झीनी बीनी चदरिया
काहे का ताना काहे की भरनी
कौन तार से बीनी चदरिया
इंगला-पिंगला ताना भरनी
सुषमिन तार से बीनी चदरिया
सुर-नर-मुनि सबने है ओढी
ओढ के मैली कीन्ही चदरिया
दास कबीर जतन तें ओढी
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।''

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के प्रथम अंक के चौथे दृश्य के प्रारम्भ से अवतरित है। जिसमें बताया है कि कबीर अपनी माँ व पिता के कहने से अपनी खड्डी पर बैठने लग गये हैं और अपने पुश्तैनी कार्य में रूचि लेने लगे हैं। खड्डी की सुर-ताल के साथ धुन मिलाकर गाने लगते हैं। प्रस्तुत अवतरण ऐसे अवसर पर ही गाया जाने वाला पद है। यह कबीर का वह पद है जो न केवल चर्चित ही है, अपितु इसमें मानव शरीर का रूपक प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या – कबीर द्वारा की जाने वाली इस प्रस्तुति में मानव शरीर की आन्तरिक रचना का वर्णन किया है जिसे सृष्टा के द्वारा तैयार किया गया है। इस पद के माध्यम से कबीर कहते हैं कि यह मानव शरीर रूपी चादर इतनी बारीक है कि हम कुछ कह नहीं सकते हैं। इतनी बारीकी से बुनी गई इस चादर में न जाने कौन-सा धागा और ताना-बाना काम में लिया गया है। इसका ताना-बाना और भरनी अर्थात् कपड़ा बुनने में प्रयुक्त तीन प्रकार का धागा क्रमश: इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी है। ताने-बाने और तार के रूप में काम में आने वाले इस धागे को तीन गुण (रज, सत और तम) रूपी माल (रस्सी) पंच तत्त्व रूपी खूँटियों और अष्टदल कमल की पंखुड़ियों वाले षट्चक्र (मूलाधार, स्वाधिकार, अनाहत, विशुध आज्ञा, सहस्रारचक्र) रूपी चरखे द्वारा तैयार किया गया है। इस धागे से बुनी हुई इस शरीर रूपी चादर को बुन कर तैयार करने में विधाता को दस महिने का समय लग गया। इसे उस प्रभु ने ठोक-ठोक कर भली प्रकार से बुना है। विधना द्वारा बुनी गई यह शरीर रूपी चादर देव, मुनि और मानव सभी ने धारण की है, जिसे ओढ-ओढ कर सबसे गन्दा कर दिया है। अर्थात् मायाजन्य विकारों से वशीभूत होकर इस शरीर को अपवित्र बना दिया है किन्तु कबीर ने इस शरीर रूपी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चादर को ऐसे जतन से ओढा है कि उस पर जरा-सा भी मैल नहीं लगने दिया है और जीवन के अन्तिम क्षणों में भी उसे उसी पवित्र तथा स्वच्छ रूप से छोड़ दिया है, जैसी स्वच्छ व पवित्र वह जन्म के समय उन्हें मिली थी।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कबीर ने मानव शरीर की आन्तरिक संरचना का चित्र प्रस्तुत किया है।

2. शरीर का यह चित्र कबीर की आध्यात्मिक ज्ञान शक्ति को स्पष्ट करता है।

3. प्रस्तुत पद में इडा, पिंगला और सुषुम्ना आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिनसे कबीर के हठयोग से प्रभावित साधना का संकेत मिलता है।

4. अवतरण में सांगरूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(16)

''वह मेरे दिल की बात कहते हैं। मैं उनकी बातें सुनता हूँ तो न व्रत-उपवास है लगता है, मेरे अन्दर की गाँठें खुल रही हैं। मेरे संशय दूर हो रहे हैं। वह प्रेम की बातें कहते हैं, ऐसा प्रेम जिसमें न पूजा-पाठ है, न ऊँच-नीच है। उसमें बस सबके लिये प्रेमभाव है और भगवान की भक्ति है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के प्रथम अंक के चौथे दृश्य से लिया गया है। जिसके रचयिता डॉ. भीष्म साहनी हैं। इसमें बताया है कि जब रैदास कबीर से पूछते हैं कि कल तुम किससे मिलने गये थे तब कबीर एक महात्मा जी के विषय में अपनी भावना व्यक्त कर रहे हैं।

व्याख्या – कबीर अपने मित्र रैदास से कहते हैं कि यहाँ पर एक महात्मा जी हैं जो दक्षिण से आये हैं। पहले तो मैं लुक-छुपकर उनके प्रवचन सुनता रहता था, उनके प्रवचन मुझे बहुत आकर्षक लगे। मैं सोचने लगा कि महात्माजी जो बात कह रहे हैं वह ऐसा लगता है, जैसे मेरे ही मन की बात है। वे कहते हैं कि जब भी मैं उन महात्मा जी की बातों को सुनता हूँ तो ऐसा अनुभव होता है कि मेरे मन के भीतर जो अब तक अनेक ग्रंथियाँ उलझ रहीं थी वे सब महात्मा जी की बातों से स्वतः खुलने लगी हों। मन में जितने भी संशय थे वे इनकी बातों से दूर हो गये हैं क्योंकि ये महात्मा सीधे सरल प्रेम की बातें करते हैं। यह वह प्रेम है जिसमें न तो किसी प्रकार का व्रत-उपवास है और न पूजा-पाठ ही है। यह प्रेम सभी मनुष्यों में समान रूप से व्याप्त है क्योंकि इसमें ऊँच-नीच का भेदभाव लेशमात्र भी नहीं है। यह वह प्रेम हे जो सबके लिये समान है। इस प्रेम में सभी मनुष्यों में समान प्रेम का प्रादुर्भाव होता है और इसी से प्रेरित होकर भगवान् की भक्ति संभव है। अर्थात् प्रेम के द्वारा ही सच्ची भक्ति की जा सकती है।

विशेष – 1. अवतरण के माध्यम से कबीर ने स्पष्ट किया है कि जब मानव के मन में प्रत्येक प्राणी के प्रति प्रेम होगा तब ही वह ईश्वर प्राप्ति के मार्ग को पा सकता है।

2. सहज, प्रवाहशील शैली के द्वारा स्पष्ट-कथनवृत्ति को स्पष्ट किया गया है।

3. भाषा सरल और प्रभावशाली है।

(17)

''जो कोड़े नन्दू की पीठ पर पड़े थे, वह मेरी ही पीठ पर पड़े थे, बेटा। बच्चे पर पड़ने वाले कोड़े माँ की ही पीठ पर पड़ते हैं। पर मैं मरी नहीं, नन्दू मर गया। मैं सह लूँगी कबीरा। नन्दू का मरना सह लिया तो कोड़े न सहूँगी। मैं गली-गली गाती फिरूँगी। अब मैं गाऊँगी और वह सुनेगा। जहाँ पर भी है, सुनेगा, सुनेगा न कबीरा ?''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक भीष्म साहनी द्वारा विरचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के प्रथम अंक के चौथे दृश्य से लिया गया है जो एक अंधी माँ का कथन है।

व्याख्या – कबीर और एक अंधी माँ के बीच बातचीत होती है जिसमें वह कबीर को बताती है कि अत्याचारियों ने उसके पुत्र को कोड़े मार-मार कर खत्म कर दिया है। किन्तु वह कहती है कि उसकी जगह अब मैं गाया करूँगी। इस पर रैदास कहता है कि यदि तुम ऐसे कवित्त गाओगी तो तुम्हारी पीठ पर भी कोड़े पड़ सकते हैं। इसके उत्तर में वह कहती है कि यदि मेरी पीठ पर कोड़े पड़ेंगे तो मुझे पीड़ा नहीं होगी, क्योंकि जो कोड़े मेरे पुत्र नन्दू की पीठ पर पड़े थे, वे एक प्रकार से मेरी ही पीठ पर पड़े थे। माँ के हृदय में इतनी ममता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होती है कि वह अपने बेटे के लिये सब कुछ सहन कर सकती है किन्तु पुत्र को वह दु:खी नहीं देख सकती है। किन्तु यह मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि मेरे नन्दू की पीठ पर कोड़े पड़ते रहे और मैं सहन करती रही, मैं मरी नहीं। हाँ, नन्दू अवश्य इस दुनिया में नहीं है। अत: अब भी यदि मेरी पीठ पर कोड़े पड़े तो मैं उनको सह लूँगी। जब मैं नन्दू का मरना सहन कर सकती हूँ तो क्या अपनी पीठ पर पड़ने वाले कोड़ों की मार को सहन नहीं कर सकूँगी ? वह कहती है कि कबीर ! अब तो मैं तेरे पद और कवित्त सरेआम गलियों में घूम-घूम कर गाऊँगी। मैं गाऊँगी और वह सुनेगा। वह जहाँ कहीं भी होगा, मेरे द्वारा गाये जाने वाले कवित्तों को अवश्य सुनेगा।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में एक अंधी माँ का वात्सल्यपूरित हृदय कम शब्दों में भी गहरी ममता को व्यक्त कर रहा है।

2. भाषा सहज, सरल और सुबोध है।

3. शैली में सहजता, मार्मिकता, सरलता और प्रवाह है। साथ में पर्याप्त संवेदनात्मक भी है।

(18)

''सोचता हूँ , करतार ने माई को कैसा बनाया है। न मैं उसका बेटा, न वह मेरी माई, फिर भी सारा वक्त वह मुझे अपनी छाँव में लिये रहती है। जब कोई आँधी चलती है तो अपनी दुबली-सी काया से मुझे अपनी ओट में ले लेती है कि आँधी, बवण्डर के थपेड़े उस पर न पड़ें, कबीरा बच जाये। इतनी छोटी-सी तो है , यह मेरी माई, फिर भी समझती है, सभी मुसीबतों से मुझे बचा लेगी। माई के दिल में जैसे कोई बाती जलती रहती है – प्रेम की बाती।उसी की लौ में सारा वह वक्त जीती है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक भीष्म साहनी द्वारा लिखित ''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटक के द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य से लिया गया है जिसमें कबीर अपनी माँ के विषय में अपने साथियों के समक्ष अपनी मनोगत भावनाओं को व्यक्त करते हैं। कबीर कहते हैं कि किसी को भी भाई के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिये। ये अपने स्नेह बन्धन में इस ढंग से बाँध देती हैं कि व्यक्ति कुछ कर नहीं पाता है।

व्याख्या – कबीरा अपनी माँ की ममता के सन्दर्भ में अपने मित्रों को बताते हैं कि न जाने विधाता ने मेरी माँ को किस तरह से बनाया है कि वह मेरी चिन्ता में हमेशा बेचैन रहती है। विशेष बात तो यह है कि न तो मैं उसका असली बेटा हूँ और न वह मेरी असली माँ है, फिर भी हर पल वह मुझे अपनी ममता की छाँव में बिठाए रखना चाहती है। वह नहीं चाहती है कि मैं एक पल के लिये भी उसकी आँखों से ओझल रहूँ। वे कहते हैं कि जब कभी मुझ पर कोई छोटा-या-बड़ा संकट आता है तो वह मुझे अपनी ओट में छुपा लेती है। उसका हमेशा यही प्रयास रहता है कि जितने भी संकट है वे मुझसे अलग रहकर निकल जायें और मुझे छूने न पायें। जिस ममता की छाँव में वह मुझे सुरक्षित रखना चाहती है वह छाँव वास्तव में बहुत बड़ी है। वह छाव मेरे लिये जीवन दायिनी है। वह प्रेम की छाँव है। मेरी माँ बहुत छोटी-सी है जिसके पास न तो किसी प्रकार की शक्ति है और न उसके छोटे से शरीर का कोई प्रभाव है, फिर भी वह मुझे सारे संकटों से बचा लेना चाहती है। ऐसा लगता है कि उसके पास ममता की कोई बहुत बड़ी ताकत है जिसके कारण उसके हृदय में सदैव प्रेम की लौ प्रज्वलित रहती है। यह सच्चा प्रेम है और यही सब कुछ है और वह इसी प्रेम की लौ के प्रकाश में वह हमेशा जीती है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कबीर की भावुकता, माँ के प्रति अनन्य प्रेम का अनुभव व्यक्त हुआ है।

2. आँधी, बवण्डर, थपेड़े, बाती आदि शब्द प्रतीकात्मकता से युक्त हैं।

3. भाषा में लाक्षणिकता, चित्रमयता के साथ-साथ संवेदनशीलता भी है।

(19)

''कल भली भई, भैया। उस ज्ञानी महाराज से बहस चल पड़ी। मैंने उनसे कहा, महाराज ! आप कोई ऐसा मार्ग बतायें जो सबके लिये हो, जिस पर गृहस्थ भी चल सके, साधु भी चल सके, हिन्दु भी, तुर्क भी, वह तपस्या की बात करने लगे। मैंने कहा, महाराज ! तपस्या का अधिकार तो केवल ब्राह्मण और क्षत्रीय को है। इस पर वह ज्ञान मार्ग पर आ गये। कहने लगे 'वेद किताब पढ़े सो ज्ञानी'। मैंने छूटते ही कहा, महाराज ! नीच जात का आदमी वेद कहाँ पढ़ सकता है , वह तो उसे हाथ भी नहीं लगा सकता। तो उसके छूने से ही वेद-पुराण भ्रष्ट हो जाते हैं।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटक के द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य से गृहीत है जिसमें नाटककार डॉ. भीष्म साहनी ने बताया है कि कबीर और पीपा के बीच वार्ता चल रही है। पीपा अपने मित्र कबीर से पूछते हैं कि कल जो ज्ञानी जी मिले थे उन्होंने तुम्हें क्या कहा ? कबीर यकायक अपना दिमाग नहीं लगा पाये कि पीपा कौन-से ज्ञानी जी के लिये पूछ रहे हैं। फिर सहसा ध्यान आया कि ये कलवाले ज्ञानी जी के बारे नें पूछ रहे हैं तो कबीर सारा वृतान्त पीपा को सुनाते हैं।

व्याख्या – कबीर हँसते हुए पीपा से कहते हैं कि कल तो बड़ी अजीब-सी बात हुई। जैसे ही हम उन ज्ञानी महाराज से मिले कि अचानक उनके और हमारे बीच बहस छिड़ गई। मैंने उनसे सामान्य स्वभाव से पूछ लिया कि महाराज ! आप मुझे कोई ऐसा मार्ग सुझाइये कि जो सभी के लिये एक समान हो और जिस मार्ग पर चलकर ज्ञान व भक्ति दोनों मिल जाये और गृहस्थ जीवन भी विधिवत चलता रहे अर्थात् साधु, संन्यासी, हिन्दु, मुस्लिम व गृहस्थ सभी जिस मार्ग पर चल सके। वे मेरी बात सुनकर तपस्या की बातें करने लगे। मैंने कहा महाराज ! तपस्या का अधिकार तो केवल ब्राह्मण और क्षत्रीय के पास ही हैं। तब वे ज्ञान-मार्ग की बातें करने लगे और कहने लगे कि जो वेद आदि की पुस्तकें पढ़ता है वही ज्ञानी हो सकता है। कबीर ने अपनी चिन्तक और जिद्दी जिज्ञासु प्रवृत्ति के अनुसार कहा कि महाराज ! नीच जाति का व्यक्ति भला वेद कैसे पढ़ सकता है ? क्योंकि यदि नीच जाति का व्यक्ति वेदों अथवा पुराणों को छू लेगा तो वे भ्रष्ट हो जायेंगे तब ज्ञानी जी कुछ चिड़चिड़ाते हुए चुप हो गये।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कबीर की प्रबल जिज्ञासु प्रवृत्ति व निष्कर्ष तक पहुँचने की आदत को स्पष्ट किया है।

2. अवतरण में परिष्कृत भाषा का-सा प्रयोग हुआ है।

3. विचारों की अभिव्यक्ति शैली कबीर के अनुसार है।

(20)

''अगर तुमने उस मासूम की पीठ देखी होती, जिसे चाबुक से छलनी कर डाला गया था, तो तुम्हें इन पाखण्डियों से डर नहीं लगता। इनके कारण लोगों का जीवन नरक बन गया है। तुम चिन्ता नहीं करो, ये बातें तो होती ही रहती हैं।''

''जाके मन विश्वास है, सदा गुरु है संग।
क्रोटि काल झकझोरहीं, तऊ न हो चित भंग॥''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित आलोच्य नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के दूसरे अंक के प्रथम दृश्य से अभिहीत है, जिसमें कबीर और सेना की बातचीत में बताया है कि काशी के मुल्ला व मौलवी कबीर के कट्टर विरोधी हैं। वे तो मौका ढूँढते रहते हैं कि किसी-न-किसी प्रकार से कबीर को अपमानित व दण्डित किया जाये। वहाँ का मौलवी कबीर को जिन्दा दफ़नाने की बात करता है किन्तु वह कहता है कि मैं केवल तेरे बाप नूरा की वजह से चुप हूँ। किन्तु कबीर इन सब बातों से जरा भी विचलित नहीं होते हैं। कबीर तो ये मानते हैं कि सभी मुल्ला-मौलवी-पण्डित पाखण्डी हैं।

व्याख्या – कबीर अपने मित्र सेना से कहते हैं कि अगर तुमने उस मासूम व्यक्ति की पीठ को देखा होता तो तुम्हें इन सबके सब पाखण्डियों से तुम्हें भय नहीं लगता। इन्होंने उसकी पीठ पर इतनी बेरहमी से चाबुक बरसाई कि उसकी सारी चमड़ी ही निकल गई। इनसे तो केवल कमजोर व्यक्ति ही भयभीत होता है क्योंकि इन पाखण्डियों के पास मन की शक्ति तो है नहीं, ये लोग अपनी पदवी के कारण छोटे व कमजोर लोगो का जीवन कमजोर व नरक तुल्य बना कर बैठे हैं। इसलिये यदि ये लोग मुझे मारने की धमकी देते हैं तो इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है। यह सब तो आये दिन होता ही रहता है।

कबीर अपने मित्र सेना को एक दोहे के माध्यम से कहते हैं कि जिस व्यक्ति के मन में दृढ़ विश्वास होता है और जो गुरु व प्रभु कृपा पर आश्रित रहता है, उसे यदि करोड़ों काल भी झकझोरने का प्रयास करे तब भी उसका चित्त विचलित नहीं होता है।

विशेष – 1. बोल-चाल के शब्दों के द्वारा अवतरण में अतिरिक्त प्रेषण-शक्ति का विकास हुआ है।

2. प्रस्तुत अंश में कबीर के आत्मविश्वास, आत्मनिश्चय, गुरुभक्ति एवं निर्भीकता के गुणों की अभिव्यक्ति हुई है।

3. अवतरण की भाषा सरल व दैनिक जीवन में प्रचलित होने वाली है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(21)

''तुम्हें ब्याह कर भी लाया तो कहाँ, जले हुए झोंपड़े में। इधर बाहर ओसारे में मेरी खड्डी थी। बापू की खड्डी पिछवाड़े में थी। दोनों जल गईं, एक खपच्ची नहीं बची। ....मगर अब तू इस घर में आ गई है, तो लगता है कुछ भी नहीं जला है। झोंपड़े में उजियाला हो गया है।

जब मैं तुझे लिवाने गया तो माँ बड़े हौसले से कहने लगी, मुझे बाजार से थोड़ा अरसी का तेल लाकर दे, दुल्हन घर आयेगी तो मैं चौखटों-दरवाजों पर तेल लगाऊँगी। मैंने कहा माँ, यहाँ दरवाजे ही नहीं हैं, तू तेल कहाँ लगायेगी ? और फिर लोई से क्या छिपा होगा? क्या वह जली हुई झोंपड़ी नहीं देखेगी ?''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के दूसरे अंक के दूसरे दृश्य से अवतरित है। इसमें बताया है कि कबीर का झौंपड़ा जला दिया गया है, किन्तु उसकी सामान्य मरम्मत करके रहने जैसी स्थिति में बना दिया गया है। कबीर का विवाह हो चुका है और उनकी पत्नी लोई उनके साथ उसी घर पर है। प्रस्तुत अंश में कबीर अपनी पत्नी से अपनी मनोभावना से अवगत करा रहे हैं।

व्याख्या – कबीर कहते हैं कि लोई! यह मेरे जीवन की कैसी विडम्बना है कि मैं तुम्हें ब्याह कर इस जले हुए झोंपड़े में लेकर आया हूँ और तुम यहाँ पर मेरे साथ रहने के लिये विवश हो। वे अपनी पत्नी को बताते हैं कि इस झौंपड़ी के बाहर जो ओसारा है वहाँ पर मेरी खड्डी थी और घर के पिछवाड़े में बापू की खड्डी थी। अब तो ये दोनों ही जल कर खाक हो गई जिसमें कुछ भी नहीं बचा। किन्तु अब तेरे आ जाने से तो ऐसा अनुभव होने लगा है, जैसे कि इस झौंपड़ी में कुछ भी नहीं जला है। तेरे आने से सब कुछ अच्छा लगने लगा है।

ऐसा कहकर कबीर मुस्कराने लगते हैं और लोई भी घूंघट उठाकर अपने प्रिय कबीर की ओर देखने लगती हैं किन्तु वह बोलती कुछ भी नहीं है। कबीर कहते हैं कि जब मैं तुम्हें लिवाने गया था तो मेरी माँ ने बड़े उत्साह से कहा कि कबिरा! तू बाजार से थोड़ा अलसी का तेल ले आ, क्योंकि बहू आने वाली है। मैं उसके स्वागत की तैयारी में चौखटों पर तेल मल दूँगी। माँ की बात सुनकर मैंने कहा कि माँ जब दरवाजे ही नहीं हैं तो तेल कहाँ लगायेगी ? इतना ही नहीं, बल्कि मैंने उससे यह भी कहा कि लोई हमारे घर की स्थिति को भली प्रकार जानती है, उसे यह भी पता होगा कि हमारी झोंपड़ी जला दी गई है। और जब वह यहाँ पर आयेगी तो उसे सब कुछ पता चलेगा ही।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में कबीर की भावुकता, पत्नी के प्रति प्रेम भावना का चित्रण हुआ है।

2. कबीर की माँ का पुत्र व पुत्रवधु के प्रति उत्साह भाव प्रदर्शित हुआ है।

3. भाषा सरल, सीधी व स्पष्ट है।

4. शैली वर्णनात्मक व भावात्मक है।

(22)

''तुम अपनी प्रतिभा को पहचानो कबीरदास, तुम कवि हो, गायक हो, भगवान ने तुम्हें विलक्षण प्रतिभा दी है। प्रतिभा गलियों में फेंकने की चीज नहीं है, यह तो एक अनमोल हीरा है, जिसकी तुम्हें रक्षा करनी चाहिये।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक भीष्म साहनी द्वारा विरचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के दूसरे अंक के तृतीय दृश्य से लिया गया है। जिसमें बताया है कि कबीर सामान्य थे, किन्तु उनके द्वारा गाये जाने वाले कवित्त और पद उनकी विशिष्टता और विलक्षण प्रतिभा के प्रतीक होते थे। बहुत से लोगों के द्वारा कबीर के पद गाये जाने लगे थे। बहुत से लोग ऐसे भी थे, जो कबीर के कायल थे और उनकी प्रतिभा को दिल से मानते थे। कायस्थ नीम-दरबारी था, वह कबीर को जानता था और कबीर की प्रतिभा की वह कद्र करता था किन्तु वह कबीर की धर्मगत विरोधी नीतियों से दुःखी था। उसे इस बात की पीड़ा होती थी कि कोई भी व्यक्ति कबीर से कुछ उल्टा-सीधा क्यों कहे ? प्रस्तुत अंश में नाटककार ने कायस्थ और कबीर की वार्ता को दर्शाया है।

व्याख्या – कायस्थ कबीर को समझाते हुए कहता है कि कबीरदास! तुम अपनी प्रतिभा को पहचानो, तुम एक विलक्षण प्रतिभा के धनी हो, तुम कवि हो, गायक हो और भगवान ने तुम्हें यह प्रतिभा अनमोल उपहार रूप में प्रदान की है। कबीर कायस्थ की बात को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ध्यान से सुनते हैं और कहते हैं कि अब आप बतायें मैं क्या करूँ ? इस पर कायस्थ कहता है कि कबीर ! प्रतिभा गलियों में फैंकने वाली वस्तु नहीं है।

जैसे कि तुम अपने इस अनमोल गुण को गाँव की गलियों में, सड़कों के किनारे बैठकर गा-गाकर के महत्त्वहीन करते रहते हो। प्रतिभावान व्यक्ति को अपना महत्त्व समझना चाहिये तथा अन्य लोगों को भी उसकी इज्जत करनी चाहिये। तुम्हारी तरह से प्रतिभा को यों ही गलियों में नहीं फैंका जाता है क्योंकि यह सामान्य अथवा उपेक्षणीय नहीं है। यह तो एक प्रकार से ईश्वर के द्वारा दिया जाने वाला अनमोल उपहार है जो वरदान स्वरूप हर किसी को प्राप्त नहीं होता है। तुम्हें इसकी रक्षा करनी चाहिये। यह गुण हर किसी के पास नहीं होता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कबीर की विलक्षण प्रतिभा उनके कवि गुण और एक प्रशंसनीय गायककार के गुणों का खुलासा हुआ है।

2. प्रस्तुत अंश में सूक्ति-परक शैली का प्रयोग किया गया है जो भाषा की लाक्षणिकता और प्रेषणीयता को व्यक्त करते हैं।

(23)

''तुम कहते फिरते हो –

मसि कागद छुओ नहीं
कलम गही नहीं हाथ

यह कोई शेखी बघारने वाली बात नहीं है। तुम कविता कहते हो तो कविता के लक्षण भी तो जानना चाहिये। छन्द और लय का ज्ञान नहीं होगा तो तुम कविता क्या करोगे ?''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के दूसरे अंक के तीसरे दृश्य से लिया गया है जिसमें कायस्थ कबीर की विलक्षण प्रतिभा की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हुए उसके महत्त्व पर प्रकाश डालता है और कहता है कि अच्छी कविता कहने के लिये कवि को कविता के लक्षणों का ज्ञान आवश्यक होता है जिसके प्रति कबीर पूर्णत: अनभिज्ञ हैं। इसी प्रसंग में वह कबीर को समझाता है –

व्याख्या – कायस्थ कबीर को समझाते हुए कहते हैं कि बार-बार तुम यह कहते हो कि मैं निरा अनपढ़ हूँ, मैंने स्याही और कागज को कभी छुआ भी नहीं है और मुझसे कलम पकड़नी नहीं आती है। भले ही ऐसा है कि तुम निरे अनपढ़ हो किन्तु तुम ऐसा क्यों कहते हो। ऐसा कहने से तुम क्या सिद्ध करना चाहते हो ? तुम्हें यह बात आत्म प्रशंसा की दृष्टि से भी नहीं करनी चाहिये।

कायस्थ कहता है कि कबीर ! मैं जो कुछ भी तुम्हें समझा रहा हूँ वह इसी भाव से समझा रहा हूँ कि तुम एक अच्छे कवि बन सकते हो। यदि तुम कविता करते हो तो तुम्हें कविता के लक्षणों से भी परिचित होना चाहिये। जब तक तुम छन्द, लय, ताल, तुक आदि कविता के लक्षणों का तुम्हें ज्ञान नहीं होगा, तब तक तुम्हारी कविता अच्छी कविता का रूप धारण नहीं करेगी, वे ऊबड़-खाबड़ रहेंगी। अर्थात् तुम सही रूप से कविता नहीं कर सकोगे।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में कबीर की प्रतिभा का सही प्रयोग करने की ओर उनका ध्यान आकर्षित कराया गया है।

2. भाषा सरल है और शैली प्रवाहपूर्ण है जिसमें प्रबोधनात्मकता का गुण विद्यमान है।

(24)

''यही खण्डन-मण्डन। यह कवि का काम नहीं है। कवि की साधना तो सरस्वती देवी के चरणों में होती है, गलियों-बाजारों में नहीं होती। कवि के कानों में तो स्वर्ग की अप्सराओं के घुंघरू बजते हैं।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित उपन्यास ''कबिरा खड़ा बजार में'' के दूसरे अंक के तीसरे दृश्य से अभिहीत किया गया है। इसमें कायस्थ कबीर को धार्मिक खण्डन-मण्डन करने व समाज के अन्य पचड़ों में पड़ने की प्रवृत्ति को त्याग कर कवि हृदय से विद्या की अधिष्ठात्री माँ सरस्वती की चरण वन्दना स्वरूप अच्छी कविता करने की शिक्षा देने का प्रयास करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – कायस्थ कबीर को अपनी स्वयं की प्रतिभा को पहचानने की बात करता है। वह कहता है कि तुम्हें दुनियाँ के फालतू पचड़े में नहीं पड़कर कविता करने अथवा अन्य अच्छे लोगों के साथ उठने-बैठने की बात सोचनी चाहिये। जब कबीर पचड़े शब्द का अर्थ नहीं समझ पाते हैं और वे उसका मतलब पूछते हैं तो वह खुलासा करते हुए कहता है कि पचड़े से हमारा मतलब खण्डन-मण्डन से है, जो कि तुम करते हो जबकि कवि लोग स्वच्छन्द प्रवृत्ति के होते हैं। उन्हें किसी की आलोचना या प्रशंसा या अन्य बातों से कोई लेना-देना नहीं होता है। एक अच्छा कवि गलियों में या बजारों में अपनी प्रतिभा को सरेआम कर तुच्छ नहीं बनाता है। कवि की साधना तो विद्या व संगीत की अधिष्ठात्री माँ सरस्वती के चरणों में ही बैठकर होती है। कवि एक विशिष्ट प्राणी होता है और उसके कानों में घुँघरुओं का मधुर संगीत गूंजता रहता है।

विशेष – 1. अवतरण में स्पष्ट किया गया है कि कवि की साधना माँ सरस्वती के चरणों में बैठकर होती है।

2. कबीर की खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया गया है जो कवि गुण के विरुद्ध है।

3. अवतरण की शैली भावात्मक, सूक्तिपरक एवं निर्णयात्मक है।

(25)

''मैं कवि तो नहीं हूँ परन्तु एक कवि का दिल मैंने भी पाया है। इसलिये तुम्हारी कद्र करता हूँ। यह दुनियाँ के झमेले नहीं होते तो मैं भी कविता करता। बचपन में कुछ लिखा भी है, ऐसी बात नहीं कि कुछ लिखा न हो। अब भी सोचता हूँ कि ये झंझटें खत्म हो जाये, बच्चे-बाले ठिकाने लग जाये, जमीन-जायदाद के मामले तय हो जाये तो इत्मीनान से बैठकर साहित्य-साधना करूँ।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक भीष्म साहनी द्वारा विरचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के दूसरे अंक के तीसरे दृश्य से लिया गया है। इसमें नाटककार ने स्पष्ट किया है कि कायस्थ कवि हृदय होने के नाते कबीर की प्रतिभा के मर्म को समझाता है इसीलिये वह कबीर के सामने कवि कर्म को स्पष्ट करता है और उसके बाद वह अपने स्वयं के सदंर्भ में स्पष्टीकरण करता है।

व्याख्या – कायस्थ कबीर से अपनी मन:स्थिति को प्रकट करते हुए कहता है कि भले ही मैं कवि नहीं हूँ किन्तु मुझे भगवान ने कवि हृदय अवश्य दिया है और *अ*

कवि या कवि हृदय होते हैं वे भावुक होते हैं किन्तु वे कवि की कविता के मर्म को समझ जाते हैं इसलिये वे भी कवि के ही समान भावुक हैं। ऐसा इसलिये होता है कि सभी व्यक्ति सहृदय नहीं होते हैं और सभी व्यक्ति कवि के मर्म को हृदयंगम भी नहीं कर पाते हैं किन्तु एक कवि या कवि हृदय व्यक्ति ही कवि की कद्र करता है क्योंकि उसके आदर कविजनोचित भावुकता होती है।

कायस्थ कहता है कि मैं तो दुनियाँ के झमेले में पड़ा हुआ हूँ और मैं पूरी तरह से सांसारिक हूँ। मेरा परिवार है, बाल-बच्चे हैं। किन्तु ऐसा नहीं कि मैंने कभी कुछ लिखा नहीं है। मैंने बचपन में काव्य रचनाएँ की हैं। यही इस बात का प्रमाण है कि मैं सहृदय हूँ, कवियों की कद्र करता हूँ, उनके मर्म को समझता हूँ। मैं यह भी सोचता रहा हूँ कि यदि मेरे जीवन के झंझट खत्म हो जाये, बाल-बच्चे अपने रोजगार से लग जाये और जमीन जायदाद के मामले तय हो जाये तो फिर मैं भी निश्चित होकर साहित्य-साधना में लग जाऊँ क्योंकि दुनियादारी में रहकर साहित्य सृजन का कार्य कुशलता से नहीं हो सकता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में कायस्थ की मन:स्थिति को स्पष्ट किया गया है।

2. कायस्थ की मान्यता में सांसारिकता कवि कर्म में बाधक है।

3. कविता की कद्र सहृदय व्यक्ति या कविजनोचित स्वभाव वाला ही कर सकता है।

(26)

''मेल मिलाप से ही काम निकलते हैं। मैं तुम्हारे साथ हूँ कबीरदास। कहीं किसी से कुछ कहना-कहलवाना हो तो मुझे बताओ। शहर में मेरा अच्छा रख-रखाव है। कोतवाल साहब से मेरी खूब बनती है, वे बड़े दानिशमन्द हैं। फलसफे में भी उनकी गहरी पैठ है, गहरी दिलचस्पी है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक भीष्म साहनी द्वारा लिखित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के दूसरे अंक के तीसरे दृश्य से अवतरित है जिसमें कबीरा और कायस्थ की बात-चीत चल रही है। कायस्थ कबीर को सामाजिक आपसी सम्बन्धों व मेल-मिलाप के महत्त्व को स्पष्ट कर समझाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – कायस्थ बार-बार कबीर को यह कहकर समझाता है कि हमें समाज में रहकर अच्छे व मधुर सम्बन्ध बनाने चाहिये। साम्प्रदायिक खण्डन-मण्डन की आदत को छोड़कर बड़े-बड़े लोगों से सम्बन्ध बनाने चाहिये जिससे कवि कर्म को विकसित किया जा सके और समाज में एक अच्छे कवि के रूप में सम्मान प्राप्त किया जा सके। इस सफलता के लिये मेल-मिलाप अत्यन्त ही आवश्यक है। यह एक ऐसा माध्यम है जिससे कठिन से कठिन कार्य भी आसन न हो सकता है। जहाँ तक मेरा सवाल है, तो मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ क्योंकि तुम्हारा कवि कर्म और तुम्हारे अन्दर छुपी हुई प्रतिभा मेरे लिये एक विशेष महत्त्व रखती है।

कायस्थ इसी संदर्भ में कहता है कि यदि कभी ऐसा अवसर आ जाये कि किसी से कुछ कहना-कहलवाना हो तो मुझे बता देना। मैं तुम्हारे हित के लिये किसी से भी कुछ भी कह सकता हूँ। इस शहर में मेरी सब इज्जत करते हैं और लोगों में मेरा अच्छा खासा प्रभाव है। जहाँ तक शहर के कोतवाल साहब का प्रश्न है। मेरी उनसे खूब पटती है। उनका व्यवहार भी अच्छा है। वे एक प्रकार से काफी सुलझे हुए व्यक्ति भी हैं और वे फलसफ़े में पूरा विश्वास रखते हैं। वे हर बात को काफी गहराई से लेते हैं क्योंकि वे चिन्तनशील व्यक्ति हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण स्पष्ट किया है कि मेल-जोल रखने से कठिन से कठिन कार्य भी आसान हो जाते हैं।

2. कायस्थ के माध्यम से कोतवाल साहब के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

3. अवतरण की भाषा सहज, सरल और व्यावहारिक है।

(27)

''तुमने दोनों को नाराज कर रखा है। इससे बड़ी नादानी की क्या बात क्या हो सकती है ? समझदारी से काम लेते, एक वक्त में एक का विरोध करते तो कम से कम दूसरा तो तुम्हारे साथ होता। मस्जिद वालों का विरोध करते तो मन्दिर वाले तुम्हारे साथ होते और मन्दिर वालों का विरोध करते तो मस्जिद वाले तुम्हारे साथ होते। तुमने तो दोनों को ही एक साथ दुश्मन बना लिया है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित आलोच्य नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के दूसरे अंक के तीसरे दृश्य से अभिहीत है, जिसमें कायस्थ कबीर को समझाते हुए कहता है कि कबीर ! तुम्हारी खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति से कोई भी प्रसन्न नहीं है।''

व्याख्या – कायस्थ कबीर को समझाते हुए कहते हैं कि कबीर ! तुमसे आज कोई भी खुश नहीं है, न हिन्दू और न मुसलमान। दोनों ही तुम्हें अपना शत्रु मानते हैं। क्योंकि तुमने दोनों ही धर्मावलम्बियों को अप्रसन्न कर रखा है, यही तुम्हारी नादानी है। विरोध करना कोई बुरी बात नहीं है, किन्तु वह वैचारिक दृष्टि स्तर पर होना चाहिये। यह भी कहा जा सकता है कि तुमने जो विरोध किया है उसका आधार केवल विचार तत्त्व ही है। तुम अपने कथनों से लोगों के विचारों में परिवर्तन लाना चाहते हो, किन्तु इस परिवर्तन के लिये तुम्हें समझदारी से काम लेना था। समझदारी इसमें थी कि एक बार में एक ही पक्ष का विरोध करना चाहिये जिससे दूसरा पक्ष तुम्हारा समर्थन करता रहता। वह पक्ष तुम्हारी बात को ध्यान से सुनता। तुमने तो दोनों ही पक्षों पर एक साथ आक्रमण करते हो इसीलिये दोनों पक्षों के लोग तुमसे अप्रसन्न हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में कायस्थ का दृष्टिकोण समन्वयवादी स्पष्ट होता है और इसी दृष्टिकोण से वह कबीर की विचारधारा में संतुलन लाना चाहता है।

2. प्रस्तुत अंश में प्रबोधन शैली का प्रयोग किया गया है और कथा को स्पष्ट करने के लिये व्यावहारिक शैली को भी काम में लिया गया है।

(28)

''एक वक्त में एक का समर्थन करो, दूसरे का विरोध, इस प्रकार दोनों से तुम्हें लाभ पहुँच सकता है। (कबीर हँस देता है)। हवा का रूख देखते रहना चाहिये। आँधी तूफान में वही पेड़ बचे रहते हैं जो आँधी के आगे झुक जाते हैं, जो पेड़ नहीं झुकते हैं, वे जड़ से उखड़ जाते हैं।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. साहनी द्वारा विरचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के दूसरे अंक के तीसरे दृश्य से लिया गया है जिसमें कायस्थ के द्वारा कबीर को व्यावहारिक व नीतिगत बातें बताई जा रही हैं क्योंकि कायस्थ स्वयं एक व्यावहारिक व्यक्ति है। वह समन्वय, समझौता एवं संतुलन को विशेष महत्त्व देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – कायस्थ कबीर जी को अपनी व्यावहारिक विचारधारा व्यक्त करते हुए कहता है कि एक समय में एक ही पक्ष का विरोध करना चाहिये तथा दूसरे का समर्थन करना चाहिये। जब हम किसी का विरोध करती है तो यह स्पष्ट है कि किसी-न-किसी का समर्थन तो होना ही चाहिये। वह कहता है कि तुम्हारे साथ ऐसा कुछ नहीं है। तुम तो मात्र विरोध करना ही जानते हो और इस शैली से कोई व्यक्ति न तो प्रसन्न रह सकता है और न वह उन्नति ही कर सकता है एक बार में एक का विरोध व एक का समर्थन करने से समयानुसार लाभ मिलता है और दूसरे लोग न केवल हमारी बात को ध्यान से सुनेंगे अपितु वे हमारा साथ भी देंगे। कायस्थ की इस बात को सुनकर कबीर मुस्कराने लगते हैं। वे कहते कुछ भी नहीं हैं।

कायस्थ कबीर को समझाने की दृष्टि से कहता है कि समय-समय पर तरह-तरह की आँधी चलती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी व्यावहारिक बुद्धि से हवा के रूख को देखते रहना चाहिये। आज के युग में जो हवा का रूख पहचान लेता है, वही सफल हो जाता है। उदाहरण देते हुए वह कहता है कि जैसे जब तेज आँधी चलती है तो उसके रूख को पहचान कर जो पेड़ उसके आगे झुक जाते हैं वे बच जाते हैं। जैसे ही आँधी का वेग थमता है वे पेड़ पुनः सीधे हो जाते हैं और जो तूफान के वेग के आगे झुकते नहीं हैं वे या तो टूट जाते हैं और या समूल उखड़ जाते हैं। अतः वक्त का रूख पहचानना अत्यन्त आवश्यक है। अकारण शत्रु नहीं बनाने चाहिये।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में सूक्तात्मक शैली का प्रयोग किया गया है, यथा – हवा का रूख देखना, पेड़ का झुकना, पेड़ का जड़ से उखड़ जाना आदि।

2. नाटककार ने अपने कथ्य को शैली के माध्यम से प्रभावशाली और सशक्त बना दिया है।

3. भाषा में सहज परिष्कृति परिलक्षित होती है।

(29)

''अब तू प्रेम की बात करता है। यदि प्रेम और भक्ति ही तेरा उपदेश है तो जहाँ जो बैठा है, उसे बैठा रहने दे। पहले कोई अपना धर्म छोड़े, तभी वह सच्ची भक्ति कर सकता है, इसमें तो मुझे कोई तुक नज़र नहीं आता है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. साहनी द्वारा रचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के दूसरे अंक के तीसरे दृश्य से लिया गया है। इसमें कायस्थ कबीर को व्यावहारिक बुद्धि से काम लेने हेतु प्रबोधित करता है। कबीर उसकी बात को बड़े ध्यान से सुनते हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि ''साहिब! हम लोग तो पागल ठहरे, हम तो अनाप-शनाप बोलते रहते हैं, मैं नहीं चाहता कि आपके उजले कपड़ों पर छींटे पड़े। कबीर की बातें सुनकर कायस्थ कहता है कि मैं तो केवल तुम्हारा हितैषी हूँ। और चाहता हूँ कि तुम अपनी छुपी हुई प्रतिभा को पहचानो। कभी-कभी तुम जो तर्क देते हो वह हमारी समझ में नहीं आता है।

व्याख्या – कायस्थ इसी संदर्भ में कहता है कि कबीर! जब तुम प्रेम की बातें करते हो तो अच्छा लगता है, किन्तु तुम्हारा प्रेम भक्ति से जुड़ा है। मैं जानता हूँ कि प्रेमाभक्ति या मानव का मानव के प्रति प्रेमभाव आवश्यक है और कदाचित तुम भी यही मानकर प्रेम और भक्ति का उपदेश देते हो। यदि तुम्हें यही उपदेश देना है या समाज को प्रेम या भक्ति का अमृतपान ही कराना है तो तुम ऐसा करते रहो किन्तु किसी का खण्डन मत करो क्योंकि प्रेम व भक्ति की बातें करने वाला खण्डन-मण्डन नहीं करता है। तुम्हें चाहिये कि जो व्यक्ति जिस रूप में है या जिस धर्म को मानता है तथा अपने जीवन में जो आचरण करता है उसे वैसा ही करने दो। तुम्हारा काम तो केवल प्रेमाभक्ति का उपदेश देना है। तुम्हें यह कहने का कोई भी अधिकार नहीं है कि कोई पहले अपने धर्म को छोड़े और फिर तुम्हारे उपदेश सुने। हर व्यक्ति का अपना मन है, अपनी आत्मा है वह जिस किसी धर्म को मानता है, उसे मानने दो। क्योंकि प्रेम और भक्ति का भाव तो सभी धर्मों में एक जैसा है। ऐसी स्थिति में तुम्हें यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि धर्म को छोड़ने के उपरान्त ही भक्ति हो सकती है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में कायस्थ के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि भक्ति के लिये धर्म को छोड़ना आवश्यक नहीं है।

2. स्पष्ट होता है कि भक्ति आत्मा से की जाती है और वही सच्ची भक्ति है।

3. अवतरण की भाषा सरल व व्यावहारिक है।

4. छोटे-छोटे वाक्यों द्वारा नाटककर के कथ्य को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(30)

''जब तक किसी की नज़र में एक ब्राह्मण है और दूसरा तुर्क , तब तक वह इन्सान को इन्सान नहीं समझेगा। मैं इंसान को इंसान के नाते गले लगाने के लिये मन्दिरके सारे पूजा-पाठ व विधि-अनुष्ठान छोड़ता हूँ और मस्जिद के रोज़ा-नमाज भी छोड़ता हूँ। मैं इंसान को इंसान के रूप में देखना चाहता हूँ।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के दूसरे अंक के तीसरे दृश्य से लिया गया है जिसमें बताया है कि कबीर ऊँच-नीच में विश्वास नहीं करते हैं। कबीर कहते हैं कि ब्राह्मण-जन उनकी परछाई से भी दूर भागते हैं और तुर्क उन्हें काफ़िर कहते हैं किन्तु विडम्बना यह है कि तीनों ही भक्त हैं और भगवान के प्रेमी हैं किन्तु इंसान होकर इंसान से प्रेम नहीं करते हैं। कायस्थ का मानना यह है कि सबके अपने-अपने धर्म हैं और सबका एक साथ मिलकर बैठना कोई आवश्यक नहीं है किन्तु कबीर इस बात से कतई सहमत नहीं है।

व्याख्या – कबीर कायस्थ को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि यद्यपि मैं एक नीच जाति का सामान्य जुलाहा हूँ, फिर भी मैं इस बात को अच्छी प्रकार से जानता हूँ कि जब तक इंसान, इंसान को एक जैसा नहीं समझेगा तब तक वह सही इंसान नहीं होगा। वह भगवान का प्रिय भी नहीं होगा। कबीर कहते हैं कि जब तक व्यक्ति व्यक्ति की नज़र में एक ब्राह्मण है और दूसरा तुर्क है, तब तक भेद भाव बना ही रहेगा और मानव-मानव से प्रेम नहीं करेगा। मैं मानव को मानव के नाते गले लगाना चाहता हूँ। कबीर इस बात पर भी जोर देते हैं कि मानव प्रेम के वास्ते मन्दिर में जाकर पूजा करना, धार्मिक अनुष्ठान करना या मस्ज़िद में जाकर नमाज़ पढ़ना, रोज़ा रखना आदि आवश्यक नहीं है। इन सब को छोड़ देना चाहिये और केवल यह याद रखना चाहिये कि सभी मानव मानव हैं। धर्म के नाम पर ऊँच-नीच का अन्तर समझना बिल्कुल गलत है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में कबीर के चिन्तन को स्पष्ट किया गया है।

2. मनुष्य को एक-दूसरे के साथ मानवता का व्यवहार करना चाहिये और यही सबसे बड़ा धर्म है।

3. कबीर ने मानव-मानव के बीच नैसर्गिक सम्बन्ध बनाये रखने का उपदेश दिया है।

4. शैली प्रवाहपूर्ण है, भाषा सरल व व्यावहारिक है और स्पष्टता का गुण लिये हुए है।

(31)

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या
रहे आज़ाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या।
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर-ब-दर फिरते,
हमारा यार है हममें, हमन को इन्तजारी क्या।
न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़े पियारे से,
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बे-करारी क्या।
कबीरा इश्क का नाता, दुई को दूर कर दिल से,
जो चलना राह नाज़ुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक भीष्म साहनी द्वारा रचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' द्वितीय अं के तृतीय दृश्य से अभिहीत है। कबीर और उनके साथी अपनी फक्कड़ और घुमक्कड़ प्रवृत्ति को कायम रखते हुए पद गाते रहते हैं। यह पद जहाँ एक ओर अन्धविश्वास का खण्डन करने वाला है, धार्मिक बाह्याचारों पर प्रहार करने वाले, पाखण्ड का खण्डन करने वाले हैं, वहीं दूसरी ओर प्रेमाभक्ति के रस से युक्त भी हैं।

व्याख्या – कबीरदास जी प्रस्तुत पद के माध्यम से कहते हैं कि हम तो ईश्वर के इश्क में हमेशा मस्त रहने वाले हैं। हमें होशियारी और चतुराई से क्या वास्ता है अर्थात् जो सच्चा प्रेमी होता है वह चतुराई नहीं दिखाता है। वह तो केवल अपने प्रेम में मस्त रहता है। इतना ही नही, इश्क का दीवाना इस संसार में हमेशा आबाद रहता है। इसकी दोस्ती इस दीन-दुनिया से नहीं होती है। कबीर कहते हैं कि जो लोग अपने प्रिय परमात्मा से बिछुड़ जाते हैं वे दर-दर की ठोकरें खाते हैं। इनमें हम नहीं हैं। कबीर का कहना है कि हम तो अपने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रेमी से मिले हुए हैं। हमारा प्रेमी तो हमारी आत्मा में रहता है। हम उसके आने की प्रतीक्षा नहीं करते हैं। हमें तो उसका हर पल अनुभव होता है।

कबीर कहते हैं कि हम तो एक पल के लिये भी उससे अलग नहीं हुए हैं। ऐसा कहकर कबीर ने आत्मा व परमात्मा की तात्विक एकता को स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि हमारा समर्पण और हमारा प्रेम उसी आत्मा से जुड़ा है जिसमें परमात्मा विराजमान है इसीलिये हम प्रतीक्षातुर नहीं रहते हैं। बेकरारी तो उन लोगों को होती है जो परमात्मा से विमुख होते हैं। हमारा तो परमात्मा से इश्क का नाता है और यह नाता तब ही निभ सकता है, जब हम द्वैतवाद को खत्म कर देंगे। वे कहते हैं कि जीवन की राह पर चलना बड़ा ही कठिन है। उस समय, जब सिर पर वजन रखा हुआ हो और हमारे सिर पर तो किसी प्रकार का बोझा नहीं है।

विशेष – 1. सम्पूर्ण अवतरण में प्रेम की महिमा बताई गई है।

2. प्रत्येक प्राणी की आत्मा में परमात्मा की शक्ति है वह आत्मा में सदैव निवास करता है।

3. स्पष्ट किया है कि अद्वैतवाद के द्वारा ही हम परमात्मा से साक्षात्कार कर सकते हैं।

4. अवतरण की भाषा सधुक्कड़ी है किन्तु सरल है।

(32)

''अब तुम समझो एक फनकार है, तस्वीरें बनाता है। उसके दिल में एक जज्बा उठता है। अब जज्बे का अपना तो कोई रंग-रूप नहीं होता, कोई शक्ल नहीं होती, लेकिन वह फनकार रंगों, लकीरों की मदद से उस जज्बे का बयान कर देता है। मतलब कि तस्वीर देखने वाला उन रंगों और लकीरों को देखते हुए उस जज्बे को जाता है जिसे फनकार बयान करना चाहता है। समझे ? इसी तरह पत्थर का बुत अपने में खुदा नहीं है लेकिन उसके ज़रिये हम खुदा का तसब्बुर कर लेते हैं। ऐसा इन लोगों का कहना है। पर हमें तो, सच पूछो, इन बातों के बारे में सोचकर ही सिरदर्द होने लगता है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. भीष्म साहनी द्वारा विरचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के तीसरे अंक के प्रथम दृश्य से अवतरित है। सिकन्दर और बज़ीर दोनों में बातें चल रही है वे कला पर अपनी बात कर रहे हैं।

व्याख्या – सिकन्दर कहता है कि कुछ लोगों की धारणा यह है कि पत्थर का बुत अर्थात् पत्थर की मूर्ति ख़ुदा तक पहुँचाने का एक जरिया है। मान लो कोई कलाकार तस्वीरें बनाता है। चाहे वह किसी की भी हो, मगर बनाने में जी-जान लगाता है। उसे बनाने से पहले उसमें एक जज्बा अर्थात् भावना होती है, एक आवेश जन्म लेता है। उस आवेश का अपना कोई रंग रूप नहीं होता है। फिर भी कलाकार के मन में उठा हुआ वह जज्बा इतना तेज व असरदार होता है कि रंगों व रेखाओं की सहायता से उस भावना का चित्र उभार कर रख देता है।

अर्थात् कोई कलाकार या चित्रकार जब कोई चित्र बनाता है तो पहले उसकी एक बलबती भावना होती है और उसी के अनुसार कल्पनाएँ बनती हैं और बिगड़ती हैं और उसी कल्पनानुसार कलाकार चित्र को अंजाम देता है। वह अमूर्त भावनाओं को रंगों व रेखाओं के ज़रिये मूर्त रूप प्रदान करता है और उसी को वह हृदयंगम कर लेता है। सिकन्दर कहते हैं कि हमें इस बात को समझना चाहिये कि भाव अपने आप में महत्त्वपूर्ण है जिसे कलाकार अपनी कला को चित्र में तैयार करता है। पत्थर का बुत (मूर्ति) अपने आप में भगवान नहीं है, किन्तु भक्त उसमें भगवान होने की भावना प्रतिष्ठित कर देता है और उसे वैसा ही मानकर पूजा जाता है, बात भावना की ही है और उसी भावना के ज़रिये हम उस पत्थर की मूर्ति में भी भगवान के दर्शन करते हैं। ये संत, फ़कीर और भक्त लोग सब इसी बात को कहते हैं। जहाँ तक हमारा प्रश्न है तो हम इस तरह की बातें समझते तो हैं, किन्तु जैसे ही इनके विषय में सोचने लगते हैं तो हमारे सिर में दर्द होने लगता है। इतना कहकर सिकन्दर कबीर की ओर मुखातिब हुए। उनसे पूछने लगे कि क्या तुम केवल दरबेशी ही करते हो या कोई और काम-धन्धा भी करते हो ?

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण चित्रकार की चित्रकला व भक्त द्वारा की जाने वाली मूर्तिपूजा को आधार बनाकर प्रस्तुत किया है।

2. स्पष्ट होता है कि कलाकार अपनी कला के द्वारा अमूर्त्त को भी मूर्त रूप प्रदान करता है जो उसके दिल का जज्बा होता है।

3. अवतरण की भाषा सहज, सरल और व्यावहारिक है।

4. शैली भावात्मक, विवेचनात्मक और गम्भीर है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(33)

''बड़ी पैनी बात कही है, समझदार आदमी मालूम होते हो ज्यादा तफसील के साथ कहो। हर काम इबादत कैसे बन सकता है ? यह बताओ कपड़ा बुनना इबादत कैसे हुई ? (कोतवाल से) सभी फ़कीर जुनूनी होते हैं (कबीर से) अब हम जंग करते हैं, क्या उसे भी इबादत कहोगे ?''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटक से अभिहीत है जिसमें नाटककार डॉ. भीष्म साहनी ने बताया है कि सिकन्दर कबीर की हाजिर जवाबों से बहुत प्रसन्न हैं।

सिकन्दर यह भी कहता है कि शेख तक्की साहब ने तुम्हारा कई बार जिक्र किया है, इसलिये हमने सोचा कि इधर से निकल ही रहे हैं तो तुमसे मिलते चलें। मैंने तो सोचा था कि तुम फ़कीर हो, ख़ुदा के बन्दे हो किन्तु तुम तो धंधा भी करते हो। कबीर कहते हैं कि आप जिस फ़कीरी की बात सोच रहे हैं वह अवश्य एक धन्धा है।

व्याख्या – प्रस्तुत अंश में सिकन्दर कबीर से कहता है कि तुम्हारी इस गम्भीरता ओर सूक्ष्म चिन्तन से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने अभी कहा कि मेरी नज़र में हर काम इबादत है। मैं चाहता हूँ कि तुम इस बात को खुलासा करके कहो। मेरी समझ से तो प्रत्येक काम केवल काम है, वह इबादत नहीं हो सकता है। अब तुम ही बताओ कि तुम कपड़ा बुनते हो तो यह काम इबादत कैसे हुआ ? कबीर की दृष्टि में प्रत्येक कार्य पूजा है क्योंकि ईश्वर की पूजा की तरह काम को अंजाम देने के लिये एकाग्रचित रहना पड़ता है इसलिये वह पूजा है। इस पर सिकन्दर पूछता है कि हम युद्ध करते हैं, क्या यह भी इबादत है। कबीर कहते हैं कि युद्ध करना इबादत नहीं हो सकता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में सिकन्दर की तर्क शक्ति और जिज्ञासु प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है।

2. सिकन्दर कबीर की सूक्ष्म दृष्टिता और तर्क शक्ति से काफी प्रभावित होता है।

3. अवतरण की भाषा सरल और व्यावहारिक है तथा उसमें उर्दू शब्दों का प्रयोग किया गया है।

4. भावुक शैली का प्रयोग हुआ है।

(34)

''मेरा परवरदिगार मेरे चारों ओर है, वह मेरे दिल में बसता है। उसकी नज़र में न कोई हिन्दु है, न कोई तुर्क। मैं अल्लाह का नूर हर इन्सान में देखता हूँ। इन्सान के दिल में देखता हूँ।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक डॉ. साहनी द्वारा रचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' से लिया गया है जो तृतीय अंक का दृश्य है। कबीर और सिकन्दर में वार्ता चल रही है जिसके दौरान कबीर सिकन्दर से कुछ तीखे अंदाज और तीखी शब्दावली का प्रयोग करते हैं जिनको सुनकर सिकन्दर चौक जाता है और कहता है कि तुम पहले इंसान हो जो हमारे सामने इस तरह बोलने की जुर्रत कर रहे हो। हम किसी हकीर-फ़कीर पर हाथ नहीं उठाते हैं। कबीर अपने आपको खुदा का बन्दा बताते हैं।

व्याख्या – कबीर कहते हैं कि मेरा परवरदिगार अर्थात् ख़ुदा मेरे चारों ओर मौज़ूद है अर्थात् सर्व व्याप्त है। इतना ही नहीं, मैं उसे अपने दिल में महसूस करता हूँ। मेरा ख़ुदा किसी मज़हब के दायरे में क़ैद नहीं है। इसी कारण से उसकी नज़र में न तो कोई हिन्दू है और न कोई तुर्क। उसकी नज़र में सब बराबर हैं, क्योंकि सभी इंसान हैं, उसी का अंश हैं, उसी की संतान हैं। कबीर कहते हैं कि जहाँ तक मेरा प्रश्न है तो मैं अपने अल्लाह की ख़ूबसूरती हर इंसान में देखता हूँ। हर इंसान के दिल में मुझे ख़ुदा दिखाई देता है। प्रत्येक इंसान को ख़ुदा का बन्दा मानकर उसकी पूजा करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि इंसान-इंसान की कद्र करे और एक-दूसरे से प्रेम का व्यवहार करे।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में ईश्वर को सर्वव्यापकता को स्पष्ट किया गया है।

2. स्पष्ट होता है कि कबीर का दृष्टिकोण धर्मप्रेरित न होकर मानव प्रेरित है।

3. कबीर के अनुसार उनका हृदय हृदय नहीं बल्कि जन्नत है क्योंकि वे मानते हैं कि ईश्वर का निवास मानव की आत्मा है।

4. अवतरण में उर्दू लब्ज़ों का बराबर इस्तेमाल किया गया है किन्तु भाषा की सादगी समाहित है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(35)

''इस घट अन्तर बाग बगीचे, इसी में सिरजन हारा।
इस घट अन्तर साल समन्दर, इसी में नौ लख तारा।
इस घट भीतर पारस मोती, इसी में परखन हारा।
इस घट अन्तर अनहद गरजै, इसी में उठत फुहारा।
कहत कबीर सुनो भई साधु, इसी में साईं हमारा।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक भीष्म साहनी द्वारा विरचित नाटक ''कबिरा खड़ा बजार में'' के तीसरे अंक से लिया गया है। इसमें स्पष्ट किया है कि जब सिकन्दर कबीर से यह सुनता है कि वह अल्लाह का नूर हर इंसान में देखता है तो वह कह देता है कि ऐसा लगता है, मानो तुम्हारा हृदय-हृदय नहीं बल्कि कोई जन्नत है। कबीर भी स्पष्ट कह देते हैं कि मेरा दिल तो जन्नत से भी कहीं अधिक ख़ूबसूरत है, क्योंकि मेरे दिल में मेरा अल्लाह है। अपनी इसी भावना को कबीर अपने कवित्त के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

व्याख्या – कबीर प्रस्तुत कवित्त के माध्यम से अपनी भावना की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं कि मेरे दिल में भाँति-भाँति के सुरभित पुष्पों से युक्त बाग-बगीचे हैं और इसी में मेरा जीवनदाता अर्थात् ईश्वर निवास करता है। इसी में सातों समुद्र और निरन्तर चमकने वाले लाखों सितारे हैं अर्थात् मेरा हृदय भी ईश्वरीय प्रकाश से भासित है, आलोकित है। इसी में पारस और वेश कीमती मोती विद्यमान हैं और इसी में सच्चे मोती को परखने वाला ब्रह्म विद्यमान है। मेरे हृदय में अनहद नाद सुनाई देता है। इसी हृदय में प्रेम रस की फुहारें उठती रहती हैं जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि प्रेममय सुनाई देती है। कबीर कहते हैं कि हे सज्जनों ! आप सभी लोग यह समझ लें कि इस हृदय में ही हमारा ईश्वर निवास करता है वह हमसे कभी भी दूर नहीं है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में स्पष्ट हुआ है कि इस सृष्टि में जो कुछ व्याप्त है उसमें सृष्टिकर्त्ता की ही शक्ति है, उसी का प्रकाश है और यह भी स्पष्ट होता है कि मानव हृदय में सब कुछ व्याप्त है केवल उसे देखने व पहचानने वाला चाहिये।

2. प्रस्तुत अंश में कबीर की आत्मिक ज्ञान-ज्योति की ओर संकेत हुआ है और यह भी स्पष्ट हुआ है कि परमात्मा के साक्षात्कार के लिये ज्ञानधारा आवश्यक है।

3. अवतरण की भाषा तत्सम शब्दावली व उर्दू के शब्दों से युक्त है। सधुक्कड़ी किन्तु सरलता लिये हुए है।

4. इस अवतरण का काव्य कबीर का अनुभूत कथ्य है।

2.4 महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

2.4.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. भीष्म साहनी द्वारा विरचित नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' का प्रथम मंचन कब और कहाँ हुआ ?

उत्तर – भीष्म साहनी द्वारा विरचित नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' का प्रथम मंचन दिल्ली के त्रिवेणी के खुले नाट्य-गृह मे सन् 1981 में हुआ, जिसका निर्देशन श्री एम.के. रैना ने किया था।

प्रश्न-2. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक का प्रथम प्रकाशन कब और कहाँ से हुआ था ?

उत्तर – कबिरा खड़ा बजार में नाटक का प्रथम प्रकाशन राजकमल प्रकाश न दिल्ली से 1985 में हुआ था।

प्रश्न-3. कबीर से सम्बन्धित नाटक में पदों को स्वरबद्ध करने का काम किसने किया था ?

उत्तर – प्रस्तुत नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' कबीर से सम्बन्धित पदों को स्वरबद्ध करने का कार्य भी पंचानन पाठक ने किया था।

प्रश्न-4. 'कबिरा खड़ा बजार में' किस प्रकार का नाटक है ? इसमें कबीर की कौन-सी विशेषताओं को उजागर किया गया है ?

उत्तर – 'कबिरा खड़ा बजार में' भीष्म साहनी द्वारा रचित एक आलोच्य नाटक है, इसमें कबीर के निर्भीक व्यक्तित्व एवं उनके आडम्बर विरोधी स्वभाव को उजागर किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-5. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक कितने अंकों व दृश्यों में तैयार किया गया है ?

उत्तर – 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक को नाटककार ने तीन अंकों में विभाजित किया है। प्रथम अंक में पाँच दृश्य, दूसरे अंक में तीन दृश्य हैं और तीसरे अंक मे केवल एक दृश्य है।

प्रश्न-6. प्रस्तुत नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' को सामाजिक नाटक कहना कहाँ तक उचित प्रतीत होता है ?

उत्तर – प्रस्तुत नाटक में कबीर कालीन सामाजिक जीवन, सामाजिक व्यवस्था एवं मान्यताओं को निरुपित किया गया है, साथ ही कबीर के माध्यम से उस सुषुप्त चेतना को जगाने का कार्य किया है, जो उस समय कबीर जैसा सामाजिक चेतना वाला तथा बहुमुखी व्यक्तित्व का धनी व्यक्ति ही कर सकता है। इसलिये उसे हम सामाजिक नाटक कह सकते हैं।

प्रश्न-7. कबीर का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?

उत्तर – कबीर पंथियों के अनुसार सत्पुरुष कबीर का तेजसं. 1455 वि. ज्येष्ठ सुदी सोमवार पूर्णिमा को 'लहरतारा' नामक तालाब के किनारे अवतरित हुए।

प्रश्न-8. कबीर की जन्मदात्री माँ कौन थी ?

उत्तर – प्रमाणों के द्वारा पता चलता है कि कबीर का जन्म विधवा ब्राह्मणी की कोख से हुआ था जो लोक लाज व मान-मर्यादा के कारण नवजात शिशु को तालाब के किनारे कमल पत्र पर अकेला छोड़ गई थी।

प्रश्न-9. कबीर के गुरु का नाम बताइये ?

उत्तर – कबीर के गुरु का नाम रामानन्द था, उन्होंने कबीर को राम नाम का गुरु मंत्र दिया था।

प्रश्न-10. कबीर की भाषा कौन-सी थी ?

उत्तर – कबीर की भाषा सधुक्कड़ी थी। चूँकि कबीर साधु-संतों के साथ रहते थे तो उनकी भाषा भी अनेक भाषाओं का सम्मिश्रण बन गई।

प्रश्न-11. कबीर का दृष्टिकोण निर्गुण ब्रह्म के प्रति कब प्रबल हो गया था ?

उत्तर – कबीर अधिकतर मन्दिरों में रहकर संतों से ज्ञानार्जन करते रहे, जिससे राम के प्रति उनका आध्यात्म दृष्टिकोण प्रबल बना। किन्तु जब उन्होंने समाज की अनेक कुरीतियों को देखा तो कबीर के राम दशरथ नन्दन नहीं बल्कि निराकार ब्रह्म के रूप मे बन गये।

प्रश्न-12. कबीर मुख्यत: किस धर्मविधि से प्रभावित थे ?

उत्तर – कबीर सिद्धों और नाथों की चिन्तनधारा से और साधना विधि से अधिक प्रभावित रहे।

प्रश्न-13. कबीर के अनुसार गुरु का स्थान कौन-सा माना है ?

उत्तर – कबीर के अनुसार गुरु का स्थान ब्रह्म से भी श्रेष्ठ है।

प्रश्न-14. कबीर ने सूखां व सबद शब्द का प्रयोग किसके लिये किया है ?

उत्तर – कबीर ने गुरु के लिये 'सूखां' तथा ज्ञान के लिये 'सबद' शब्द का प्रयोग किया गया है।

प्रश्न-15. कबीर के द्वारा किया जाने वाला सत्य का उद्घोष क्या था ?

उत्तर – कबीर ने इस सत्य का उद्घोष किया कि संसार का सबसे बड़ा सत्य मनुष्य है, कोई जाति या वर्ग नहीं है।

प्रश्न-16. कबीर ने समाज की किन-किन कुरुतियों का खण्डन किया ?

उत्तर – कबीर ने अपने ज्ञान और आत्मविश्वास से नव-निर्माण का प्रयास किया, परम्परागत रूढ़ियों और अंधविश्वासों का खण्डन किया।

प्रश्न-17. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में भीष्म साहनी ने कबीर की किस विचारधारा का प्रस्तुतीकरण किया है ?

उत्तर – प्रस्तुत नाटक में भीष्म साहनी ने समकालीन क्रांतिपुरुष कबीर की क्रांतिकारी विचारधारा, उनकी मान्यता और उनके द्वारा किये जाने वाले परिवर्तन को सुन्दर ढ़ंग से प्रस्तुतीकरण किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-18. डॉ. साहनी ने प्रस्तुत नाटक के प्रस्तुतीकरण में क्या दृष्टिकोण रखा है ?

उत्तर – कबीर की यह मान्यता रही कि हिन्दू और मुसलमान एक ही माटी के भाँडे हैं तथा उनका बाह्याचार विरोध और सहज समाधि के मार्ग का निर्देश व अनहद नाद में लीन होना एक ही व्यक्तित्व की रचनात्मक दृष्टि की उपज है। यही डॉ. साहनी का दृष्टिकोण रहा है।

प्रश्न-19. ''इसे उठा न लाती तो क्या मालूम मैं दूसरा निकाह कर लेता, घर में अपना बच्चा तो होता।'' कथन में नूरा की किस भावना का परिचय मिलता है ?

उत्तर – कबीर की हरकतों से खिन्न होकर अपने भाग्य को कोसते हुए प्रायश्चित की भावना से उक्त कथन कहा है।

प्रश्न-20. ''अब कुछ मत कहो जी। उस जैसा बेटा तो दिया लेकर ढूँढे नहीं मिलेगा।'' कथन में कौन-सा भाव निहित है ?

उत्तर – नीमा के इस कथन में कबीर के प्रति अटूट ममत्व भाव समाहित है।

प्रश्न-21. नूरा के अनुसार कबीर की सबसे बुरी आदत कौन-सी है ?

उत्तर – नूरा के अनुसार भाँग-धतुरा खाने पर होने वाला नशा व आदत खराब नहीं जितनी की शास्त्रार्थ करने की आदत बुरी है, जो कबीर में है।

प्रश्न-22. नीमा कबीर को क्या समझाती है कि जिससे उसके परिवार पर किसी प्रकार की परेशानी न हो ?

उत्तर – नीमा कहती है कि मौलवी-मुल्लाओं से हमारे जैसे लोगों के द्वारा सवाल-जवाब नहीं किये जाते हैं और काशी तो हिन्दुओं का तीर्थ स्थल है तथा यहाँ को कोतवाल मुसलमान है, जो बे-रहम है, अत: कबीर को धर्म-रीतियों का खण्डन-मण्डन नहीं करना चाहिये।

प्रश्न-23. कबीर को बाजार में ऐसा कौन-सा आघात पहुँचा कि उन्हें लोगों के बीच में कूदना पड़ा ?

उत्तर – दो कसाई एक गाय को बाँधे लिये जा रहे थे और उसके पीछे उसका बछड़ा चला जा रहा था, जिसे देखकर कबीर को आघात पहुँचा और वे बीच में कूद कर उनसे उलझ पड़े।

प्रश्न-24. गाय को ले जाते हुए कसाइयों को देखकर क्या किया ?

उत्तर – गाय को ले जाते हुए कसाइयों को देखकर कबीर के मन में एक कवित्त सूझा और वे बोल पड़े –

''दिन भर रोजा रहत है, रात हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुसी खुदाय॥''

प्रश्न-25. ''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटक में ऐसा कौन-सा पुरुष पात्र है जो प्रारम्भ से अन्त तक दिखाई देता है ?

उत्तर – कबीर का पिता नूरा एक ऐसा पुरुष पात्र है जो नाटक के प्रारम्भ से अन्त तक दिखाई देता है।

प्रश्न-26. नूरा को नाटककार ने किस प्रकार का पिता बताया है ?

उत्तर – नूरा को नाटक के प्रारम्भ से अन्त तक कबीर के प्रति चिन्तित और दु:खी दर्शाया गया है। नूरा एक ऐसा पिता है जो अपने पुत्र का घर से भागना पसन्द नहीं करता है, तथा अपने पुत्र की आदतों से दु:खी है। वह विवश पिता है।

प्रश्न-27. सिकन्दर लोदी कौन था ?

उत्तर – सिकन्दर लोदी दिल्ली का शहंशाह था।

प्रश्न-28. कबीर के मित्र कौन-कौन थे ?

उत्तर – कबीर के घनिष्ट मित्र – रैदास, सेना, पीपा और बशीरा थे।

प्रश्न-29. ''प्रतिभा गलियों में फैंकने वाली चीज नहीं है, यह तो एक अनमोल हीरा है, जिसकी तुम्हें रक्षा करनी चाहिए।'' प्रस्तुत कथन किसने कहा था ?

उत्तर – प्रस्तुत कथन कायस्थ का है जो कबीर से कहा गया था।

प्रश्न-30. प्रस्तुत नाटक में कायस्थ कौन है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्तर – कायस्थ ''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटक का एक उल्लेखनीय पात्र है। यह ज्ञानी व्यक्ति है किन्तु प्रशासन से जुड़ा हुआ है और भावुक व्यक्तित्व का धनी है।

प्रश्न-31. शहर का कोतवाल जब यह कहता है कि मन्दिर की मूर्तियाँ तो मुसलमान कारीगर ही बनाते हैं तो कायस्थ क्या कहकर कोतवाल की जिज्ञासा को शान्त करता है?

उत्तर – कायस्थ कहता है कि ''स्थापित करने से पहले उन पर गंगाजल छिड़क कर उन्हें पवित्र कर लिया जाता है। प्राण प्रतिष्ठा तो बाद में होती है। प्राण प्रतिष्ठा के बाद मूर्ति देवता बन जाती है। उसके पहले तो वह पत्थर है।''

प्रश्न-32. प्रस्तुत नाटक के सहायक पात्र महन्त की महत्त्वपूर्ण चारित्रिक विशेषता क्या है?

उत्तर – महन्त के व्यक्तित्व में अवसरवादिता, मौका परस्ती और स्वार्थसिद्धि करने की मनोवृत्ति दिखाई देती है।

प्रश्न-33. कबीर का मित्र रैदास किस जाति से सम्बन्ध रखता है?

उत्तर – कबीर का मित्र रैदास चमार जाति के थे।

प्रश्न-34. कबीर के मित्र सेना एवं बशीरा कौन-सी जाति के थे?

उत्तर – सेना नाई जाति का और बशीरा भिश्ती जाति का था।

प्रश्न-35. नीमा के व्यक्तित्व की क्या विशेषता है? प्रस्तुत नाटक के आधार पर बताइये।

उत्तर – नीमा को कबीर की माँ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह वात्सल्य और स्नेह की प्रतिमा है।

2.4.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. नाटक की चाक्षुस-प्रतीति का एकमात्र आधार रंगमंच होता है, स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – नाटक को दृश्यकाव्य माना जाता है अर्थात् इसकी चाक्षुष-प्रतीति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है और इसका एकमात्र आधार है – रंगमंच। दूसरे शब्दों में रंगमंच पर अभिनय होने से ही नाटक पूर्णता प्राप्त करता है अथवा रंगमंच ही नाटक को रूपाकार प्रदान करता है। दृश्यकाव्य, इस शब्द से ही जो ध्वनि निकलती है, वह है 'देखने के लिए' और दिखाया वही जा सकता है जिसे दिखाने के लिए कोई माध्यम हो। फिर नाटक का आस्वादन भी समूहपरक होता है और मन के रंगमंच पर खेले गये नाटक की अनुभूति समूहपरक नहीं हो सकती, उस समूहपरक अनुभूति के आस्वादन का आधार रंगमंच है। इस संदर्भ में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं – ''नाटक रंगमंच पर अभिनीत होता है। पुस्तकों में वह अँटता नहीं। कल्पना के रंगमंच पर वास्तविक अभिनयकला का साक्षात्कार नहीं होता। केवल पढ़ने के लिए लिखा हुआ नाटक वस्तुत: एक विशिष्ट शैली का उपन्यास या गप्प है।'' अत: यदि नाटक रंगमंच पर सफलता प्राप्त नहीं कर सकता तो उसका अस्तित्व निश्चित ही संदिग्ध है।

प्रश्न-2. भीष्म साहनी द्वारा रचित नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' के आधार पर बताइये कि सोद्देश्य भाषा का प्रयोग नाटक की भाषा को रंगमंचीयता से जोड़ देता है।

उत्तर – नाटक की वह रंगमंच के अनुकूल होनी चाहिए। रंगमंच के अनुकूल वही भाषा हो सकती है जो स्वभावत: सीधी, सरल और स्पष्ट हो, बोलचाल की हो, लोक-जीवन से जुड़ी हुई हो और उसमें आये शब्द-प्रयोग या वाक्य-प्रयोग ऐसे हों, जिन्हें आम आदमी भी सरलतापूर्वक समझ सके। ऐसा इसलिए आवश्यक है कि नाटक सभी के मनोरंजनार्थ होता है, किसी विशेष वर्ग को लक्ष्य मे रखकर नहीं लिखा जाता है। इतना ही नहीं, नाटककार को यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि वह जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर नाटक लिख रहा है, उस उद्देश्य की पूर्ति में भाषा को सहायक होना चाहिए। सोद्देश्य भाषा का प्रयोग नाटक की भाषा को रंगमंचीयता से जोड़ देता है। इस दृष्टि से यदि हम भीष्म साहनी के 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक को पढ़ें, तो उसकी भाषा पूरी तरह रंगमंच के उपयुक्त प्रतीत होती है। उसमें न तो कहीं बनावट है, न कहीं गिरावट है, न कहीं सजावट है, बल्कि यदि कुछ है तो वह ऐसी सहजता है जो न केवल विश्वसनीय प्रतीत होती है, अपितु नाटककार के उद्देश्य और नाटक की विषयवस्तु के सर्वथा अनुकूल प्रतीत होती है। इसीलिए आलोच्य नाटक की भाषा अधिक प्रामाणिक हो गयी है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि नाटक की भाषा को रंगमंच की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न - 3. भीष्म साहनी द्वारा रचित नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' के अन्तर्गत कायस्थ एक उल्लेखनीय पात्र है। कायस्थ का सामान्य परिचय दीजिए।

उत्तर – 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के अन्तर्गत कायस्थ भी एक उल्लेखनीय पात्र है। इस पात्र का परिचय प्रथम अंक के दूसरे दृश्य में होता है। कायस्थ ज्ञानी व्यक्ति है, पर प्रशासन से जुड़ा है, वह भावुक व्यक्तित्व का धनी भी है, किन्तु घर-गृहस्थी और प्रशासन के पचड़े में पड़ा होने के कारण अपनी अनुभूतियों को किसी भी साहित्यिक विधा के द्वारा अभिव्यक्त नहीं कर पाता है। यह कोतवाल के साथ घनिष्ठता रखता है। कभी-कभी आवश्यकतानुसार कायस्थ कोतवाल की खुशामद भी कर लेता है। किन्तु यह ध्यान रहे कि कायस्थ का स्वभाव मूलतः खुशामदी नहीं है। उसके द्वारा की गयी खुशामद में एक आदरभाव भी है जो प्रायः बड़ों के प्रति दिखलाया भी जाना चाहिए। हिन्दुओं के धर्म, उनकी पूजा-पद्धति, ब्राह्मण वर्ग के लोगों की स्थिति, उनकी जातियों-उपजातियों, उनके द्वारा लगाये जाने वाले तिलक, टीके आदि के विषय में भी कायस्थ को अच्छी जानकारी है। कायस्थ में भी कोतवाल की ही भाँति समझाने की क्षमता है। वह तर्क के साथ अपनी बात को कहना जानता है। यही कारण है कि जब शहर कोतवाल उससे यह कहता है कि मंदिर की मूर्तियाँ तो मुसलमान कारीगर बनाते हैं तो वह यह कहकर कोतवाल की जिज्ञासा को शान्त कर देता है – ''पर स्थापित करने से पहले उन पर गंगाजल छिड़ककर उन्हें पवित्र कर लिया जाता है। प्राण-प्रतिष्ठा तो बाद में होती है। प्राण-प्रतिष्ठा के बाद मूर्ति देवता बन जाती है, उसके पहले तो पत्थर है।''

कायस्थ के व्यक्तित्व की एक विशेषता यह भी है कि वह अच्छा सलाहकार और परामर्शदाता है। कायस्थ कबीर से बातचीत करते समय उन्हें जो सलाह देता है, उसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं है। सह तो तटस्थ भाव से कबीर को समझाने की चेष्टा करता है। कायस्थ ने दूसरे अंक के अन्तर्गत कबीर को समझाते हुए जो बातें कही हैं, वे सभी उसकी सत्परामर्शदात्री मनोवृत्ति के अनुकूल हैं।

प्रश्न - 4. समस्या-नाटक की परिभाषा देते हुए इनकी विशेषताओं को संक्षिप्त में लिखिए।

उत्तर – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ''समस्या नाटकों का उद्देश्य होता है समाज को अधिकतर जैसा है वैसा ही सामने रखना, उसके भीतर की नाना विषमताओं से उत्पन्न प्रश्नों का जीता-जागता रूप खड़ा करना तथा यदि सम्भव हो तो समाधान के स्वरूप का भी आभास देना।'' डॉ. बब्बन त्रिपाठी के शब्दों में – ''समस्या-नाटक शब्द से ही यह आभास होता है कि कुछ ऐसे विशिष्ट नाटक, जिनमें समस्याओं की प्रधानता हो या जिनके आधार समस्याएँ हो, समस्या-नाटक कहलाते हैं। ये समस्याएँ क्या थीं या हैं ? जिनकी प्रधानता इन कृतियों में रहती है ?''

समस्या-नाटक की विशेषताएँ – समस्या-नाटकों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. ये किसी भी कृत्रिमता के पोषक नहीं हैं। ये समाज के नंगे या यथावत् चित्र के प्रदर्शक हैं।

2. इन नाटकों का अप्रत्यक्ष प्रभाव यह है कि इनका क्षेत्र सीमित है। अधिकांशतः नाटकों की मूल समस्या-सैक्स यौन सम्बन्धी है। अन्य अनेक समस्याएँ भी हैं, परन्तु उनका मूल स्रोत इसी से है।

3. इन नाटकों में शैली मनोविश्लेषणात्मक है। इनके पात्र अपने या दूसरे के भावों की तह का प्रकटीकरण करते हैं। उनके वक्तव्यों में प्रायः सस्वर विचार हैं।

4. इनकी तकनीक पाश्चात्य पद्धति से प्रभावित है। फलतः इनमें भारतीय नाट्य-शास्त्र के नियमों का उल्लंघन हुआ है। अस्तु कथा के विभाजन में नियन्त्रण का अभाव है। साथ ही इनका अंत प्रायः दुःखान्त होता है, क्योंकि समस्या का उठाना ही इनका उद्देश्य है, समाधान नहीं।

5. इनमें स्वतंत्र चिन्तन का विशेष महत्त्व है।

2.4.3 निबन्धात्मकप्रश्न

प्रश्न - 1. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के माध्यम से लेखक ने सामाजिक जड़ता और सत्ता के अहं को तोड़ने का प्रयास किया है।'' उक्त कथन को स्पष्ट कीजिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अथवा

'' 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में कबीर के काल की धर्मान्धता, अनाचार और तानाशाही आदि के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कबीर के निर्भीक, सत्यान्वेषी और प्रखर व्यक्तित्व को दिखाने का प्रयास स्पष्ट दिखलाई देता है।'' आलोच्य नाटक के आधार पर भीष्म साहनी के इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर – भीष्म साहनी द्वारा लिखित 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक कबीरकालीन परिवेश को ध्यान में रखकर लिया गया है। उस समय व्याप्त विकट सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों विकट का सजीव चित्रण तनी विकट थीं, इस बात को सहज ही प्रमाणित किया जा सकता है। कबीर जन्म से ही विद्रोही व्यक्तित्व लेकर सामने आये थे। उन्होंने न तो डरना सीखा था, न किसी से दबना सीखा था, क्योंकि वे किसी भी एक धर्म के पक्षधर नहीं थे। उन्हें सभी धर्मों से प्यार था, किन्तु उन धर्मों में निहित बुराइयों, कमियों, अंधविश्वासों, धर्मान्धिता, अनाचार, पाखण्ड आदि से तनिक भी लगाव नहीं था। वे बराबर देख रहे थे कि पण्डित और साधु लोग पवित्रता के नाम पर, धर्म के नाम पर समाज को लूट रहे हैं और मुल्ला-मौलवी भी मुसलमान धर्म के परिप्रेक्ष्य में अथवा कहें कि उसकी आड़ में लोगों को गुमराह कर रहे थे। समाज में जो धनी वर्ग था, वह निर्धन वर्ग का शोषण करता था, तरह-तरह के अत्याचार करता था। शोषण और अत्याचारों की चक्की में पिसता हुआ निम्न वर्ग जैसे-तैसे जीवन जीने के लिए विवश था। कबीर को यह सब पसन्द नहीं था। वे सम्पूर्ण समाज में समानता, एक पवित्रता, एक साहसिकता, नैतिकता और इन्सानियत का रंग फैला हुआ देखना चाहते थे। उनके विद्रोही स्वभाव के मूल में यही कारण रहे। भीष्म साहनी ने आलोच्य नाटक में कबीर के निर्भीक और प्रखर व्यक्तित्व को उक्त समूचे परिवेश के मध्य खड़ा कर दिया है। इसी से यह नाटक पर्याप्त प्रभावी, सोद्देश्य और सहजग्राह्य बन गया है। सम्पूर्ण नाटक में कहीं भी कोई ऐसी स्थिति वर्णित नहीं की गयी है जो पाठकों के समक्ष प्रश्नचिह्न लगाती है या पाठकों का ध्यान आकर्षित न करती हो।

कथन का स्पष्टीकरण – भीष्म साहनी ने अपने नाटक की भूमिका में जो कथन दिया है, वही प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भीष्म साहनी क कथन से तीन बातें स्पष्ट होकर सामने आती हैं। ये तीनों ही बातें एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं और सम्बन्धित होकर भी तत्कालीन जीवन का चित्र प्रस्तुत कर देती हैं। भीष्म साहनी का यह कथन उनके द्वारा लिखित नाटक के उद्देश्य को भी स्पष्ट कर देता है। ऐसी स्थिति में उनके कथन से जो तीन तथ्य उभरकर सामने आते हैं, उन्हें समझ लेना आवश्यक है। वे तथ्य निम्नलिखित हैं –

1. भीष्म साहनी के कथन से पहला तथ्य यह उभरकर सामने आता है कि धार्मिक दृष्टि से कबीर काल बहुत पिछड़ा हुआ था। धर्म का अर्थ मनमानी करना हो गया था। धर्म के नाम पर ढोंग, ठगी, अंधविश्वास और अनाचार निरन्तर बढ़ता जा रहा था। धर्म के ठेकेदार बने हुए लोग जो कहते थे, वह करते नहीं थे और जो करते थे, उसे कहते नहीं थे। स्पष्ट ही उनकी कथनी और करनी मे अन्तर था। कबीर इस स्थिति को भली-भाँति देख रहे थे। वे अनुभव कर रहे थे कि धर्मान्धता बढ़ती जा रही है और उससे समाज पतन की ओर चलता जा रहा है।

2. कबीर के काल में एक दूसरी स्थिति अनाचार और तानाशाही की प्रवृत्ति के रूप में उभर कर सामने आ रही थी। उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों पर अत्याचार करते थे, अपनी इच्छापूर्ति के लिए वे निर्धनों पर कोड़े बरसाते थे, उनके घरों में आग लगाते थे और उन्हें दाने-दाने के लिए तरसाने के लिए विवश कर देते थे। वे ऐसे अत्याचार इसलिए करते थे ताकि निम्न वर्ग उनकी अधीनता स्वीकार करता रहे और उनकी इच्छानुसार उनकी सेवा में लगा रहे । जहाँ एक ओर छोटे-छोटे बच्चों को मारा-पीटा जाता था, वहीं दूसरी ओर असहनशीलता और अनाचार के परिणामस्वरूप तानाशाही प्रवृत्ति तथा सत्ता की अहंवादी भावना बढ़ती जा रही थी। नाटक में कोतवाल, सिकन्दर आदि के माध्यम से इसी प्रवृत्ति को उभारने की चेष्टा की गई है।

3. भीष्म साहनी के कथन द्वारा जो तीसरा तथ्य उभरकर सामने आता है, वह यह है कि धर्मान्धपूर्ण, अनाचारयुक्त और तानाशाही मावृत्ति से भरे हुए कबीरकालीन समय में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो इन चीजों का विरोध कर सकता। यह तत्कालीन समाज का सौभाग्य था कि कबीर निम्न वर्ग के होते हुए भी उपर्युक्त अत्याचारों और अनाचारों का विरोध करने के लिए साहसिकता से उठ खड़े हुए थे। कबीर के समय में जो सामाजिक स्थिति थी, उस स्थिति को कबीर ने पूरी निर्भीकता से झेला, उसका सामना कबीर एक साथ अन्तर्बाह्य रूप स हिन्दुओं और मुसलमाना पर प्रहार करने लगे थे। उनके प्रहारों का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया था कि सामान्य जनता उनके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साथ हो गयी थी और प्रशासन वर्ग या कहें कि शक्तिशाली वर्ग कबीर के प्रयासों से चिन्तित हो उठा था। वह हर प्रकार से कबीर को दबाना चाहता था किन्तु कबीर दबने वाले नहीं थे। उनके व्यक्तित्व की निर्भिकता और प्रखरता निरन्तर बढ़ती जा रही थी। वे दबते इसलिए भी नहीं थे कि उनक लक्ष्य सत्य को प्राप्त करना था, उनके स्वभाव में सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति विद्यमान थी। 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के अन्तर्गत कबीर के ऐसे ही व्यक्तित्व को निरूपित करने की चेष्टा की गयी है।

कबीरकालीन समाज

कबीर जिस समय पैदा हुए थे, वह एक ऐसा समय था जब चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। कबीर के समय में न केवल व्यक्तिगत जीवन में, अपितु सामाजिक जीवन में भी विकृतियाँ उत्पन्न हो गयी थीं। समाज और व्यक्ति दोनों की सत्ता यों भी अलग नहीं होती हैं, किन्तु कोई यदि उसे अलग करके देखना भी चाहे तो उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है। भीष्म साहनी ने अपने इस नाटक में कबीर के समय को बड़ी सफाई के साथ प्रस्तुत कर दिया है। सामान्यत: देखें तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कबीर का जीवनकाल विक्रम संवत् की 1 5वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा 1 6वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। भारत के इतिहास का यह काल हर प्रकार से अत्यधिक उथल-पुथल का काल था। उस समय तक मुसलमान यहाँ बस गए थे। मुसलमानों का आगमन तथा उनका राज्य स्थापना की घटना से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने पृथक् सांस्कृतिक एवं सामाजिक इकाई के रूप में हिन्दुओं के कट्टर विरोधी होकर मुसलमान तथा हिन्दू जाति को अपने आप में पूर्णतया आत्मसात् कर लेने की भावना एवं हर प्रकार के प्रयास किये हैं। मुसलमान केवल राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से नहीं, अपितु इस्लाम का प्रचार करने भी आये थे। तैमूर ने अपने संस्मरण में यह बात स्पष्ट की है। वह अपने आक्रमण का उद्देश्य इस्लाम का प्रचार करके भारत-भूमि को काफिरों से मुक्त करना मानता है। मूर्तियों के खण्डन तथा मन्दिरों को उखाड़ने से उसे खुदा के यहाँ 'गाजी' और 'मुसाहिब' का सम्मान प्राप्त करने का विश्वास है। मुसलमानों में वर्ण व्यवस्था का अभाव तो था पर उनकी जातीय भावना और मजहबी कट्टरता, असहिष्णुता की सीमा तक पहुँची हुई थी। उनका धर्म प्रधानत: सामूहिक मजहबी भावना पर टिका हुआ था। उसमें हिन्दू धर्म की तरह मजहबी भावनाओं से ऊपर उठकर व्यक्तिगत चरित्र को महत्ता देने की उदारता नहीं थी। मुसलमान होने के बाद व्यक्ति की जातिगत विशेषताओं के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता है। उसे सामूहिक धर्म को मानना पड़ता है। व्यक्तिगत चरित्र की शुद्धि अथवा व्यक्तिगत साधना का भी इसमें ऐसा कोई महत्त्व नहीं है।

इस्लाम के स्वीकार करने वाला स्वर्ग में और काफिर नरक में जाता है, यह उस समय मुसलमानों का मूल विश्वास था। ऐसे किसी विश्वास के लिए हिन्दू धर्म में कोई स्थान नहीं है। कोई भी इसलिए स्वर्ग का अधिकारी नहीं है कि वह हिन्दू है, ब्राह्मण है या वैष्णव या शैव है। उसके व्यक्तिगत चरित्र की शुद्धि ही प्रधान वस्तु है। इस प्रकार की इस्लामी विचारधारा ने हिन्दू-संस्कृति, धर्म और जाति को झकझोर दिया था। हिन्दुओं के समक्ष अपनी सांस्कृतिक आत्मरक्षा का प्रश्न था। यह कार्य साम्प्रदायिक एवं जातीय भावनाओं को अधिक दृढ़ करने से संभव नहीं था, अपितु धर्म और संस्कृति के व्यापक स्वरूप के पुनरुत्थान पर ही निर्भर था। यह भक्ति-साधना द्वारा ही सम्भव हुआ। भक्ति-साधना के पुनरुत्थान में सहयोग ही कबीर की समन्वय-साधना है। ऐसे समय में कुछ हिन्दुओं का इस्लाम की ओर झुकाव भी स्वाभाविक था। हिन्दू जाति का एक भाग जो कई शताब्दियों से वैदिक मर्यादा का विरोधी था और बौद्ध-धर्म की साधना को मानता चला आ रहा था, इस्लाम की ओर झुका था। बहुत से मुसलमान भी हुए। उनको इस्लाम में शांति, सामाजिक न्याय एवं धार्मिक समानता की भावनाएँ प्रतीत भी हुई। योगी या जोगी ऐसी ही एक जाति थी जो हाल ही में मुसलमान हुई थी। पर ये लोग भी शताब्दियों तक न अपने हिन्दू संस्कारों से मुक्त हो सके और न अपने आपको पूर्णतया इस्लाम के रंग में रँग सके। शेष हिन्दुओं में तो इस्लाम की संस्कृति और धर्म के विरुद्ध एक प्रबल बौद्धिक एवं भावनात्मक प्रतिक्रिया ही जागी। दूसरी ओर बौद्धिक दृष्टि से सजग वर्ग में इस आत्मालोचन की प्रवृत्ति को और भी प्रोत्साहन मिला। व्बीर का व्यक्तित्व भी इन्हीं प्रेरणाओं का परिणाम है। कबीर के युग में हिन्दू-संस्कृति और इस्लाम संस्कृति का यह अन्तर्विरोध पर्याप्त उठा था। कबीर जाति से जुलाहे थे, इसलिए उनके जातिगत संस्कार भी उनकी साम्प्रदायिक संकुचित परिधियों और कट्टरताओं से ऊपर उठाये रख सके। उनकी समन्वय-साधना का यह भी एक बहुत ठोस आधार है।

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के अन्तर्गत कबीर के समय की धर्मान्धता, अनाचार और तानाशाही आदि के चित्र बड़ी खूबी के साथ प्रस्तत किये गये हैं। वास्तव में नाटककार कबीरकालीन झाँकी प्रस्तुत करना चाहता है। एक नाटक में जितना सम्भव है और नाटक के उद्देश्य के लिए जितना आवश्यक है, उतना भीष्म साहनी ने प्रस्तुत कर दिया है। कबीरकालीन स्थितियों का विश्लेषण करना

नाटककार का उद्देश्य अवश्य है। यही कारण है कि इसमें जहाँ एक ओर यह व्यक्त किया गया है कि काशी में उच्चवर्गीय लोग अपनी उच्च स्थिति को बनाये रखने के लिए तरह-तरह के ढोंग करते हैं, दिखावे करते हैं, वहीं दूसरी ओर ये ही लोग गरीबों पर अत्याचार करते हैं, समाज में अनाचार फैलाते हैं, विकृतियों को बढ़ाते हैं, धर्म के नाम पर लूटपाट करते हैं। ब्राह्मण बने हुए लोग यह प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं कि व किसी नीच की छाया मात्र पड़ने से अपवित्र हो जाते हैं। ये सब स्थितियाँ इस बात की प्रतीक हैं कि कबीर के काल में धर्मान्धता फैली हुई थी। तरह-तरह के धार्मिक सम्प्रदाय प्रचलित थे और हिन्दू लोग पूजा-पाठ, तीर्थ-ब्रत और तिलक आदि लगाते हुए अपनी उच्चता को प्रमाणित करते रहते थे। उधर मुसलमान थे जो रोजा-नमाज और अल्लाह-ताला के नाम पर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने में लगे रहते थे। भीष्म साहनी ने नाटक के अन्तर्गत हिन्दुओं की पूजा-पाठ और तिलक लगाने के आचरण को लक्ष्यकर स्थान-स्थान पर कुछ दृश्य प्रस्तुत किये हैं। उदाहरण के लिए पहले अंक से दूसरे दृश्य में कायस्थ और कोतवाल के मध्य जो वार्तालाप हुआ है, वह भी कबीरकालीन धर्मान्धता को व्यक्त करता है। उदाहरणार्थ–

कोतवाल : मैंने सुना है शहर में बड़ी सजावट की गयी है।
(तनिक रुककर) यह किस धर्म के महन्त हैं ?

कायस्थ : धर्म के तो सब हिन्दू ही हैं साहिब, पर हिन्दू धर्म के अन्दर भी बहुत से धर्म-सम्प्रदाय हैं। अब आपको कैसे समझायें। यह शैव हैं हुजूर, शिव की उपासना करते हैं।

कोतवाल : आपके यहाँ मठ-मन्दिर, जात-पात बहुत हैं। हम तो इन्हें समझ भी नहीं पाते।

कायस्थ : बहुत हैं, मालिक, ब्राह्मणों की एक सौ आठ जातियाँ हैं। एक-एक जाति की फिर उपजात है, हजारों जातें है।

कोतवाल : इतनी जातों का हिसाब कौन रखता होगा ?
(हँसकर) हमें यहाँ आये महीना-भर हो गया, मगर हम तो इन्हें अभी तक नहीं समझ पाये।

कायस्थ : पूछिये मालिक, हम बतायेंगे।
(एक साधु सामने से गुजरता है, माथे पर सफेद रंग का टीका है।)

कोतवाल : इस आदमी ने सफेद रंग का टीका लगा रखा है, कुछ लोग लाल रंग का टीका लगाते हैं, कुछ लाल और सफेद दोनों। यह माजरा क्या है ?

कायस्थ : सफेद टीका लगाने वाले वैष्णव हैं हुजूर। और लाल टीका लगाने वाले देवी की पूजा करते हैं, वे शाक्त हैं।

कोतवाल : लेकिन कुछ लोग लम्बे रूख टीका लगाते हैं, ऊपर से नीचे और कुछ लोग सीधे रुख टीका लगाते हैं, और बीच में लाल बिन्दी होती है।

कोतवाल : मगर किसी के माथे पर एक रेखा होती है, किसी पर दो, किसी पर तीन भी।

कायस्थ : एक रेखा वे लगाते हैं जो केवल ब्रह्म को मानते हैं।

कोतवाल : और दो ?

कायस्थ : जो जीव और ब्रह्म दोनों को मानते हैं।

कोतवाल : और तीन ?

कायस्थ : जो जीव, ब्रह्म और प्रकृति को मानते हैं।

कोतवाल : और जो टीका नहीं लगाते ?

कायस्थ : ब्राह्मणों में जो टीका नहीं लगाये उसे चाण्डाल माना जाता है, मालिक।

उपर्युक्त उदाहण से यह स्पष्ट हो जात है कि कबीर के समय में धर्म का क्या स्वरूप था और हिन्दू लोगों में धर्माडम्बर या धर्मान्धता किस मात्रा तक बढ़ गयी थी। नाटककार ने आलोच्य नाटक में जहाँ धर्मान्धता को व्यक्त किया है, वहीं यह भी बता दिया है कि उस समय अनाचार और अत्याचार भी खूब होते थे। जो कबीर प्रारम्भ से ही विद्रोही जैसा आचरण करने लगे थे, वे भी कोड़े खाते थे, पिटते थे और तरह-तरह से सताये जाते थे। कबीर के प्रभाव में आने वाले या उनके पदों का गान वाले व्यक्तियों को भी पकड़ लिया जाता था

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और उन्हें न केवल वैसा करने के लिए पीटा और दण्डित किया जाता था, अपितु कई बार उन पर ऐसे-ऐसे अत्याचार किये जाते थे कि उनका प्राणान्त हो जाता था। अन्धी भिखारिन के बेटे का उदाहरण उस समय में प्रचलित अत्याचार और अनाचार का जीता-जागता प्रमाण है। उच्चवर्गीय लोगों के अत्याचारों से निम्न वर्ग के लोग पूरी तरह भयभीत बने रहते थे। नीमा कबीर को लेकर इसलिए भयभीत है कि वह चाहे जब कोड़ों का शिकार बन जाता है। तरह-तरह की समस्याओं में उलझकर आये दिन उच्चवर्ग के अत्याचार को सहन करता रहता है। नाटक में नीमा ने अपने पुत्र के सम्बन्ध में ऐसी अनेक बातों का जिक्र किया है जो तात्कालीन समाज में व्याप्त अत्याचार और अनाचारों की स्थिति को स्पष्ट कर देता है। नीमा का कबीर से यह कहना कि वह मुल्ला-मौलवियों से सवाल क्यों पूछता है, इसी भय का एक रूप है। नीमा नहीं चाहती कि वह कोई ऐसा काम करे जिससे कोतवाल नाराज हो जाये, क्योंकि वह बड़ा बेरहम आदमी है, जिन्दा दफना देता है। धर्मान्धता का जो विकृत रूप आलोच्य नाटक में दिखाया गया है, लगभग वैसा ही विकृत रूप तात्कालीन समाज में प्रचलित अत्याचारों और अनाचारों का भी दिखाया गया है। अत्याचारों और अनाचारों की स्थिति कितनी विकट थी, इसे नीमा के इस कथन से स्पष्ट किया जा सकता है – ''तू यह क्या करता फिरता है, कबीरा, मेरा दिल दहलता है। जिन लोगों के हाथ में ताकत होती है, उन लोगों के दिल में रहम नहीं होता बेटा। तू अपनी औकात देख बेटा। तू मेरी बात मान, तू सुनकर अनसुनी कर जाया कर पर मुँह से कुछ न बोला कर। क्या बहुत दर्द हो रहा है ? ....बड़े-बड़े मुल्ला-मौलवी, पण्डित-शास्त्री सवाल पूछने के लिए बैठे हैं बेटा, तू न पढ़ा न लिखा। तू अपना काम देख, तुझे सवालों से क्या पड़ी है ?''

आलोच्य नाटक में भीष्म साहनी ने ऐसे संकेत भी दिये हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि मुसलमानों में भी कट्टर धर्मान्धता व्याप्त थी और वे भी ढोंग करते रहते थे, शक्ति-सम्पन्न होकर अत्याचार करते रहते थे। एक बच्चे का उदाहरण देकर तत्कालीन समाज में व्याप्त अत्याचारों का संकेत किया गया है। कबीर ने साधु से कहा भी है – ''तभी तो कहा बड़े शूरवीर हो, साधु भी हो और शूरवीर भी, तभी तो बच्चे को अधमरा करके छोड़ा है।'' महन्त, साधु, पण्डे-पुजारी इन सबके मन में दया-धर्म नहीं था। ये लोग भी केवल अपना स्वार्थ देखते थे। कबीर इन सब स्थितियों को सहन नहीं कर पाते थे। कबीर बराबर इनका विरोध करते रहते थे। इन धर्म के ठेकेदारों की स्थिति यह थी कि नाटक में महन्तजी कोतवाल साहब से यह तो कहते हैं कि ''मठ की जमीन तो हमारे नाम हो गयी। शीघ्र ही वहाँ इमारत भी खड़ी होने लगेगी। और सब तो ठीक है, लेकिन मठ की जमीन के ऐन सामने नीच लोगों की बस्ती है। आप तो जानते हैं हमारे धर्म में ऊँच-नीच का बहुत ध्यान रखा जाता है।'' पर वास्तव में वे हृदयहीन हैं, उनके मन में स्वार्थ, अवसरवादिता और धर्मान्धता भरी हुई है। इन सब स्थितियों को देखकर कबीर ने विद्रोह का रास्ता अपनाया। प्रस्तुत नाटक में भीष्म साहनी ने उपर्युक्त परिवेश, उसमें व्याप्त धर्मान्धता, अनाचार, अत्याचार और शोषण के चित्र अंकित किये हैं और कबीर के निर्भीक व्यक्तित्व के माध्यम से उस सत्य को उजागर किया है जो तब था और अब भी आवश्यक प्रतीत होता है।

निर्भीक और सत्यान्वेषी कबीर

भीष्म साहनी द्वारा लिखित 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में कबीरकालीन धर्मान्धता, अनाचार और सत्ता के अहम् आदि के परिप्रेक्ष्य में उनके निर्भीक, सत्यान्वेषी और प्रखर व्यक्तित्व को दिखाने की सफल कोशिश की गयी है। कबीर अपनी अध्यात्म पक्ष वाली भूमिका को मजबूत बनाने में लगे रहे। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनके विराट व्यक्तित्व का विकास सम्भव नहीं था। नाटककार ने भी यह माना है कि ''मेरी समझ में कबीर का अध्यात्म मूलतः उनकी मनुष्य-मात्र के प्रति समदृष्टि, प्रेमभाव, भक्तिभाव और व्यापक धर्मेतर दृष्टि से ही पनपकर निकला है। उनके बाह्याचार विरोधी पद, भक्तिभाव के पद और आध्यात्मिक पद एक ही भूमि से उत्पन्न हुए हैं, एक ही मूल दृष्टि की उपज हैं। इस तरह वे एक-दूसरे से अलग होकर, एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। जो साधक अन्तरिक्ष को छूते हैं, वे धरती पर से उठकर ही अन्तरिक्ष पर पहुँचते हैं। कबीर की यह मान्यता कि हिन्दू और तुर्क एक ही माटी के भाँडे है तथा उनका बाह्याचार-विरोध और सहज समाधि के मार्ग का निर्देश और अनहद नाद में लीन होना एक ही व्यक्तित्व की रचनात्मक दृष्टि की उपज हैं।''

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक का शीर्षक ही कबीर के निर्भीक, प्रखर और सत्यान्वेषी व्यक्तित्व का सूचक है। इस शीर्षक से यह व्यक्त होता है कि कबीर काशी जैसी नगरी में जहाँ धर्म के ठेकेदार बसते थे, शक्तिशाली लोग रहते थे, वहाँ बीच चौराहे पर खड़ा होकर अपनी बात कहना प्रारम्भ कर देता था। भरी-पूरी नगरी में कोई छोटी जाति का व्यक्ति यदि किसी लाग-लपेट के और बिना किसी भय के यदि अपनी बात कहता है तो मानना चाहिए कि उसका व्यक्तित्व प्रखर और सत्यान्वेषी है। कोई निर्भीक व्यक्ति ही ऐसा आचरण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कर सकता है। नाटक के तीनों अंकों में स्थान-स्थान पर प्रसंगवश ऐसे सन्दर्भ आये हैं जहाँ कबीर के निर्भीक, प्रखर और सत्यान्वेषी व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। माल बेचने जाने के बहाने कबीर का लोगों को इकट्ठा करके यथार्थ स्थितियों से परिचित कराना और उन्हें सही मार्ग दिखाने का उपदेश देना उनकी निर्भीकता का ही द्योतक है। जुलाहा नाटक के प्रारम्भ में ही नूरा को बतला देता है कि कबीरा कोतवाली चौक के पास खड़ा था और उसे बहुत से लोग घेरे हुए थे। वह बहुत बड़बोला हो गया है। वह यह भी कहता है कि ''आज बड़े महन्त की झाँकी-सवारी निकल रही थी। वहाँ महन्त के आदमियों ने किसी लौंडे को बेंत मारे। कबीर बीच में कूद पड़ा। उन्होंने बच्चे को तो छोड़ दिया, पर उलटे कबीर पर टूट पड़े। उससे पहले एक मौलवी के साथ भी उलझ रहा था।'' जुलाहे द्वारा व्यक्त इस प्रकार के विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर का स्वभाव न केवल बड़बोला था, अपितु वे न्याय के पक्षधर थे। वे सत्य को जानना चाहते थे और लोगों को उसी सत्य से परिचित कराना भी चाहते थे। इस कार्य के लिए भले ही उन्हें बेंत खाने पड़े हों, कोड़े सहने पड़े हों और कितने ही तरह-तरह के कष्ट सहने पड़े हों, पर वे पूरी निर्भीकता से अपनी बात कहे बिना नहीं रहते थे।

कबीर का व्यक्तित्व एक निर्भीक और प्रखर व्यक्ति का व्यक्तित्व था। एक दिन जब उनकी माँ नीमा बाजार में घटित घटना के बारे में कबीर से पूछती है, तब पहले तो कबीर मुस्करा देते हैं और यह कह देते हैं कि कुछ भी नहीं हुआ था, फिर मुस्कराते हुए यह भी बता देते हैं कि ''उधर दो कसाई एक गाय को बाँधे लिये जा रहे थे, पीछे-पीछे गाय का बछड़ा चला जा रहा था, मुझे बहुत बुरा लगा।'' इस पर नीमा कह देती है कि ''बस, तू बीच में कूद पड़ा होगा।'' कबीर जवाब देते हैं कि ''नहीं माँ, मैंने कुछ नहीं कहा था। हाँ मुझे तो एक कवित्त सूझ गया था और वह यह था –

''दिन भर रोजा रहत हैं रात हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसी ख़ुसी ख़ुदाय।''

कबीर द्वारा कही गई उपर्युक्त साखी उनके निर्भीक और सत्यवादी व प्रखर व्यक्तित्व की द्योतक है। इतना ही नहीं, कबीर का मुल्ला-मौलवियों से तरह-तरह के प्रश्न पूछना, ब्राह्मणों, मुसलमानों की मनोवृत्ति और हिन्दुओं की मानसिकता पर व्यंग्य करना आदि भी कबीर के प्रखर और निर्भीक व्यक्तित्व का ही प्रमाण है। जब कबीर साधुओं को चाबुक चलाते हुए देखते हैं और फिर उन्हें मन्त्रोच्चारण करते हुए भी देखते हैं तो उन्हें क्रोध आता है। इसी प्रकार से महन्तजी के स्वागत में आयोजित समारोह उन्हें पीड़ा पहुँचाता है। वे धर्मान्धता को सहन नहीं कर पाते हैं। साधुओं द्वारा की गयी मारपीट, नीच लोगों पर किये गये अत्याचार आदि को भी कबीर सहन नहीं कर पाते हैं। धर्म के नाम पर जो लूटपाट, अत्याचार और शोषण चल रहा था, वह भी कबीर को सह्य नहीं होता था। ये सब स्थितियाँ इस बात की सूचक हैं कि कबीर का व्यक्तित्व निर्भीक था, प्रखर था और वे सत्य को जानना चाहते थे। एक भिखारी को कबीरा का पद गाते हुए दिखाया गया है। उस पद में कबीर ने हिन्दू-मुसलमान दोनों पर आक्षेप किये हैं और साथ ही साथ कबीर ने यह बतला दिया है कि इन दोनों में से कोई भी ईश्वर, ख़ुदा और परम सत्य को नहीं जानता क्योंकि वे सभी ढोंगी हैं। कबीर के पद की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

''बहुत मिलें मोहि नेमी धरमी प्रात करें असनाना।
पीपर पाथर पूजन लागै, तीरथ बने भुलाना।
बहुत ही देखे पीर औलिया, पढ़ैं किताब कुराना।
करैं मुरीद कबीर बतलावैं, उनहूँ खुदा न जाना।।''

इसी कारण कबीर तो यह प्रचलित करते रहते हैं कि –

''वही महादेव, वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये।
को हिन्दु, को तुरक कहावै, एक जिमी पर रहिये
वेद किताब पढ़े वे कुतबा, वे मुल्ला वे पाण्डे।''

'साधो एक रूप सब नाहीं
अपने मनहिं विचार के देखो और दूसरा माहीं
एकै त्वचा, रुधिर पुन एकै, विप्र शूद्र के माहीं।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कबीर के उपर्युक्त पदों में व्यक्त विचार जहाँ उनकी निर्भीकता, सत्यान्वेषी वृत्ति और मानवीय दृष्टि को व्यक्त करते हैं, वहीं पर इन्सानियत के उस मार्ग को भी प्रशस्त करते हैं जिस पर खड़े होकर कबीर ने समदृष्टि, समानता, पवित्रता, सात्विकता, नैतिकता और मानवता का संदेश दिया था। नाटक के अन्तर्गत कबीर और सिकन्दर का वार्तालाप भी उनके निर्भीक, स्पष्टवादी और सत्यान्वेषी व्यक्तिव को उजागर करता है। कबीर के कुछ कथन देखिये जो उन्होंने सिकन्दर को सम्बोधित करके कहे हैं। ये वे कथन हैं जो कबीर के प्रखर और सत्यान्वेषी व्यक्तिव को उजागर करता है, जैसे –

1. मेरी फकीरी के लिए घर-बार छोड़ने की जरूरत नहीं है। मेरी नजर में हर काम इबादत है।

2. नहीं, जंग इबादत नहीं है। इन्सान की खिदमत करना, उसे सुखी बनाना इबादत है।

3. मैं खुदा का बन्दा हूँ। मेरा मज़हब इन्सान की मोहब्बत है। ख़ुदा की बन्दगी है।

4. मैं उस खुदा की इबादत करता हूँ जो हर इन्सान के दिल में बसता है।

5. मेरा परवरदिगार मेरे चारों ओर है, वह मेरे दिल में बसता है। उसकी नज़र में न कोई हिन्दू है, न तुर्क। मैं अल्लाह का नूर हर इन्सान में देखता हूँ, इन्सान के दिल में देखता हूँ।

6. मैं इन्सान को हिन्दू और तुर्क की नजर से नहीं देखता।

7. जन्म से सभी इन्सान होते हैं। वरना ब्राह्मण का बेटा माँ के पेट से ही तिलक लगाकर निकलता और तुर्क का बेटा खतनी करवाकर निकलता।

निष्कर्ष – उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह सहज ही कहा जा सकता है कि 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में कबीरकालीन धर्मान्धता, अनाचार और तानाशाही आदि के सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे कबीर के निर्भीक, सत्यान्वेषी और प्रखर व्यक्तित्व को ईमानदारी से दिखाने की सफल चेष्टा की गयी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि नाटककार ने सम्पूर्ण नाटक में कबीरकालीन स्थितियों का विवेचन सांकेतिक रूप से ही सही, पर यथार्थ रूप में किया है। अनाचार, तानाशाही और धर्मान्धता के परिवेश में कबीर को बीचों-बीच बजार में खड़े दिखाकर उनके निर्भीक, स्पष्टवादी, सत्यवादी और सत्यान्वेषी व्यक्तित्व को उभारा गया है। अत: कबीर के सम्बन्ध में पूर्व में कही गई उक्ति न केवल नाटककार के उद्देश्य को व्यक्त करती है, अपितु इस नाटक की मूल चेतना को भी स्पष्टत: रेखांकित कर देती है।

प्रश्न-2. नाट्य-तत्त्वों के आधार पर 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर – 'कबिरा खड़ा बजार में' भीष्म साहनी का एक उल्लेखनीय नाटक है। यों मूलत: साहनीजी को कथाकार के रूप में ख्याति प्राप्त हुई है। वे एक अच्छे उपन्यासकार, श्रेष्ठ कहानीकार और साम्प्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा देने वाले प्रगतिशील और मानवतावादी कथाकार के रूप में सामने आये हैं। कथाकार के क्षेत्र से निकलकर जब वे नाट्य-सृजन के धरातल पर उतरते हैं, तब भी उनकी मानवतावादी और प्रगतिशील दृष्टि यथावत् बनी रहती है। स्पष्टत: नाट्य-लेखन में भी भीष्म साहनी ने अपनी समानता, मानवता और प्रगतिशीलता से युक्त जीवन-दृष्टि को बनाये रखा है। 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक इसका प्रमाण है। इस नाटक में साहनी ने कबीरकालीन परिवेश को उभारने हेतु उसमें कबीर की भूमिका को पूरी ईमानदारी से चित्रित किया है। नाटक में कबीर के द्वारा जो संकेत दिये गये हैं या दिखाये गये हैं, वे कबीरकाल में जिनते महत्त्वपूर्ण थे, उतने ही महत्त्वपूर्ण और प्रासांगिक आज भी दिखलाई देते हैं। निश्चय ही यह नाटक नाट्य-कला की दृष्टि से भी विशिष्ट है।

नाटक की तात्विक समीक्षा

नाटक के सर्वमान्य तत्त्व छ: हैं – कथानक, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, भाषा-शैली, देशकाल और वातावरण तथा उद्देश्य। हमारी दृष्टि में जो कि नाट्यशास्त्र विद्वानों से मेल खाता है, रंगमंचीय्ता या अभिनेयता भी नाटक का प्रमुख तत्त्व है। इन तत्त्वों के आधार पर ही किसी भी नाटक की समीक्षा और परीक्षा की जा सकती है। आधुनिक नाटककार इन सभी तत्वों को महत्त्व नहीं देते हैं। उनका ध्यान कथ्य-प्रस्तुति, मूल चेतना की अभिव्यक्ति, रंगमंचीयता और पात्र-योजना पर अधिक रहता है। आधुनिक नाटककार कथावस्तु को भी विशेष महत्त्व नहीं देते हैं। ये तो कथा का संकेत मात्र करते हैं और उसके आधार पर नाटक का सृजन करते हुए अपने उद्देश्य को व्यक्त करने के लिए अनिवार्य पात्रों का विधान करते हैं और नाटक को रंगमंचोपयुक्त बनाते हुए अपने कार्य की इतिश्री मान लेते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इसमे कोई संदेह नहीं कि समय के साथ-साथ मानदण्ड बदलते हैं, विचारधाराओं में परिवर्तन होता है और परिवेश तथा समय की माँग पर किसी भी साहित्यिक विधा को परखने आदि के निष्कर्ष भी स्वभावत: बदलते चले जाते हैं। खैर, जो भी हो, इतना निश्चित है कि भीष्म साहनी कृत 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक नाट्यकला के मान्य तत्त्वों के निष्कर्ष पर खरा उतरता है। इस नाटक में नाटककार ने कथा कहना अपना उद्देश्य नहीं रखा है, वह तो कबीर को केन्द्र में रखकर अपनी वैचारिक चेतना और जीवन-दृष्टि को व्यक्त करना चाहता है। यदि इस नाटक को नाट्यकला के निष्कर्ष पर मूल्यांकित करें तो निम्नांकित रूप में विवेचन किया जा सकता है –

1. कथावस्तु – 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक की कथावस्तु तीन अंकों और नौ दृश्यों मे फैली हुई है। (इस नाटक की कथावस्तु से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर पहले विस्तार से दिया गया है। यहाँ उन्हीं बातों की चर्चा की जा रही है जो इस प्रश्न की सीमा से प्रत्यक्षत: जुड़ी हुई है।) सर्वप्रथम बात यह है कि इस नाटक में कथा केवल इतनी है कि काशी नगरी में नीमा और नूरा पति-पत्नी के रूप में रहते हैं। उन्हें एक नवजात शिशु प्राप्त हो गया है, जिसे उन्होंने पाल-पोषकर बड़ा किया है। उसका नाम कबीर रखा गया है, यद्यपि वह किसी ब्राह्मणी का बेटा था। नीमा और नूरा जुलाहा होने के कारण कबीर से कपड़ा बुनना और बेचना जैसा कार्य करवाना चाहते हैं, किन्तु कबीर का मन उसमें नहीं लगता है। कबीर तो कुछ दूसरे ही ढंग से अलबेले व्यक्ति हैं। उन्हें ज्ञान-ध्यान की बातें करना, मुल्ला-मौलवियों और पण्डितों से बहस करना, उनकी बात काटना और अपनी बात को चौराहे पर खड़े होकर लोगों को समझाना ही अच्छा लगता है। यही उनका प्रिय विषय है। इस कार्य को करते हुए अनेक बार वे कोड़े खाते हैं। ब्राह्मणों द्वारा पकड़कर गंगा में डुबो दिये जाते हैं, जेल में बन्द कर दिये जाते हैं और अन्तत: मुक्त होकर फिर अपना वही राग अलापने लगते हैं। वास्तव में नाटककार ने कबीर के इस स्वरूप और व्यक्तित्व को उद्घाटित करके तत्कालीन समाज, संस्कृति, धर्म आदि की समीक्षा करते हुए समानता और मानवता का संदेश दिया है।

नाटक में कुछ घटनाएँ भी घटित होती हुई दिखाई गई हैं। ये घटनाएँ कबीर को गंगा में डुबो देने वाली स्थिति, बन्दी बना लिये जाने वाले प्रसंग, कोड़े खाने वाले प्रसंग, सिकन्दर और कबीर की मुलाकात वाले प्रसंग के रूप में व्यक्त की गयी हैं। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि नाटक की मूल कथा कबीर से जुड़ी हुई है। कथा में प्रारम्भ से अन्त तक गतिशीलता विद्यमान है। कथा के सूत्र कहीं भी टूटे हुए प्रतीत नहीं होते हैं। नाटक की आधिकारिक कथावस्तु को सहयोग देने के लिए प्रासंगिक कथाओं की योजना भी की गयी है। प्रासंगिक कथा के रूप में कायस्थ और कोतवाल, लोई आदि के संदर्भ नियोजित करते हुए कबीर की मित्र-मण्डली को भी प्रस्तुत कर दिया गया है। आरम्भ, मध्य और अन्त तीनों ही स्थितियों में कथावस्तु रोचक, सरस, सजीव और विश्वसनीय बनी रहती है। कथावस्तु में अर्थ प्रकृतियों, संधियों और कार्यावस्थाओं की योजना भी स्पष्टत: देखने को मिल जाती है। पूरी कथा में कहीं भी नीरसता का कोई बिन्दु नहीं है। वह मौलिकतापूर्ण नवीन, आकर्षणयुक्त, रोचकता से ओत-प्रोत और पाठकों की जिज्ञासा को बनाये रखने की विशेषताओं से युक्त है। अत: कथावस्तु की दृष्टि से आलोच्य नाटक को सफल कहा जा सकता है।

2. चरित्र-चित्रण – चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यदि 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक का मूल्यांकन करे तो स्पष्टत: यह नाटक इस निष्कर्ष पर भी खरा उतरता है। नाटक में प्रमुख पुरुष पात्र कबीर, कोतवाल, कायस्थ, नूरा व महन्त को लिया जा सकता है। गौण पात्रों में रैदास, पीपा, सेना, बशीरा आदि परिगणित हो सकते हैं। यद्यपि इनकी कोई विशेष भूमिका नाटक में नहीं है। ये लोग कबीर के व्यक्तित्व को उभारने के लिए ही लाये गये हैं। स्त्री पात्रों में नीमा और लोई का व्यक्तित्व उल्लेखनीय है। पात्र-विधान में भीष्म साहनी ने जिस पद्धति को अपनाया है, वह पद्धति सीधी और सरल है। नाटककार ने स्पष्टत: विश्लेषणात्मक पद्धति हो अपनाया है। यों नाटकीय पद्धति का अभाव भी चरित्रांकन में नहीं है। पूरे नाटक में नाट्यात्मक या नाटकीय और विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण पद्धति के सहारे उद्देश्य को सफलता के सोपान तक पहुँचाया गया है। नाटक में दो प्रकार के पात्र हैं। कुछ पात्र सत्प्रवृत्तियों के पोषक हैं और कुछ असत् प्रवृत्तियों के पोषक हैं। सत्प्रवृत्तियों के पोषक पात्रों में कबीर, रैदास, पीपा और कायस्थ को लिया जा सकता है। कायस्थ भले ही अधिकारी हो, और उसकी मेल-मुलाकात कोतवाल आदि के साथ हो, किन्तु वह सत्प्रवृत्तियों का ही वाहक है। असत् प्रवृत्तियों के पोषक पात्रों में प्रमुखत: कोतवाल, महन्त और कुछ छोटे-मोटे नागरिकों को लिया जा सकता है। इस प्रकार पात्रों के दो सत् और असत् वर्ग दिखलाकर नाटककार ने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि हमेशा ही सत्प्रवृत्तियों की विजय होती है। नाटक में भी असत् पात्र चाहे कितने ही क्रूर कर्म क्यों न करें, भले ही वे कितने ही निर्मम क्यों न हों, शक्तिशाली क्यों न हों, किन्तु नाटक के अन्त में कबीर और उसके अनुयायियों की ही विजय होती है। सिकन्दर जब कबीर को दण्डित करने का आदेश देता है तब जनता कबीर के पदों को गाती हुई रंगमंच पर दिखाई गयी है। इस स्थिति से सभी हतप्रभ रह जाते हैं। यही कबीर की विजय है, यही सत्पक्ष की विजय है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पात्र-विधान के अन्तर्गत एक उल्लेखनीय विशेषता यह दिखाई देती है कि सभी पात्र गतिशील हैं, सचेतन हैं, कोई भी पात्र जड़ प्रतीत नहीं होता है। नाटक के पात्रों की विशेषता यह होनी चाहिए कि वे अपने अच्छे या बुरे जैसा भी उनका व्यक्तित्व हो, उसके द्वारा पाठकों को प्रभावित कर लें, दर्शकों को बाँध लें। यदि कोई बुरा पात्र भी अपनी बुराई के द्वारा दर्शकों या पाठकों के मन में अपने प्रति घृणा उत्पन्न कर लेता है या घृणा उत्पन्न करने में सफल हो जाता है तो उसे सचेतन पात्र कहना चाहिए। स्पष्ट ही ऐसे पात्र साधारणीकरण के नियम के आधार पर भी खरे उतरते हैं। 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में कायस्थ की क्रूर, पाशविक, निर्मम और अहंकारी व्यक्तित्व की जो स्थिति है, उसमें भी वह पाठकों को प्रभावित करता है। सिकन्दर जो शक्ति का पुंज है, वह भी कबीर के सामने एक बार तो हतप्रभ हो जाता है। उसकी बातें सुनकर गहरे तक प्रभावित हो जाता है। कायस्थ कबीर से पूरी तरह प्रभावित है। इस प्रकार चरित्र-चित्रण या पात्र-विधान की दृष्टि से आलोच्य नाटक को एक सफल नाटक कहा जा सकता है।

3. कथोपकथन – कथोपकथन नाटक के प्राण-तत्त्व कहे जा सकते हैं। किसी भी नाटक में प्रयुक्त कथोपकथनों की स्थिति महत्त्वपूर्ण होती है। नाटककार द्वारा प्रयुक्त कथोपकथन गतिशीलता से युक्त, चरित्रोद्घाटन की क्षमता से परिपूर्ण, सोद्देश्य, संक्षिप्त, सरस औ रंगमंचोपयुक्त होने चाहिए। आलोच्य नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' के अन्तर्गत जो संवाद आये हैं, वे उपर्युक्त सभी गुणों से युक्त हैं। संवाद-योजना का विवेचन विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। अत: यहाँ पर केवल निम्नलिखित तथ्य ही स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं –

1. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के संवाद कथावस्तु को गति प्रदान करने वाले हैं। संवाद न तो भारी-भरकम हैं, न आवश्यकता से अधिक दीर्घकाय हैं। वास्तव में वे कसे हुए, सुगठित तो हैं ही, कथा को प्रवाहशील सरिता की भाँति निरन्तर आगे धकेलते हुए दिखाई देते हैं। उनमें ठहराव नहीं है, वे कथा की यात्रा के बीच में दीवार बनकर नहीं आये हैं, अपितु वे तो जैसे ही कथा को अपनी ओर आते हुए देखते हैं, वैसे ही वे उसके लिए मार्ग छोड़ देते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि कथा को नाटककार ने इतनी शक्तिमत्ता प्रदान कर दी है कि वह स्वयं की सारी दीवारों को तोड़ती हुई तीव्र गति से उद्देश्य के चरम बिन्दु पर पहुँच जाती है।

2. चरित्रोद्घाटन की क्षमता भी आलोच्य नाटक के संवादों में देखी जा सकती है। 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के अन्तर्गत किन्हीं भी दो या तीन पात्रों के संवाद को लिया जा सकता है और यह समझा जा सकता है कि वह वार्तालाप या अमुक कोई भी वार्तालाप पात्रों के चरित्र को उद्घाटित कर रहा है। ऐसे संवादों की भी नाटक में कमी नहीं है जो पात्रों के आन्तरिक व्यक्तित्व को उद्घाटित करने के साथ-साथ उनकी मानसिकता, उनकी सोच और उनकी जीवन-दृष्टि को उजागर करते चलते हैं। केवल एक उदाहरण देखिए जो न केवल कथा को गतिशील बना रहा है, अपितु चरित्रोद्घाटन की क्षमता से भी युक्त है –

मौलवी : मैं हैरान हूँ साहिब ! चिराग तले अँधेरा ! आप शहर के कोतवाल हैं और आपके कान पर जूँ नहीं रेंग रही है।

कोतवाल : क्यों ? क्या मामला है ? किसी ने आपकी तौहीन की है ?

मौलवी : मेरी नहीं, मेरे दीन की तौहीन की है। और आज नहीं, बहुत दिन से करता आ रहा है। और अब उसके साथ बहुत से साथी भी जुट गये हैं।

कोतवाल : खोलकर बताइये मौलवी साहब।

मौलवी : कबीर नाम के जुलाहे का नाम सुना है ?

कोतवाल : वह जो शायरी करता है, कवित्त कहता है ? बकने दीजिए जो बकता है।

मौलवी : लाहौल बिला कुव्वत, आप क्या कह रहे हैं ? मस्ज़िद शरीफ़ की सीढ़ियों पर खड़ा होकर वह दीन की तौहीन करता रहा है। लाहौल बिला कुव्वत, आपकी अमलदारी में कहर ढाया जा रहा है और आप खामोश हैं।

कोतवाल : कोई जनूनी ही ऐसी बात कर सकता है।

मौलवी : ज़ुनूनी है या काफ़िर, इसका मुँह तो बंद कराइये। लाहौल बिला कुव्वत, लोग क्या कहेंगे किआप एक खब्ती से डर गये। आपके रहते किसकी मज़ाल कि दीन की तौहीन करे। आप यहाँ पर दिल्ली के शहनशाह के ही नुमाइन्दा नहीं हैं, आप दीन के भी नुमाइन्दा हैं। आप

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चुप रहेंगे तो लोग कहें कि यहाँ का राजा चूँकि हिन्दू है इसलिए दीन के खिलाफ कोई कुछ भी कह ले, कोतवाल कुछ नहीं कर सकता। इस आदमी के शेअर और काफिये लोगों की जबान पर चढ़ते जा रहे हैं। जहाँ खड़ा होता है, मजमा इकट्ठा कर लेता है। छोटे तबके के लोगों को इश्तआल दे रहा है।

कोतवाल : (सिर हिलाकर, मुस्कराते हुए) आप यह मत समझिये कि हम इन बातों से बेखबर हैं।

(धीमी आवाज में) दीन की खिदमत मुल्ला-मौलवी इतनी नहीं करते जितनी हाकिम करता है, यह बात गाँठ बाँध लो।

3. आलोच्य नाटक के कथोपकथनों की एक तीसरी विशेषता यह भी है कि वे संक्षिप्त में, सरस हैं, रोचक हैं और साथ ही साथ सादगीपूर्ण और व्यावहारिक भाषा में लिखे गये हैं। भीष्म साहनी ने कहीं भी यह प्रयत्न नहीं किया है कि संवाद बड़े हो जायें और साथ ही साथ उनकी स्वाभाविकता और सहजता पर प्रश्नचिह्न लग जाये। नाटक में ऐसे संवाद आद्यन्त व्याप्त हैं जो संक्षिप्ति, सहजता और व्यावहारिक भाषा से युक्त हैं। उदाहरणार्थ –

कोतवाल : यह तुम क्या गा रहे हो ?

भिखारी : एक कवित्त है मालिक, वही गा रहे हैं ?

कोतवाल : किसने तुम्हें यह गीत सिखाया है ?

भिखारी : सिखाया तो किसी ने नहीं। दो-एक दफे कबीरदास के मुँह से सुना तो कण्ठ हो गया।

कोतवाल : तुम कबीरदास के बहुत से कवित्त जान्ते हो ?

भिखारी : दो-तीन ही जानते हैं माई-बाप, ज्यादा तो नहीं।

कोतवाल : कोई और कवित्त सुनाओ।

भिखारी : उत्साहित होकर, अच्छा मालिक।

4. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के संवादों में सोद्देश्यता है। कहने का अभिप्राय यह है कि नाटककार जिस उद्देश्य को लेकर चला है, वह उद्देश्य समता, प्रेमभावना, इन्सानियत और मानवता से जुड़ा हुआ है। इतना ही नहीं, यह वह उद्देश्य है जो इन्सान को इन्सान से जोड़ता है तथा भेदभाव की दीवारों को ढहाता हुआ मानवता का प्रशस्त पथ तैयार करता है। इस उद्देश्य की प्रस्तुति के लिए नाटककार प्रारम्भ से ही प्रयत्नशील दिखाई देता है। इसलिए उसने संवाद भी ऐसे ही नियोजित किये हैं जो उसके उद्देश्य को व्यक्त करते चलते हैं।

5. संवादों की भाषा सहज, सरल और व्यावहारिक तो है ही, वह रंगमंच भी सर्वथा उपयुक्त है। रंगमंच पर ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं किया जा सकता जो दुरूह हो, कठिनाई से समझ में आने वाली हो और सरलता से पाठकों के गले न उतरे। कहने की आवश्यकता नहीं है कि आलोच्य नाटक में सीधी, सरल, सहज और मंचीय भाषा का प्रयोग किया गया है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इस नाटक की भाषा कहीं भी न तो अव्यावहारिक है, न अनावश्यक रूपसे बोझिल है और न ऐसी है जो पात्रों के मुख से अटपटी लगती हो। वह प्रारम्भ से अन्त तक एक जैसी मिश्रित भाषा दिखाई देती है। बोलचाल के शब्द, बोलचाल के वाक्यांश और दैनिक जीवन में काम आने शब्दों, वाक्य-प्रयोगों और मुहावरों से युक्त नाटक की भाषा दर्शकों और पाठकों के मन को बाँधने वाली है।

4. उद्देश्य और भाषा-शैली – 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक का उद्देश्य स्वतंत्र प्रश्न का विषय है। आलोच्य नाटक की भाषा उद्देश्यनिष्ठ भी है। नाटक जिस उद्देश्य को लेकर लिखा गया है, वह उद्देश्य इसकी भाषा से भी व्यक्त हो जाता है। प्रारम्भ में ही जब कायस्थ और कोतवाल बातचीत करते हैं तब वे धर्म, मूर्ति-पूजा आदि के विषय में बात करते हुए सोद्देश्य भाषा का प्रयोग करते हैं। कायस्थ जब कहता है कि ''जिसके हाथ में भगवान ने शक्ति दी है, उसकी जात नहीं देखी जाती मालिक, उसकी महिमा देखी जाती है। आप तो नगर के कोतवाल हैं'' तो निश्चय ही भाषा का प्रयोग सोद्देश्य किया गया प्रतीत होता है। नीमा, कबीर, कोतवाल, सिकन्दर, मौलवी, महन्त आदि सभी की भाषा एक प्रकार की सोद्देश्यता है। इनमें से चाहे कोई कबीर की आलोचना करे, चाहे प्रशंसा करे, उसके कथन से नाटक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के उद्देश्य को आगे बढ़ाने में भाषा पूरा साथ देती दिखाई देती है। कबीर और नीमा की बातचीत में ऐसी ही भाषा का प्रयोग हुआ है। कबीर बार-बार यह कहते हैं ''मेरे मन में कोई सवाल उठे तो मैं पूछूँ भी नहीं ? मेरे मन में तरह-तरह के सवाल उठते रहते हैं माँ, मैं क्या करूँ ? कहती तो ठीक हो माँ पर मन में सवाल उठते ही रहते हैं और जब उनका जवाब नहीं मिलता तो मन बेचैन हो जाता है'' तो भाषा की सोद्देश्यता, कबीर के मानस की प्रश्निल स्थिति और उनकी विरोधी व क्रांतिकारी दृष्टि उनके कथनों में देखी जा सकती है। नाटककार यही तो चाहता है कि वह कबीर के निर्भीक और प्रखर व्यक्तित्व को उजागर करे। इसीलिए वह कबीर की भाषा में सोद्देश्यता का रंग भर देता है।

5. वातावरण – 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक देशकाल और वातावरण की दृष्टि से भी पर्याप्त सफल प्रतीत होता है। सम्पूर्ण नाटक में कबीरकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक परिदृश्य को उभारा गया है। नाटक में बीच-बीच में कबीर के पद भी रखे गये हैं। ये वे पद हैं जो प्रसंग के अनुकूल हैं और तत्कालीन वातावरण को उजागर करते हुए कबीर की मान्यताओं को उद्घाटित करते हैं। पूरे नाटक में काशी नगरी का वातावरण बड़ी खूबी से व्यक्त किया गया है। पहले अंक के दूसरे दृश्य में कोतवाल और कायस्थ के प्रकट होने से पहले प्रभात बेला की एक छोटी-सी झाँकी प्रस्तुत की गई है। इस झाँकी में प्रभातवेला में सड़क पर सोने, बसने वाले काशी के दरिद्र नागरिक, अंधा भिखारी, साधारण स्त्री-पुरुष, भंगी, भिश्ती, चमार आदि उठ-उठकर अपने-अपने काम पर निकलते हैं और नैपथ्य में मन्दिरों की घंटियाँ और घड़ियाल और मस्जिदों की अजान आदि सुनाई पड़ती है। ये सभी स्थितियाँ काशी के वातावरण को प्रस्तुत करने में पूरी तरह सहायक हुई हैं। नाटककार ने कबीरकालीन समाज में व्याप्त धर्मान्धता, अनाचार, तानाशाही प्रवृत्ति, जाति-पाँति के भेद-भाव, ऊँच-नीच की भावना को व्यक्त करने वाले दृश्य, पण्डितों और मुल्ला-मौलवियों व साधु-सन्तों, महन्तों की स्थिति को भी बड़ी खूबी से चित्रित कर दिया है। निश्चय ही नाटककार तत्कालीन सामाजिक परिवेश को ईमानदारी से चित्रित करने में पर्याप्त सफल हुआ है। तत्कालीन समाज की धर्मान्धता तथा तानाशाही तथा कबीर के बाह्याचार विरोधी पक्ष पर प्रकाश डालते हुए भी नाटककार ने काशी के तत्कालीन वातावरण का यथार्थ चित्रण किया है। इस प्रकार देशकाल और वातावरण की दृष्टि से यह नाटक पूरी तरह सफल है। ऐसी कोई भी स्थिति नाटक में चित्रित नहीं की गयी है जो कबीरकालीन वातावरण के विपरीत पड़ती हो या जिसे पढ़कर या देखकर दर्शक और पाठक को आघात पहुँचता हो।

6. अभिनेता और रंगमंचीयता – अभिनय-कला की दृष्टि से यदि आलोच्य नाटक का मूल्यांकन करें तो भी यह नाटक सफल प्रतीत होता है। कथावस्तु के आधार पर नाटक पूरी तरह अभिनेय है। इसमें कथा-प्रस्तुति जिस ढंग से की गयी है, उसे सरलतापूर्वक रंगमंच पर दिखाया जा सकता है। रंगमंचोपयुक्त नाटक अधिक से अधिक तीन या चार अंकों का होना चाहिए और प्रत्येक अंक में सीमित और आवश्यक दृश्यों का विधान होना चाहिए। इस दृष्टि से भी विचार करें तो यह नाटक तीन अंकों और नौ दृश्यों में समाप्त हो जाने के कारण पूरी तरह अभिनेय बना हुआ है। नाटक में कोई वर्जित दृश्य नहीं है। ऐसा कोई प्रसंग नहीं है जिसे रंगमंच पर दिखलाना कठिन प्रतीत होता है। सभी प्रसंग और दृश्य-विधान से जुड़ी हुई स्थितियाँ अभिनेता के निष्कर्ष पर खरी उतरने वाली हैं। संवाद और भाषा दोनों ही रंगमंचीय आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। संवाद सटीक, सारयुक्त, सोद्देश्य तो हैं ही, भाषा भी सहज, विश्वसनीय, बोलचाल वाली और प्रसंग और विषय के अनुकूल है। उसमें कहीं भी कोई ऐसी भाषा-प्रयोग नहीं है जो अभिनय-कला की दृष्टि से कोई प्रश्नचिह्न खड़ा करता हो। बीच-बीच में नाटक में जो संकेत दिये गये हैं, अंक और दृश्य के प्रारम्भ में जो विवरण दिए गये हैं, वे भी अभिनयोपयुक्त हैं। नाटक में जो पद रखे गये हैं वे भी सोद्देश्य हैं और रंगमंच पर गाते समय अच्छा प्रभाव छोड़ने वाले हैं। यह एक ऐसा नाटक है जो अभिनय की दृष्टि से सफल है। इसका मंचन दिल्ली में हो चुका है। मंचन का निर्देशन श्री एम.के. रैना ने किया था। स्वयं नाटककार ने स्वीकार किया है कि ''नाटक का मंचन पहली बार दिल्ली में श्री एम.के. रैना ने कुशल निर्देशन में अप्रैल, 1981 में त्रिवेणी के खुले नाट्य-गृह में हुआ था। इसमें आये कबीर के पदों को श्री पंचानन पाठक ने स्वरबद्ध किया था। दोनों ही मित्र कबीर की वाणी तथा व्यक्तित्व से गहरे रूप में जुड़े हुए हैं। अत: मंचन की सफलता का श्रेय इन दोनों उत्कृष्ट कलाकारों को है।'' एक वाक्य में कह सकते हैं कि 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक अभिनेयता और रंगमंच की दृष्टि से एक सफल प्रयोग है।

निष्कर्ष – उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि नाट्य-तत्त्वों के आधार पर 'कबिरा खड़ा बजार में' एक सफल नाटक है। कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, संवाद-विधान, देशकाल और वातावरण, उद्देश्य, अभिनेयता और भाषा-शैली आदि सभी दृष्टियों से यह नाटक खरा उतरता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रश्न-3. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के नामकरण की सार्थकता पर विचार प्रकट करते हुए उसकी प्रासंगिकता बताइए।

उत्तर – 'कबिरा खड़ा बजार में' भीष्म साहनी का प्रसिद्ध नाटक है। अपनी कहानियों के समान ही प्रस्तुत नाटक में भी उनका मानवतावादी एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण व्यंजित हुआ है। प्रस्तुत नाटक हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन सन्तकवि महात्मा कबीर के जीवन-चरित्र पर आधारित है। यह सर्वविदित है कि महात्मा कबीर समाज-सुधार की भावना से ओत-प्रोत थे और वे समाज में व्याप्त रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, भ्रष्टाचारों, कुप्रथाओं आदि सभी बुराइयों का डटकर विरोध करते रहते थे। इस कार्य में उनमें अनेक कष्टों एवं विरोधों का भी सामना करना पड़ा, फिर भी वे तत्कालीन समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का भरसक प्रयास करते रहे। उनकी इसी विशेषता के कारण उन्हें कवि बाद में परन्तु समाज सुधारक सन्त पहले माना जाता है। नाटककार ने प्रस्तुत नाटक में कबीर के समाज सुधारक एवं सत्यान्वेषी व्यक्तित्व को कथानक का रूप दिया है और उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं को आधार बनाकर उनकी वैचारिक चेतना का तात्कालीन परिप्रेक्ष्य में अंकन किया है।

नाटक का नामकरण

एकांकी की तरह नाटक में उसके शीर्षक या नामकरण का विशेष महत्त्व है। यद्यपि नाटक के तत्त्वों के साथ नामकरण का समावेश नहीं किया जाता है, तथापि नामकरण नाटक के आवश्यक तत्त्व एवं उसके स्वरूप का परिचायक होता है। नाटक के नामकरण विविध आधार पर किये जाते हैं, कुछ प्रमुख आधार इस प्रकार हैं –

1. घटना के आधार पर – घटना के आधार पर किसी भी नाटक का नामकरण किया जाता है, जिसका सम्बन्ध उस घटना से अत्यन्त निकट का होता है, या यों कहें कि घटना का जीवन्त चित्रण उसके नामकरण का आधार है। ऐसे नाटकों में वह घटना समस्त कथानक केन्द्र में रहती है। जैसे प्रसाद के 'प्रायश्चित' तथा 'कल्याणी परिणय' नाटक का नामकरण प्रस्तुत घटना पर आधारित है।

2. पात्र के आधार पर – किसी भी नाटक का नामकरण उसके प्रमुख पात्र के आधार पर ही किया जाता रहा है। क्योंकि वह एक महत्त्वपूर्ण किरदार होता है, जो उस नाटक के प्रारम्भ से अंत तक हर स्थिति व परिस्थिति में छाया हुआ रहता है। वह पात्र स्त्री, पुरुष या दोनों हो सकते हैं। अर्थात् नायक, नायिका या दोनों के नाम पर नाटक का नामकरण किया जा सकता है। जैसे प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'चन्द्रगुप्त', 'अजातशत्रु' आदि नाटक।

3. प्रतीक या रूपक-योजना के आधार पर – कई नाटकों में प्रतीक या रूपक-योजना के आधार पर नामकरण पाए जाते हैं, जिसमें निहित सम्पूर्ण प्रतीक और रूपक नाटक का आधार बन जाते हैं। प्रसाद का 'कामना' और गोविन्दवल्लभ पन्त का 'वरमाला' नाटक का नामकरण पूर्णतया प्रतीकात्मक है।

4. मनोभाव या केन्द्रीय भाव के आधार पर – इस तरह के नाटकों का शीर्षक अधिक रोचक और आकर्षक रहता है। सेठ गोविन्ददास का 'प्रेम या पाप', 'ग्रहण या त्याग', लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'सिन्दूर की होली', भारतेन्दु का 'भारत दुर्दशा', हरिकृष्ण प्रेमी का 'स्वप्नभंग' आदि नाटकों के नामकरण इस प्रकार के माने जा सकते हैं।

5. उद्देश्य या मूल संवेदना के आधार पर – ऐसे नाटक कथानक की ओर संकेत करने में समर्थ तथा प्रतिपद्य के अनुरूप रहे हैं। 'शक्ति-साधना', 'नींव की दीवारें', 'पृथ्वी का स्वर्ग', 'भाग्यचक्र', 'राक्षस का मन्दिर', 'कर्बला', 'जनमेजय का नागयज्ञ' आदि इसी प्रकार के नामकरण हैं।

उक्त प्रमुख प्रकारों के अतिरिक्त भी नामकरण या शीर्षक के स्वरूप देखने को मिलते हैं। वस्तुतः नाटककार अपनी रचना का क्या नाम रखना चाहता है, कैसा कथानक उसमें रखता है अथवा वह क्या सम्प्रेष्य करना चाहता है इत्यादि सब उसकी अभिरुचि पर निर्भर करता है। अतः नाटक का नामकरण भी नाटककार की नाट्य-चेतना के अनुरूप होता है। यही कारण है कि नाटकों के नामकरण की कोई सीमा-रेखा नहीं दिखाई देती।

नाटक के नामकरण की विशेषताएँ –

'नाटक' दृश्य-काव्य के साथ ही श्रव्य-काव्य भी माना जाता है। इसलिये नाटक का नामकरण सुनने या पढ़ने में आकर्षक और रोचक होना चाहिए। नामकरण या शीर्षक रोचक होने से ही उसे पढ़ने अथवा उसका अभिनय देखने की अभिरुचि जागृत होती है। अच्छा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भावपूर्ण एवं चरित्र-प्रधान कथानक होने पर भी नामकरण यदि रोचक नहीं है, तो उस ओर कम ही पाठकों का ध्यान जाता है। नाटक का शीर्षक संक्षिप्त और सरल होना चाहिए। अधिक लम्बा-बड़ अथवा विकृत नामकरण सार्थक नहीं माना जाता है। नामकरण कौतूहलवर्धक एवं मौलिकता से युक्त होना चाहिए। केवल पात्रों के नाम के आधार पर अथवा घटना के आधार पर नाटक का नामकरण करने से उसमें मौलिकता नहीं रहती है और वह कौतूहलजनक भी नहीं रहता है। पाठक या दर्शक को शीर्षक पढ़कर यह जिज्ञासा बनी रहे कि इसमें गुम्फित कथानक किस परिणति पर समाप्त होता है और अन्त में क्या घटित होता है। नाटक के दर्शकों को रसमग्न बनाये रखने में तथा रंगमंच पर उन्हें अन्तिम दृश्य एक दत्तचित्त बैठाये रखने में उसका नामकरण प्रभावशाली रहता है। इस तरह नाटक का नामकरण उक्त सभी विशेषताओं से समन्वित होना चाहिए। इन विशेषताओं को लक्ष्य करके ही नवीन समालोचक नामकरण की नाट्य-तत्त्वों के साथ गणना करने लगे हैं।

'कबिरा खड़ा बजार में' नामकरण

प्रस्तुत नाटक में जो कथानक लिया गया है, उसके अनुसार कबीर काशी नगरी में रहते हुए धर्म के ठेकेदारों एवं रूढ़ीवादी लोगों का विरोध करते रहते थे। वे कभी बीच चौराहे पर, कभी मस्जिद की सीढ़ियों पर, 'कभी सड़क किनारे खड़े होकर लोगों को पाखण्ड, अन्धविश्वास, अत्याचार आदि के सम्बन्ध में बिना लाग-लपेट के समझाते रहते थे। वे हर कहीं निर्भीकता के साथ बुराइयों की ओर संकेत करते रहते थे और पण्डितों व मौलवियों के बाह्याचार पर तीखा प्रहार कर, जनता को उनसे सावधान रहने की प्रेरणा देते थे। नाटक के प्रारम्भ में ही नूरा और जुलाहा के संवाद में कबीर को बजार में न्याय एवं सत्याचरण का पक्षधर बताया गया है, यथा –

नूरा : कबीर ने ? कबीर ने तुम्हें क्यों दिया ? सबेरे तो बेचने गया था।

जुलाहा : कहता था घर पहुँचा देना, और यह सन्देश दिया है कि शाम तक घर लौट जायेगा।

नूरा : तुमसे कहाँ मिला था ?

जुलाहा : कोतवाली चौक के पास खड़ा था। उसे बहुत से लोग घेरे खड़े थे।
कबीर को समझाओ बहुत बड़बोल हो गया है..............

नूरा : तुम कुछ छिपा रहे हो। सच-सच बताओ। कबीर क्या कह रहा था ?

जुलाहा : आज बड़े महन्त की झाँकी-सवारी निकल रही थी। वहाँ महन्त के आदमियों ने किसी लौंडे को बेंत मारे। कबीरा बीच में कूद पड़ा। वे बच्चे को तो छोड़ दिये, उल्टे कबीर पर टूट पड़े।........

इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि नाटककार ने इसमें कबीर को बजार में निर्भीकता के साथ समाज-सुधार के काम में प्रवृत्त होते दर्शाया है। मौलवी कोतवाल के पास जाकर कबीर की इस बात पर शिकायत करता है कि वह मुस्लिम समाज में प्रचलित बाह्याचार को ढोंग बताता है और मस्जिद शरीफ की सीढ़ियों पर खड़ा होकर दीन की तौहीन करता रहता है।

प्रस्तुत नाटक के तीसरे अंक के तीसरे दृश्य में कायस्थ कबीर को समझाता है कि तुमने ब्राह्मणों और मुल्लाओं को नाराज कर रखा है। इस तरह का सत्संग करने से पहले भी एक बार तुम्हारा झोंपड़ा जल चुका है। बादशाह सलामत यहाँ आ रहे हैं। इसलिए अब ऐसा मत करो जिससे अनावश्यक बहस-मुबाहिसा होवे। तब कबीर ने बड़ी निर्भीकता से कायस्थ से कहा कि –

कबिरा खड़ा बजार में, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूँके आपना, चले हमारे साथ॥

अर्थात् बाह्याचार एवं पाखण्ड का विरोध करने में जिसे अपने कष्टों की चिन्ता नहीं होगी, वह मेरे साथ सत्संग मे भाग लेता रहेगा। चाहे कितनी भी हानि उठानी पड़े परन्तु कबीर अपनी सत्यान्वेषी प्रवृत्ति और समाज-सुधार के काम से विरत नहीं होगा।

इस प्रकार कबीर के उक्त कथन के आधार पर तथा उसी के अनुरूप उनके जीवनव्यापी कार्यकलापों की ओर संकेत कर भीष्म साहनी ने 'कबिरा खड़ा बजार में' यह नामकरण किया है, जो कि कबीर की साखी का एक चरण है।

नामकरण की सार्थकता एवं प्रासंगिकता – प्रस्तुत नाटक का नामकरण सन्तकवि कबीर की सामाजिक चेतना के अनुरूप तथा पूर्णतया सार्थक है। इस नामकरण से कथानक की व्यंजना हो जाती है। यह नामकरण संक्षिप्त, रोचक, आकर्षक, जिज्ञासावर्धक और

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

प्रभावपूर्ण है। नाटक की मूल भावना तथा प्रमुख पात्र की चेतना को सम्प्रेषित करने में यह समर्थ है। इससे कबीर के निर्भीक, प्रखर, क्रांतिकारी, सत्यान्वेषी, संघर्षशील एवं निर्लोभ व्यक्तित्व की सहज में ही व्यंजना हुई है। कबीर की अनेक साखियों में यह भाव व्यक्त हुआ है कि अपने लाभ-लोभ की परवाह न कर कबीर ने सभी धर्मों में प्रचलित अन्धविश्वासों, रूढ़ियों एवं मलिन बाह्याचारों का प्रबल विरोध किया था। वे तो भरे बाजार में सभी को ललकारते हुए दिखाई देते थे। वे भक्ति का मार्ग ज्ञान-चेतना से समन्वित एवं मन की पवित्रता से संवलित बतलाना चाहते थे। इस कारण वे ऐसे तत्कालीन समाज को अपनी बात कहना चाहते थे, जो मुल्ला-मौलवियों और पण्डितों के ढोंगों से आक्रान्त था। समाज-सुधार की इस क्रांति के लिए सदा तत्पर रहने हेतु कबीर का स्पष्ट कथन था कि – **''हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।''** वस्तुतः अपने घर के जल जाने पर भी कबीर को नाटककार ने जिस तरह निर्भीक और अपने लक्ष्य के प्रति सचेष्ट बतलाया है, वह समाज-सुधार की दृष्टि से आज भी उतना ही प्रासांगिक तथा अपेक्षित लगता है।

निष्कर्ष – इस विवेचन के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक का नामकरण प्रमुख घटना एवं केन्द्रीय भाव पर आधारित है। इस नामकरण से कबीर के व्यक्तित्व की व्यंजना सहज रूप में हुई है तथा कथानक का प्रतिपादन भी इससे उद्घाटित हुआ है। यह नामकरण रोचक, आकर्षक और सार्थक है। प्रासंगिकता, औचित्य एवं सम्प्रेष्यता की दृष्टि से भी नामकरण प्रशस्य है।

प्रश्न-4. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के कथानक के गुण-दोषों की सम्यक् समीक्षा कीजिए।

उत्तर – भीष्म साहनी ने अनेक नाटक लिखे हैं। उनके सभी नाटक एक विशेष उद्देश्य को लेकर लिखे गये हैं। 'हानूश' में एक सर्जक की दुर्निवार सृजन विषयक इच्छा को अभिव्यक्ति दी गयी है और यह प्रतिपादित किया गया है कि कलाकार अपनी हृदयगत भावनाओं को किसी-न-किसी कला के माध्यम से व्यक्त करने के लिए विवश होता है। लेकिन 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के अन्तर्गत समता, समानता, समदृष्टि, मानवता, प्रेम और इन्सानियत के भावों का प्रकटीकरण किया गया है। ये दोनों ही नाटक भीष्म साहनी के उस भाव को व्यक्त करते हैं जिसके आधार पर उन्हें एक सच्चा मानवतावादी नाटककार कहा जा सकता है। मानवतावादी दृष्टि 'हानूश' में भी है और आलोच्य नाटक में भी है। 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक उद्देश्य की प्रस्तुति और उसके लिए अपनाई गई या गृहीत कथावस्तु के कारण विशिष्ट चर्चित और प्रशंसनीय नाटक कहा जा सकता है। इसमें कथा-तत्त्व भले ही कम है, किन्तु जितना है, उसके माध्यम से रचनाकार अपने प्रयोजन को पाठकों तक सम्प्रेषित करने में सफल हुआ है।

कथानक के गुण-दोष : एक समीक्षा

''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटक की कथावस्तु तीन अंकों में पूरी हुई है। इन तीनों अंकों में क्रमशः पाँच, तीन और एक दृश्य का विधान किया गया है। इस प्रकार कुल तीन अंकों और नौ दृश्यों में समूची कथावस्तु को प्रस्तुत कर दिया गया है। प्रथम अंक कबीर की जन्म विषयक स्थिति, उसके पोषणकर्ता माता-पिता की स्थिति और कबीर के स्वभाव को व्यक्त करता है। नाटककार ने पहले अंक में एक ऐसा कथापट बुना है जो रोचक भी है, संगठित भी है तथा भीष्म साहनी के प्रयोजन और उससे जुड़ी कथा के लिए अनिवार्य भूमिका तैयार करता है। यही वह अंक है जिसमें कथावस्तु प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे आगे की ओर बढ़ती हुई दिखाई देती है। दूसरे अंक में कथा विकास को प्राप्त होती है। इस विकास में न केवल संघर्ष की स्थितियाँ हैं, अपितु प्रथम अंक में जो संघर्ष की भूमिका तैयार होती है, उन्हें या संघर्ष से जुड़ी हुई उन सभी स्थितियों को विकास प्रदान कर दिया गया है। इसी अंक में कबीर की मानसिकता, उनकी विचारधारा तथा उनका अपने सहयोगियों के साथ पद गाते रहना, सत्संग करना, भण्डारे का आयोजन करना आदि भी चित्रित कर दिया गया है। इतना ही नहीं, नाटककार ने बड़े कौशल से इस अंक में एक ओर तो कोतवाल, मौलवी, महन्त आदि के द्वारा कबीर की कारगुजारियों के आधार पर उन्हें दण्डित करने का कार्यक्रम भी तैयार किया है और दूसरी ओर कबीर की ओर से व्यक्त की जाने वाली निर्भीकता, अक्खड़ स्वभाव और उनकी भक्ति व अध्यात्म भावना को भी व्यक्त कर दिया है। नाटककार ने स्पष्ट कर दिया है कि कबीर का अध्यात्म मानवतावाद से जुड़ा था। वे अपने चिन्तन में मनुष्य मात्र के प्रति समान दृष्टि रखते थे, सभी के लिए प्रेमभाव रखते थे और सभी को एक दृष्टि देखना चाहते थे। यही वह अंक है जिसके अन्तर्गत कबीर के बाह्याचार-विरोधी पद और भक्तिभाव के सूचक पद भी स्थान-स्थान पर नियोजित कर दिये गये हैं। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जहाँ-जहाँ पदों को रखा गया है, वहाँ वे प्रसंग की माँग के अनुसार ही आये हैं, ऊपर से थोपे हुए प्रतीत नहीं होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नाटक की मूल चेतना को पाठकों तक सम्प्रेषित करने के भाव से इन पदों का नियोजन और संयोजन नाटक में अनिवार्य हो गया लगता है। कबीर ने अपने कवित्त के द्वारा जन-सामान्य के लिए जो संदेश प्रसारित किया है, वह न केवल इन पदों से ध्वनित होता है, बल्कि विविध पात्रों से, उनको कराई गयी बातचीत से भी व्यक्त हो जाता है। नाटककार ने यह प्रयास नहीं किया है कि कबीर को अलौकिक शक्ति-सम्पन्न अध्यात्म पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया जाये। उसका प्रयास तो केवल यही रहा है कि कबीर सच्चे मनुष्य थे, मनुष्य से प्रेम करते थे और मनुष्यता के लिए जीवन अर्पित करने के लिए भी तत्पर रहते थे। यही कबीर का मूल चिन्तन है जिसे नाटक के दूसरे अंक में अभिव्यक्ति दी गयी है। इस प्रकार नाटक का दूसरा अंक पहले अंक का विस्तार मात्र न होकर नाटककार के उस मनोभाव को व्यक्त करता है जिससे प्रेरित होकर यह नाटक लिखा गया है।

तीसरे अंक में नाटक की कथा चरम सीमा पर पहुँची हुई दिखाई गयी है। ऐसे नाटक की जो समदृष्टि, समभाव, मानव-प्रेम और ईश्वर की सर्वोपरि सत्ता को दृष्टिपथ में रखकर लिखा गया हो, यही चरम सीमा हो सकती है कि नाटक का नायक अपने उद्देश्य से विचलित न हो, भले ही उसके सामने कितनी ही बड़ी समस्याएँ हों, उसे कितने ही संघर्षों से क्यों न गुजरना पड़े, वह अपने संकल्प से डिगे नहीं। कबीर का व्यक्तित्व ऐसा ही था। वे समाज के लिए थे, समाज को दिशा देना चाहते थे तथा समाज में व्याप्त बाह्याचारों, अंधविश्वासों और अत्याचारों की आँधी को रोककर प्रेम की वर्षा करना चाहते थे। जो ऐसा उद्देश्य लेकर चलता है, वह किसी भी स्थिति में घबराता नहीं है। कबीर भी नाटक में कहीं भी घबराये हुए दिखाई नहीं देते हैं। नाटक के अन्तिम अंक में कबीर भले ही कुछ समय के लिए उनके साथियों के साथ कैद कर लिये गये हों और हवालात में डाल दिये गये हों, किन्तु शहर कोतवाल यह जानकर कि बादशाह सलामत कबीर से मिलना चाहते हैं, उन्हें मुक्त कर देता है और उनके रहने की, सत्संग करने की जगह को साफ करकर अच्छी व्यवस्था कर देता है। इस अंक में अधिकारी वर्ग का यह स्वीकार कर लेना कि कबीर में कोई-न-कोई खास बात तो होगी ही, जिसकी वजह से बादशाह सलामत उससे मिलना चाहते हैं, कबीर के अपराजेय व्यक्तित्व को स्पष्ट कर देता है। कबीर का सम्पूर्ण व्यक्तित्व कितना प्रभावी था, यह इस अंक की अन्तिम घटना से उस समय प्रकट हो जाता है, जब बादशाह सलामत तो कबीर को डरा-धमकाकार उनकी टाँगें तक तोड़ने की बात कहते हैं, जबकि काशी के नागरिक कबीर के पद गाते हुए सामने आते हैं।

कथानक की विशेषताएँ – 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक की कथावस्तु में परिचित होने के पश्चात् यह प्रश्न उभरकर सामने आता है कि इस कथावस्तु में ऐसी कौन-सी विशेषताएँ उपलब्ध हैं जिनके आधार पर इसे एक श्रेष्ठ नाटक करार दिया जा सकता है। नाटक की कथावस्तु की विशेषताओं से परिचित होने के लिए इन विशेषताओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है – वर्ण्य-विषय सम्बन्धी विशेषताएँ, शैली सम्बन्धी विशेषताएँ और नाट्यशास्त्र सम्बन्धी विशेषताएँ। इन तीनों ही प्रकार की विशेषताओं का विवेचन-विश्लेषण बिन्दुवार आगे किया जा रहा है।

वर्ण्य-विषय सम्बन्धी विशेषताएँ – 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक वर्ण्य-विषय की दृष्टि से एक सफल, श्रेष्ठ और सोद्देश्य नाटक कहा जा सकता है। किसी नाटक का वर्ण्य-विषय कैसा है, प्राचीन है, नवीन है और प्राचीन होकर भी कितना प्रासंगिक है, यह बड़े महत्त्व की बात है। इस दृष्टि से यदि विचार करें तो आलोच्य नाटक कबीर को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। इसमें कबीर के जन्म की संक्षिप्त कथा के बाद उनके विद्रोह क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को प्रस्तुत करते हुए उनकी उन धारणाओं को प्रस्तुत किया गया है जो समदृष्टि, मानवता, प्रेम, भक्ति और सत्पक्ष से जुड़ी हुई हैं। कबीर ने अपने समय में जो क्रान्तिकारी कदम उठाया था, उसी के आधार पर उन्हें मध्यकाल का क्रान्तिपुरुष कहा गया है। यह क्रान्तिपुरुष इसलिए बहुचर्चित हो सका और अपना प्रभाव जमा सका कि इसने अपने वर्तमान समय के अनुकूल तो बातें कही ही थीं, भविष्य के लिए भी मूल्यवान संकेत दिये थे। कबीर ने जिस मानवतावाद का अलख जगाया, उसे इस नाटक के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच में जो गहरी खाई मध्यकाल में थी, वह खाई बावजूद आधुनिकीकरण के आज भी कम नहीं हुई है। ऐसी स्थिति में कबीर द्वारा दिया गया समता, धर्माचार की पवित्रता, भक्ति और प्रेम से प्रशस्त मानवता का संदेश आज भी प्रासंगिक है।

नाटक का वर्ण्य-विषय उपर्युक्त संदर्भ में ही समझा जाना चाहिए। अतः इस आधार पर इस नाटक की निम्नांकित विशेषताएँ जो कि कथानक सम्बन्धी हैं, सामने आती हैं –

1. आलोच्य नाटक की कथावस्तु की पहली विशेषता यह है कि इसमें मध्यकाल के क्रान्तिपुरुष कबीर को उनके मानवतावादी विचारों के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह प्रस्तुति वर्तमान समय में अत्यन्त आवश्यक है, इसकी प्रासंगिकता भी स्वयंसिद्ध है। अतः नाटक की कथावस्तु को वर्तमान समय में प्रासंगिक मानकर उपयोगी, प्रेरणाप्रद और महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. नाटक की कथावस्तु किसी पक्ष विशेष की संकीर्ण सीमाओं में बँधी हुई नहीं है। नाटककार व्यापक भूमिका पर अपने वर्ण्य-विषय को प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। इसके लिए कबीर के उदारतापूर्ण विचारों, समानता के सिद्धान्तों और इन्सानियत को प्रमुखता दी गयी है। ऐसी स्थिति में नाटक की कथावस्तु में जो विषय वर्णित है, वह समसामयिक भी है, प्राचीन भी है और वर्तमान परिवेश में उपयोगी भी है।

3. भारतीय समाज में एक ऐसी प्रवृत्ति दिखलाई देती है कि हम जब भी किसी महापुरुष को आधार बनाकर कुछ लिखते हैं तो उसे इतना महान् बनाकर प्रस्तुत कर देते हैं कि वह चमत्कारी पुरुष लगने लगता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीर का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था, किन्तु वे चमत्कारी नहीं थे। नाटककार भीष्म साहनी ने भी आलोच्य नाटक में कबीर को केन्द्र में रखकर जो कथावस्तु प्रस्तुत की है, उसमें अलौकिकता का आभास नहीं होता है। यह कथानक का एक शुभ पक्ष है।

4. वर्ण्य-विषय के आधार पर आलोच्य नाटक की एक विशेषता यह भी है कि इसकी कथावस्तु प्रवाहशील है। यह प्रवाहशीलता विषय-वस्तु के चयन के कारण और भी अधिक बढ़ गयी है।

शैली सम्बन्धी विशेषताएँ – 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के अन्तर्गत कथावस्तु की विशेषताओं को कथा कहने की शैली के आधार पर भी मूल्यांकित और विवेचित किया जा सकता है। कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. किसी भी नाटक की कथावस्तु की प्रस्तुति में शैली का बहुत बड़ा योगदान रहता है। नाटककार को चाहिए कि वह अपनी कथा को ऐसी शैली में प्रस्तुत करे तो रोचक हो, जिज्ञासापूर्ण हो, गतिशील हो और उद्देश्योन्मुख हो। कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक की कथावस्तु में ये शैली सम्बन्धी सभी विशेषताएँ आसानी से मिल जाती हैं। भीष्म साहनी ने नाटक में जिस शैली का प्रयोग किया है, उसमें पाठक की जिज्ञासा बनी रहती है। वह बराबर इस उत्सुकता से नाटक को पढ़ता चला जाता है कि आगे क्या होगा ? भले ही वह कबीर के व्यक्तित्व से परिचित है, किन्तु फिर भी उसे यह पता नहीं लगता है कि कथा आगे किस ओर मुड़ने वाली है और किस ओर नहीं।

2. नाटक की कथावस्तु में रोचकता का तत्त्व भी बराबर देखने को मिलता है। कोई भी युग हो और पाठक किसी भी युग का क्यों न हो, जब भी वह कोई पुस्तक पढ़ता है या पढ़ना चाहता है, तब वह रोचकता को विशेष महत्त्व देता है। जिस कृति की कथावस्तु रोचक नहीं होती है, उसे वह पढ़ना नहीं चाहता है। वैसे देखें तो आलोच्य नाटक की कथावस्तु कबीर से जुड़ी हुई होने के कारण नयी नहीं कहीं जा सकती है, फिर भी उसकी प्रस्तुतिपरक शैलीनयी है। पात्रों का विधान, उनका आपसी वार्तालाप कबीर के जाने-पहचाने कथानक को भी न केवल रोचक बनाता है, अपितु उसमें मौलिकता का रंग भी छिड़क देता है। किसी भी नाटक की कथावस्तु के लिए यह विशेषता कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

3. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक की कथावस्तु की शैली विषयक एक विशेषता यह भी है कि इसमें सीधी, सरल संवाद-पद्धति के माध्यम से न केवल काशी के तत्कालीन परिवेश को प्रस्तुत किया गया है, बल्कि पूरी स्पष्टता से उस परिवेश की झलक देकर उसमें उभरे कबीर के व्यक्तित्व को भी उजागर कर दिया गया है। नाटककार की शैली की यह खूबी इसलिए और अधिक प्रभावी बन पड़ी है कि वह इस नाटक में प्रवाहशीलता, गतिशीलता और उद्देश्योन्मुखता से परिपूर्ण होकर सामने आयी है। स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि नाटककार जिस उद्देश्य को लेकर चला है, उस उद्देश्य की ओर उन्मुख बने रहने में नाटककार की शैली का विशेष योगदान है। कबीर और उनके साथी जैसा कि पीपा, रैदास आदि सभी का जैसा व्यक्तित्व था, उसे उसी तरह की शैली में व्यक्त किया गया है। नाटककार ने अपनी ओर से किसी भी पात्र के व्यक्तित्व को निरूपित करने में बनावटी शिल्प से काम नहीं लिया है।

नाट्यशास्त्र सम्बन्धी विशेषताएँ – किसी भी नाटक की कथावस्तु की विशेषताओं का आकलन शास्त्रीय पद्धति पर भी किया जा सकता है। नाट्याचार्यों ने यह स्वीकार किया है कि नाटक की कथावस्तु को आगे बढ़ाने में, लक्ष्य तक पहुँचाने में कतिपय अर्थ-प्रकृतियाँ और नाट्य-संधियाँ नियोजित की जाती हैं। यही कारण है कि समीक्षक कथावस्तु के संदर्भ से अर्थ-प्रकृतियों और नाट्य-संधियों की चर्चा किया करते हैं। इस दृष्टि से यदि आलोच्य नाटक की कथाव्स्तु का विवेचन किया जाये तो कथावस्तु प्रारम्भ, प्रयत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति और फलागम की दृष्टि से भी खरा उतरता है। प्रारम्भ की दृष्टि से विचार करें तो नाटक का प्रारम्भ नूरा और जुलाहे की बातचीत से होता है। बातचीत का विषय नाटक का केन्द्रीय पात्र कबीर है। प्रारम्भ में ही नूरा और जुलाहे की बातचीत से यह मालूम हो जाता है कि कबीर की जुलाहे का काम करने में कोई रुचि नहीं है, वे तो अपनी मान्यताओं के प्रचार-प्रसार और लोगों के अंधविश्वासों को

दूर करने के उद्देश्य से जगह-जगह खड़े होकर अपनी बात कहते रहते हैं। वे लोगों की सोई हुई आत्मा को उजागर कर उसे सही ढंग से सोचने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रारम्भ की यह स्थिति आगे चलकर प्रयत्न अवस्था में बदल जाती है। यह ठीक है कि कबीर के विद्रोही व्यक्तित्व को जिस रूप में नाटक के प्रारम्भ में दिया गया है, वही व्यक्तित्व प्रयत्न नामक कार्यावस्था में पहुँचकर नाटक की कथा को आगे बढ़ाने लगता है। कबीर के साथी उनकी इच्छाओं के अनुरूप अपने को प्रस्तुत करते हुए सामने आते हैं। रैदास, पीपा, कबीर और सेना सभी की एक मण्डली है और वे अपने विचारों को समाज में पूरी तरह फैलाने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। सत्संग आयोजित करते हैं, भण्डारा लगवाते हैं और इस तरह कथावस्तु को प्रत्याशा की ओर ले जाते हैं।

कथावस्तु में प्रत्याशा का बिन्दु उस स्थान पर दिखाई देता है, जबकि कायस्थ कबीर को समझाता है और हमें यह लगने लगता है कि कबीर का प्रभाव बढ़ रहा है। यों भी कबीर के पदों को दूसरे लोग भी गाने लगे हैं और उनका गाया जाना इस बात का प्रमाण है कि नाटककार कथावस्तु में अपने उद्देश्य की पूर्ति की ओर बढ़ रहा है। यही प्रत्याशा है। प्रत्याशा में बाधाओं का चित्रण भी किया जाता है। कबीर आदि की धर्माचार विषयक बातों को सुनकर मौलवी जैसे कुछ लोग कोतवाल को भड़काते हैं और वे कबीर को कैदखाने में डलवा देते हैं। इसके बाद कथावस्तु फलागम की ओर बढ़ने लगती है। अचानक सिकन्दर कबीर से मिलना चाहता है और इस समाचार से अवगत होकर कोतवाल साहब कबीर को उनके साथियों सहित कैदखाने से मुक्त करके उनके सत्संग आदि की अच्छी व्यवस्था करने का आदेश दे देते हैं। सिकन्दर का मिलना इस बात का सूचक है कि वह कबीर के व्यक्तित्व से प्रभावित है। कबीर जो चाहते हैं, उस उद्देश्य को नाटककार ने फलागम के रूप में उस समय स्पष्ट कर दिया है जबकि सिकन्दर भले ही नाराज हो गया हो, किन्तु मंच पर कई लोग कबीर के पद गाते हुए आ जाते हैं। इस प्रकार नाट्शास्त्र की इन पाँचों स्थितियों से गुजरकर कथावस्तु अन्त को प्राप्त करती है। इस विशेषता को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है।

प्रारम्भ, प्रयत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति और फलागम की ही भाँति यदि आलोच्य नाटक की कथावस्तु का मूल्यांकन बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी आदि की दृष्टि से किया जाये तो भी नाटक की कथावस्तु सफल प्रतीत होती है। प्रारम्भ, मध्य और अन्त की दृष्टि से यदि कथावस्तु को देखा जाये तो भी वह सफल प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त एक ही तत्त्व रह जाता है और वह यह है कि कथानक में आधिकारिक कौन-सी है और प्रासंगिक कथा कौन-सी है। यदि इस दृष्टि से विचार करें तो नाटक की आधिकारिक कथा कबीर के जन्म, उनके व्यक्तित्व के विकास, उनकी मान्यताओं के प्रचार आदि से सम्बन्ध रखती है। इस आधिकारिक कथा में कबीर, उनकी पत्नी, उनके साथी सभी सहयोग करते हैं। जहाँ तक प्रासंगिक कथाओं का प्रश्न है, वे इसमें दो हैं। एक कथा तो कबीर और लोई के विवाह वाले प्रसंग से जुड़ी हुई है और दूसरी सिकन्दर के आगमन और कबीर के मिलन से जुड़ी हुई है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये दोनों प्रासंगिक कथाएँ भी नाटक की इस प्रकार अधिकारिक कथा को गति तथा कथावस्तु को सही दिशा प्रदान करती हैं। इस प्रकार अधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं के नियोजन की दृष्टि से भी न टक की कथावस्तु सफल कही जा सकती है। यह वह कथावस्तु है जिसकी उपरलिखित सभी विशेषताएँ हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं और हमें प्रभावित करती हैं।

कथावस्तु के कतिपय दोष—यह निर्विवाद है कि 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक की कथावस्तु प्रसिद्ध कथावस्तु है और कबीर के विचारों, उनकी मान्यताओं और परिवेश को पूरी तरह उजागर करने में समर्थ हैं। इतने पर भी कुछ ऐसी बातें हैं जो कथावस्तु के दोष के रूप में स्वीकार की जा सकती हैं। पहली बात यह है कि नाटककार ने अपने नाटक का उद्देश्य समदृष्टि, मानव का मानव से प्रेम, भक्ति, शुद्ध आचरण, बाह्याचार विरोध आदि को रखा है। जब यह नाटक का उद्देश्य है तो फिर नाटक की कथावस्तु में ऐसा कोई प्रसंग नियोजित नहीं होना चाहिए जो इस उद्देश्य के विरोध पड़ता हो। इस दृष्टि से अनावश्यक नहीं है तो आवश्यकता से अधिक लम्बा अवश्य है। यह तो माना जा सकता है कि इस प्रसंग के द्वारा नाटककार कबीर के दाम्पत्य जीवन की झलक दिखाना चाहता है, किन्तु इस झलक दिखाने के प्रयास में नाटक का उद्देश्य हल्का पड़ गया है। लोई और कबीर का वार्तालाप जो व्यक्तित्व ही है, कुछ अधिक लम्बा हो गया है। यदि इस वार्तालाप में कबीर और लोई दोनों नाटक के उद्देश्य से सम्बन्धी होकर ही बातचीत करते दिखाये जाते तो इस दोष का निराकरण हो सकता था।

नाटक की कथावस्तु में एक दोष यह भी दिखाई देता है कि कायस्थ कबीर को समझाता है, उनके द्वारा दिया प्रबोधन भी उपदेशात्मक अधिक इस प्रबोधन का नाटक के उद्देश्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई समीक्षक यह तो कह सकता है कि कायस्थ के प्रबोधन से कबीर के कुछ दोष सामने आ जाते हैं किन्तु दोष दिखाना तो नाटककार का उद्देश्य नहीं है। वह तो कबीर के समग्र व्यक्तित्व को एक क्रांतिकारी और मानवतावादी के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। जहाँ यह उद्देश्य रहा हो, वहाँ किसी पात्र के द्वारा यह कहलाना कि कबीर को कविता के लक्षण सीखने चाहिए, छन्द और लय के नियम जानने चाहिए, बड़े-बड़े लोगों से मेल-मुलाकात करनी चाहिए,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ताकि आवश्यकता पड़ने पर राजदरबार में कवि-रूप में प्रतिष्ठा पाई जा सके, उचित प्रतीत नहीं होता है। नाटक की कथावस्तु में इस तरह के प्रसंगों का आना और एक पात्र की प्रबोधनात्मकता को इतना अधिक बढ़ा देना कथावस्तु का दोष ही है।

निष्कर्ष – उपर्युक्त विवेचन के आधार पर जो निष्कर्ष उभरकर सामने आता है वह यही है कि 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक की कथावस्तु सामान्यत: प्रभावशाली है। उसकी प्रस्तुति रोचक, उत्सुकतापूर्ण, नाटकीयता से युक्त और मौलिक तो है, किन्तु कतिपय प्रसंगों को अनावश्यक विस्तार देकर कथावस्तु के संगठन को शिथिल भी कर दिया गया है। जहाँ इस नाटक की कथावस्तु में अनेक विशेषताएँ हैं, वहीं संगठनात्मकता का अभाव खटकता है। अनावश्यक रूप से कुछ प्रसंगों का विस्तार भी गले से नहीं उतरता है। ऐसी स्थिति में यह सहज ही कहा जा सकता है कि आलोच्य नाटक सामान्यत: तो कथावस्तु की दृष्टि से सफल है, किन्तु कुछ बातें ऐसी अवश्य हैं जो कथावस्तु के सन्दर्भ में एक सामान्य पाठक को खटक सकती हैं। संक्षेप में यही कह सकते हैं कि कथानक सहज गति से आगे बढ़ा है, वह और भी अधिक सहज व प्रवाहपूर्ण हो सकता था, यदि उपरनिर्दिष्ट कुछ प्रसंग संयमित और संतुलित कर दिये जाते।

प्रश्न-5. 'कबीरा खड़ा बजार में' नाटक के जिस पात्र ने आपको सर्वाधिक प्रभावित किया हो, उसके चरित्र पर प्रकाश डालिए।

अथवा

''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटक के आधार पर कबीर के व्यक्तित्व पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर – कबीरदास का व्यक्तित्व न केवल मध्यकालीन भक्तों में अपितु समग्र हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक प्रभावशाली और समाज-सुधार की क्रांतिकारी चेतना के कारण अत्यधिक आकर्षक है। वस्तुत: कबीर ऐसे सन्त महात्मा थे, जो उच्चकोटि के साधक, क्रांतिकारी, समाजसुधारक, मानवतावादी तथा समत्व-भावना के प्रचारक एवं श्रेष्ठ कवि के रूप में आज भी सादर-स्मरण किये जाते हैं। प्रारम्भ में हिन्दी जगत में उनकी कुछ उपेक्षा अवश्य हुई, किन्तु ज्यों-ज्यों उनकी वाणी के अध्ययन के प्रति रुचि बढ़ती गयी, त्यों-त्यों उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का उद्घाटन होता गया और आज वह निर्विवाद रूप से सर्वाधिक प्रासंगिक कवि के रूप में उभरकर सामने आये हैं। कबीर से लेकर आधुनिक गद्य तक के सुपरिचित समीक्षक डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने अपने निबन्ध ''कबीर की सांस्कृतिक मनोभूमि'' में यह स्थापित किया है कि कबीर की निजता परम्परा के अनुसरण में नहीं, अतिक्रमण में है। यही स्थिति संतों, सूफियों और इस्लाम मतानुयायियों को लेकर भी है। कबीर इन सबसे प्रभावी, किन्तु सबसे अलग हैं। कबीर मध्ययुगीन सांस्कृतिक स्रोतों के संश्लेषण मात्र नहीं, इन स्रोतों के सकारात्मक मनुष्यधर्मी तत्त्वों के आधार पर एक सच्चे मानव धर्म के संस्थापक संत हैं। वह मनुष्य को उसके सहज रूप में महत्त्व देते हैं। मनुष्य अपने प्रकृति रूप में न तुर्क है, न हिन्दू, न शैव, न वैष्णव, न बौद्ध, न जैन। यह सारे भेद मनुष्यकृत हैं। कबीर की साधना और उनके विचारों को किन्हीं पूर्ववर्ती धार्मिक मतों या चिन्तन-धाराओं के आलोक में देखना उनकी स्वानुभूति की निजता या मौलिकता के साथ अन्याय करना होगा।

कबीर का चरित्रांकन

मध्यकालीन साधना एवं चिन्तन में कबीर का प्रमुख स्थान है। यह साधना एवं चिन्तन का प्रमुख प्रवेश-द्वार कबीर के व्यक्तित्व एवं चरित्र की परिचायिका उनकी वाणी है जिसे मध्यकालीन साधन' के नाम से अभिहित किया जाता है। उनके जैसा निरक्षर, उच्च कोटि का दार्शनिक, मस्तमौला, स्वभाव से निश्छल, निर्द्वन्द्व, निर्भीक और निष्प्रिय नारियल के फल की तरह भीतर से कोमल और बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय हिन्दी जगत में दूसरा व्यक्तित्व नहीं है। प्रतिपल राम में रमने वाले सन्त ने 'मसिकागद' न छूकर भी हिन्दी साहित्य की सुदृढ़ आधारशिला रखी। इस सन्त कवि का वरदान पाकर हिन्दी की शैशवावस्था में निखार, ओज, आत्मविश्वास और आत्मतल्लीनता को प्राप्त हुई। वह काल की लम्बी अवधि के बाद भी क्षीण न होकर अधिक उज्ज्वल एवं ऊर्जस्वित है। मध्ययुग के सन्त-धारा के कवि को दार्शनिक कहना उचित न होगा, यद्यपि उसके काव्य में दार्शनिक तत्त्व बिखरे पड़े हैं। पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी के इन शब्दों से उनका व्यक्तिव स्पष्ट हो जाता है – ''कबीर ज्ञान के हाथी पर चढ़े थे, पर सहज का दुलीचा डाले बिना नहीं, भक्ति के मन्दिर में प्रविष्ट हुए थे, खाला के घर में नहीं। भगवद्-विरह की आँच में तपे थे, पर आँखों में आँसू भरकर नहीं, राम तो आग्रहपूर्वक पुकारा था, पर बालकोचित मचलन के साथ नहीं, सर्वत्र उन्होंने समता रखी थी।'' रामानन्द का शिष्य गुरु का आशीर्वाद पाकर राम-आनन्द की अनुभूति को प्राप्त कर सका। धन्य है ऐसा विलक्षण व्यक्तित्व, जिसने अपने गुरु द्वारा लाई हुई दक्षिणावर्त की भक्ति को उत्तरावर्त के जन-जन में प्रसारित किया और तत्कालीन समाज में फैले हुए दुराचारों, आडम्बरों एवं ढोंगों की धज्जियाँ उड़ा दीं और सामान्य जन के लिए एक सहज भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कबीर को केन्द्र में रखकर लिखा गया भीष्म साहनी का नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' कबीर की मानवतावादी दृष्टि को उजागर करता है। इसे उजागर करने में नाटककार ने कबीर के व्यक्तित्व एवं चरित्र का सहारा लिया है। यों तो कबीर का व्यक्तित्व सर्वविदित और सर्वाधिक स्पष्ट रहा है, फिर भी यदि नाटक के आधार पर ही उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाये तो उनके व्यक्तित्व एवं चरित्र की विशेषताओं को निम्नांकित शीर्षकों में विवेचित किया जा सकता है –

1. बड़बोलापन – 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में प्रारम्भ से ही कबीर के एक विशिष्ट गुण की ओर संकेत कर दिया गया है। वह गुण है उनका बड़बोलापन। इस बड़बोलेपन को कबीर का अहंक र नहीं समझना चाहिए, अपितु यही मानना चाहिए कि कबीर छोटी-सी उम्र में ही बड़ी-बड़ी बातें करने लगे थे। स्पष्ट शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि कबीर के ज्ञान-चक्षु प्रारम्भ से ही खुले हुए थे, इसलिए बाह्य नेत्रों पर जोर न देकर वे आन्तरिक चक्षुओं को ही महत्त्व देते थे। यही कारण था कि जब भी कहीं उन्हें कोई अन्याय दिखलाई देता था, सत्य पर चोट पड़ती दिखाई देती थी, अत्याचार प्रतीत होता था या कोई भेदभावपूर्ण बात दिखलाई देती थी तो वे बिना पूछे ही बीच में बोल पड़ते थे। एक सच्चे इन्सान की यही पहचान है। नाटक के प्रथम अंक के दृश्य में ही जब जुलाहा कबीर के पिता नूरा से आकर बात करता है और यह कहता है कि कबीर मुझे मस्जिद की तरफ मिला था। उसने यह थान लौटाये हैं और कहा है कि देर से आऊँगा। जुलाहा कबीर के बारे में यह भी कहता है कि नूरा, तुम उसे समझा लो। वह बहुत बड़बोला हो गया है। बात-बात में दूसरों के बीच में अपनी टाँग अड़ाता फिरता है। वह नहीं जानता है कि शहर का कोतवाल बड़ा जालिम आदमी है। नाटक के अन्तर्गत और भी कई ऐसे प्रसंग आये हैं, जहाँ कबीर का बड़बोलापन या बीच में उनकी कूद पड़ने वाली आदत को स्पष्ट कर दिया गया है। जब कुछ कसाई लोग एक गाय को ले जा रहे होते हैं, तब कबीर उनसे उलझ पड़ते हैं, जब कुछ कसाई लोग एक गाय को ले जा रहे होते हैं, तब कबीर उनसे उलझ पड़ते हैं। सामान्यत: ऊपर से देखने पर तो यही लगता है कि दो व्यक्तियों की बातचीत में या लड़ाई-झगड़े में किसी तीसरे व्यक्ति का कूद पड़ना उचित नहीं है। पर जब हम यह देखते हैं कि हमारी ही आँखों के सामने सरासर अन्याय हो रहा है तो बीच में न कूद पड़ना कायरता कही जाती है और अन्याय का पक्षधर होना सिद्ध हो जाता है। कबीर न तो कायर थे, न डरपोक थे और न अन्याय के पक्षधर थे। इसलिए वे नाटक में कई संदर्भों में बीच में कूद पड़ने वाले व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

2. पद-रचना में रुचि – नाटक पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कबीर घुमक्कड़ी वृत्ति के थे। वे काशी नगरी में, वहाँ के गली-मुहल्लों में घूमते हुए इधर से उधर चक्कर लगाया करते थे। जब भी वे किसी स्थिति को देखते थे तब उनके भीतर से कोई-न-कोई कवित्त, साखी या पद व्यक्त हो जाता था। ऐसा लगता है कि जैसे कबीर की आन्तरिक अनुभूतियाँ कविता के रूप में तभी सामने आती थीं जब वे कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई अन्याय या अनाचार होते देखते थे। नाटक में जब कबीर की माँ उनसे पूछती है कि क्या तू फिर आज पिटकर आया है, तो पहले तो वे चुप रहते हैं, फिर बताते हैं कि कुछ लोग जो कि कसाई थे, गाय को ले जा रहे थे। उसके पीछे उसका बछड़ा भी था। मुझसे यह देखा नहीं गया। माँ कहती है कि जब तुझसे नहीं देखा गया तो फिर तू बीच में कूद पड़ा होगा। इस पर कबीर उत्तर देते हैं कि नहीं, मैं तो बीच में नहीं कूदा, मैंने तो केवल यह कह दिया था –

दिन में रोजा रखत हैं, रात हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसी खुशी खुदाय॥

इससे यह सिद्ध होता है कि कबीर की पद-रचना में विशेष रुचि थी। लगभग प्रत्येक अवसर पर कोई-न-कोई साखी या पद रचकर सुना देते थे।

3. जिज्ञासु मनोवृत्ति – कबीर के व्यक्तित्व की एक तीसरी विशेषता उनकी जिज्ञासु मनोवृत्ति है। इस मनोवृत्ति को उनकी प्रश्निल मानसिकता भी कहा जा सकता है। कबीर जिज्ञासु तो थे ही, अपनी जिज्ञासाओं को शांत करने के लिए वे हर किसी से कोई-न-कोई प्रश्न कर बैठते थे। नीमा कबीर को बार-बार यही समझाती है कि तू मुल्ला-मौलवियों से प्रश्न मत कियाकर, उनसे सवाल मत किया कर। क्योंकि सवाल करना तेरा काम नहीं है। वास्तव में कबीर यह सोचते थे कि जब सवाल मन में उठते हैं तो उन्हें क्यों न किया जाये। यही कारण है कि नाटक में कभी तो कबीर साधु-सन्तों से शास्त्रार्थ करते दिखाये गये हैं, कभी किसी प्रवचनकर्त्ता से प्रश्न-उत्तर करते दिखाये गये हैं और तो और, वे कायस्थ, महन्त, मौलवी और सिकन्दर के सामने भी सवाल करते हैं। उनकी सवाल करने की यह मनोवृत्ति उनके व्यक्तित्व के उस पक्ष को उद्घाटित करती है जो उनकी तर्क-क्षमता से जुड़ा हुआ है। कबीर यह मानते थे कि किसी भी बात को बिना तर्क के स्वीकार नहीं किया जा सकता है। वास्तव में जिस व्यक्ति को धर्मान्धता से चिढ़ हो, जो ऊँच-नीच को नहीं मानता हो और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जाति-पाँति के झूठे बँधनों को व्यर्थ का आडम्बर मानता हो वह समाज में जिस मानवता को स्थापित करना चाहेगा, उसके लिए उसका मन प्रश्निल तो होगा ही। कबीर की मानसिकता ही प्रश्नों से जुड़ी हुई थी। वे अपनी माँ से भी प्रश्न करते दिखाये गये हैं। उनकी जिज्ञासा बड़ी प्रबल होती थी और जब तक वे उस जिज्ञासा का कोई हल नहीं पा लेते थे, तब तक शांत नहीं होती थी।

4. स्पष्ट वक्ता – कबीर के व्यक्तित्व की एक उल्लेखनीय विशेषता उनकी स्पष्टवादिता में निहित है। कबीर स्पष्टवादी थे। वे निर्भीक स्वभाव के होने के कारण न तो किसी से घबराते थे, न किसी से डरते थे। उन्हें जो कहना होता था, उसे स्पष्ट रूप से कहते थे। नाटक के अन्तर्गत उनकी स्पष्टवादिता के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। यहाँ केवल एक उदाहरण प्रस्तुत है जो कबीर की एक साधु से हुई बातचीत के संदर्भ में आया है –

कबीर : यही रहे वह साधु महाराज। नाम लेने की देर थी कि प्रगट हो गये।
(साधु से) आज किस शिकार पर निकले हैं, महाराज ? उस मासूम की तो चमड़ी उधेड़ दी।

साधु : क्या बोल रहा है बे ? इतने कोड़े पड़े फिर भी तेरी अक्कल ठिकाने नहीं आयी ?

कबीर : (साधु की ओर देखते हुए) हिन्दू की दया, मेहर तुरकन की दोनों घट से भागी। कहिये महाराज, पहुँच गये काशी ? कै दिन की लूटपाट रहेगी काशी में ? हम नहीं आये होते तो आपने तो उस बच्चे को ठिकाने लगा दिया था। कहाँ से मिली इतनी बड़ी चाबुक महाराज, भगवान के नाम पर चाबुक चलाते हो ?

इसी प्रकार की स्पष्टवादिता सिकन्दर से बातचीत करते समय भी दिखाई देती है। सिकन्दर के समक्ष भी कबीर घबराते नहीं हैं। जब सिकन्दर कहता है कि तुम तो ऐसी बातें कर रहे हो, जैसे तुम्हारा दिल न हो, जन्नत हो तब कबीर बड़े गर्व के साथ स्पष्ट शब्दों में यही कहते हैं कि ''मेरा दिल जन्नत से भी ज्यादा खूबसूरत है।'' इसी क्रम में जब सिकन्दर उनसे मजहबों की बात करता है तब कबीर स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं कि उन्होंने मजहबों को छोड़ दिया है। कहने का अभिप्राय यह है कि नाटक में कबीर का स्पष्ट वक्ता वाला व्यक्तित्व उभरकर अनेक स्थलों पर सामने आया है।

5. सत्यान्वेषी – कबीर सत्यान्वेषी थे। वे सत्य को जानना चाहते थे। उनके मन में ऐसा कोई भाव नहीं था कि वे अहंकारग्रस्त हों या अपने आप को बड़ा सिद्ध करने की नीयत रखते हों। वे तो सत्यान्वेषी थे। वे सत्य के प्रति अडिग आस्था रखते थे। मिथ्या और दम्भ से उन्हें चिढ़ थी। वे असत् को किसी भी स्थिति में स्वीकार करने को तैयार न थे। उनके सत्यान्वेषी व्यक्तित्व को 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है। स्पष्टीकरण के लिए यहाँ केवल एक ही उदाहरण पर्याप्त है जो उनके सत्यान्वेषी स्वभाव को स्पष्ट कर देता है। ''अँधेरा उतरने लगा है। एक और दिल डूबने लगा है। माँ भी समझती है कि मैं ही लोगों को परेशान करता फिरता हूँ। माँ को मेरी पीठ पर पड़े घाव तो नजर आते हैं, लेकिन मेरा दिल कैसा छलनी हो रहा है, यह कोई नहीं देख पाता। सभी समझते हैं, मैं आवारा हूँ, लोगों से उलझता फिरता हूँ। मेरी यह भटकन कब खत्म होगी, मेरे मालिक ? क्या फिर वन में निकल जाऊँ ? मुझे शान्ति नहीं चाहिए, मुझे इस अँधेरे में रोशनी की लौ चाहिए। हर समय एक ही सवाल मेरे मन में घूमता रहता है, अगर यह सब झूठ है तो फिर सच क्या है ? मैं भी तेरा बन्दा हूँ, मालिक, फिर मेरी ठौर कहाँ पर है ?

''परबति परबति मैं फिरिया
नैन गँवाये रोये
सो बूटी पाऊँ नहीं
जाते जीवन होय
सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवे
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवे।''

6. मानवीय संवेदनात्मक दृष्टिकोण – कबीर की मानवीय संवेदना बहुत गहरी थी। वास्तव में मानव के प्रति उनके मन में गहरी संवेदना थी। कबीर के इस संवेदनात्मक दृष्टिकोण को दो रूपों में देखा जा सकता है। एक तो उनके सुधारक या उपदेशक रूप में और दूसरे ईश्वरोन्मुख भक्त रूप में। पहिचान के धरातल पर कबीर का मानवतावादी दृष्टिकोण उनके सुधारक या उपदेष्टा के रूप में पल्लवित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हुआ है। कबीर हर तरह के सामाजिक कोढ़ से मनुष्यता की मुक्ति चाहते थे। सभी जानते हैं कि उनके कथन अनुभूति-आवेग है। उनका क्रान्तधर्मी कवि उपाधिधारी पंडितों और मौलवियों को चुनौती देता है। वह छिपकर नहीं, प्रकट होकर बोलता है – ''तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।'' कबीर का सारा चिन्तन मानव-सापेक्ष है। वे मनुष्यता की रचना के लिए अपने स्वरों मे लापरवाह नहीं हैं। ठीक से देखा जाये तो सम्पूर्ण मध्ययुगीन साहित्य-चिन्तन में उनका मानव-चिन्तन एक विशिष्ट कोटि का साबित होता है। उनका पूरा विश्वास है कि मानव का मानव से विवाद उसके अज्ञान का परिचायक है। ईश्वरीय रचना में तो सभी एक हैं, परन्तु आपसी विग्रह मनुष्य की देन है। जाति-पाँति, छूत-अछूत, छोटा-बड़ा, ब्राह्मण-शूद्र, मन्दिर-मस्जिद जैसे विभाजन मानवीय विकृति के परिणाम हैं। मानव-समाज की सौमनस्य-संरचना में इनकी बाधकता को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। कबीर ने बड़े करीब से अपने युग के विकृत मानव-समाज को देखा था। वे सतत सचेष्ट रहे हैं कि हर सम्प्रदाय, जाति, धर्म-समाज और राजनीति में समन्वय स्थापित हो ताकि उसके माध्यम से समग्र मानवता का सांस्कृतिक विकास सुनिश्चित किया जा सके।

कबीर मानवीय संवेदना के प्रत्येक स्पन्दन से परिचित थे। पंडितों, मौलवी-मुल्लाओं और महन्तों के कर्मकाण्ड तथा पाखण्ड उनके लिए 'आँखों देखी' प्रमाण थे। पहले से चले आ रहे पुरोहितवाद, प्रामाण्यवाद, अन्धविश्वास, मूर्तिपूजा और बाह्याचार कबीर-चिन्तन के विरुद्ध पड़े। कबीर का मानना है कि इन बाह्याचारों से सामाजिक जड़ता का विकास होगा न कि मानवतावादी उत्कर्ष का। मनुष्य को मनुष्य समझने और उसे संवेद्य बनाने की सार्थक चेष्ट कबीर-साहित्य में सर्वत्र देखी जा सकती है।

7. परमतत्त्व के विश्वासी – 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक को आद्योपान्त पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे सत्यान्वेषी तो थे ही, परम तत्त्व के भी पूर्ण विश्वासी थे। वे यह मानते थे कि परम तत्त्व ही मूल तत्त्व है। उसकी दृष्टि में सभी बराबर हैं, न कोई छोटा है, न बड़ा है। ईश्वर हिन्दू-मुसलमान का भेद भी नहीं जानता है वह समदर्शी है। अपने इसी परम तत्त्व के विश्वास के आधार पर वे यह मानते थे कि परमात्मा ने एक ही बूँद से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है। अत: ब्राह्मण और शूद्र जैसा भेद उनकी समझ से परे की बात है। कबीर निर्भीक और बेलाग दृष्टि से पोषक थे। वे मानव मात्र के पक्षधर थे, न कि हिन्दू और मुसलमान के। हिन्दू और मुसलमान की कौमी-एकता पर वे निरन्तर चिन्तन करते रहते थे। वे पढ़े-लिखे नहीं थे, परन्तु उन्हें व्यापक अनुभव था। अनपढ़ता के कारण 'भाषिक अनगढ़ता' उनमें भले ही लक्षित की जा सकती है, किन्तु उनकी अनुभूत-सच्चाई को मान लेने में किसी को कतई हर्ज नहीं होना चाहिए। कबीर ने ठीक से अनुभव किया था कि हिन्दू और तुर्क में अभेद है क्योंकि भेद होता तो इनकी जन्म-विधि में अन्तर होता। जिस मार्ग से हिन्दू आया है उसी मार्ग से तुर्क भी आया है। जन्म के समय न तो कोई शिखा और यज्ञोपवीत के साथ ब्राह्मण बनकर आया है और न ही कोई खतना-सहित मुसलमान बनकर। व्रत, उपवास, तीर्थ, पूजा, नमाज, चमत्कार, झोली, बटुआधारी, सिर-मुंडन, जटा-धारण, भस्म-लेप, पत्थर-पूजा, मूर्तिपूजा, अजान, माला, छापा, तिलक एवं गंगा-स्नान आदि समस्त लोक रूढ़ियों के विरूद्ध कबीर की वाणी बुलन्द हुई है। गंगा-यमुना जैसे तीर्थ-स्थानों के प्रति उनका अपना चिन्तन है। कबीर का विश्वास है कि जब तक चित्त की शुद्धि नहीं होगी, हृदय निर्मल नहीं होगा, तब तक मनुष्य के समस्त कार्य-व्यापार निरर्थक साबित होंगे। योग के आडम्बरों से कबीर को पहले ही से परहेज है। नोचकर केशोच्छेदन करना, बाल मुँडाना, मौनव्रत लेना, जटा धारण करना अथवा पांडित्य, गुणज्ञ, दानशील और वीरदर्प के प्रदर्शन करना अहंकारवादिता के परिचायक हैं। इन अहंकारधर्मी सूत्रों से अपनी श्रेष्ठता साबित करने वाला प्राणी मानवता की कोटि का हकदार नहीं बन सकता। ऐसे अहंकारशील लोग सत्य-पथ से डिगते रहे हैं। हरि-स्मरण (अहंकार-शून्यता) से रहित ये समस्त जन जिस प्रकार प्रकट होते हैं उसी प्रकार नष्ट भी हो जाते हैं। कबीर समदर्शी थे। उन्हें न तो किसी से दोस्ती थी और न ही किसी से बैर। उनके लिए न तो मुल्ला प्यारे थे और न पंडित शत्रु थे। भ्रान्ति से ग्रस्त इन दोनों ही को सन्मार्ग पर लाने का प्रयास कबीर द्वारा किया जा रहा था तो तत्कालीन आवश्यकता भी थी।

8. प्रेमभाव का समर्थन – कबीर के व्यक्तित्व में प्रेम भाव सर्वोपरि है। उनका यह प्रेम भाव स्त्री-पुरुष मात्र का प्रेमभाव नहीं था। वास्तव में वे प्रेम को व्यापक भूमिका पर देखते थे। उनके प्रेम में मानव-प्रेम सर्वोपरि है। वे इन्सान को इन्सान की नजर से देखते थे। उनका सारा जोर इस बात पर रहता था कि जब तक मनुष्य मनुष्य के प्रति प्रेमभाव नहीं रखेगा, तब तक उसका कल्याण नहीं हो सकता। 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के अन्तर्गत उन्होंने इसी प्रेमभाव को महत्ता प्रदान की है। उदाहरण के लिए नाटक के अन्तर्गत जब वे रैदास से बात करते हैं तब दक्षिण से आये हुए किन्हीं महात्मा के संदर्भ में कहते हैं कि – ''पहले तो मैं छिप-लुककर उनके प्रवचन सुनता रहा। वह मेरे दिल की बात कहते हैं। मैं उनकी बातें सुनता हूँ तो लगता है कि मेरे अन्दर की गाँठें खुल रही हैं। मेरे संशय दूर हो रहे हैं। वह प्रेम की बात कहते हैं, ऐसा प्रेम जिसमें न व्रत-उपवास है, न पूजा-पाठ है, न ऊँच-नीच है। उसमें बस सबके लिए प्रेमभाव है और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भगवान की भक्ति है। (तनिक रुककर) पहली बार जब मैंने उनका प्रवचन सुना तो रात भर मैं सो नहीं पाया। तभी मुझे लगा जैसे अँधेरे में प्रकाश की किरण फूटी है। मन ने कहा, कबीरदास, तुम अनपढ़ हो तो क्या, तुमने बात तो समझ ली। जीवन का महामन्त्र तो पा लिया। मनुष्य से प्रेम करना ही भगवान की सच्ची आराधना है। तभी मेरे मुँह से निकला –

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।

अढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय॥''

इसी प्रकार निम्नांकित कथन भी देखिये जो कबीर ने अपने मित्र सेना के समक्ष अपनी माँ के सन्दर्भ में कहा है। यह एक ऐसा कथन है जिसमें उनका प्रेमभाव सर्वोपरि व्यक्त हुआ है, साथ ही ममता, वात्सल्य और करुणा भाव भी व्यक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ – ''सोचता हूँ, करतार ने माई को कैसा बनाया है। न मैं उसका बेटा, न वह मेरी माई, फिर भी सारा वक्त वह मुझे अपनी छाँव में लिये रहती है। (मानो अपने आपसे बात कर रहा हो) जब कोई आँधी चलती है तो अपनी दुबली-सी काया से मुझे अपनी ओट में ले लेती है कि आँधी-बवण्डर के थपेड़े उस पर न पड़ें, कबीरा बच जाये। (हँसकर) इतनी छोटी-सी तो है, यह मेरी माई, फिर भी समझती है सभी मुसीबतों से मुझे बचा लेगी। माई के दिल में जैसे कोई बाती जलती रहती है – प्रेम की बाती। उसी की लौ में वह सारा वक्त जीती है।''

9. भावुक हृदय – भीष्म साहनी कृत 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के अन्तर्गत कबीर को जहाँ मानवतावादी, स्पष्टवक्ता, सत्यान्वेषी और निर्भीक व्यक्तित्व के धनी के रूप में चित्रित किया गया है , वहीं उनकी संवेदनशीलता अथवा उसका भावुक हृदय भी अभिव्यक्त हुआ है। नाटक में जब कबीर सेना से बातचीत करते हैं तब उनकी भावुकता स्पष्टतः उभरकर सामने आ जाती है। सेना रैदास और कबीर को सम्बोधित करके जब यह प्रश्न करता है कि तुम्हें वह याद होगा जब अँधा भिखारी बड़ा दुःखी था और तुम उसकी कुटिया में गये थे। अँधे भिखारी की याद आते ही कबीर भावुक हो उठते हैं और वे कहते हैं – ''हाँ तो, बड़ा मीठा कण्ठ है उसका। गाता है तो लगता है आकाश से चाँदनी झर-झरकर उतर रही है।'' कबीर का यह कथन उनके भावुक हृदय का परिचय दे देता है। इसी प्रकार जब कबीर लोई से बात करते हैं तब भी उनका भावुक हृदय हमारे सामने उभरकर आता है। कबीर कहते हैं – ''तुम्हें ब्याहकर भी लाया तो कहाँ, जले हुए झोंपड़े में। इधर बाहर ओसारे में मेरी खड्डी थी। बापू की खड्डी पिछवाड़े में थी। दोनों जल गयीं। एक खपच्ची नहीं बची, मगर अब तू इस घर में आ गयी है तो लगता है कुछ भी नहीं जला है, झोंपड़े में उजियाला हो गया है।'' यह कहकर कबीर मुस्कराते हैं और लोई उनकी ओर देखती रह जाती है, कुछ बोलती नहीं है। इससे स्पष्ट है कि कबीर के व्यक्तित्व में भावुकता पर्याप्त मात्रा में है।

10. करुणामय – कबीर का हृदय करुणा से परिपूर्ण था। उनके हृदय में जो करुणा भावना थी, वह मानव मात्र के प्रति थी। जिस बालक के ऊपर कोड़े बरसाये जाते हैं, उस दृश्य से कबीर करुणाभिभूत हो जाते हैं। अन्धी भिखारिन का प्रसंग भी उनके हृदय में करुणा भर देता है। वे कहते हैं – ''उसकी माँ भी अंधी है। उस बेचारी पर क्या बीतेगी। उसकी माँ कहती थी, बेटा, तेरे कवित्त गाता है तो भीड़ इकट्ठी कर लेता है। जब से तेरे कवित्त गाने लगा है हमारे घर में चूल्हा जलने लगा है। अब मेरे कवित्तों के कारण अपना बेटा ही खो बैठी है रैदासजी।'' ऐसे ही नाटक में और कई प्रसंग हैं जहाँ कबीर की करुणाशीलता, संवेदनात्मकता और भावुकता उभरकर सामने आयी है।

11. सत्संग-प्रेमी – कबीर के व्यक्तित्व की एक विशेषता जो आलोच्य नाटक पढ़ने से स्पष्ट हो जाती है, वह उनका सत्संग-प्रेम है। कबीर और उनकी मित्र-मण्डली के लोग सत्संग मे विशेष रुचि रखते हैं। कबीर यह जानते हैं कि उनके कवित्तों के गाये जाने के कारण ही काशी के कितने ही लोगों पर आफत आ पड़ी है। इतने पर भी वे सत्संग आयोजित करना बन्द नहीं करे। वे यही कहते हैं कि सत्संग तो होंगे और अवश्य होंगे, क्योंकि सत्संग के कारण ही हम मानव-जीवन को सार्थक कर सकते हैं। कबीर और रैदास की यह बातचीत देखिये जो उनके सत्संग-प्रेम को व्यक्त करती है –

कबीर : (सोच में डूबा रहता है) नहीं रैदासजी, इसका यह उपाय नहीं है। हम स्वयं, मिलकर, अपना समागम लगायेंगे। कोतवाल तो यही चाहता है कि हम चुप हो जायें, हमारी आवाज बन्द हो जायें। पण्डे-मौलवी भी यही चाहते हैं। नहीं, रैदासजी, अब हम मिलकर अपने कवित्त गायेंगे, गली-बाजार में गायेंगे, समागम करेंगे, हम सत्संग लगायेंगे।

रैदास : तुम ठीक कहते हो, कबीरदास, हम सत्संग लगायेंगे।

सेना : पर लगाओगे कहाँ पर ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कबीर : कहीं पर भी। किसी सड़क के किनारे बैठ जायेंगे, इधर ही यहीं, एक चबूतरा है, उसी पर बैठ जायेंगे, गलियों में घूम-घूमकर गायेंगे।

निष्कर्ष – उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह सरलतापूर्वक कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक में कबीर का व्यक्तित्व एक निर्भीक, सत्यान्वेषी, प्रेमी, भक्त, जिज्ञासु, सत्संग-प्रेमी और भावुक हृदय व्यक्ति का व्यक्तित्व है। कबीर मानवता-प्रेमी थे, वे इन्सान को सर्वाधिक महत्त्व देते थे। भेदभाव से रहित, समदृष्टि के समर्थक, परम तत्त्व में विश्वास करने वाले और ईश्वरीय न्याय के प्रति सचेत कबीर की जीवन-दृष्टि में ऐसा कोई तत्त्व नहीं था जो आरोपित हो। वे जो भी कहते थे, वह सबका सब उनकी हृदय की गहराइयों से निकला हुआ होता था। ऐसा प्रतीत होता है जैसे नाटककार ने उनके प्रखर, निर्भीक और सत्यान्वेषी व्यक्तित्व को उजागर करने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी है। ठीक भी है, क्योंकि ऐसा करके ही कबीर के व्यक्तित्व के प्रति न्याय किया जा सकता है।

प्रश्न- 6. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के आधार पर नीमा और नूरा के व्यक्तित्व और चरित्र कीविशेषताओं को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – भीष्म साहनी ने नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' भले ही केन्द्र में कबीर के व्यक्तित्व और उनके कार्य-कलापों को रखकर रचा हो, किन्तु उन्हीं के व्यक्तित्व-निरूपण के क्रम में उनके माता-पिता का व्यक्तित्व भी उभरकर सामने आ गया है। इतिहास और हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीर के माता-पिता का परिचय भले ही विवादास्पद रहा हो, किन्तु भीष्म साहनी के इस नाटक में माता-पिता के विषय में कोई विवाद खड़ा नहीं किया गया है। हाँ, इतना अवश्य है कि कबीर की जिज्ञासु मनोवृत्ति के क्रम में कबीर की माँ नीमा के द्वारा उनके जन्म की कहानी अवश्य कह दी गयी है। कबीर का व्यक्तित्व कैसा था, और वे किस प्रकार व्यवहार करते थे, इस सबको स्पष्ट करने के साथ-साथ नाटककार भीष्म साहनी ने नूरा और नीमा जो क्रमश: कबीर के पिता और माता के रूप में चित्रित किये गये हैं, के व्यक्तित्व को भी निरूपित कर दिया है।

नीमा का व्यक्तित्व

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में नीमा कबीर की माँ के रूप में प्रस्तुत की गयी है। नीमा की उपस्थिति नाटक के प्रारम्भिक दृश्य में ही है। इसलिए उसके व्यक्तित्व की रेखाएँ भी प्रथम अंक में ही अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं। नीमा एक ऐसी माँ है जो प्रत्येक स्थिति में अपने बेटे की सुरक्षा चाहती है। भले ही कबीर उसके पालित पुत्र हैं, किन्तु वह उन्हें अर्थात् कबीर को अपने सगे पुत्र से भी अधिक प्यार करती है। नाटक के आधार पर नीमा के व्यक्तित्व की निम्नांकित विशेषताएँ स्पष्टत: उभरकर सामने आ जाती हैं –

1. ममतामयी – नीमा के व्यक्तित्व की जो पहली विशेषता आलोच्य नाटक में उभरकर सामने आयी है, वह यही है कि वह अपने पुत्र कबीर से बहुत प्यार करती है और जहाँ अधिक प्यार होता है वहाँ तर्क नहीं चलता है। परिणामस्वरूप नीमा का पति नूरा कबीर के विरोध में चाहे कितने ही तर्क क्यों न देता हो, किन्तु नीमा एक भी तर्क को स्वीकार नहीं करती है। इससे स्पष्ट होता है कि नीमा ऐसी माँ है जो ममता को अंधी आँखों से देखती है। जहाँ ममता अंधी होकर सामने आती है, वहाँ वह ममतावश ही पुत्र से कुछ भी नहीं कहना चाहती है। वह कुछ भी करे, कभी भी आये-जाये, वह कुछ भी नहीं कहना चाहती। आवश्यकतानुसार कभी कोई बात कह दे, यह अलग बात है। नीमा अपने पति नूरा से कहती भी है कि "हम तो डरते हैं, उससे कुछ नहीं कहते कि कहीं फिर न भाग जाये। हमारे तो धुकधुकी लगी रहती है कि कहीं कोई बात मुँह से न निकल जाये कि फिर भाग खड़ा हो। अबकी भागेगा तो मैं गंगा में डूब मरूँगी।"

2. पुत्र का विरोध न सुनने वाली – नीमा के व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता यह है कि पुत्र के विरोध में वह कुछ भी सुनने को तैयार नहीं है। जब नूरा यह कहता है कि "घर में खाने को अन्न का दाना नहीं, इधरलड़का आवारा हो गया है। वह हमारी जान लेकर रहेगा" तो नीमा यही कहती है कि "कुछ सोचकर बोला करो जी, कैसी कुबात मुँह से निकाली है। ....क्यों उसे गाली देते हो? वह तो तुम्हें सिर पर उठाये रखता है और एक तुम हो कि......"

3. वात्सल्य-भावमयी – नीमा मातृत्व भावना से परिपूर्ण है। वह इतनी गहरी वात्सल्य भावना से परिपूर्ण है कि अपने पति से लड़ाई भी मोल ले लेती है और कबीर की प्राप्ति या उसकी माँ होने में गर्व का अनुभव करती है। वह कहती भी है – "अब कुछ मत कहो जी। उस जैसा बेटा तो दिया लेकर ढूँढ़े नहीं मिलेगा। किस्मत वाले थे जो ऐसा सोना बेटा पाया। हमारा घर उज्जर हो गया। कभी ऊँची आवाज में बोला नहीं।" नाटक में कबीर जहाँ एक ओर बड़बोला है, वहीं माँ की वात्सल्य भावना की आँखों से वह विनम्र है और ऊँची आवाज में नहीं बोलता है। यही तो माँ का वात्सल्य है जो बेटे के सारे दोषों पर पर्दा डाल देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. तर्कशील – नीमा तर्क-बुद्धि से काम लेने वाली नारी भी है। जब नूरा कबीर के विषय में बहुत-सी कहनी-अनकहनी बातें कहता है और साथियों के साथ बैठकबाजी करते रहने की आलोचना करता है, तब नीमा जो तर्क देती है, वह माँ का ही तर्क है, ममता से निकला हुआ तर्क है। इसमें मस्तिष्क का बिल्कुल योगदान नहीं है, फिर भी तर्क तो तर्क है। तर्क यह है – ''हमजोलियों के साथ ही उठता-बैठता है ना, इसमें बेजा क्या है ? भाँग-धतूरा तो नहीं पीता, जुआ तो नहीं खेलता। सास्तरार्थ करना कोई बुरी बात है क्या ?'' इससे स्पष्ट है कि नीमा के चरित्र में एक ऐसी तार्किकता है जिसे ममता से आविष्ट सहज तार्किकता कहा जा सकता है। यह वह तर्क भावना है जो वात्सल्य की नींव पर खड़ी है, प्रेम के सहारे चल रही है। ऐसी तर्कशीलता प्रत्येक माता के पास ही होती है, पिता के पास नहीं।

5. सत्प्रेरणाशील – नीमा के व्यक्तित्व में एक विशेषता यह भी मिलती है कि वह कबीर को अच्छी सलाह देती है। उसे समझाने का प्रयास करती है। यही प्रबोधनात्मकता मातृ हृदय की झाँकी प्रस्तुत करने वाली है। जिस प्रकार भारतीय परिवारों में माताएँ अपने पुत्रों को समझाया करती हैं, क्योंकि वे ही अपने बेटे की भावनाओं को समझती हैं, उसी प्रकार नीमा भी कबीर को समझाती है। वह कहती है – ''यह आज की बात थोड़े ही है, आये दिन ऐसा ही होता है। तू क्यों लोगों से सवाल पूछता फिरता है ? मौलवी-मुल्लाओं से भी कभी कोई सवाल पूछता है ? वे चिढ़ जाते हैं। इन लोगों के हाथ में हमारी रोटी है कबिरा ? तू कब समझेगा ? क्यों अपने माँ-बाप को भूखों मारता है ? ....कुछ सोच-समझकर बात किया कर। यह काशी है बेटा, हिन्दुओं का तीर्थ है और यहाँ का कोतवाल मुसलमान है। सभी कहते हैं, बड़ा बेरहम आदमी है, जिन्दा दफना देता है। तू हर किसी से दुश्मनी मोल लेता फिरता है। मेरा दिल बहुत डरता है।'' इस कथन में जहाँ नीमा की प्रबोधनात्मकता स्पष्ट हुई है, वहीं यह भाव भी व्यक्त हो गया है कि वह व्यावहारिक है और अवसर के अनुकूल आचरण करना वह जानती है। वह अपने पुत्र के किसी भी कष्ट को सहन करने के लिए तैयार नहीं है।

6. पुत्रहित कामना वाली – नीमा पुत्रहित की कामना से प्रेरित होकर उसे किसी दूसरे शहर में भेजना चाहती है। कारण यह है कि वह सब कुछ बर्दाश्त कर सकती है, किन्तु अपने पुत्र कबीर की पीड़ा नहीं देख सकती है। कबीर जब उसे यह कहते हैं कि माँ तू खुद ही मुझे घर से निकाल रही है तब वह जो उत्तर देती है, वह उसकी व्यावहारिक बुद्धि का ही परिणाम है। उसने कहा है – ''मैं तुझे घर से निकालूँगी ? किसी दूसरे शहर में रहेगा तो आराम से तो रहेगा। तुझे कोड़े तो नहीं पड़ेंगे। तू चला जा वहाँ अपनी खड्डी लगा लेना, अच्छा हो शादी करके चला जा अपनी घरवाली को साथ ले जा। कभी-कभी हम तुझसे मिलने को आ जाया करेंगे।''

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नीमा एक भारतीय माँ है। उसकी जात कोई भी हो, किन्तु वह ममत्वपूर्ण, वात्सल्ययुक्त, पुत्र-हितकामना से युक्त और सारे संकट अपने ऊपर झेल लेने वाली और हर स्थिति में पुत्र की रक्षा करने वाली माँ है। सदाशयता, भावुकता, व्यावहारिकता, तार्किकता और करुणाशीलता उसके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ हैं। कबीर भी जानते हैं कि नीमा उनकी माँ नहीं है, वह उनकी ऐसी माँ है जिसने उन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया है परन्तु उसके हृदय में प्रेम की वार्तिका जलती रहती है। उन्होंने अपने मित्र सेना से बातचीत करते हुए कहा भी है कि ''सोचता हूँ करतार ने माई को कैसा बनाया है। न मैं उसका बेटा, न वह मेरी माई, फिर भी सारा वक्त वह मुझे अपनी छाँव में लिए रहती है। जब कोई आँधी चलती है तो अपनी दुबली-सी काया से मुझे अपनी ओट में ले लेती है कि आँधी-बवण्डर के थपेड़े पर उस न पड़ें, कबीर बच जाये। इतनी छोटी-सी तो है, यह मेरी माई। फिर भी समझती है सभी मुसीबतों से मुझे बचा लेगी। माई के दिल में जैसे कोई बाती जलती रहती है –प्रेम की बाती। उसी की लौ में वह सारा वक्त जीती है।''

नूरा का व्यक्तित्व

नीमा जिस प्रकार की माँ है, नूरा उस प्रकार का पिता नहीं है। यों भी पिता माँ की तुलना में कुछ कठोर-हृदय होते हैं। पिता की जो कठोरता है, वह सचमुच की तो नहीं होती, किन्तु इसलिए होती है कि उसकी कठोरता के प्रभाव से पुत्र सही दिशा को प्राप्त करता रहे और अपने व्यक्तित्व को निरापद बनाता हुआ जीवन-निर्माण में अपना पथ स्वयं ही निश्चित कर ले। नूरा ऐसा ही पिता है। ऐसा नहीं है कि उसे कबीर से कोई द्वेष है और वह उससे प्रेम नहीं करता है पर उसका हृदय इसलिए अधिक खिन्न रहता है कि वह कबीर की घुमक्कड़ी, उसके बड़बोलेपन, उसके झगड़ालु स्वभाव और दूसरों के बीच में पड़कर अपनी टाँग अड़ाने वाली मनोवृत्ति को ठीक नहीं समझता है। नूरा के व्यक्तित्व की विशेषताएँ निम्नांकित हैं –

1. सदगृहस्थ – ''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटक के अन्तर्गत नूरा कबीर के पिता के रूप में चित्रित किया गया है। वह जाति का जुलाहा है। उसका एक झोंपड़ा है जिसमें वह जीवनयापन करता है और उसी झोंपड़े के सामने वह सूत पकाता हुआ सामने आता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। नूरा के व्यक्तित्व में उसकी जाति के अनुकूल मनोवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। वह पूरी तरह एक घरेलू व्यक्ति है। यही कारण है कि उसे इस बात की चिन्ता बराबर रहती है कि मेहनत करके, खड्डी चलाकर वह जो कपड़ा तैयार करता है, उसका परिणाम यदि सामने न आये तो जीवन चलाना मुश्किल हो जायेगा। यही कारण है कि वह नाटक के प्रारम्भ में ही जुलाहे से यह पूछता है कि क्या उसे कबीरा मिला था ? वह जो माल ले गया था, उसमें से कुछ बिका है या नहीं ? घर से तो आज वह बहुत ही सवेरे निकल गया था। नूरा का यह कथन इस बात की सूचना देता है कि उसे अपने द्वारा तैयार किये गये माल की बिक्री की चिन्ता इसलिए अधिक रहती है क्योंकि उसी पर उसकी गृहस्थी का भार टिका हुआ है।

2. पुत्र-वत्सल—नूरा के व्यक्तित्व में जो दूसरी विशेषता मिलती है, वह यह है कि एक पिता होने के नाते उसके व्यक्तित्व में पुत्र के विषय में जानकारी रखना, उसकी गतिविधियों से परिचित होना और उन्हीं गतिविधियों के आधार पर पुत्र के भविष्य के विषय में कल्पना करना आदि स्थितियाँ मौजूद हैं। अपनी पिता जैसी मानसिकता के आधार पर ही वह आगन्तुक जुलाहे से कबीर के विषय में तरह-तरह के सवाल करता है। जुलाहे के द्वारा जो सूचनाएँ उसे प्राप्त होती हैं, उनके आधार पर कबीर की घुमक्कड़ी वृत्ति, समय बर्बाद करने की प्रवृत्ति, बड़बोलेपन की आदत और अकारण ही झगड़ा मोल लेने की प्रवृत्ति नूरा के हृदय को कचोट देती है। वह पीड़ा का अनुभव करता है।

3. व्यथित-हृदय पिता—नूरा के व्यक्तित्व में एक व्यथित-हृदय पिता का व्यक्तित्व भी निहित है। वह कबीर की नालायकी से बहुत दुःखी है। उसका हृदय इतना आहत हो गया है कि जैसे वह प्रत्येक स्थिति में कबीर से दूर रहना चाहता है या उसे दूर कर देना चाहता है। उसने कहा भी है—"मैं क्या कहूँ, इस नालायक की वजह से जान साँसत में आ गयी है।" इतना ही नहीं, नूरा के व्यक्तित्व में एक विशेषता यह भी निहित है कि जब पिता का हृदय दुःखी होता है तब पुत्र के विषय में वह अनर्गल बातें करने लगता है किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वह अपने पुत्र से घृणा करने लगा है, यही स्थिति नूरा की भी है। वह कबीर की कारगुजारियों से दुःखी भले ही हो, किन्तु यह कभी नहीं चाहता है कि उसका कोई अनिष्ट हो या वह पीड़ा झेलता हुआ जीवनयापन करे।

4. पुत्र-हितेच्छु—नूरा के व्यक्तित्व की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वह कबीर से प्रेम भी करता है, उससे दुःखी भी है। वह उसे दूर भगाना भी चाहता है और जब वह भाग जाता है, तब उसे दिन-रात खोजता फिरता है। यह स्थिति नूरा के उस हृदय की भावना को व्यक्त करती है जिसमें प्रेम और घृणा दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं। किन्तु स्मरण रहे कि यह घृणा भी ऐसी नहीं है जो हानिकारक हो, बल्कि ऐसी है जो अपने हृदय के टुकड़े कबीर को सत्पथ पर लाने के लिए व्यक्त की जाती है। नूरा के हृदय की इस स्थिति को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—"हमारी कहाँ सुनता है। दो बार घर से भाग चुका है। एक बार तो कहाँ, हरिद्वार के पास से पकड़ कर लाये थे। सच पूछो तो मैं तो उसे लिवाने भी नहीं जाता, लेकिन इसकी माँ रो-रोकर आधी हुई जा रही थी। आठ पहर का रोना कौन सुने। मैं जंगलों में खाक छानता, मिन्नत-समाजत करके इसे लौटा लाया तो सात महीने बाद फिर भाग खड़ा हुआ। अब इसे रस्सियों से बाँधकर तो नहीं रखा जा सकता न ! कहीं बाँधे गाँव बसा है ?"

5. सहज स्नेही—नूरा के व्यक्तित्व में कृत्रिम क्रोध की भावना भी है। कृत्रिम क्रोध से अभिप्राय यह है कि वह ऊपर से तो कबीर को लेकर क्रोधित होता है और अपनी पत्नी नीमा से उसके व्यवहार की आलोचना करता रहता है, उसे कोसता रहता है, उसके खिलाफ कड़वी बातें बोलता रहता है, किन्तु भीतर ही भीतर उसे प्यार भी करता है। उसके इस वैशिष्ट्य को निम्नांकित कथनों से समझा जा सकता है—

(क) "घर में खाने को अन्न का दाना नहीं, इधर लड़का आवारा हो गया है। हमारी जान लेकर रहेगा।"

(ख) "न जाने किसको उठा लाई। तब तो बड़ी मोहगर बनी थी, अब किये को भुगतो। यहाँ तो हम साँप पालते रहे। न दीन के रहे न जहान के।"

(ग) "अबकी बार बाहर गया तो मैं उसकी टाँग तोड़ दूँगा। मैं उसे घर से बाहर ही नहीं निकलने दूँगा।"

(घ) "मैं गया था तेरे दिल की साध पूरी करने के लिए। तू मन में कैसी-कैसी मनौतियाँ मानती रहती थी। पराये कभी अपने नहीं हुए, सदा पराये ही रहते हैं।"

(6) विवेकशील—नूरा के व्यक्तित्व में एक विशेषता यह भी है कि वह शुभ-अशुभ पर बहुत विचार करता है। वह यह मानता है कि जो काम शुभ घड़ी में किया जाता है, उसका फल हमेशा अच्छा होता है और अशुभ घड़ी में किया गया काम कभी भी फलदायक नहीं होता है। उसकी इस प्रवृत्ति को इस कथन से समझा जा सकता है—"उस वक्त भी मेरी बायीं आँख फड़की थी जिस वक्त तू उसे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उठा लाई थी। अन्दर से मेरे दिल ने कहा था कि नूरा, भूल कर रहे हो, पर तू मेरे सिर पर सवार हो गई। मैं क्या करता ? ....मैं गया था तेरे दिल की साध पूरी करने के लिए। तू मन में कैसी-कैसी मनौतियाँ मानती रहती थी। पराये कभी अपने नहीं हुए, सदा पराये ही रहते हैं।''

(7) कर्मफल में आस्थावादी – नूरा का यह विश्वास है कि मनुष्य जैसे कर्म करता है, वैसे ही फल भी भोगता है। हमने कबीर को पाल-पोसकर जो बड़ा किया है, वह हमारे किसी दुष्कर्म का फल है। तभी तो वह हमें हर वक्त पीड़ा पहुँचाता रहता है। यों नूरा व्यावहारिक व्यक्ति भी है। वह जहाँ एक ओर कर्म-फल में विश्वास करता है, वहीं दूसरी ओर व्यावहारिकता में भी विश्वास करता है। उसके इस स्वभाव को निम्नांकित दो उदाहरणों से समझा जा सकता है –

(क) ''इसे न उठा लाती तो क्या मालूम मैं दूसरा निकाह कर लेता। घर में अपना बच्चा तो होता। इसे पाल-पोसकर बड़ा किया तो यह फल भोग रहे हैं। दो दिन चैन के नहीं मिलते। करेजे पर हो रहा भुनता रहता है।''

(ख) ''हाँ जी, उसके मुँह में तो जबान ही नहीं। हर ऐरे-गैरे से उलझता फिरता है। जुलाहे का बेटा है तो जुलाहा बनकर रहे। घर से कपड़ा बेचने जाता है तो घण्टों अपने निगोड़े साथियों के साथ बैठकबाजी करता फिरता है। जहाँ देखो, कबिरवा का दरबार लगा है।''

8. सरल-स्वभाव – नूरा सरल-स्वभाव का व्यक्ति है। इस कारण वह अधिक तर्क-वितर्क करना ठीक नहीं मानता है। वह कबीर का शास्त्रार्थ में भाग लेना बुरा समझता है। क्योंकि सरल स्वभाव के कारण वह यह मानकर चलता है कि शास्त्रार्थ करने से लड़ाई-झगड़े होते हैं, घर के घर तबाह हो जाते हैं, इसलिए शास्त्रार्थ करना भाँग-धतूरा खाने से कहीं बुरी आदत है। उसने नीमा से कहा भी है – ''बस, एक ही बात रगेदे जा रही है। मुझसे पूछ, भाँग-धतूरा इतना बुरा नहीं है जितना यह शास्त्रार्थ। यह तो कभी छूटता ही नहीं। घरों के घर तबाह हो जाते हैं, सिर फुटव्वल अलग होती है।''

9. चिन्तनशील – ''कबिरा खड़ा बजार में'' नाटक के अन्तर्गत नूरा एक ऐसे पिता के रूप में चित्रित हुआ है जिसे अपने घर-परिवार की चिन्ता तो है ही, वह पुत्र की हितकामना के कारण भी पीड़ित है अथवा कहें कि चिन्तित है। नूरा बराबर इस बात पर जोर देता रहता है कि जिस व्यक्ति को जो काम शोभा देता है, उसे वही काम करना चाहिए और काम करते समय अपनी स्थिति और अपनी औकात को समझकर ही आगे बढ़ना चाहिए।

2.5 सारांश

संक्षेप में कह सकते हैं कि भीष्म साहनी के नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' नीमा और नूरा दोनों पति-पत्नि के रूप में आये हैं। ये ही कबीर के माता-पिता हैं जिन्होंने उसे पाल-पोसकर बड़ा किया है। नीमा का व्यक्तित्व यदि भारतीय माँ का व्यक्तित्व है तो नूरा का व्यक्तित्व एक व्यावहारिक, दुनियादार और सोच-समझकर चलने वाले व पुत्र-हित की कामना करने वाले पिता का व्यक्तित्व है। नीमा यदि अन्दर-बाहर दोनों ओर से सरल-हृदय और वात्सल्यपूरित माँ है तो नूरा बाहर से कठोर और भीतर से कोमल है। ये दोनों पात्र नाटक में कबीर के व्यक्तित्व को उभारने में सहायक भी हुए हैं और इनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व भी है जो पाठकों को पूरी तरह प्रभावित करता है।

2.6 अभ्यास प्रश्नावली

प्रश्न-1. कबीरा खड़ा बाजार में नाटक की तात्विक समीक्षा कीजिए।

प्रश्न-2. कबीर का चरित्रांकन कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 3 : हिन्दी एकांकी : संक्षिप्त इतिहास और विशेषताएँ

संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 समकालीन जीवन और एकांकी

3.3 हिन्दी एकांकी की विकास-यात्रा

3.3.1 भारतेन्दु युग

3.3.2 द्विवेदी युग

3.3.3 प्रसाद युग

3.3.4 प्रसादोत्तर युग

3.3.5 स्वातंत्र्योत्तर काल

3.4 राजस्थान में एकांकियों का विकास

3.5 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

3.6 सारांश

3.7 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.0 उद्देश्य

हिन्दी एकांकी की विकास यात्रा- इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- एकांकी की यात्रा और उसके स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- यह अध्ययन आपको एकांकी की तात्विक सूक्ष्मता समझने में सहायक होगा।
- इस अध्ययन के पश्चात आपको पाठ्यक्रम की एकांकियां समझने में सहजता हो गी।

3.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में एकांकी के उद्भव के संदर्भ में अलग-अलग विचार-धाराएँ प्रचलित हैं जिनमें डॉ. रागेय राघव तथा डॉ. खत्री जैसे कुछ विद्वान् एकांकी को पाश्चात्य 'वन एक्ट प्ले' का रूपान्तरण मानते हैं, परन्तु प्रो. ललित प्रसाद व अवस्थी जैसे अनेक समालोचक इसका उद्भव संस्कृत साहित्य से मानते हैं। संस्कृत साहित्य में नाटक के अथवा रूपक के कई भेद-उपभेद मिलते हैं। भाण, व्यायोग, ईहामृग, अंक, प्रहसन आदि ऐसे नाटक भेद हैं, जिनमें एक ही अंक होता है। यदि हिन्दी एकांकी का लक्षण 'एक ही अंक' माना जाये तो इसका उद्भव संस्कृत साहित्य से माना जा सकता है, परन्तु आधुनिक काल में एकांकी नाटकों की मौलिक कलात्मक विशेषताओं को मानकर यह स्वीकार किया जाता है कि हिन्दी एकांकी का उद्भव और विकास बीसवीं शताब्दी में ही हुआ है।

3.2 समकालीन जीवन और एकांकी

आधुनिक जीवन की व्यस्तता, औद्योगिक-वैज्ञानिक समाज में मध्यकालीन बिखराव और अवकाश के लिये समय का अभाव, द्वन्द्व, प्रतियोगिता, अशांति तथा बेरोजगारी आदि समस्याओं के कारण हमें ऐसे साहित्य की आवश्यकता हुई जो कम से कम समय में हमें अधिक से अधिक मनोरंजन दे सके। इसलिये दीर्घकालीन उपन्यासों और नाटकों ने एकांकियों को जन्म दिया। एकांकी को हम चुस्त, सुगठित, संक्षिप्त विषय-वस्तु, नुकीले और धारदार चित्रांकन, तीव्र एकोन्मुख भावानुभूति और सकेन्द्रित तथा अन्वित प्रभाव की माँग कहते हैं। हिन्दी एकांकी विधा हमारी इसी माँग का परिणाम है।

एकांकी आज के कुशल नाटककारों के उर्वर मस्तिष्क का एक चमत्कार है, जिसमें बड़े नाटकों की समस्त विशेषताएँ एक छोटे से केनवास में प्रस्तुत की जाती हैं। एकांकी, प्रहसन, रेडियो प्ले, ध्वनि नाटक, कठपुतली, रूपक, फीचर आदि नाटक के एकदम नवीन रूप हैं। विद्यालयों, महाविद्यालयों और क्लबस में अभिनय के लिए निरन्तर एकांकियों की माँग है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने इस संदर्भ में कहा है कि साहित्य के अन्य माध्यमों, जैसे – कविता, कहानी-उपन्यास, नाटक-निबन्ध आलोचना, शोध प्रबन्ध, आत्मकथा, पत्र-साहित्य, दृष्टान्त, संस्मरण, यात्रा-विवरण आदि में एकांकी सबसे शक्तिशाली है तथा यह लोकप्रिय माध्यम बन गया है। रंगमंच की अनुपस्थिति में अथवा टी.वी., चित्रपट की लोकप्रियता ने एकांकी के विधान तथा उसकी आकर्षण शक्ति को आत्मसात करने में अपने आपको काफी समर्थ पाया है। अत: एकांकी अपने नवीन विधान को लेकर अपने सम्पूर्ण आकर्षण के साथ हिन्दी में आई है। रंगमंच की अनेक उलझनों से दूर रहते हुए भी दृश्य के आकर्षण की विशेषता उसमें सुरक्षित है। आज के व्यस्ततम जीवन में एकांकी ने कम से कम समय में अधिक से अधिक मनोरंजन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया है। घटनाओं और समस्याओं के अन्तर्व्यापी नैकट्य को दूर कर जीवन की पृष्ठभूमि पर प्रत्येक घटना अथवा समस्या का सहज व स्वाभाविक उभार करना एकांकी का ही कौशल है। मंच का सरलीकृत आकर्षण, कम से कम समय में अधिक से अधिक मनोरंजन करना, घटना और पात्रों की हृदय-स्पर्शिनी क्रिया और प्रतिक्रिया (Mental Conflict) और जीवन की ऊँचाई देखने का नेत्रोतोलन केवल एकांकी में ही है।''

3.3 हिन्दी एकांकी की विकास यात्रा

हिन्दी गद्य की प्राय: सभी विधाओं का आरम्भ भारतेन्दु युग से हुआ है। अत: एकांकी का प्रारम्भ भी भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। इसके विकास क्रम को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है –

3.3.1 भारतेन्दु युग

इस युग के एकांकी, नाटकों को विचार और समस्या की दृष्टि से विद्वानों ने चार भागों में विभाजित किया है। राष्ट्रीय, सामाजिक, पौराणिक और हास्य-प्रधान। राष्ट्रीय एकांकी में राष्ट्र के नव-निर्माण का स्वर मुखरित हुआ है। भारतेन्दु का भारत दुर्दशा, भारत जननी, राधारमण गोस्वामी का 'भारतमाता' इस धारा की श्रेष्ठ एकांकी है, जिनके द्वारा लेखकों ने जनता में राष्ट्र के प्रति जागृति उत्पन्न की तथा आदर्श चरित्रों के गुणगान की नवीन प्रेरणा प्रदान की। इन एकांकियों के द्वारा युगव्यापी राजनैतिक चेतना जागृत हुइ है। समाज सुधार के लिये इस युग के नाटककारों ने सामाजिक एकांकी लिखे हैं। प्रतापनारायण मिश्र का 'कलिकौतुक', राधाचरण गोस्वामी का 'भारतवर्ष में यवन लोग' तथा किशोरीलाल गोस्वामी का 'चौपट चपेट' उस समय की सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों पर व्यंग्य करने वाली एकांकी है। पौराणिक एकांकियों में बालकृष्ण भट्ट का 'दमयन्ती स्वयंवर', लाल श्रीनिवास दास का 'प्रहलाद चरित्र', राधाचरण गोस्वामी का 'श्रीदामा' आदि प्रमुख हैं। हास्य व्यंग्य प्रधान एकांकियों में समाज-सुधार की भावना मुखरित हुई है। समाज में फैली हुई कुरीतियाँ, जैसे – बाल-विवाह, बहु-विवाह, वृद्ध या अनमेल विवाह, स्त्रियों पर किये जाने वाले अत्याचार आदि को दूर करने के लिए तत्कालीन एकांकीकारों ने नई एकांकियों का सृजन किया।

3.3.1.1 भारतेन्दु युगीन एकांकियों की विशेषताएँ

1. वस्तुत: इस युग में नाटक का ही शुभारम्भ हुआ था। इस समय लेखकों के पास कोई नाट्य-प्रणाली नहीं थी, इसलिये भारतेन्दुकालीन एकांकियों पर संस्कृत नाटकों, पारसी कम्पनियों के रंगमंचीय नाटकों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

2. हिन्दी में एकांकी लिखने का यह प्रारम्भिक युग था, जिसमें लेखक कम समय में जनता का मनोरंजन या किसी सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनैतिक समस्या का चित्रण करना चाहते थे।

3. उस समय तकनीकि प्रारम्भिक दशा में थी, जिसकी वजह से प्रयोगकालीन स्थिति थी, जिसमें कलात्मकता का अभाव था।

4. इस काल की एकांकियों में एकांकी के मुख-पृष्ठ पर ही मूल समस्या का संकेत दे दिया जाता था।

5. यद्यपि इस काल की एकांकियों में कलात्मकता का अभाव था तथापि उनमें राष्ट्रीय चेतना पूर्णरूप से समाहित थी।

6. इस युग की एकांकी में नन्दी, मंगलाचरण तथा बीच-बीच में संगीत व कविताओं का पर्याप्त प्रयोग हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.3.2 द्विवेदी युग

इस युग में अधिक एकांकी नहीं लिखी गई क्योंकि इस युग में हिन्दी के परिमार्जन और अनुवाद की परम्परा तीव्र रही। स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस विधा को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। फिर भी इस युग में अंग्रेजी, बंगला और मराठी एकांकियों के प्रभाव से हिन्दी एकांकियों का विकास होता रहा। इस युग के प्रमुख एकांकीकार – राधेश्याम कथावाचक, तुलसीदत्त शैंदा, सियाराम शरण गुप्त, बद्रीनाथ भट्ट, हरिशंकर शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी आदि हैं। पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र' और सुदर्शन भी इस युग के उल्लेखनीय एकांकीकार हैं। इस युग में एकांकी नाटकों का स्वरूप काफी बदल चुका था। सुदर्शन की 'राजपूत की हार', 'प्रताप प्रतिज्ञा', 'ऑनरेरी मजिस्ट्रेट', 'सिंह जागरण'। रामनरेश त्रिपाठी द्वारा विरचित 'स्वन्नों के चित्र' और 'दिमागी ऐय्याशी'। बद्रीनाथ भट्ट का 'लपड़ धो धो' तथा उग्र की 'चार बेचारे' और 'अफजलबध' उल्लेखनीय एकांकियाँ हैं।

3.3.2.1 द्विवेदी युगीन एकांकियों की विशेषताएँ

1. उस काल की एकांकियों में पौराणिक विकृत रूढ़ियों के विरोध का स्वरूप दिखाई देता है और इसी के साथ नव निर्माण का स्वर भी चलता रहता है।

2. राष्ट्रीयता, पौराणिकता, आदर्शवादिता, नैतिक साहित्यिक परिष्कार की प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिलती हैं।

3. इस काल में दोनों (मौलिक तथा अनूदित) प्रकार की एकांकियों का विकास हुआ।

4. पारसी शिल्प का प्रभाव भी इस काल की एकांकियों में है।

3.3.3 प्रसाद युग

जयशंकर प्रसाद एक सुप्रसिद्ध नाटककार थे। उन्होंने एकांकी विधा के विकास में नवीन मानदण्ड प्रस्तुत किया। 'एक घूंट' एकांकी लिखकर एक नवीन शैली का श्रीगणेश किया। भारतेन्दु युग में जिस एकांकी साहित्य का उद्‌भव हुआ, वह प्रसाद युग में परिपक्व होकर सामने आया। प्रसाद को उस युग का प्रतिनिधि एकांकीकार कहा जा सकता है।

उनकी एकांकियाँ पूर्ण विकसित हैं, उनमें संकलन-त्रय का पूर्ण निर्वाह हुआ है एवं प्रसादत्व का रंग चढ़ा है। प्रसाद जी ने चार एकांकी लिखी, जो प्रयोगात्मक थीं। 'सज्जन', 'कल्याणी', 'करूणालय' और 'प्रायश्चित'। ये रचनाएं एकांकी कला की प्रारम्भिक रूप हैं। कुछ आलोचकों का मत है कि प्रसाद को हिन्दी एकांकी विधा का जनक नहीं माना जा सकता है। पाश्चात्य प्रभाव से एकांकी की विशिष्ट कलात्मकता का ज्ञान उस समय तक हिन्दी जगत में नहीं फैला था। इस प्रकार की एकांकियों का आरम्भ प्रसादोत्तर काल में हुआ। प्रसाद-युग के एकांकीकारों में डॉ. रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, जगदीश प्रसाद माथुर, भुवनेश्वर, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि प्रमुख हैं।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिक और सामाजिक एकांकी लिखीं, जिनमें – 'पृथ्वीराज की आँखें', 'रेशमी टाई', 'चारूमित्र', 'कौमुदी महोत्सव', 'दीपदान', 'बापू', 'संस किरण' आदि प्रमुख हैं। उदयशंकर भट्ट ने ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों को लेकर हमारे सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय पतन के बुनियादी कारणों पर प्रकाश डाला। उनके 'सहयोग' और 'स्वराज', 'दुर्गा', 'एक ही कब्र', 'वर निर्वाचन', 'आदिम युग', 'प्रथम विवाह' आदि प्रमुख एकांकी हैं। इस धारा के अन्य एकांकीकारों में जगदीश प्रसाद माथुर की 'मेरी बाँसुरी', 'भोर का तारा' तथा 'कलिंग विजय', उपेन्द्रनाथ अश्क की 'पापी', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'पतित', 'अधिकार का रक्षक', 'स्वर्ग की झलक', 'विवाह के दिन' आदि एकांकी प्रमुख हैं।

3.3.4 प्रसादोत्तर युग

इस युग में सफल एकांकीकारों की पीढ़ी एकांकी लेखन में प्रवृत्त हुई। इस युग के लेखकों ने ऐतिहासिक, सामाजिक समस्या प्रधान, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक एकांकियों की रचना की। इस पीढ़ी से हिन्दी एकांकी की सुदृढ़ परम्परा प्रचलित हुई। भुवनेश्वर, डॉ. रामकुमार वर्मा, जगदीश चन्द्र माथुर, सेठ गोविन्ददास', 'उदयशंकर भट्ट', 'उपेन्द्रनाथ', 'वृन्दावन लाल वर्मा', 'भगवती चरण', 'चतुरसेन शास्त्री' आदि एकांकी लेखक इस युग में रचना-कर्म में रत रहे। इनमें से सेठ गोविन्ददास ने भारतीय संस्कृति और वर्तमान राजनीतिक समस्याओं के विविध चित्र प्रस्तुत किये। 'सच्चा धर्म', 'सच्ची पूजा', 'प्रायश्चित', 'स्पर्धा', 'फाँसी', 'पाप का घड़ा', 'कृषियज्ञ', 'दो मूर्तियाँ' और 'धरोहर' प्रसिद्ध एकांकी हैं जिनमें भुवनेश्वर पर वर्नाड शॉ का प्रभाव दिखाई देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'सिकन्दर', 'शैतान', 'प्रतिभा का विवाह' और 'कारवाँ' उनके प्रमुख एकांकी हैं। जगदीशचन्द्र माथुर ने ऐतिहासिक और सामाजिक प्रश्नों को लेकर श्रेष्ठ एकांकी ग्रंथ लिखे हैं। उन्होंने 'भोर का तारा', 'खण्डहर', 'रीढ़ की हड्डी' आदि प्रसिद्ध एकांकी लिखीं।

3.3.5 स्वातंत्र्योत्तर काल

यद्यपि कुछ समीक्षकों ने प्रसाद युग से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक एकांकी साहित्य को आधुनिक युग से पुकारा है किन्तु जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, प्रसाद युग में आधुनिक हिन्दी एकांकी का नवीन रूप सामने आया है। उसके बाद उनकी सुदृढ़ परम्परा प्रारम्भ हुई और वर्तमान काल में उसके अनेक प्रयोग परिलक्षित हो रहे हैं। इस कारण हिन्दी एकांकी की विकास यात्रा के आधुनिक युग को तीन भागों में विभाजित किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी एकांकी के क्षेत्र में नवीनतम प्रयोग होने लगे। रेडियो ने इस विधा को श्रृव्य भी बनाया तथा रेडियो रूपक नाम से एक नवीन विधा विकसित हो गई। इस काल में मोहन राकेश, विपिन कुमार अग्रवाल, शान्ति मेहरोत्रा, विनोद रस्तोगी, चिरंजीत सत्येन्द्र शरत, अज्ञेय, देवराज दिनेश, सुरेन्द्र वर्मा, 'भारत भूषण आदि नये एकांकीकारों ने काव्यात्मक, नाटकीयता एवं शास्वत मानवीय प्रश्नों का प्राधान्य रखा है। ये एकांकी रेडियो पर प्रसारित करने व रंगमंच पर अभिनय करने में सफल हैं।

इस प्रकार हिन्दी एकांकी का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है और आज यह एक समृद्ध विधा बन गई है। इस विकास परम्परा के प्रारम्भ में रंगमंचीय एकांकियों में अधिक अन्तर न होने के कारण ये एकांकी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित नहीं होती हैं। आज इस क्षेत्र में नई पीढ़ी के लेखक संलग्न हैं और यह विद्या अबाध चल रही है।

3.4 राजस्थान में एकांकियों का विकास

आधुनिक एकांकी पाश्चात्य साहित्य की देन है। यह नाटक साहित्य का वह प्रधान रूप है, जिसके माध्यम से मानव जीवन के किसी एक पक्ष, एक चरित्र, एक कार्य अथवा एक भाव की कलात्मक व्यंजना की जाती है। नाटक और एकांकी में वही अन्तर है जो उपन्यास और कहानी में है। कथावस्तु, पात्र-विधान, संवाद और रंग संकेत इसके प्रमुख तत्त्व हैं। एकांकी में स्थान, काल तथा कार्य के संकलन का निर्वाह आवश्यक माना गया है। मानव की असंख्य अभिरूचियों के अनुसार एकांकी के विषय भी असंख्य हैं। हिन्दी एकांकी का वास्तविक आरम्भ ई. सन् 1930 से कहा गया है। सामान्यत. जयशंकर प्रसाद के 'एक घूंट' (1929) को हिन्दी का पहला एकांकी होने का गौरव प्राप्त है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण हिन्दी एकांकी में विषय और शैली की दृष्टि से निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। आधुनिकतम समकालीन एकांकी आधुनिक बोध को उजागर करने का प्रयास है।

राजस्थान में रामप्रकाश थियेटर में (जयपुर) सन् 1878 और गंगा थियेटर (बीकानेर) में 1932 में तथा भवानी नाट्यशाला झालावाड़ में राजाश्रय प्राप्त नाट्य विधा के मंचीय प्रदर्शनों का संकेत है। राजस्थान में पारसी थियेटर्स का विकास रहा है। हिन्दी एकांकीकारों में डॉ. रामचरण महेन्द्र, डॉ. सरनाम सिंह अरूण, डॉ. सुधीन्द्र, देवीलाल सामर, राजानंद राजेन्द्र सक्सेना, हमीदुल्ला, आर.जेड. उस्मान, ओंकार नाथ दिनकर, बद्री प्रसाद पंचोली, रामगोपाल गोयल आदि प्रमुख हैं।

प्रवृत्तियों के अनुसार ध्वनि एकांकियाँ नये युग की एक नवीनतम विधा है। यह भी निरन्तर विकसित होती जा रही है। अब नाटक ने स्वयं को लोगों के साथ जोड़ लिया है और टी.वी. के द्वारा अब यह दर्शकों के द्वार तक पहुँच गया है। यह अपने आप में एक क्रांतिकारी परिवर्तन है।

श्री महावीर सिंहल के एकांकी सन् 1955 से जयपुर आकाशवाणी केन्द्र स्थापित होने वाले वर्ष के प्रसारित होने लगे। आपकी प्रथम एकांकी 'रणथम्भौर' मई 1955 में जयपुर आकाशवाणी से प्रसारित हुआ जो चार बार प्रसारित किया गया था। सिंहल का गोराबादल (1955), कृष्णकुमारी (1956), ताजमहल (1957), पद्मिनी की बहिन (1968), पन्नाधाय (1963), तरंगवती (1964), प्रकाश, अंधकार और मुक्ति (1960), कपाल कुण्डला (1956), दीवार फिर गिर गई (1962) आदि हैं। डॉ. नन्द किशोर आचार्य कृत 'देहान्तर' आकाशवाणी द्वारा वर्ष 1990 में सर्वश्रेष्ठ नाटक के रूप में पुरस्कृत हुआ है। 'किसी और का सपना', 'किंमिदम् भक्षम्', 'पागल घर', 'जूते', 'गुलाम-बादशाह', 'हस्तिनापुर' आदि भी अपनी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। श्री हमीदुल्ला सुविख्यात नाटककार एवं रंगकर्मी हैं। नाटक के क्षेत्र में मीरां सम्मान से अलंकृत हो चुके हैं। 'एक और युद्ध', 'समय संदर्भ', 'उलझी आकृतियाँ', 'उत्तर उर्वशी', 'दरिन्दे', 'खयाल' आदि बीस से अधिक नाटक आप लिख चुके हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.5 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

प्रश्न- 1. एकांकी के तत्त्वों का विस्तार से विवेचन कीजिए।

उत्तर – **एकांकी के तत्त्व –** एकांकी में भी वही तत्त्व होते हैं जो उपन्यास, कहानी या नाटकों में होते हैं, परन्तु उनकी प्रकृति अलग होती है। एकांकी के मुख्यतया नौ तत्त्व माने जाते हैं – कथानक, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, संकलन-त्रय व देशकाल, भाषा-शैली, उद्देश्य, अभिनयशीलता एवं प्रभावऐक्य। यहाँ इन सभी तत्त्वों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है –

1. कथानक – एकांकी का कथानक कहीं से भी लिया जा सकता है, किन्तु वह संक्षिप्त, सुगठित और सांकेतिक होता है। कथाकन छोटा होता है और उसमें एक ही कार्य या घटना की प्रधानता रहती है। एकांकी में मुख्य घटना के अतिरिक्त सहायक घटनाओं के लिए अवकाश नहीं होता है। एकांकी में कार्य का विकास बड़ी तीव्र गति से होता है, इसलिए उसमें कथा अपने लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़नी चाहिए। नाटक में कथानक की पाँच अवस्थाएँ मानी जाती हैं – 1. आरम्भ, 2. उत्कर्ष, 3. प्राप्त्याशा, 4. नियताप्ति, 5. फलागम। एकांकी में कार्य विकास की उक्त अवस्थाओं में आरम्भ और फलागम में अधिक दूरी नहीं होनी चाहिए, बीच की अवस्थाओं को संक्षिप्त स्थान देना चाहिए। अच्छा एकांकी वही माना जाता है जो यथाशीघ्र फलागम प्रदर्शित करे। एकांकी के कथानक में प्रत्यक्षता और दृश्यात्मकता की विशेषताएँ अनिवार्य हैं। इसमें अन्तर्द्वन्द्व की तीव्रता होनी चाहिए, तभी एकांकी का कथानक प्रभावशाली बन पाता है।

2. पात्र या चरित्र-चित्रण – एकांकी में पात्र-परिकल्पना एवं चरित्र-चित्रण की विशेषताएँ होती हैं। एकांकी में पात्रों की संख्या सीमित होती है। एकांकीकार को सीमित पात्रों की चरित्र-रचना में भी सीमित रेखाओं से काम लेना पड़ता है। इस कारण वह सफलतापूर्वक उन पात्रों को निजी व्यक्तित्व प्रदान करता है उसमें पात्र की एक-एक भंगिमा और उसके शब्द की अनुतान, मंच पर पात्र की एक-एक गति, पात्र के व्यक्तित्व के गढ़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एकांकीकार चाहे तो स्वतन्त्र व्यक्तित्व के पात्रों की परिकल्पना करे, विशिष्ट कोटि के पात्रों की सृष्टि करे अथवा ऐसे पात्र रखे जो किसी वर्ग, प्रवृत्ति, विचार या भावना के प्रतीक हों। केवल शर्त शह है कि उसके पात्र सजीव, विश्वसनीय और प्रभावशाली होने चाहिए। उनमें स्वाभाविक होनी चाहिए और वे कोरे आदर्शों के पुतले नहीं होने चाहिए।

एकांकी के पात्रों का चरित्र-चित्रण अप्रत्यक्ष शैली में होना चाहिए। लेखक उनके विषय में अपनी ओर से कम कहे, पात्रों के आचरण या कार्यों से ही उनका चरित्र सामने आना चाहिए। इसलिए उनके कथोपकथन सशक्त होने चाहिए और उद्देश्य से उनका सीधा सम्बन्ध होना चाहिए।

3. कथोपकथन या संवाद – संवाद एकांकी के प्राण-तत्त्व माने जाते हैं। एकांकीकार अपने कथ्य को कथोपकथन के द्वारा ही कहता है। इसलिए एकांकी के संवादों में सजीवता, स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, रोचकता, वाग्-वैदग्ध्य, व्यंजनात्मकता, द्वन्द्वात्मकता इत्यादि विशेषताएं होनी चाहिए। एकांकी के संवादों में ऐसा एक भी संवाद नहीं होना चाहिए, जो उसके मूल लक्ष्य से प्रत्यक्षत: सम्बद्ध न हो। एकांकी के संवादों में सरलता, गतिशीलता एवं वातावरण के निर्माण की क्षमता होनी चाहिए। संवाद छोटे-छोटे एवं दृश्यात्मक होने चाहिए।

4. संकलन-त्रय – एकांकी में लघु आकार में एक घटना के द्वारा तीव्रता से कार्य-सिद्धि दिखाई जाती है। इसलिए इसमें कार्य, काल और स्थान की एकता होनी चाहिए। एकांकी की समस्त घटन एँ एक ही स्थान पर और यथासम्भव थोड़े से समय में होनी चाहिए। कुछ समीक्षकों का मत है कि एकांकी में संकलन-त्रय उपयोगी सिद्ध हो सकता है, परन्तु उसे कठोरतापूर्वक आवश्यक नहीं बनाया जा सकता। वैसे भी संकलन-त्रय उपयोगी सिद्ध हो सकता है, परन्तु उसे कठोरतापूर्वक आवश्यक नहीं बनाया जा सकता। वैसे भी संकलन-त्रय का निर्वाह देशकाल, उद्देश्य आदि तत्वों में समाविष्ट हो जाता है।

5. देशकाल या वातावरण – एकांकी के कथानक में प्रस्तुत घटनाएं सार्वजनिक न होकर विशिष्ट देश-काल में ही घटती हैं और स्त्री-पुरुष किसी एक देश काल में ही अपने जीवन के क्रिया-व्यापार करते हैं। इसलिए एकांकी में देशकाल या वातावरण का निर्माण आवश्यक है। ऐतिहासिक एकांकियो में तो इसका महत्त्व और भी अधिक है। वातावरण की कुछ सृष्टि तो मंच व्यवस्था से पूरी हो जाती है। इसके लिए एकांकीकार को आवश्यक 'रंग-संकेत' देने चाहिए। निर्देशक उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी करता है। वातावरण सृष्टि के लिए पात्रों की वेशभूषा, बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्द और पात्रों के व्यवहार पर एकांकीकार को विशेष ध्यान देना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. भाषा-शैली – एकांकी में प्रयुक्त होने वाली भाषा भी विशेष प्रकार की होती है। एकांकी की भाषा में वह विशेषता होनी चाहिए कि जिससे वह कई स्तरों पर अर्थ की व्यंजना कर सके। सांकेतिकता के द्वारा कथ्य और चरित्रों के विविध पक्षों को क्रमशः उद्‌घाटित कर सके, भावनाओं के उतार-चढ़ाव को स्पष्ट कर सके। एकांकी की भाषा वास्तविक बोलचाल की भाषा के निकट हो तथा पात्रों की शिक्षा-दीक्षा, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक स्थिति के अनुकूल हो। उसे इतना मूर्त होना चाहिए कि लगे कि जैसे सब-कुछ हमारे सामने घटित हो रहा है। एकांकीकार अनेक शैलियों में अपने एकांकी की रचना कर सकता है, जैसे – यथार्थवादी, प्रतीकात्मक, काव्यात्मक इत्यादि। एकांकी की शैली का स्वरूप इससे भी प्रभावित होता है कि वह किस माध्यम में प्रस्तुत किया जायेगा। रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाने वाले एकांकी और रेडियो पर प्रसारित किये जाने वाले एकांकी की शैली में समानता नहीं होती है। भाव-सम्प्रेषण के लिए एकांकी में समुचित शैली का प्रयोग किया जाना चाहिए।

7. उद्देश्य – एकांकी का उद्देश्य सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, समस्यामूलक एवं सुधारात्मक आदि कैसा भी हो सकता है। उद्देश्य से कथानक संगठित रहता है। उद्देश्य से एकांकीकार के विचारों की अभिव्यक्ति होती है। सामान्यतः रचना में उद्देश्य स्पष्टतः ज्ञात हो जाता है परन्तु कभी-कभी पूरी तरह सम्प्रेषित नहीं होता है। इसलिए एकांकी के उद्देश्य स्पष्ट सुबोध होने चाहिए।

8. अभिनयशीलता – एकांकी दृश्यकाव्य होता है तथा उसकी रचना रंगमंच के लिए ही होती है। अतएव अभिनयशीलता एकांकी का प्रमुख तत्त्व माना जाता है। इसके लिए एकांकीकार को मंच को ध्यान में रखकर दृश्य योजना बनानी चाहिए। उसे बीच-बीच में आवश्यक 'रंग-संकेत' और 'अभिनय-संकेत' भी देने चाहिए। जिन घटनाओं अथवा दृश्यों को रंगमंच पर उपस्थित नहीं किया जा सके, उन्हें पात्रों के संवादों के माध्यम से ही सूचित कर देना चाहिए। एकांकी के सफल अभिनय के लिए उसमें संवाद, भाषा-शैली, वातावरण आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। रेडियो एकांकी में इसके लिए ध्वनि-संकेत दिए जाने चाहिए।

9. प्रभाव-ऐक्य – यह एकांकी का मुख्य तत्त्व माना जाता है। इसके सम्बन्ध में सिडनी वॉक्स का कथन है कि ''एकांकीकार को रचना करते समय प्रभाव-ऐक्योत्पादन का पूरा ध्यान रखना चाहिए।'' प्रभाव-ऐक्य का तात्पर्य है – पाठक या दर्शक के मन पर पड़ने वाला समग्र प्रभाव। प्रभाव की एकता रहने पर ही एकांकी की सफलता निर्भर करती है।

10. दृश्य-विधान – पूर्वोक्त सभी तत्त्वों का एकांकी में पूर्णत्या निर्वाह होना चाहिए। वर्तमान में इन तत्त्वों के अलावा एक अन्य तत्त्व और माना जाता है, वह तत्त्व है – दृश्य विधान। इसका तात्पर्य यह है कि एकांकी में एक अंक में पाँच दृश्य हो सकते हैं और एक दृश्य की घटनाओं से दूसरे दृश्य की सूचना मिलनी चाहिए। विद्वानों का मत है कि आदर्श एकांकी में तीन ही दृश्य पर्याप्त होते हैं। इस तरह एकांकी को दृश्य-विधान का भी ध्यान रखना चाहिए।

निष्कर्ष – सार रूप में इन सभी तत्वों का निर्वाह होना चाहिए। इनके उचित संयोजन से एकांकी रचना प्रशस्त बन जाती है और उसमें सम्प्रेषणीयता आ जाती है।

प्रश्न- 2. एकांकी एवं नाटक के भेद को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – एकांकी नाटक का ही एक रूप विशेष है। कलेवर की दृष्टि से तो यह नाटक से छोटा होता है, साथ ही इन दोनों में कुछ और भी अन्तर हैं। एकांकी और नाटक के भेद को समझना एकांकी संबंधी स्पष्ट धारणा के लिए आवश्यक है, क्योंकि नाटक की पुरानी विधा के सुपरिचित स्वरूप के अन्तर्गत ही एकांकी के विवेचन, मूल्यांकन के प्रयास की आशंका सदा बनी रहती है। इन दोनों में जो अन्तर है, उसे निम्नलिखित बिन्दुओं में समझा जा सकता है –

1. एकांकी में एक ही अंक होता है, जबकि नाटक अनेक अंकों पर आधारित नाट्य-विधा है।
2. एकांकी में घटना की एकता अनिवार्य है, जबकि नाटक में एकाधिक कथा, उपकथा, घटना आदि हो सकते हैं।
3. एकांकी में चरित्रों के क्रमिक तथा धीमे विकास की सुविधा नहीं रहती है। द्रुत गति से चरित्र के वांछित पक्ष के निदर्शन के बाद कार्य को परिणति की ओर अग्रसर करना लक्ष्य होता है। इसके विपरीत नाटक में चरित्रों के जीवन के विविध पक्षों को जीवानानुभव के घात-प्रतिघात के आधार पर क्रमशः विकसित किया जाता है।
4. एकांकी आरम्भ से ही अपनी परिणति की ओर द्रुत गति से बढ़ता है, जबकि नाटक में विकास-क्रिया बहुत धीमी और मन्थर होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. एकांकी के कथानक में घनत्व और केन्द्रीयता का तत्त्व विद्यमान रहता है, जबकि नाटक में इस दृष्टि से अधिक विस्तार, वैविध्य और फैलाव होता है।

6. द्वन्द्व की दृष्टि से भी एकांकी बहुत गतिशील और एकांतिक प्रभाव-सम्पन्न विधा है।

7. एकांकी के कथोपकथन भी नाटक की अपेक्षा अधिक चुस्त, कसावपूर्ण और सूत्रात्मक होते हैं।

8. नाटकों के घटना प्रवाह और चारित्रिक विकास में काफी उतार-चढ़ाव और वैविध्य-सम्भव है, जबकि एकांकी में ये दोनों तत्त्व तेज दौड़ की तरह अपने गन्तव्य की ओर उन्मुख होते हैं।

निष्कर्ष– इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि अनेक समानताओं के होने पर भी उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण भेदों के कारण ही नाटक और एकांकी को अलग-अलग तथा स्वतंत्र नाट्य विधाएँ स्वीकार किया जाता है।

3.6 सारांश

आजादी के पूर्व देशी रियासतों में बिखरे, असंगठित, राजपूताना और आज राजस्थान में विकसित इस प्रान्त की पूर्व बूँदी रियासत में जन्मे लज्जाराम मेहता ने हिन्दी का आँगन बुहारा, पत्र-साहित्य को जन्म दिया, उपन्यास लेखन की परम्परा डाली और बूँदी को 19वीं शताब्दी के अंतिम ठहराव में पुनः सांस्कृतिक नगरी के रूप में स्थापित किया। यह एक सुखद आश्चर्य है कि द्विवेदी युग की महत्त्वपूर्ण कड़ी प्रतापनारायण मिश्र और बालमुकुन्द गुप्त के सहयोगी मेहता लज्जाराम हिन्दी के गगन मण्डल में देदीप्यमान सितारे की भाँति आलोकित हैं। राजस्थान में हिन्दी गद्य की विधाओं का विकास 19वीं शताब्दी में देखने को मिलता है। नाटक के क्षेत्र में भी सर्वाधिक कार्य राजस्थान में ही हुआ है और भविष्य में भी अनेक आशाएँ हैं।

3.7 अभ्यास प्रश्नावली

प्रश्न-1. एकांकी किसे कहत हैं ?

प्रश्न-2. भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की एकांकी लेखन का भेद स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-3. राजस्थान के पांच एकांकीकारों के नाम लिखिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई- 4 : दीपदान

(डॉ. रामकुमार वर्मा)

संरचना

4.0 लेखक परिचय

4.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

4.2 दीपमान एक समीक्षा

4.2.1 प्रस्तावना

4.3 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

4.3.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

4.3.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

4.3.3 निबंधात्मक प्रश्न

4.4 सारांश

4.5 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.0 लेखक परिचय

एकांकी साहित्य के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ कुशल कलाकारों में डॉ. रामकुमार वर्मा का नाम सम्मान से लिया जाता है। आपने एकांकी टेक्निक को मांज कर पाश्चात्य नाटकों के समकक्ष रख दिया है। आप पाश्चात्य शैली पर अभिनयात्मक और एक ही लम्बे दृश्य की एकांकी के जनक माने जाते हैं। आपका लेखन क्षेत्र ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व यथार्थवादी सामाजिक दृष्टिकोण है। आपने मध्यवर्गीय समस्याओं को लेकर अनेक यथार्थवादी एकांकियों की रचना की है जिनका आधार आधुनिक जीवन के यथार्थ को चित्रित करना रहा है। ये सभी चित्र यथार्थ जीवन के लिये गये हैं। डॉ. वर्मा हमेशा अभ्युत्थानशील क्षणों के पक्षपाती हैं। बाह्य तथा सामाजिक द्वन्द्वों की अपेक्षा मंगलमय भावनाओं और जीवन के भव्य चित्रों की रचना तथा मानव हृदय के शाश्वत प्रश्नों की ओर इंगित करना उन्हें सदैव पसन्द रहा है। आप मनोवेगों की अभिव्यक्ति में पूर्णत: भारतीय एवं काव्यमय प्रतीत होते हैं। वर्मा जी को सर्वाधिक सफलता ऐतिहासिक-आदर्शवादी एकांकी लिखने में मिली है। आपकी प्रमुख कृतियाँ – 'पृथ्वीराज की आँखें', 'रेशमी टाई', 'चारू मित्र', 'विभूति, 'सप्त किरण', 'रूपरंग', 'कौमुदी महोत्सव', 'ध्रुवताग्निका', 'ऋतुराज', 'रजत रश्मि', 'दीपदान', 'काम कन्दला', 'इन्द्रधनुष' और 'रिमझिम' है। 'दीपदान' एकांकी में पन्नाधाय का अमर बलिदान बहुत ही रोचक और सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया है।

दीपदान – डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा विरचित प्रस्तुत एकांकी मेवाड़ की ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। इसे ऐतिहासिक कोटि की आदर्श मूलक एकांकी कहा जा सकता है। इसमें एक ओर स्वामी-भक्ति, राजनिष्ठा एवं कर्त्तव्य-भावना का आदर्श उपस्थित किया गया है और दूसरी ओर राजपूती गौरव, त्याग, बलिदान आदि का मार्मिक चित्रण किया गया है। प्रस्तुत एकांकी में ऐतिहासिक कथा-सूत्रों को जोड़कर एकांकीकार ने अपनी नाट्य-प्रतिभा से रोचकता एवं मार्मिकता का समावेश किया है। ऐतिहासिक एवं जातीय आदर्शों पर आधारित होते हुए भी यह सामयिक चेतना के लिये प्रेरणादायी है। इसमें राष्ट्रप्रेम और कर्त्तव्यनिष्ठा का संदेश व्यक्त हुआ है।

4.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''सारे नगरबासी यह त्यौहार मना रहे हैं। नहीं मना रही हो, तो तुम! धाय माँ तुम! पहाड़ बनने से क्या होगा? राजमहल पर बोझ बनकर रह जाओगी, बोझ! और नदी बनो तो तुम्हारा बहता हुआ बोझ, पत्थर भी अपने सिर पर धारण करेंगे, आनन्द और मंगल तुम्हारे किनारे होंगे, जीवन का प्रवाह होगा, उमंगों की लहरें होंगी जो उठने में गीत गायेंगी, गिरने में नाच नाचेंगी।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'धरोहर' के डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा रचित पाठ 'दीपदान' से अभिहीत है। यह एकांकी पन्नाधाय के ऐतिहासिक त्याग एवं स्वामिभक्ति पर आधारित है। चित्तौड़ में दीपोत्सव मनाया जा रहा है किन्तु पन्ना राजकुमार उदयसिंह की रक्षा करना अपना परम लक्ष्य समझती है और उसके साथ महल में ही रहती है। प्रसंगवश रावल रूपसिंह की लड़की सोना आकर पन्ना से वार्तालाप करती हुई उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा पर आक्षेप करती है।

व्याख्या – सोना कहती है कि आज इस नगर में सभी लोग दीपदान का पर्व पूर्व हर्षोल्लास से मना रहे हैं, किन्तु धाय माँ! केवल तुम हो जो इस पर्व में शामिल नहीं हो रही हो। क्योंकि तुम राजकुमार की सुरक्षा का ध्यान रखने के कारण महल से बाहर नहीं जा रही हो। लोग तुम्हारे बारे में कहते हैं कि वह तो महल में अरावली पर्वत बनकर बैठ गई है और राजकुमार के मार्ग में बाधक बनकर स्वयं कष्ट सहन कर रही है। किन्तु इस पहाड़ की तरह अचेतन, कठोर और बाधक बनने से क्या लाभ है ? तुम्हारा यह व्यवहार अच्छा नहीं है। तुम इस तरह का कठोर आचरण करके राजमहल की छवि बिगाड़ रही हो और अनावश्यक शक-संदेह को जन्म दे रही हो। इसकी अपेक्षा यदि तुम नदी बनकर बहो अर्थात् राज्य के अन्य लोगों पर विश्वास पर कोमल व्यवहार करो तो जिस प्रकार नदी की धारा के भार को पाषाणखण्ड अपने ऊपर धारण करते हैं, उसी प्रकार चित्तौड़ के लोग भी तुम्हारे बोझ को, तुम्हारे कार्य की गुरुता को स्वयं अपने सिर पर धारण कर लेंगे और तुम्हारी प्रत्येक बात को सहर्ष स्वीकार कर लेंगे। उस स्थिति में आनन्द और मंगल तुम्हारी जिन्दगी रूपी नदी के किनारे बनेंगे।

सोना की इस वार्ता का अभिप्राय यह है कि जब राजमहल में शक-संदेह का वातावरण ही नहीं होगा तो सर्वत्र हँसी-खुशी का वातावरण स्वयं संचारित होगा। सारी प्रजा और राज्याधिकारी भी निश्चिन्त रहेंगे, जनता आनन्दित रहकर उमंग का अनुभव करेगी। चारों ओर उत्सव में नाच-गान का मधुर वातावरण रहेगा। धाय माँ होने के नाते सभी जन तुम्हारा सम्मान करेंगे। जिस बनवीर को तुम राजद्रोही मान रही हो, तब वह भी तुम्हारे अनुकूल बन जायेगा।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में धाय माँ का पहाड़ बनकर महल में रहने से यह स्पष्ट होता है कि महाराणा सांगा के भाई पृथ्वीराज का दासीपुत्र बनवीर स्वयं राज-सिंहासन पर आसीन होने का षड्यंत्र रच रहा है। यद्यपि वह स्वयं मेवाड़ का अर्थात् राजकुमार उदयसिंह और विक्रमादित्य का अपने आपको संरक्षक बताता है, किन्तु वह धोखेबाज है। पन्ना इसी कारण से राजमहल में रहकर उदयसिंह की परवरिश व सुरक्षा करती है।

2. सोना दुष्ट बनवीर की कृपापात्र होने के कारण पन्ना पर प्रत्यक्ष आरोप लगातीहै।

3. मेवाड़ राजवंश के प्रति पन्ना की निष्ठा और सजगता का स्पष्ट संकेत मिलता है।

4. भाषा सरल, सुबोध और प्रतीकात्मक है।

5. शैली भावात्मक एवं सूत्रात्मक है।

(2)

''पागलपन कहीं कम होता है, पहाड़ बढ़कर कभी छोटे हुए हैं, नदियाँ आगे बढ़कर कभी लौटी हैं, फूल खिलने के बाद कभी कली बने हैं ? सब आगे बढ़ते हैं। नहीं बढ़ती हो तो केवल तुम। सदा एक-सी। तुम्हारा पागलपन भी सदा एक-सा।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'धरोहर' के डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित एकांकी 'दीपदान' से अवतरित है। जिसमें बताया है कि रावल रूपसिंह की पुत्री सोना पन्नाधाय के पास आती हैं और कहती हैं कि कुँवर उदयसिंह को भी इस उत्सव में सम्मलित होने दो। पन्ना कहती है कि तुम तो बनवीर की कृपा पाकर पागल हो गई हो। कुँवर उदयसिंह को देखकर तो तुम्हारा पागलपन और भी अधिक बढ़ गया है। पन्ना के इस कथन को सुनकर सोना कहती है कि –

व्याख्या – धाय माँ! मेरा पागलपन अब किसी तरह से कम नहीं होगा। वैसे भी संसार में जो वस्तु एक बार बड़ी हो जाती है, वह चाहकर भी छोटी या कम नहीं होती है, जैसे – पहाड़ बड़े होने पर छोटे नहीं होते हैं, नदियाँ आगे बढ़कर पुन: लौटती नहीं हैं, फूल एक बार खिल जाते हैं तो पुन: कली नहीं बनते हैं अत: संसार में सब आगे ही बढ़ते रहते हैं। सोना कहती है कि मेरा पागलपन जिस उल्लास के साथ बढ़ रहा है वह आगे बढ़ता ही रहेगा, किन्तु तुम अपनी जगह से आगे नहीं बढ़ोगी। तुम इस राजमहल में पहाड़ बनकर डटी हुई हो और कुँवर की रक्षा के कारण सब पर शक करती हो इसलिये तुम सदा एक जैसी दिखाई देती हो। आज सारे नगर में दीपदान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का उत्सव मनाया जा रहा है, किन्तु उसमें न स्वयं शामिल हो रही हो और न कुँवर को भी सम्मिलित होने दे रही हो। इस प्रकार तुम्हारा पागलपन सदा एक जैसा ही रहता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में सोना का अभिप्राय यह है कि कुँवर की सुरक्षा के प्रति पन्ना को अधिक चिन्तित नहीं रहना चाहिये और किसी पर शक नहीं करना चाहिये।

2. पन्ना को धाय माँ ही बने रहना चाहिये। उसे राजमाता बनने का प्रयास नहीं करना चाहिये, इसी को सोना ने पन्ना का पागलपन बताया है।

3. अवतरण की भाषा सरल और प्रतीकात्मक है।

(3)

''आँधी में आग की लपटें तेज ही होती हैं, सोना ! तुम भी उसी आँधी में लड़खड़ा कर गिरोगी। तुम्हारे ये सारे नुपुर बिखर जायेंगे। न जाने किस हवा का झोंका इन गीतों की लहरों को निगल जायेगा। चित्तौड़ राग-रंग की भूमि नहीं है, जौहर की भूमि है, यहाँ आग की लपटें नाचती हैं, सोना जैसी रावल की लड़कियाँ नहीं।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'धरोहर' के डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा विरचित एकांकी 'दीपदान' पाठ से उद्धृत है, जिसमें पन्ना बनवीर की कूटनीति की ओर संकेत करती हुई सोना से कहती है तो सोना कहती है कि तुम विद्रोह की बातें करती हुई अच्छा काम नहीं कर रही हो। इसी प्रसंग में पन्नाधाय सोना को फटकारती है।

व्याख्या – पन्नाधाय सोना को फटकारती हुई कहती है कि जब आँधी चलती है तो आग की छोटी-सी चिनगारी तेज होकर विकराल लपटों का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार जब महाराणा साँगा के वंश के ख़िलाफ़ बनवीर जैसे लोग कूटनीति चलकर विद्रोह बढ़ाते रहेंगे तो वही नीति और विद्रोह एक दिन आँधी का रूप धारण कर लेंगे और उसमें मेवाड़ का राणा राजवंश सदा-सदा के लिये नष्ट हो जायेगा। उस आँधी में तुम भी लड़खड़ा कर गिर जाओगी और तुम्हारे ये नुपुर बिखर जायेंगे। विद्रोह की इस आँधी से इस नगर में कुछ भी नहीं बचेगा। उस समय न जाने किस हवा का कौन-सा झौंका तुम्हारे गीतों की मधुरता को निगल जायेगा। सोना ! यह चित्तौड़ की भूमि वीरों की भूमि है, यह कोई राग-रंग की भूमि नहीं है। यह सदा ही शौर्य, पराक्रम और जौहर की भूमि रही है। इसलिये यहाँ पर नाच-गान नहीं विद्रोह की लपटें नाचने लगेंगी तो तुम्हारे नुपुर ख़ुद-ब-ख़ुद बिखर जायेंगे। यहाँ की राजकुमारियाँ आग की लपटों में नाचती हैं। तुम्हारी तरह ऐसे उत्सवों में नहीं।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में पन्नाधाय के कथन से भावी अनिष्ट की ओर संकेत मिलता है।

2. राजपूतनियों के जौहर की महिमा और शौर्य परम्परा का गौरवशाली उल्लेख किया गया है।

3. पन्ना की कर्त्तव्यनिष्ठा एवं सजगता एवं सोना की ना समझी व्यक्त हुई है।

4. भाषा सरल, भावात्मक और प्रसंगानुकूल है।

5. आँधी और आग का व्यंग्यात्मक प्रयोग अत्यंत प्रशंसनीय है।

(4)

''भवानी ! तुमने मेरे हृदय को कैसा बना कर दिया। मुझे बल दो कि मैं राजवंश की रक्षा में अपना रक्त दे सकूँ। अपने लाल को दे सकूँ। यह राजपूतानी का व्रत है। यही राजपूतानी की मर्यादा है। यही राजपूतानी का धर्म है। मेरा हृदय वज्र बना दो। माता के हृदय के स्थान पर पत्थर रख दो, जिससे ममता का स्त्रोत बन्द हो जाये। भवानी ! मैं चित्तौड़ की सच्ची नारी बनूँ।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'धरोहर' के डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित एकांकी 'दीपदान' से लिया गया है, जिसमें बताया है कि जब बनवीर विद्रोह पर उतर आता है और वह राजकुमार उदयसिंह को मारना चाहता है तब पन्ना अपने पुत्र चन्दन को उदयसिंह की शैय्या पर सुलाने का निश्चय करती है, उसके प्रस्ताव को सुनकर सामली आश्चर्य में पड़ जाती है तब पन्ना अपनी कुल देवी का स्मरण कर भवानी से विनती करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – हे राणा वंश की कुलदेवी तुलजा माँ ! इस समय मेरा हृदय अनिश्चय की स्थिति में घिरा हुआ है। मैं पुत्र मोह के कारण अपने कर्त्तव्य को पूरा करने में संकोच कर रही हूँ। हे भवानी ! तुमने मेरे हृदय को इतना कमज़ोर क्यों बना दिया। हे माता ! तुम मुझे इतनी शक्ति दो कि महाराणा राजवंश की रक्षा में अपना रक्त न्यौछावर कर सकूँ। मैं राज कुँवर के स्थान पर अपने पुत्र चन्दन को लिटाकर बनवीर की प्यासी तलवार को शान्त कर सकूँ। यह मुझ राजपूतानी का व्रत है। राजपूतानी अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन करती है। अपनी आन-बान और मर्यादा की रक्षा करती है। मैं अपनी मर्यादा की रक्षा के लिये अपने पुत्र को कुर्बान कर सकूँ और जिसका नमक खाया है, उसके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकूँ।

पन्ना कहती हैं कि हे भवानी ! आज तुम मेरे हृदय को बज्र के समान कठोर बना दो ताकि मैं अपने लख्तेज़िगर चन्दन को उदयसिंह के स्थान पर सुला सकूँ। ऐसा करने में एक माँ की ममता बाधा बन सकती है। अत: हे भवानी ! तुम एक माँ के हृदय के स्थान पर पत्थर रख दो ताकि इसमें ममता की सलिलें प्रवाहित न हो सकें। पन्ना अपनी अभिलाषा व्यक्त करती हुई आत्म निवेदन करती है कि हे भवानी ! चित्तौड़ की नारियाँ सदा की वीरांगनाएँ रही हैं। उन्होंने चित्तौड़ की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व बलिदान किया है। मैं भी चित्तौड़ की सच्ची नारी बन सकूँ। तुम मुझे ऐसी ही शक्ति प्रदान करो।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में पन्नाधाय के त्याग और स्वामिभक्ति का विकास स्पष्ट हुआ है।

2. राजपूती शौर्य और बलिदानी भावना का सहज परिचय मिलता है।

3. भाषा आवेशपूर्ण और प्रसंगानुकूल है।

4. शैली भावात्मक है।

(5)

''तुम्हारे अंगूठे से रक्तधार बही। अब हृदय से रक्त की धारा बहेगी तो मैं कैसे रोक सकूँगी, मेरे लाल ! मेरे चन्दन ! यह रक्त-धारा अपनी मातृ-भूमि पर चढ़ा दो। आज मैंने भी दीपदान किया है दीपदान ! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर बलिदान कर दिया है। ऐसा दीपदान भी किसी ने नहीं किया है। एक बार तुम्हारा मुख देख लूँ, कैसा सुन्दर और भोला मुख है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अंश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'धरोहर' के डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा विरचित एकांकी 'दीपदान' से अवतरित है, जिसमें बताया है कि बनवीर द्वारा विद्रोह किये जाने और कुँवर उदयसिंह की हत्या का षड्यंत्र पूरा करने पर पन्ना राजकुमार के स्थान पर अपने पुत्र चन्दन को सुला देती है और वह सिसकियाँ भरते हुए सोते हुए चन्दन को सम्बोधित करती हुई कहती है कि –

व्याख्या – आज जब तुम्हारे अँगूठे से रक्तधार प्रवाहित हुई, मैंने देखा तो बहुत दु:ख हुआ, किन्तु अब पापी बनवीर की तलवार की धारा से तुम्हारे हृदय से रक्त-धारा बहेगी, तो मैं उसे कैसे रोक सकूँगी ? तुम्हारे अँगूठे की रक्त-धार को तो मैंने पट्टी बाँधकर रोक दिया था, किन्तु उस घाव को मैं कैसे भर सकूँगी ? भावी अनिष्ट की आशंका से पन्ना का हृदय व्यथित हो जाता है, फिर भी वह राजवंश की रक्षा के लिये अपने कोमल हृदय पर पत्थर रखकर अपने पुत्र का बलिदान करने के लिये तत्पर हो जाती है। वह सिसकियाँ भरने लगती है और भावावेश में आकर अपने पुत्र चन्दन को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे लाल ! तुम अपने रक्त की धारा इस मातृभूमि पर चढ़ा दो। आज दीपदान का उत्सव है। सभी लोग इस अवसर पर दीपदान कर रहे हैं। तुम भी मेरे जीवन के दीपक हो, तुम मेरे जीवन और कुल को प्रकाशमान करने वाले दीपक हो। आज मैं अपने इसी दीपक को रक्त-धार में प्रवाहित करने वाली हूँ, अगर मैं इस प्रयास में सफल हो गई तो अपने आप को धन्य मानूँगी।

पन्ना के इस कथन का आशय यह है कि हर पुत्र अपने वंश का दीपक होता है, यदि वह जीवन-दीप का बलिदान कर दे तो माँ का जीवन अंधकार मय बन जाता है। पन्ना अपने कुलदीप चन्दन को रक्त-धार में प्रवाहित कर दीपदान कर रही है। वह कहती है कि ऐसा दीपदान भी भला आज तक किसी ने किया है। वह आँसू बहाती हुई अपने पुत्र को लक्ष्य मानकर कहती है कि मैं एक बार अपने कुलदीप का मुख देख लूँ, वह कितना सुन्दर और भोला है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में पन्नाधाय की ममतापूर्ण व्यथा, उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा, स्वामिभक्ति और त्याग भावना का परिचय मिलता है।

2. इतिहास में पन्ना की स्वामिभक्ति अनुपम मानी गई है, इसलिये उसका दीपदान भी अद्वितीय और ऐतिहासिक है।

3. भाषा-शैली सरल, सुबोध, भावात्मक तथा प्रसंगानुकूल है जिसमें मातृ-हृदय की कोमल अभिव्यक्ति हुई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(6)

"धाय माँ ! तू मंगल-कामनाओं की देवी है। वे दीपदान करके चित्तौड़ का कल्याण करेगी। मैं भी चित्तौड़ का कल्याण करुँगा। एक बात कहूँ पन्ना ! मैं तुम्हें मारवाड़ में एक जागीर देना चाहता हूँ। वहाँ तुम्हारे लिये तुलज़ा भवानी का मन्दिर बनेगा, मन्दिर ! सारे लोग तुम्हें इतनी श्रद्धा से देखेंगे कि तुलज़ा भवानी और तुममें कोई अन्तर न ही न रहेगा।"

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'धरोहर' के डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा विरचित एकांकी 'दीपदान' से अवतरित है जिसमें बताया है कि जब बनवीर राजकुमार उदयसिंह की हत्या करने के लिए राजमहल में आता है तो वह पन्ना से कहता है कि आज तुमने दीपदान नहीं देखा। तब पन्ना कहती है कि मैं दीपदान देखने में नहीं, बल्कि करने में विश्वास करती हूँ। इसी प्रसंग में बनवीर अपना अभिप्राय स्पष्ट करता हुआ कहता है कि –

व्याख्या – धाय माँ अपने लाडले पुत्र की तरह कुँवर उदयसिंह का मंगल करना चाहती है। वह तो मंगल कामनाओं की देवी मानी जाती है। यदि वह कुँवर उदयसिंह को मेरे हवाले कर देगी तो यह सच्चा दीप-दान होगा और उसमें चित्तौड़ का ही कल्याण होगा। मैं भी चित्तौड़ का कल्याण करना चाहता हूँ और इस राज सिंहासन पर आसीन होकर महाराणा वंश की परम्परा को आगे बढ़ाना चाहता हूँ।

बनवीर पन्ना को लोभ-लालच में डालते हुए कहता है कि यदि तुम मेरा कहना मान जाओगी और उदयसिंह को मेरे हवाले कर दोगी तो मैं तुम्हें मारवाड़ की एक बहुत बड़ी जागीर दे दूँगा, वहाँ तुम अपना सुखमय जीवन बिता सकोगी। मैं वहाँ तुम्हारे लिये एक तुलज़ा भवानी का मन्दिर भी बनवा दूँगा, वह मन्दिर इतना भव्य होगा कि सारे लोग तुम्हें और उस मन्दिर को श्रद्धापूर्वक देखेंगे, तुम्हारी पूजा करेंगे। मैं तुम्हें अमर बनाना चाहता हूँ। मेरे अनुसार चलने पर तुम्हारा यश बढ़ेगा और इस चित्तौड़ राजवंश की परम्परा भी आगे बढ़ती रहेगी।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में बनवीर की कूटनीति व छद्म का स्पष्टीकरण होता है।

2. पन्ना को लालच देकर बनवीर अपना अभीष्ट पूरा करना चाहता है।

3. व्यंग्यात्मक अर्थ यह भी है कि यदि वह उदय को बनवीर के हवाले नहीं करेगी तो उसे भी मौत मिलेगी।

4. भाषा सरल किन्तु व्यंग्यात्मक है।

4.2 दीपदान एक समीक्षा

4.2.1 प्रस्तावना

हिन्दी एकांकी को नवीन और महत्त्वपूर्ण आयाम प्रदान करने वालों में डॉ. रामकुमार वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। उनकी अधिकतर एकांकी-रचनायें सामाजिक विसंगतियों, शाश्वत जीवन मूल्यों और आस्थावादी भावनाओं पर आधारित हैं। ऐतिहासिक एवं पौराणिक एकांकी लेखन में आपकी रचना-सामर्थ्य अप्रतिम मानी जाती है। उनकी प्रस्तुत 'दीपदान' एकांकी ऐतिहासिक कथानक पर आधारित है।

इस एकांकी में पन्नाधाय के इतिहास-प्रसिद्ध त्यागमय चरित्र को माध्यम बनाकर उत्कृष्ट राष्ट्रप्रेम और बलिदान का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। यह एकांकी आज भी अराजकतवादी और अलगाववादी शक्तियों के विरुद्ध देश-भक्ति की प्रेरणा देने में सफल माना जाता है। एकांकी के तत्त्वों के आधार पर इसकी समीक्षा इस प्रकार है –

4.2.1.1 कथावस्तु – 'दीपदान' एकांकी की कथावस्तु यद्यपि ऐतिहासिक घटना पर आधारित है, परन्तु लेखक ने इसमें अपनी कल्पना से कुछ परिष्कार किया है। दीपोत्सव की घटना और राग-रंग के दृश्य लेखक की कल्पना पर आधारित हैं, परन्तु पन्नाधाय के त्याग और बलिदान का कथानक ऐतिहासिक घटना है। एकांकी का प्रारम्भ कुँवर उदयसिंह और पन्नाधाय के वार्तालाप से होता है। रात्रि के समय कुँवर नाच देखना चाहता है, परन्तु पन्नाधाय उसे सुला देती है। इसी बीच बनवीर विक्रमादित्य की हत्या करके सैनिकों को राजमहल घेरने का आदेश देता है। वह स्वयं भी हाथ में खून से सनी तलवार लेकर राजमहल की ओर बढ़ता है। कुँवर की अनिष्ट की आशंका से पन्नाधाय तुरन्त ही कीरतबारी के सहयोग से सुरक्षा का उपाय करती है। वह उदयसिंह के स्थान पर अपने पुत्र चन्दन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

को सुलाती है और जब दुष्ट बनवीर आता है तो उसे शान्त करने की पूरी चेष्टा करती है। वह यह छिपाने की पूरी कोशिश करती है कि राजकुमार उदयसिंह के स्थान पर चन्दनसिंह सोया हुआ है। अन्त में काफी प्रतिरोध के बाद बनवीर सोते हुए चन्दन पर तलवार का प्रहार करता है। पन्ना जोर से चीख कर मूर्च्छित हो जाती है।

इस प्रकार एकांकी की कथावस्तु ऐतिहासिक घटना के अनुसार चित्रित की गई है। ऐतिहासिक विवरण के अनुसार पन्ना का त्याग अमर माना जाता है। एकांकीकार ने कथानक में स्वाभाविकता का निर्वाह किया है और कथानक विकास की सभी अवस्थाओं का ध्यान रखकर समाहार का उचित समायोजन किया है। इसमें रोचकता, कौतूहल, घटनाक्रम में तारतम्य और सुगठितता का पूरा ध्यान रखा गया है। परिणामस्वरूप इस एकांकी का अन्त अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। इससे नाट्य-संधियों और नाट्य-अंगों का प्रभावशाली प्रयोग किया गया है। कथानक अत्यन्त सरल, स्पष्ट और मार्मिक है।

4.2.1.2 चरित्र-चित्रण – प्रस्तुत एकांकी में सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। लेखक ने ऐतिहासिकता के अनुरूप उनके चरित्र को सँवारा है। इसके कथोपकथन चारित्रिक विकास में अत्यन्त सफल हैं। इसमें पन्नाधाय का चरित्र अत्यन्त सशक्त चित्रित हुआ है। कथानक के प्रारम्भ में उसे कुँवर के प्रति ममतामयी दिखाकर अन्त तक इसका निर्वाह किया गया है। जब दुष्ट बनवीर विद्रोह पर उतर आता है, तो कुछ क्षणों के लिए उसके मन में द्वन्द्व उठता है। वह द्वन्द्व भी इस बात का कि राजकुमार की रक्षा किस तरह हो। अन्त में वह राजकुमार को चुपचाप सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देती है और उसकी जगह अपने पुत्र चन्दन को सुला देती है। इस तरह वह त्याग और बलिदान का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती है। बनवीर का चरित्र भी ऐतिहासिक कथानक के अनुसार दिखाई देता है। राजकुमार उदयसिंह और चन्दन यद्यपि कथानक में अल्पकाल के लिए उपस्थित रहते हैं, परन्तु सारा कथानक उनको लेकर चलता है। एकांकीकार ने उनकी बालसुलभ चेष्टाओं का सुन्दर चित्रण किया है। कीरतबारी का चरित्र भी ऐतिहासिक पात्र की दृशि से प्रशस्य है। इस तरह एकांकी के सभी पात्रों का चरित्र भी ऐतिहासिक पात्र की दृष्टि से प्रशस्य है। इस तरह एकांकी के सभी पात्रों का चरित्र-विकास स्वाभाविक रूप में दिखाया गया है। इसमें कुल सात पात्र हैं तथा सभी पात्रों में सजीवता, गतिशीलता और ऐतिहासिक विश्वसनीयता दिखाई देती है। लेखक ने उनके द्वारा वर्तमान राष्ट्रीय परिवेश की समस्याओं का समाधान सांकेतिक करने की चेष्टा की है।

4.2.1.3 कथोपकथन या संवाद – एकांकी के संवादरोचक, संक्षिप्त, जनात्मक और चारित्रिक विशेषता के अनुरूप होने चाहिए। इस एकांकी में पन्नाधाय और बनवीर के संवादों में अत्यधिक पैनापन और ओजस्विता है। सोना के संवादों में अल्हड़पन तथा वाक्पटुता है तो सामली के संवाद नारीसुलभी कोमलता से व्याप्त हैं। कीरतबारी के संवाद स्वामिभक्ति और सेवक की भावना को व्यक्त करने वाले हैं। 'दीपदान' एकांकी में संवादों के माध्यम से पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का सरलता से उद्घाटन हुआ है। उदाहरणत: –

पन्ना : तो लो मेरी जीभ काट लो और यहाँ से चले जाओ। महाराणा विक्रमादित्य..........।

बनवीर : बार-बार विक्रमादित्य का नाम क्यों लेती हो ? प्रेतों और पिशाचों को वह नाम लेने दो। यदि मेरा नाम लेना है तो जय-जयकार के साथ लो।

पन्ना : धिक्कार है, बनवीर ! तुम्हारी माँ ने तुम्हें जन्म देते ही क्यों न मार डाला !

बनवीर : चुप रह धाय ! कहाँ है उदयसिंह ?

पन्ना : तू उदयसिंह को छू भी नहीं सकता। नीच नारकी, महाराणा विक्रमादित्य की हत्या के बाद उदयसिंह को देख भी नहीं सकता।

बनवीर : मैं नहीं देखूँगा, मेरी तलवार देखेगी। विक्रम के रक्त से सनी हुई तलवार अब उदयसिंह के रक्त से धोयी जायेगी।

इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी में संवाद ऐतिहासिक कथानक तथा पात्रों के अनुकूल हैं। इसके संवाद अत्यन्त रोचक, आकर्षक और भावाभिव्यक्ति में अत्यन्त सफल हैं।

4.2.1.4 देशकाल या वातावरण – प्रस्तुत एकांकी में ऐतिहासिक वातावरण का चित्रण किया गया है। महाराणा रतनसिंह की मृत्यु के बाद मेवाड़ में कुछ समय के लिए अराजकता छा गई थी। दासी का पुत्र बनवीर महाराणा विक्रमादित्य की हत्या करके स्वयं महाराणा बनना चाहता था। इसी क्रम में वह अबोध बालक कुँवर उदयसिंह को समाप्त कर देना चाहता था। लेकिन पन्ना धाय की स्वामिभक्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तथा त्याग से महाराणा राजवंश के कुलदीपक उदयसिंह की रक्षा हो सकी। एकांकीकार ने इस ऐतिहासिक वातावरण को विभिन्न घटनाओं के माध्यम से बड़ी स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत किया है। इसका कथानक रात्रि के समय चित्तौड़ के महल में घटित बताया गया है। इसमें वातावरण के उचित समावेश के लिए आवश्यक रंग-संकेत भी दिये गये हैं। पात्रों की वेशभूषा, बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले शब्द और इनके व्यवहार को देशकाल के अनुरूप प्रस्तुत किया गया है। पन्नाधाय के संवादों में दृश्यात्मकता तथा घटनानुकूलता का समावेश होता है।

प्रस्तुत एकांकी में स्थान, काल और समय – इन तीनों का उचित समावेश किया गया है। संकलन-त्रय का इसमें देशकाल तथा वातावरण के अनुसार निर्वाह किया गया है। इससे यह एकांकी अत्यन्त प्रभावशाली बन गयी है।

4.2.1.5 भाषा-शैली – प्रस्तुत एकांकी में ऐतिहासिक सत्य को लेखक ने प्रभावशाली शैली में उभारा है। यद्यपि इसमें सर्वत्र सरल और सुबोध भाषा का प्रयोग किया है, तथापि इसके कुछ स्थल अत्यन्त भावात्मक और मार्मिक बन पड़े हैं। पन्नाधाय की भाषा में ओज तथा त्याग की छाप है। द्वन्द्वात्मक स्थिति में उसके तर्क-वितर्क एक ओर नारी हृदय की कोमलता को व्यक्त करते हैं तो दूसरी ओर बलिदान की भावनाओं की उदारता के परिचायक हैं। सोना के कथनों में विलासी प्रवृत्ति के अनुसार यद्यपि लालित्य है, तथापि यह कवि-कल्पित पात्र की तरह उतना प्रभावशाली नहीं है। इस एकांकी में तत्सम प्रधान शब्दों का अधिक प्रयोग किया गया है। संक्षेप में इसकी भाषा-शैली अपने ऐतिहासिक परिवेश के अनुसार, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के अनुरूप और उनकी भावनाओं के उतार-चढ़ाव के अनुसार है। इसमें पात्रों की शिक्षा, संस्कार और राजसी वातावरण का पूरा ध्यान रखा गया है। शैली की दृष्टि से इसमें काव्यात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, भावात्मक तथा सूत्र-शैली का प्रयोग हुआ है। सुगठित शैली के प्रयोग के कारण आलोच्य एकांकी अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी है।

4.2.1.6 उद्देश्य – प्रस्तुत एकांकी का उद्देश्य पन्नाधाय के त्यागमय चरित्र के माध्यम से उत्कृट राष्ट्रप्रेम और बलिदान का आदर्श प्रस्तुत करना रहा है। ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार उस समय कुछ काल के लिए मेवाड़ में अलगाववादी और अराजकतवादी शक्तियाँ अपना सिर उठा रही थीं। पन्नाधाय ने ऐसे अवसर पर राजकुमार की रक्षा करके जिस त्याग-भावना का परिचय दिया, वह वर्तमान काल में भी अत्यन्त प्रेरणादायी है। एकांकीकार ने इसके माध्यम से वर्तमान समय में अलगाववादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करते रहने का सन्देश दिया है। राष्ट्र की खातिर स्वार्थ का परित्याग और ममता का बलिदान इस एकांकी का मूल उद्देश्य है। यह उद्देश्य पन्नाधाय के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है – ''आज तुम भूखे ही रह गये, मेरे लाल ! ....तुम क्या जानो कि कल तुम और कुँवर साथ-साथ कैसे भोजन करोगे...........तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धार बही। अब हृदय से रक्त की धारा बहेगी तो मैं कैसे रोक सकूँगी। .... मेरे चन्दन ! जाओ, यह रक्त धारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो। आज मैंने भी दीपदान किया है, दीपदान ! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है। ऐसा दीपदान किसी ने किया है।''

इस प्रकार 'दीपदान' एकांकी में त्याग और बलिदान की भावनाओं का सशक्त चित्रण हुआ है। वर्तमान काल में भी यह एकांकी राष्ट्र-प्रेम का सन्देश देने में सफल है।

4.2.1.7 अन्य तत्त्व – प्रस्तुत एकांकी में जैसा कि पहले बताया जा चुका है, संकलनत्रय का पूरा निर्वाह हुआ है। रंगमंच पर प्रस्तुत करके अथवा पाठकों के अध्ययन के लिए इसमें प्रभाव-ऐक्य का पूरा ध्यान रखा गया है। पूरे कथानक को एक ही दृश्य में उपस्थित किया गया है और उसमें एकसूत्रता विद्यमान है। संवादों के साथ रंग-संकेत तथा अभिनय-संकेत भी दिये गये हैं। जिन घटनाक्रमों को रंग-मंच पर नहीं उपस्थित किया जा सकता है, उनकी सूचना पात्रों के वार्तालाप से दी गई है। इसमें अभिनयशीलता का ध्यान रखकर पात्रों का उचित नियोजन, परिवेशानुरूप भाषा, ऐतिहासिक गौरव के अनुरूप संस्कार-व्यवहार एवं आहार्य अभिनय का सुन्दर संयोजन किया गया है। रंगमंच की दृष्टि से दृश्य-विधान का उचित समावेश हुआ है। सभी पात्र स्वाभाविक रूप में उपस्थित किये गये हैं और उन सबको एक ही कार्य में प्रवृत्त दिखाया गया है।

4.2.1.8 निष्कर्ष – डॉ. रामकुमार वर्मा की 'दीपदान' एकांकी एक सफल रचना है। इसमें एकांकी के सभी तत्त्वों का अच्छा समावेश हुआ है। कथानक के अनुसार एकांकी में घटनाक्रम, उद्देश्य और चरित्र अनुकूल रूप में समाविष्ट किये गये हैं। एकांकीकार ने सामयिकता को ध्यान में रखकर इस एकांकी को सर्वथा प्रासंगिक और जीवन्त रचना के रूप में प्रस्तुत करके राष्ट्रीय आदर्श की स्थापना करने का प्रयास किया है। वर्तमान में अलगाववादी तथा अराजकतवादी तत्त्वों के कारण राष्ट्र-प्रेम की जो क्षति हो रही है, उसके परिणाम का इसमें

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मार्मिक चित्रण हुआ है और देश-प्रेम के लिए त्याग तथा बलिदान भावना अपनाने का सन्देश दिया है। इन सब विशेषताओं के कारण प्रस्तुत एकांकी अत्यन्त सफल रचना है।

4.3 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

4.3.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. 'दीपदान' एकांकी में किसके चरित्र को सर्वाधिक रूप से चित्रित किया गया है ?

उत्तर – 'दीपदान' एकांकी में कुँवर उदयसिंह की धायमाँ पन्ना के चरित्र का सशक्त चित्रण किया गया है।

प्रश्न-2. 'दीपदान' एकांकी को किस प्रकार की रचना कहा जा सकता है ?

उत्तर – 'दीपदान' एकांकी ऐतिहासिक कोटि की आदर्श मूलक एकांकी है।

प्रश्न 3. 'दीपदान' एकांकी में क्या प्रस्तुत किया गया है ?

उत्तर – प्रस्तुत कहानी दीपदान में एक ओर स्वामिभक्ति, राजनिष्ठा और कर्त्तव्यभावना का आदर्श प्रस्तुत किया है, वहीं दूसरी ओर राजपूती गौरव, त्याग, बलिदान आदि का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रश्न-4. 'दीपदान' एकांकी की मूल चेतना क्या है ?

उत्तर – प्रस्तुत कहानी ऐतिहासिक एवं जातीय आदर्शों पर आधारित होते हुए भी सामयिक चेतना के लिये उत्तरदायी है तथा इससे राष्ट्रप्रेम और कर्त्तव्यनिष्ठा का संदेश व्यक्त हुआ है।

प्रश्न-5. 'दीपदान' एकांकी का कथानक किस प्रकार का है ?

उत्तर – 'दीपदान' एकांकी का कथानक ऐतिहासिक है किन्तु रचनाकार की कल्पना पर आधारित है।

प्रश्न-6. 'दीपदान' एकांकी से क्या प्रेरणा प्राप्त होती है।

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी आज भी अराजकतावादी और अलगाववादी शक्तियों के विरूद्ध देशभक्ति की प्रेरणा देने में पूर्णत: सफल है।

प्रश्न-7. प्रस्तुत एकांकी में कुँवर उदयसिंह कौन है ?

उत्तर – कुँवर उदयसिंह चित्तौड़ के महाराणा सांगा का सबसे छोटा 14 वर्षीय पुत्र है, जो राज्य का उत्तराधिकारी है।

प्रश्न-8. 'दीपदान' एकांकी की मुख्य चरित्र अभिनेत्री का परिचय एक पंक्ति में दीजिये।

उत्तर – खींची जाति की तीस वर्षीय पन्ना (धाय माँ) एक राजपूतनी है जो कुँवर उदयसिंह का संरक्षण करने वाली धाय है।

प्रश्न-9. धाय माँ के पुत्र चन्दन को किस भावना का प्रतीक माना है ?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी में धाय माँ के पुत्र चन्दन को साहस और स्नेह का प्रतीक माना है, उसकी आयु 13 वर्ष है।

प्रश्न-10. प्रस्तुत एकांकी 'दीपदान' के विपरीत अभिनेता बनबीर का सामान्य परिचय एक पंक्ति में दीजिये।

उत्तर – बनवीर महाराणा साँगा के छोटे भाई पृथ्वीराज का 32 वर्षीय दासीपुत्र है, जो क्रूर, विलासी और राजद्रोही है।

प्रश्न-11. 'दीपदान' एकांकी की सह-अभिनेत्री सोना कौन है ? संक्षिप्त में बताइये।

उत्तर – सोना रावल रूपसिंह की पुत्री है। सोलह वर्षीय सोना अत्यंत रूपसी और नटखट लड़की है, जो उदयसिंह के साथ खेलने वाली तथा बनवीर की कृपा पात्र है।

प्रश्न-12. ''बार-बार विक्रमादित्य का नाम क्यों लेती हो ? प्रेतों और पिशाचों को वह नाम लेने दो। यदि मेरा नाम लेना है तो जय-जयकार के साथ लो।'' कथन किसने ओर किससे कहा ?

उत्तर – यह कथन बनवीर का है जो धायमाँ से कहता है।

प्रश्न-13. प्रस्तुत एकांकी में सामली की हृदयगत विशेषता क्या है ?

उत्तर – सामली के हृदय नारी सुलभ कोमलता से युक्त है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-14. 'दीपदान' एकांकी के माध्यम से एकांकीकार कौन-सी भावना व्यक्त करना चाहते हैं ?

उत्तर – राष्ट्र के खातिर स्वार्थ का परित्याग और ममता का बलिदान करना इस एकांकी की मूल भावना है।

प्रश्न-15. डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा विरचित वैज्ञानिक एकांकियों के नाम बताइये।

उत्तर – 'उत्सर्ग' और 'चन्द्रलोक में पहला यात्री' डॉ. वर्मा द्वारा रचित वैज्ञानिक एकांकियाँ हैं।

4.3.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. 'दीपदान' एकांकी की पात्र योजना को संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – पात्र योजना अथवा चरित्र-चित्रण एकांकी का महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना गया है। एकांकी में अधिक पात्र नहीं होते हैं। प्रायः पात्रों के परस्पर व्यवहार-वार्तालाप से उनके चरित्र का उद्घाटन किया जाता है। चरित्र निर्माण की दृष्टि से पात्र आदर्शवादी, यथार्थवादी, आकर्षक व्यक्तित्व सम्पन्न, सजीव और सशक्त होने चाहिये। एकांकी में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष या दोनों में से किसी एक शैली में पात्र के चरित्र का उद्घाटन किया जाता है। इस दृष्टि से देखा जाये तो 'दीपदान' जैसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एकांकी में पात्र कम ही हैं। इसमें कुँवर उदयसिंह धायमाँ पन्ना, सोना, चन्दन, सामली, कीरत और बनवीर – ये सात पात्र हैं जिनमें धायमाँ पन्ना के चरित्र को प्रधानता दी गई है। एकांकीकार ने ऐतिहासिकता के अनुसार उसके चरित्र को राजपूतानी गौरव-गरिमा से मण्डित बताया है। वस्तुतः पन्ना जैसी स्वामिभक्त-नारी का चरित्र इस युग में प्रेरणादायक किन्तु दुर्लभ है, विशेषकर राजपूती गौरव के लिये वह एक अनुपम नारी-पात्र हैं। प्रस्तुत एकांकी में पन्नाधाय की अनेक चारित्रिक विशेषताएँ कुशलता पूर्वक उद्घाटित हुई हैं।

प्रश्न-2. 'दीपदान' एकांकी के मूल उद्देश्य पर संक्षिप्त प्रकाश डालिये।

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी 'दीपदान' का उद्देश्य पन्नाधाय के त्यागमय चरित्र के माध्यम से उत्कृष्ट राष्ट्र-प्रेम और बलिदान का आदर्श प्रस्तुत करना है।

ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार उस समय कुछ काल के लिये मेवाड़ में अलगाववादी व अराजकतावादी शक्तियाँ अपना सिर उठा रही थी। पन्नाधाय ने ऐसे आक्रान्त समय में कुँवर उदयसिंह की रक्षा करके जिस त्याग भावना का परिचय दिया, वह वर्तमान काल में भी अत्यन्त प्रेरणादायी है। लेखक ने इसके माध्यम से वर्तमान की अलगाववादी शक्तियों की विरूद्ध संघर्ष करने का संदेश दिया है। राष्ट्र के वास्ते स्वार्थ का परित्याग व ममता का बलिदान इस एकांकी का मूल उद्देश्य है। यह उद्देश्य पन्नाधाय के इस कथन से स्पष्ट होता है – ''आज तुम भूखे ही रह गये मेरे लाल !.........तुम क्या जानो कि कल तुम और कुँवर साथ-साथ भोजन कैसे करोगे.........तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धार बही, अब हृदय से रक्त की धार बहेगी, मैं उसे कैसे रोक पाउँगी। ....मेरे चन्दन ! जाओ यह रक्त-धार अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो, आज मैंने भी दीपदान किया है दीपदान ! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया, ऐसा दीपदान किसी ने नहीं किया है।''

4.3.3 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. 'दीपदान' एकांकी के आधार पर पन्नाधाय का चरित्र चित्रण कीजिये।

उत्तर – डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा विरचित एकांकी 'दीपदान' मेवाड़ के इतिहास की एक घटना पर आधारित है, इस वजह से यह ऐतिहासिक कोटि की आदर्शमूलक एकांकी मानी जा सकती है। इसमें जहाँ एक ओर स्वामिभक्ति, राजनिष्ठा एवं कर्त्तव्य-भावना का आदर्श उपस्थित किया गया है वहीं दूसरी ओर राजपूती गौरव, त्याग, बलिदान आदि का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें ऐतिहासिक कथा-सूत्रों को जोड़कर एकांकीकार ने अपनी नाट्य-प्रतिभा से रोचकता, मार्मिकता का समावेश किया है। ऐतिहासिक एवं जातीय आदर्शों पर आधारित होते हुए भी यह एकांकी सामयिक चेतना के लिये प्रेरणादायी है तथा इसमें राष्ट्र-प्रेम व कर्त्तव्यनिष्ठा का संदेश व्यक्त हुआ है। एकांकीकार ने ऐतिहासिक दृष्टि से पन्नाधाय के चरित्र को प्रधानता देते हुए उसे राजपूती गौरव-गरिमा से मण्डित बताया है। वास्तव में पन्नाधाय जैसी स्वामिभक्त नारी का चरित्र इस युग में प्रेरणादायी माना गया है।

यह अपने आप में एक अनुपम नारी-पात्र है। इसकी चारित्रिक विशेषताओं को बड़ी कुशलता के साथ उद्घाटित किया गया है, जो इस प्रकार है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. सच्ची स्वामी-भक्त – प्रस्तुत एकांकी में पन्ना को एक सच्ची स्वामिभक्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह महाराणा वंश के कुलदीपक कुँवर उदयसिंह की रक्षा करने के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिये तैयार रहती है। उसे राजवंश में पनप रहे आन्तरिक विद्रोह का पूरा भान रहता है इसलिये वह अपने स्वामी की अमानत कुँवर को अपने स्वयं के लख्तेज़िगर से भी अधिक मानती है और उसकी रक्षा के लिये सदैव तत्पर रहती है। सोना उसके इस गुण पर आक्षेप लगाती हुई कहती है कि "महल में धायमाँ अरावली पहाड़ बनकर बैठ गई है।" वह बनवीर के द्वारा जागीर देने के प्रलोभन को ठुकराकर राजवंश के प्रति अपनी पूरी निष्ठा रखती है और कुँवर उदयसिंह को बचाने का हर संभव प्रयास करती है। वह कहती है – "महाराज बनवीर! तुम राज्य करो, चित्तौड़ पर, मेवाड़ पर, सारे राजपूताने पर राज्य करो परन्तु कुँवर उदयसिंह को छोड़ दो।" किन्तु बनवीर के न मानने पर वह अपने पुत्र का बलिदान देकर राजकुमार की रक्षा करती है और कीरतबारी के सहयोग से उसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देती है। इस प्रकार पन्ना की स्वामिभक्ति प्रखर रूप में सामने आई है।

2. त्याग और बलिदान की साक्षात प्रतिमा – प्रस्तुत एकांकी में पन्नाधाय को ऐतिहासिक कथानक के अनुसार त्याग और बलिदान से युक्त बताया गया है। जब बनवीर कुँवर उदयसिंह की हत्या करने आता है तो वह कुँवर की शैय्या पर अपने पुत्र चन्दन को उसके ही कपड़े पहनाकर सुला देती है और वह सावली से कहती है कि "उसी को सुला दूँगी, जो मेरी आँखों का तारा है.... ....चन्दन........चन्दन को सुला दूँगी। इस नन्हे लाल को हत्यारे की तलवार के नीचे रख दूँगी।" वह राजवंश की रक्षा के लिये अपने पुत्र का बलिदान करती है, अपनी ममता का त्याग करती है। राजनिष्ठा, स्वामिभक्ति, त्याग और बलिदान के कारण पन्ना का स्थान वीर राजपूतनियों में आदर्श व श्रेष्ठ माना जाता है और इसी विशेषता के कारण वह इतिहास में अमर हो गई।

3. ममतामयी हृदय से युक्त – पन्नाधाय को इतिहास में ममतामयी माँ का गौरव प्राप्त है। वह राजकुमार उदयसिंह को अत्यधिक प्यार करती है और सदैव उसे अपने सीने से लगाकर रखती है। कुँवर रूठ जाता है, उसे परेशान करता है, फिर भी पन्ना उसे एक आदर्श माँ की तरह सँभालती है। वह अपने पुत्र चन्दन से भी उतना ही प्रेम करती है, जितना कि उदय से। वह एक ओर राजद्रोही बनवीर से उसकी रक्षा करना चाहती है और दूसरी ओर अत्यंत दुःखी होकर राजवंश के वास्ते अपने पुत्र को न्यौछावर कर देती है। जब चन्दन को कुँवर की शैय्या पर लिटाती है तो वह उस समय बहुत भावुक हो जाती है, वह स्वयं को धिक्कारती हुई व सिसकियाँ भरती हुई कहती है – "तूने अपने भोले बच्चे के साथ कपट किया है। तूने अंगारे की सेज पर अपने फूल से लाल को ही सुला दिया है। ....अपने जीवन-दीप को मैंने रक्त की धार में तैरा दिया है। एक बार तुम्हारा मुख देख लूँ।" अन्त में जब क्रूर बनवीर अपनी तलवार से प्रहार करता है तो पन्ना चीखकर मूर्च्छित हो जाती है। इस तरह पन्ना का चरित्र अत्यन्त ममतामयी है।

4. कर्तव्यनिष्ठ – प्रस्तुत एकांकी में पन्नाधाय को महाराणा परिवार तथा मेवाड़ राज्य के प्रति अत्यन्त निष्ठावति बताया है। उसे राजकुमार उदयसिंह की देखभाल का जो कार्य सौंपा गया था, उसे वह जीवन के अन्त तक निभाती है। जब सामली उसे बताती है कि दासीपुत्र बनवीर कुँवर की हत्या कर स्वयं महाराणा बनना चाहता है, अब कुँवर की रक्षा कौन करेगा? तब पन्ना अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा का परिचय देती हुई कहती है – "कुंवर जी की रक्षा अवश्य होगी.......मेरे महाराणा का नमक मेरे रक्त से भी महान है।" अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा के कारण ही वह अपने पुत्र का बलिदान दे देती है और कुँवर उदयसिंह को बड़ी चतुरता से सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देती है।

5. निर्लोभ स्वभाव – प्रस्तुत एकांकी में पन्ना को किसी भी प्रकार के लोभ-लालच से रहित बताया गया है। जब बनवीर कुँवर की हत्या करने के उद्देश्य से महल में आता है तो वह पन्ना को भाँति-भाँति के प्रलोभन देता है। वह उसे मारवाड़ में एक सुन्दर तुलजा भवानी का मन्दिर बनवाने की बात करता है और उसे अपने नाम के साथ अमर बनाने का प्रस्ताव रखता है किन्तु पन्ना की वफ़ादारी और स्वामी-भक्ति के पलड़े में उसका प्रलोभन पासग में भी नहीं टिकता है। इतना ही नहीं, वह कुँवर की सुरक्षा के लिये राजमहल व राजसी ठाट-बाट त्याग देती हैं। पन्ना का चरित्र राजपूती मर्यादा से युक्त है, जिसमें स्वामी के हित-साधन के समक्ष लोभ-लालच को कोई स्थान नहीं है।

6. सजग और चतुर – प्रस्तुत एकांकी में पन्नाधाय की यह अनुपम विशेषता रही है कि वह कुँवर उदयसिंह के पालन-पोषण व उसकी सुरक्षा करने में सदैव सजग और दूरदृष्टि रही है। उसे इस बात का पता रहता है कि राजभवन में षड्यंत्रकारी लोग घात लगाये बैठे हैं। इसलिये वह बड़ी सजगता से उदयसिंह का ख्याल रखती है। उसे अकेले नहीं जाने देती है। वह कहती भी है – "नहीं कुँवर! तुम कभी भी अकेले रात में नहीं जाओगे। चारों तरफ जहरीले सर्प घूम रहे हैं, किसी भी समय तुम्हें डँस सकते हैं।" पन्ना अच्छी तरह से जानती है कि बनवीर की कूटनीति से विक्रमादित्य का शीघ्र अन्त होने वाला है और यदि कुँवर की देख-भाल में जरा-सी भी असावधानी

रही तो उसका भी अहित हो सकता है। इसी लिये वह सोना से कहती है कि ''इतने आदमियों के बीच में उसे कैसे भेज देती ? महाराणा सांगा के वंश के एक ही तो उजाले हैं।''

पन्नाधाय अत्यन्त कुशल है। जैसे ही उसे यह सूचना मिलती है कि बनवीर कुँवर की हत्या करने आ रहा है तो वह बड़ी चतुरता से कीरतबारी के द्वारा कुँवर को महल से बाहर भेज देती है और उसके स्थान पर अपने पुत्र को सुला देती है। बनवीर को उसकी चतुरता का कतई आभास नहीं होता है। पन्ना की सजगता व चतुरता से राजकुमार की रक्षा होती है।

7. वीर क्षत्राणी – पन्नाधाय राजपूती मर्यादाओं से भली प्रकार परिचित है। साथ ही उसे चित्तौड़ की भूमि पर नाज़ भी है। वह वीर क्षत्राणी की तरह आवेश में आकर सोना से कहती है कि – ''चित्तौड़ राग-रंग की भूमि नहीं है सोना। यह जौहर की भूमि है, यहाँ आग की लपटें नाचती हैं, सोना जैसी रावल की लड़कियाँ नहीं।'' जब बनवीर उदयसिंह की हत्या करने राजमहल में आता है तो भी वह स्पष्ट कह देती है – ''राजपूतानी व्यापार नहीं करती, वे या तो रणभूमि पर चढ़ती हैं या चिता पर।''

जब बनवीर पन्ना की अनुनय-विनय नहीं मानता तो वह उस पर भी अपनी कटार से प्रहार करके वीरता का भी परिचय देती है। वह अन्त समय तक बनवीर का सामना करती है और अबोध बालक पर उसके द्वारा हाथ उठना कायरता बताती है। इस प्रकार वीरता और त्याग-भावना से पन्ना का चरित्र अत्यन्त ओजस्वितापूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष – प्रस्तुत एकांकी में पन्नाधाय का चरित्र त्याग व बलिदान से युक्त चित्रित किया गया है। वह बनवीर की निर्दयता व क्रूरता से कुँवर उदयसिंह की रक्षा करती है और उसके लिये अपने जीवन के चिराग अर्थात् अपने पुत्र चन्दन का बलिदान कर देती है। स्वामिभक्ति व कर्त्तव्यनिष्ठा की दृष्टि से उसका चरित्र युग-प्रेरणा का संवाहक है। एकांकीकार ने पन्ना के चरित्र को ऐतिहासिक कथानक के अनुसार प्रभावशाली बताया है।

प्रश्न- 4. 'दीपदान' एकांकी के नामकरण, कथानक, पात्रयोजना और उद्देश्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर – 'दीपदान' एकांकी में चित्तौड़ की ऐतिहासिक घटना को आधार बनाया गया है। पन्ना धाय राजकुमार उदयसिंह की रक्षा के लिए स्वामिभक्ति, कर्त्तव्यनिष्ठा, राष्ट्रप्रेम, बलिदान तथा त्याग-भावना का परिचय देती है। एकांकीकार ने प्रस्तुत एकांकी के कथानक में यथार्थ के साथ आदर्श का समन्वय उपस्थित किया है।

नामकरण – प्रस्तुत एकांकी के कथानक के अनुसार चित्तौड़ में दीपोत्सव मनाया जाता है और रात्रि के समय तुलजा भवानी के सम्मुख सुन्दर स्त्रियाँ नृत्य करती हैं। साथ ही वे पूजा के निमित्त छोटे-छोटे दीपक कुण्ड में अर्पित करती हैं। इस तरह चित्तौड़ की प्रजा राग-रंग और नाच-गान के साथ दीपदान करती है। इसमें प्रजा का उद्देश्य लोकमंगल तथा आनन्द की कामना करना चित्रित किया गया है। लेकिन इस दीपदान को लेकर दासीपुत्र बनवीर एक ऐसा कुचक्र रचता है, जिसमें वह पहले तो महाराणा विक्रमादित्य की हत्या करता है तथा बाद में राजकुमार उदयसिंह को समाप्त करने के लिए पन्नाधाय के आवास में आता है। वह राजकुमार की हत्या करके चित्तौड़ पर शासन करना चाहता है। इसलिए वह कहता है कि ''आज नगर में स्त्रियों ने दीपदान किया है। मैं भी यमराज को इस दीपक का दान करूँगा। यमराज ! लो इस दीपक को। यह मेरा दीपदान !'' इस प्रकार बनवीर राजकुमार उदयसिंह की हत्या करने का प्रयास करता है, परन्तु उसमें वह सफल नहीं रहता है। उसका उद्देश्य यही था कि वह चित्तौड़ के सिंहासन पर अधिकार जमा सके और अपने मार्ग के बाधक को समाप्त करे।

प्रजा और बनवीर के दीपदान के उद्देश्य में अत्यधिक भिन्नता है। पन्ना धाय राजकुमार उदयसिंह की रक्षा करने के लिए उसकी शैया पर अपने समवयस्क पुत्र चन्दनसिंह को सुला देती है। वह सोचती है कि नशे में धुत्त बनवीर को शान्त करना कठिन है, वह राजकुमार का अनिष्ट किये बिना नहीं मानेगा। इसलिए उसने राजकुमार के स्थल पर अपने पुत्र को सुला दिया। उसका पुत्र उसके जीवन का दीपक था, जिसे उसने सहर्ष बलिदान कर दिया था। इस प्रसंग में पन्ना धाय का कथन है – ''मेरे चन्दन ! जाओ, यह रक्तधारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो। आज मैंने भी दीपदान किया है। दीपदान ! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है। ऐसा दीपदान भी किसी ने किया है।'' इस प्रकार का घटनाक्रम चित्रित होने से एकांकी का 'दीपदान' नामकरण उचित है। एकांकी के विभिन्न पात्रों के द्वारा दीपदान करने का जो लक्ष्य इसमें दिखाया गया है, उसके अनुसार ही यह नामकरण इसके उद्देश्य के अनुरूप है।

एकांकी का कथानक – 'दीपदान' एकांकी की कथावस्तु यद्यपि ऐतिहासिक घटना पर आधारित है, परन्तु लेखक ने इसमें अपनी कल्पना से कुछ परिष्कार किया है। दीपोत्सव की घटना और राग-रंग के दृश्य लेखक की कल्पना पर आधारित हैं, परन्तु पन्ना धाय के त्याग और बलिदान का कथानक ऐतिहासिक घटना है। एकांकी का प्रारम्भ कुँवर उदयसिंह और पन्ना धाय के वार्तालाप से होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रात्रि के समय कुँवर नाच देखना चाहता है परन्तु पन्ना धाय उसे सुला देती है। इस बीच बनवीर विक्रमादित्य की हत्या करके सैनिकों को राजमहल घेरने का आदेश देता है। वह स्वयं भी हाथ में खून से सनी तलवार लेकर राजमहल की ओर बढ़ता है। कुँवर की अनिष्ट की आशंका से पन्ना धाय तुरन्त ही कीरतबारी के सहयोग से सुरक्षा का उपाय करती है। वह उदयसिंह के स्थान पर अपने पुत्र चन्दन को सुलाती है और जब दुष्ट बनवीर आता है तो उसे शान्त करने की पूरी चेष्टा करती है। वह यह छिपाने की पूरी कोशिश करती है कि राजकुमार उदयसिंह के स्थान पर चन्दनसिंह सोया हुआ है। अन्त में काफी प्रतिरोध के बाद बनवीर सोते हुए चन्दन पर तलवार का प्रहार करता है। पन्ना जोर से चीखकर मूर्च्छित हो जाती है।

इस प्रकार एकांकी की कथावस्तु ऐतिहासिक घटना के अनुसार चित्रित की गई है। ऐतिहासिक विवरण के अनुसार पन्ना का त्याग अमर माना जाता है। एकांकी ने कथानक में स्वाभाविक का निर्वाह किया है और कथानक विकास की सभी अवस्थाओं का ध्यान रखकर सभी घटनाओं को उद्देश्य के अनुसार उपस्थित किया है तथा कथानक में प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त का उचित संयोजन पर नाट्यांगों और अभिनेयता का पूरा ध्यान रखा है। परिणामस्वरूप इस एकांकी का अन्त अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। इसमें नाट्यसंधियों और नाट्य-अंगों का प्रभावशाली प्रयोग किया गया है। कथानक अत्यन्त सरल, स्पष्ट और कौतूहलपूर्ण है।

एकांकी की पात्रयोजना – 'दीपदान' एकांकी में ऐतिहासिक कथानक के अनुरूप सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। लेखक ने ऐतिहासिकता के अनुरूप उनके चरित्र को सँवारा है। इसके कथोपकथन चारित्रिक विकास में अत्यन्त सफल हैं। इसमें पन्ना धाय का चरित्र अत्यन्त सशक्त चित्रित हुआ है। कथा के प्रारम्भ में उसे कुँवर के प्रति ममतामयी दिखाकर अन्ततः इसका निर्वाह किया गया है। जब दुष्ट बनवीर विद्रोह पर उतर आता है, तो कुछ क्षणों के लिए उसके मन में द्वन्द्व उठता है। वह द्वन्द्व भी इस बात का है कि राजकुमार की रक्षा किस तरह हो। अन्त में वह राजकुमार को चुपचाप सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देती है और उसकी जगह अपने पुत्र चन्दन को सुला देती है। इस तरह वह त्याग और बलिदान का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती है। बनवीर का चरित्र भी ऐतिहासिक कथानक के अनुसार दिखाई देता है। राजकुमार उदयसिंह और चन्दन यद्यपि कथानक में अल्पकाल के लिए उपस्थित रहते हैं, परन्तु सारा कथानक उनको लेकर चलता है। एकांकीकार ने उनकी बालसुलभ चेष्टाओं का सुन्दर चित्रण किया है। कीरतबारी का चरित्र ऐतिहासिक पात्र की दृष्टि से प्रशस्य है। सामली और रावल की पुत्री सोना ऐतिहासिक कथानक के अनुरूप स्त्री-पात्र हैं। अप्रत्यक्ष पात्रों में विक्रमादित्य तथा नृत्यरत स्त्रियों का उल्लेख हुआ है। इस तरह एकांकी के सभी पात्रों का चरित्र-विकास स्वाभाविक रूप में दिखाया गया है। इसमें चित्रित सभी पात्रों के चरित्र में सजीवता, गतिशीलता और ऐतिहासिक विश्वसनीयता दिखाई देती है।

एकांकी का उद्देश्य – प्रस्तुत एकांकी का उद्देश्य पन्ना धाय के त्यागमय चरित्र के माध्यम से उत्कृष्ट राष्ट्रप्रेम और बलिदान का आदर्श प्रस्तुत करना रहा है। ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार उस समय कुछ काल के लिए मेवाड़ में अलगाववादी और अराजकतावादी शक्तियाँ सिर उठा रही थीं। पन्ना धाय ने ऐसे अवसर पर राजकुमार की रक्षा करके जिस त्याग-भावना का परिचय दिया, वह वर्तमान काल में भी अत्यन्त प्रेरणादायी है। एकांकीकार ने इसके माध्यम से वर्तमान समय में अलगाववादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करते रहने का सन्देश दिया है। राष्ट्र की खातिर स्वार्थ का परित्याग और ममता का बलिदान इस एकांकी का मूल उद्देश्य है। यह उद्देश्य पन्ना धाय के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है – ''आज तुम भूखे ही रह गये, मेरे लाल! ....तुम क्या जानो कि कल तुम और कुँवर साथ-साथ कैसे भोजन करोगे..........तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धार बही। अब हृदय से रक्त की धारा बहेगी तो मैं कैसे रोक सकूँगी? ....मेरे चन्दन! जाओ, यह रक्त-धारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो। आज मैंने भी दीपदान किया है। दीपदान, अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है। ऐसा दीपदान किसी ने किया है!''

4.4 सारांश

इस प्रकार 'दीपदान' एकांकी की त्याग और बलिदान की भावनाओं का सशक्त चित्रण हुआ है। वर्तमान काल में भी यह एकांकी राष्ट्र-प्रेम का सन्देश देने में सफल है। इसका नामकरण कथानक की घटनाओं के अनुरूप, संक्षिप्त और रोचक है। इसकी कथावस्तु और पात्र-योजना ऐतिहासिकता के साथ एकांकीकार की प्रतिभा से पल्लवित है। इन सभी तत्त्वों के आधार पर 'दीपदान' एकांकी श्रेष्ठ रचना है।

4.5 अभ्यास प्रश्नावली

1. दीपदान एकांकी का महत्त्व बताइये।
2. पन्नाध्याय का चरित्र-चित्रण कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 5 : धरोहर

(सेठ गोविन्ददास)

संरचना

5.0 लेखक परिचय

5.1 धरोहर

5.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

5.3 धरोहर – समीक्षात्मक परिवृत

5.4 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

5.4.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

5.4.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

5.4.3 निबंधात्मक प्रश्न

5.5 सारांश

5.6 अभ्यास प्रश्नावली

5.0 लेखक-परिचय

नाट्य जगत् में विशिष्ट अनुभव प्राप्त, पाश्चात्य नाटककारों के अनुकरण पर मौलिकता से पाश्चात्य तकनीकि का प्रयोग अपनी एकांकी रचनाओं में करने वाले एकांकीकार ने अपनी रचनाओं का सृजन हिन्दी भाषा में किया। आपकी कृतियों में आधुनिक राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं के विविध रंग-बिरंगे सजीव चित्रांकन परिलक्षित होते हैं। ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों में आपने भारतीय संस्कृति के चतुर-चितरे के रूप में स्थान प्राप्त किया है। 1920 से अब तक के चिरकाल में बहुमुखी समस्याओं की आदर्शोन्मुख व्याख्या कर साहित्य जगत में अहम किरदार निभाया है। आपकी रचनाओं में आज के समाज, राजनीति, भारतीय इतिहास तथा आधुनिक जीवन से जिसमें गाँधीयुगीन राजनीतिक समस्याओं का यथार्थ साक्षात्कार होता है। आपके ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय प्रेम, सौहार्द, देशभक्ति और आदर्शवाद की सुस्पष्ट पुष्टि देखने को मिलती है।

सेठ गोविन्ददास अपने आप में एक संस्था रहे हैं। आपके द्वारा विरचित, लगभग 50 नाटक, जिनमें से एक का सफल अभिनय भी हो चुका है, नाट्य साहित्य के लिये अनोखी देन है। चूँकि आपका क्षेत्र राजनीति रहा है, जिसमें राष्ट्र के प्रति अपार प्रेम की अनुभूति होती है। तत्सम्बन्धित सम्पूर्ण अनुभव, भारतीय जीवन के यथार्थ चित्र, समाज के सभी वर्गों, अनेक समस्याओं तथा सभी आन्दोलनों के यथार्थ चित्र आपकी कृतियों में खुद-ब-खुद परिचय है। सभी कृतियों की पृष्ठभूमि में एक नैतिक आदर्शवाद मिलता है। आपकी कृतियों में 'स्पर्धा', 'सप्तरश्मि', 'पंचभूत', 'एकादशी', 'अष्टदल', 'चतुष्पद' आदि उल्लेखनीय हैं। कुछ कृतियों पर फिल्में भी बन चुकी हैं।

प्रस्तुत एकांकी 'धरोहर' में छत्रपति महाराज शिवाजी का आदर्श अंकित है जो आज भी उनसे साक्षात्कार कराने में कहीं पीछे नहीं है।

5.1 धरोहर

यह हिन्दी के प्रसिद्ध एकांकीकार सेठ गोविन्ददास द्वारा लिखित एकांकी है। इसमें इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय किया गया है। इसमें छत्रपति शिवाजी के जीवन काल की एक अत्यन्त लघु घटना को ही प्रस्तुत किया गया है। सेनापति आबाजी सोन देव के द्वारा शिवाजी के लिये उपहार के रूप में लाई गई कल्याण प्रान्त के सूबेदार अहमद की पुत्रवधु को शिवाजी माँ के रूप में देखते हैं और उसके पावन सौन्दर्य को माँ के रूप में देखकर वे अत्यन्त प्रभावित होते हैं और कहते हैं कि यदि उनकी माँ भी अहमद की पुत्रवधु

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के समान सुन्दर होती तो शिवा स्वयं भी देखने में अत्यन्त सुन्दर होते। शिवाजी उस स्त्री को कल्याण के सूबेदार की 'धरोहर' मानते हैं और उसे सुरक्षित उसके पति के पास भेजने का आश्वासन देते हैं।

5.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''आह! कैसी अजीबो-गरीब खूबसूरती है, आपकी। आपको देखकर मेरे दिल में एक.........सिर्फ एक बात उठ रही है– कहीं मेरी माँ में आपकी-सी खूबसूरती होती तो मैं भी बदसूरत न होकर एक खूबसूरत शख्स होता। माँ, आपकी खूबसूरती को मैं एक–सिर्फ एक काम में ला सकता हूँ–उसका हिन्दु विधि से पूजन करूँ, उसकी इस्लामी तरीके से इबादत करूँ। आप जरा भी परेशान न हों। माँ, आपको आराम, इज्जत, हिफ़ाजत और ख़बरदारी के साथ आपके शौहर के पास पहुँचा दिया जायेगा।''

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध नाटक और एकांकीकार सेठ गोविन्ददास द्वारा विरचित एकांकी 'धरोहर' से अवतरित है। यह एकांकी हमारी पाठ्य-पुस्तक 'धरोहर' का पाठ है। इसमें बताया है कि शिवाजी के सेनापति आवाजी सोनदेव कल्याण विजय के उपरान्त अपार धनराशि के साथ वहाँ के सूबेदार अहमद की पुत्रवधु को भी लूटकर शिवाजी को उपहार स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। शिवाजी उस मुस्लिम महिला में मातृत्व भाव से खूबसूरती देखते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं।

व्याख्या–छत्रपति शिवाजी अहमद की पुत्रवधु को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि माँ! आप कितनी अधिक रूपवती हैं? आपके इस सुन्दर रूप को देखकर मेरे मन में एक विचार उठ रहा है कि यदि स्वयं मेरी पूज्या माँ जीजा बाई भी आपके समान सुन्दर होती तो नि:संदेह मैं भी अत्यन्त सुदर्शन व्यक्ति होता। क्योंकि सुन्दर माँ की कोख से तो सुन्दर संतान ही जन्म लेती है। हे माँ! आपका यह सुन्दर रूप मेरे एक काम अवश्य आ सकता है, यह कि आप जैसी सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति देवी माँ का मैं अपनी हिन्दु विधि के अनुसार पूजन-अर्चन करूँ और इस्लाम के तरीके से इसकी इबादत करूँ। माँ! मैं तो अत्यन्त शर्मिन्दा हूँ कि हमारे सेनापति ने आपके साथ असभ्य व्यवहार किया है। आप यहाँ पर जरा-सी भी घबराइये नहीं। आपको यहाँ से सुविधा, सम्मान और सुरक्षा के साथ आपके पति के पास पहुँचा दिया जायेगा।

विशेष– 1. प्रस्तुत अंश में शिवाजी अपने सेनापति आबाजी सोनदेव की करनी पर उस मुस्लिम महिला से क्षमा मांगते हैं जिसे वे लूटकर लाये थे।

2. इस प्रसंग में शिवाजी के चरित्र की पवित्रता का सफल अंकन होता है।

3. शिवाजी को विधर्मी शत्रु की स्त्री भी माँ के समान दिखाई देती थी।

4. भाषा में उर्दू-फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है।

5. शैली भावात्मक है।

(2)

''हिन्दू होते हुए भी शिवा के लिये इस्लाम धर्म पूज्य है। इस्लाम के पवित्र स्थान, उसके पवित्र ग्रन्थ-सम्मान की वस्तुएँ हैं। शिवा हिन्दू और मुसलमान प्रजा में कोई भेद नहीं समझता। अरे! उसकी से ना में मुसलिम सैनिक तक हैं। वह देश में हिन्दू राज्य नहीं, सच्चे स्वराज की स्थापना चाहता है।''

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'धरोहर' एकांकी संकलन के सेठ गोविन्ददास द्वारा विरचित एकांकी 'धरोहर' से लिया गया है, जिसमें शिवाजी स्वयं अपने सेनापति आवाजी को सम्बोधित करते हुए अपने जीवन के दृष्टिकोण से अवगत कराते हैं।

व्याख्या–शिवाजी कहते हैं कि यद्यपि मैं कट्टर हिन्दू हूँ किन्तु मेरे (शिवा) के लिये इस्लाम धर्म भी उतना ही पूज्य है, जितना कि हिन्दू धर्म। मेरे लिये इस्लाम के तीर्थ-स्थल, इस्लाम की पुस्तकें, पाक क़ुरान आदि हिन्दू धर्म ग्रंथों की तरह स्तुत्य और सम्माननीय हैं। मैं हिन्दू और मुसलिम प्रजा को समान दृष्टि से देखता हूँ। दोनों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखता हूँ। इसका उदाहरण इससे अधिक ज्वलन्त भला और क्या हो सकता है कि मेरी सेना में हिन्दू सैनिकों के साथ मुसलमान सैनिक भी हैं। मैं देश में केवल हिन्दू

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

साम्राज्य की स्थापना करना नहीं चाहता हूँ, बल्कि सच्चे अर्थों में एक ऐसे स्वराज की स्थापना करना चाहता हूँ, जिसमें सभी धर्मों के लोग प्रेमपूर्वक मिलजुल कर रहें।

विशेष – 1. प्रस्तुत अंश में एकांकीकार की गाँधीवादी विचारधारा की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

2. प्रस्तुत अंश में गाँधीवादी स्वराज की अवधारणा का भी स्पष्टीकरण होता है।

3. भाषा रोचक और सरल है।

(3)

"..........तब तो ये रक्त-पात, ये लूट-मार, घृणित, अत्यन्त घृणित कृतियाँ हैं। शिवा में यदि शील नहीं, तो उसके सेनापतियों, सरदारों को शील का स्पर्श तक नहीं हो सकता। फिर तो हममें और इन्द्रीय लोलुप-लुटेरों तथा डाकुओं में कोई अन्तर नहीं रह जाता। अरे ! अब तो हमारे जीवन से हमारी मृत्यु, हमारी विजय से हमारी पराजय कहीं श्रेयस्कर है।"

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'धरोहर' से सेठ गोविन्ददास द्वारा विरचित एकांकी 'धरोहर' से अवतरित है, जिसमें अहमद की पुत्रवधु को शिवाजी के लिये उपहार स्वरूप लाने के कारण शिवाजी अपने सेनापति आवाजी सोनदेव को खरी-खोटी सुनाते हैं। वे कहते हैं कि –

व्याख्या – पर स्त्री को सदैव माँ के समान समझना चाहिये। जो अधिकारी वर्ग के व्यक्ति हैं, सामन्त-सरदार हैं उन्हें इस बात का विवेक होना चाहिये कि पर स्त्री से कैसा व्यवहार किया जाये। किन्तु सेनापति जैसे उच्च पद पर आसीन होकर तुमने यह घृणित कार्य किया है, अहमद की पुत्रवधु को अपमानित किया है, जो सर्वथा अनुचित है। शिवाजी अपने सेनापति से कहते हैं कि हम जो यह लूटपाट या रक्त-पात करते हैं यह अत्यन्त ही घृणित कार्य है, साथ ही हमारे व्यक्तित्व, चरित्र और वीरता पर भी एक कलंक है। यदि राजा या सरदार का चरित्र उच्च आदर्शयुक्त नहीं होगा तो उसके सैनिकों का चरित्र आदर्शवान कैसे हो सकेगा ? यदि स्वयं मुझमें शील या शालीनता का अभाव होगा तो मेरे सेनापतियों व सरदारों में यह शीलता कहाँ से आयेगी ? राजा का चरित्र उसके अधिकारियों व सैनिकों में प्रतिबिम्बित होता है। यदि शासक क्रूर, आतताई, निरंकुश और अभद्र होगा तो उसके सैनिक भी वैसे ही होंगे। तब हममें और कामपिपासु डाकुओं व लुटेरों में क्या अन्तर रह जायेगा ? तब तो ऐसे इन्द्रीय लोलुप हत्यारे व लूट-मार करने वाले घृणित और कुत्सित जीवन से तो हमारे लिये मृत्यु ही श्रेष्ठ होगी। ऐसे कुकृत्यों व आतंक से प्राप्त की गई विजय से तो हमारे लिये शालीन पराजय ही श्रेष्ठ है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में शिवाजी के उच्चादर्श, महान परम्पराओं और उनके धीरोदात्त व्यक्तित्व को स्पष्ट किया गया है।

2. इस अंश में गाँधीवादी विचारधारा का स्पष्टीकरण है।

3. भाषा सरल किन्तु ओजपूर्ण है।

4. शैली प्रतीकात्मक है।

5.3 धरोहर- समीक्षात्मक परिवृत

1. शीर्षक औचित्य – प्रस्तुत एकांकी का शीर्षक संक्षिप्त है। कुछ एकांकियों के शीर्षक तीन शब्दों अथवा उससे भी अधिक शब्दों के होते हैं, किन्तु इस एकांकी का शीर्षक ऐतिहासिक कथा के अनुरूप संक्षिप्तता का गुण लिये हुए है। यद्यपि यह शब्द 'धरोहर' नया नहीं है किन्तु यह मौलिक, परम्परागत एवं ऐतिहासिक अवश्य है। इसे पढ़ने से एक जिज्ञासा यह भी उत्पन्न होती है कि धरोहर के रूप में कौन-सी वस्तु है ? किसकी है और एकांकी का वर्ण्य-विषय क्या है ? एक प्रकार से यह शीर्षक कौतुहल उत्पन्न करने वाला है।

प्रस्तुत एकांकी में छत्रपति शिवाजी के जीवन से सम्बन्धित एक ही घटना है। धरोहर शब्द के साथ शिवाजी का नाम पढ़कर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि किसी वस्तु विशेष की सुरक्षा का इसके साथ कोई सम्बन्ध है और ऐसा भी लगता है कि किसी वस्तु, जीवन या सम्मान आदि का दान शिवाजी को निभाना पड़ रहा है। वस्तुतः इसका कथानक इसी प्रकार का है। एकांकी के अध्ययन से ऐसा पता चलता है कि कल्याण के सुबेदार अहमद की पुत्र-वधु इस धरोहर की केन्द्र बिन्दु है। शिवाजी के सेनापति आवाजी सोनदेव कल्याण विजय के उपरान्त अपार धन-सम्पदा लूट कर लाते हैं और महाराज शिवाजी को उपहार स्वरूप भेंट करने के लिये कल्याण के सूबेदार अहमद की पुत्रवधु का अपहरण करके ले आते हैं किन्तु समर्थ गुरु रामदास के आदर्श चरित्रवान शिष्य शिवाजी उस मुस्लिम स्त्री का मातृत्व सम्मान करते हैं और उसे कल्याण के सूबेदार अहमद के वंश की धरोहर मानकर उसके शील

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व सम्मान की रक्षा करते हैं। उसे यथास्थान सम्मान के साथ पहुँचाने का पूरा आश्वासन देते हैं। अपहरण करके लाई गई मुस्लिम स्त्री को शिवाजी दूसरे की 'धरोहर' मानते हैं और इसकी क्षत्रियोचित रक्षा करते हैं। इस प्रकार यह शीर्षक उचित, प्रभावशाली, आकर्षक और संक्षिप्त है।

एकांकी का उद्देश्य – प्रत्येक एकांकी किसी-न-किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए लिखा जाता है। उस उद्देश्य को एकांकीकार उपदेशक की भांति प्रस्तुत नहीं कर सकता। परन्तु अपने पात्रों, संवादों, कथावस्तु के मोड़ों, आरोहों-अवरोहों द्वारा व्यंजित करता है। एकांकीकार को उद्देश्य की अभिव्यक्ति पात्रों, उनके संवादों, क्रियाकलापों आदि के माध्यम से करनी पड़ती है। धरोहर एकांकी का उद्देश्य यही है कि दुनिया में रक्तपात, मारकाट लूटपाट, अपहरण आदि की घटनाओं को रोका जाए। आक्रमणों से साम्राज्य विस्तार की भावना समाप्त कर दी जाये, धन लोलुपता समाप्त की जाये। नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा जाये और उसे वासनापूर्ति का साधन नहीं माना जाये। अपने धर्म, अपनी जाति, मातृभूमि और पराई स्त्री को माँ के समान आदरभाव से देखा जाए। धरोहर का रचनाकार अपने इस उद्देश्य में पूर्ण रूप से सफल रहा है।

2. कथावस्तु की विशेषताएँ

प्रस्तुत एकांकी की कथावस्तु यद्यपि बहुत छोटी है और इसमें छत्रपति शिवाजी के जीवन-काल की एक अत्यन्त लघु घटना को ही उपस्थित किया गया है, फिर भी रंगमंच और अभिनय की दृष्टि के साथ ही उद्देश्य की अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह कथावस्तु अनेक विशेषताओं से युक्त है। इसकी प्रमुख विशेषताओं को निम्न शीर्षकों में स्पष्ट किया जा रहा है –

1. आकर्षक शीर्षक – एकांकी का शीर्षक ''धरोहर'' है। यह शीर्षक एकांकी की मूल घटना से संबंधित है। एकांकी की कथावस्तु में कोई एक ही घटना और भावजन्य संवेदना रहनी चाहिए, वह ''धरोहर'' में विद्यमान है। ''धरोहर'' की घटना न तो विस्तृत है और न उसमे एक से अधिक घटनाएँ ही जुड़ी हुई हैं। इस दृष्टि से 'धरोहर' नाम इस एकांकी के कथानक से सीधा सम्बन्ध रखता है। सेनापति आवाजी सोनदेव के द्वारा शिवाजी के लिए उपहार के रूप में लाई गई कल्याण प्रान्त के सूबेदार अहमद की पुत्रवधु को शिवाजी माँ के रूप में देखते हैं और उसके पावन सौन्दर्य को माँ के रूप में देखकर वे अत्यन्त प्रभावित होते हैं और कहते हैं कि यदि उनकी माँ भी अहमद की पुत्रवधु के समान सुन्दर होती तो शिवा स्वयं भी दिखने में अत्यन्त सुन्दर होते। शिवाजी उस स्त्री को कल्याण के सूबेदार की धरोहर मानते हैं और उसे सुरक्षित उसके पति के पास भेज देने का आश्वासन देते हैं, यथा –

''आप जरा भी परेशान न हों। माँ आपको आराम, इज्ज़त, हिफ़ाजत और ख़बरदारी के साथ आपके शौहर के पास पहुँचा दिया जायेगा, बिना देरी के, फ़ौरन।'' इस प्रकार 'धरोहर' एकांकी का शीर्षक एकांकी की कथावस्तु के अनुरूप और आकर्षक रखा गया है।

2. कौतूहलोत्पादक कथावस्तु – धरोहर एकांकी की कथावस्तु प्रारम्भ से ही दर्शकों के मन में एक कौतूहल उत्पन्न करने वाली है। आवाजी सोनदेव कल्याण प्रान्त के सूबेदार का खजाना लूटकर लाते हैं। उनके साथ लूट का माल लेकर हम्मालों का एक बड़ा भारी झुण्ड आता है। कुछ हम्माल एक पालकी उठाये हुए आते हैं। पालकी बन्द है। इस कारण दर्शकों में कौतूहल उत्पन्न होता है कि पालकी में क्या है ? इससे अधिक कौतूहल उत्पन्न होने की स्थिति इस एकांकी में तब आती है जब शिवाजी अपने सेनापत आवाजी सोनदेव से पूछते हैं कि –

शिवाजी – (हम्मालों के पीछे पालकी को देखकर) और उस मेणा में क्या है ?

आवाजी सोनदेव – (मुस्कराते हुए) उस मेणा......., उस मेणा में, श्रीमन्त, इस विजय का सबसे बड़ा तोहफा है।

शिवाजी – (उत्सुकता से आवाजी सोनदेव की ओर देखते हुए) अर्थात् ?''

इस प्रकार एकांकी की कथावस्तु में उत्सुकता का विकास होता है। उस पालकी अथवा मेणा में क्या है इस बात की उत्सुकता बनी रहती है। इसके पश्चात् दर्शकों की उत्सुकता आगे भी शिवाजी की प्रतिक्रिया जानने के लिए निरन्तर बनी रहती है।

3. संगठित कथावस्तु – प्रस्तुत एकांकी की कथावस्तु प्रारम्भ से ही पाठकों अथवा दर्शकों के मन को आकर्षित करने वाली है। कथावस्तु इतनी संगठित है कि सेनापति आवाजी सोनदेव द्वारा अहमद की पुत्रवधू को शिवाजी के सम्मुख प्रस्तुत करने से लेकर शिवाजी द्वारा उसे ''माँ'' शब्द से सम्बोधन करने तक दर्शक या पाठक इस कथावस्तु से बँधा रहता है। इतना ही नहीं, शिवाजी द्वारा अहमद की पुत्रवधू के रूप-सौन्दर्य को अपनी माँ के समान पावन दृष्टि से देखने तक और उसे सुरक्षित उसके शौहर तक पहुँचाने का आश्वासन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

देने तक पाठक पूर्णतया उसमें रुचि रखता है। इसके पश्चात् आवाजी सोनदेव पर शिवाजी का कुपित होना और उन्हें फटकारना इस एकांकी की संगठित कथावस्तु की पुष्टि करता है।

4. कथानक का स्वाभाविक विकास – 'धरोहर' एकांकी की कथावस्तु का प्रारम्भ और उसका विकास एकांकीकार ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से किया है। कथावस्तु के प्रारम्भ में राजगढ़ दुर्ग में सैनिकों के साथ विचार-मग्न बैठे शिवाजी को चित्रित किया गया है। इसके पश्चात् पेशवा मोरोपन्त पिंगले द्वारा सेनापति आवाजी सोनदेव की कल्याण-विजय का समाचार देना और लूट में भारी धनराशि प्राप्त करना आदि का कथन स्वाभाविक है। कथानक में आवाजी सोनदेव द्वारा मावलियों और हेटकरियों द्वारा युद्ध में दिखाई गई वीरता की प्रशंसा करना और उससे शिवाजी का प्रसन्न होना स्वाभाविक रूप में दर्शाया गया है। सत्यता यह है कि ये विशेषताएँ एकांकी की कथावस्तु के लिए आवश्यक भी हैं। कथावस्तु के चरम विकास की सीमा वहाँ पर आती है, जब सेनापति आवाजी सोनदेव मेणा अथवा पालकी से शिवाजी के अहमद की पुत्रवधू को उपहारस्वरूप लाई हुई वस्तु बताते हैं। कथावस्तु की चरम सीमा तब देखने को मिलती है। जब शिवाजी अहमद की पुत्रवधू को माँ कहकर पुकारते हैं और उसके रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यदि मेरी माँ भी आप ही के समान सुन्दर होती तो मैं भी एक सुदर्शन पुरुष होता। यह कथावस्तु की पराकाष्ठा है। कथानक में बिखराव तब आता है जब शिवाजी आवाजी सोनदेव को उनके इस कृत्य पर फटकारते हैं। इस प्रकार एकांकीकार ने अपनी कथावस्तु में आरोह और अवरोह की स्थिति रखकर कथानक के विकास को विराम दिया है। अन्त में शिवाजी अपने सेनापति और सैनिकों को भविष्य में ऐसा घृणित कृत्य न करने की सलाह देते हैं और यहीं पर कथावस्तु समाप्त हो जाती है, जिससे पाठक आगे की घटना के लिए अनुमान लगाता रह जाता है। इस प्रकार कौतूहल-विकास और कथावस्तु-विकास की दृष्टि से यह एक सफल एकांकी है।

5. संघर्ष तथा अन्तर्द्वन्द्व की योजना – किसी भी एकांकी में कथावस्तु में संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व का समावेश होने से उसमें रोचकता आ जाती है। 'धरोहर' एकांकी में कई स्थानों पर संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व देखने को मिलता है। शिवाजी के मन में प्रारम्भ में यह अन्तर्द्वन्द्व रहता है कि उसकी सेना द्वारा कल्याण-विजय में किस तरह वीरता का प्रदर्शन किया गया है। वे इस अभियान में मावलियों और हेटकरियों की वीरता तथा युद्ध के दौरान उनके कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करने में उत्सुक रहते हैं। शिलेदारों, बारगिरों, घुड़सवारों, सेना के अधिपतियों आदि के कार्यों में जानने की ललक भी इस एकांकी में शिवाजी के अन्तर्द्वन्द्व को दर्शाती है। यह इस एकांकी की कथावस्तु का स्वाभाविक गुण है। कथावस्तु में अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति तब आती है, जब शिवाजी अहमद की पुत्रवधू को उपहार स्वरूप लाने पर सेनापति आवाजी सोनदेव को फटकारते हैं और उनके किए कृत्य पर क्षुब्ध तथा लज्जित होते हैं। शिवाजी पेशवा मोरोपन्त पिंगल से कहते हैं –

''आह! पेशवा, यह........यह मेरे........मेरे एक सेनापति ने.......मेरे एक सेनापति ने क्या.......क्या कर डाला ? लज्जा से मेरा सिर आज पृथ्वी में नहीं, पाताल में धुसा जाता है। इस पाप का न जाने मुझे कैसा........कैसा प्रायश्चित करना पड़ेगा ?''

6. कथावस्तु की मार्मिकता – कथावस्तु का प्रारम्भ जितना कौतूहलपूर्ण है, उसका अन्त उतना ही मार्मिक भी है। आवाजी सोनदेव द्वारा शिवाजी को क्षुब्ध और लज्जित किये जाने से कथावस्तु की मार्मिकता बढ़ जाती है। कथावस्तु को शिवाजी का यह संवाद और भी मार्मिक बना देता है, जब वे अहमद की पुत्रवधू से कहते हैं –

''माँ, शिवा अपने सिपहसालार की इस नामाकूल हरकत पर आपसे मुआफी चाहता है। आह! कैसी अजीबोगरीब खूबसूरती है आपकी! आपको देखकर मेरे दिल में एक.........सिर्फ एक बात उठ रही है, कहीं मेरी माँ में आपकी-सी खूबसूरती होती तो मैं भी बदसूरत न होकर एक खूबसूरत शख्स होता।''

कथावस्तु में मार्मिकता तब भी दिखाई देती है, जब शिवाजी अहमद की पुत्रवधू से कहते हैं कि आप मेरी माँ समान हैं। आप सौन्दर्य की मूर्ति हैं। आपके सुन्दर रूप की मैं हिन्दू विधि से अर्चना और इस्लामी तरीके से इबादत करूँगा। इसके साथ ही एक और मार्मिक प्रसंग इस एकांकी में तब आता है जब शिवाजी आवाजी को समझाते हुए कहते हैं कि रक्तपात, लूटमार, अपहरण आदि घृणित कार्य हैं। ऐसा करने से हममें और इन्द्रिय-लोलुप डाकुओं व लुटेरों में कोई अन्तर ही नहीं रह गया है।

7. उद्देश्यपरक कथावस्तु – 'धरोहर' एकांकी की कथावस्तु एक महान् उद्देश्य को लेकर लिखी गई प्रतीत होती है। एक राजा द्वारा युद्ध में दूसरे राजा को पराजित करना, उसका राज्य अपने राज्य में मिलाना, उसके धन को लूटकर अपने कोष की वृद्धि करना और पराजित राजा या प्रतिपक्षी की रानी, बहिन, कन्या अथवा वहाँ की सुन्दर स्त्रियों का अपहरण कर लाना एक ऐतिहासिक सत्य है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

एकांकीकार ने प्रस्तुत एकांकी में इन्हीं भावों की सृष्टि की है। शिवाजी के सेनापति आवाजी सोनदेव द्वारा उपहारस्वरूप कल्याण के सूबेदार अहमद की पुत्रवधू को अपहरण करके लाना तत्कालीन युद्ध की एक सामान्य एवं स्वाभाविक प्रक्रिया को तो चित्रित किया ही है, किन्तु इसे शिवाजी द्वारा मान्यता न दिया जाना, स्वीकार न किया जाना और इसको घृणित कार्य बताना उनके आदर्श-चरित्र को दर्शाता है। यही नहीं, शिवाजी द्वारा उस स्त्री को माँ कहकर सम्बोधित करना, उसे उसके पति के पास सुरक्षित पहुँचाना और अपने सेनापति आवाजी सोनदेव को इस कृत्य पर खरी-खोटी सुनाना आदि प्रसंग एक महान् उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। 'धरोहर' एकांकी के कथानक में पराई स्त्री का सम्मान करने, सभी स्त्रियों को आदर की दृष्टि से देखने और उनके अपहरण या चरित्र को लांछित करने के कार्य को घृणित कर्म बतलाने आदि से संबंधित भावों की जो अभिव्यक्ति हुई है, वह इस एकांकी का मुख्य उद्देश्य माना जा सकता है। इसमें शिवाजी द्वारा नारी-सम्मान का जो आदर्श प्रस्तुत किया गया है, वह सभ्य समाज के लिए प्रेरणा और शिक्षा देने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

8. प्रभावान्विति का समावेश – प्रस्तुत कथावस्तु में प्रभाव न्विति की विशेषता परिलक्षित होती है। एकांकीकार द्वारा 'धरोहर' एकांकी में संकलनत्रय का पूर्ण निर्वाह किया गया है। इसमें कथानक की सभी घटनाएँ एक ही जगह पर, एक ही समय में और एक ही उद्देश्य या कार्य-रूप में घटित बतलाई गई हैं। इसमें शिवाजी को इस्लाम धर्म के प्रति आदर भाव रखने वाला और कुरान के प्रति गीता की तरह ही सम्मानपूर्ण दृष्टिकोण रखने वाला बतलाया गया है। वस्तुतः यह एकांकीकार द्वारा शिवाजी के चरित्र में परिष्कार करने की भावना का द्योतक है। इसे गाँधीवादी प्रभाव भी कह सकते हैं। इन सभी विशेषताओं से इस एकांकी का कथानक अतीव प्रभावोत्पादक बन गया है।

निष्कर्ष – इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'धरोहर' एकांकी में सेठ गोविन्ददास ने जो कथानक लिया है, वह ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। यह कथानक अत्यन्त रोचक, उद्देश्यपरक और मार्मिक है। इसमें प्रभाव की एकता है तथा कथानक का स्वाभाविक विकास दिखाया गया है। इसके छोटे से कथानक में प्रमुख पात्र शिवाजी के मानस में संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति को बड़ी कुशलता के साथ समाविष्ट किया गया है। इस तरह प्रस्तुत एकांकी की कथावस्तु उक्त समस्त विशेषताओं के कारण अत्यन्त सम्प्रेषणीय बन गई है।

3. चरित्र-चित्रण

कोई भी एकांकीकार अपने एकांकी में कभी तो सामाजिक विसंगतियों पर प्रकाश डालता है, कभी किसी महत्त्वपूर्ण घटना को सामने रखता है, तो कभी किसी महत्त्वपूर्ण चरित्र को खोजकर सामने रखता है, ताकि पाठकों को उसके किसी आदर्श व चरित्र से प्रेरणा मिल सके। एकांकीकार भी अपने एकांकी के पात्रों का चरित्र महत्त्वपूर्ण ढंग से चित्रित कर अपनी चरित्र-चित्रण की कुशलता का परिचय देता है। पात्रों के संवादों के माध्यम से ही हमें उनके चरित्रों की जानकारी प्राप्त होती है। 'धरोहर' एकांकी में शिवाजी और आवाजी सोनदेव दो ही प्रमुख पात्र हैं। पेशवा मोरोपन्त पिंगले गौण पात्र है। अहमद की पुत्रवधु भी एक पात्र है, परन्तु उसका कोई भी संवाद इसमें नहीं रखा गया है। वह केवल अश्रुपूर्ण नेत्रों से शिवाजी की ओर देखती रहती है। सारा एकांकी इन्हीं पात्रों पर चित्रित किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी की पात्र-योजना कथानक के अनुरूप है। इसमें शिवाजी के चरित्र को ऐतिहासिक पात्र के रूप में दिखाया गया है।

शिवाजी की चारित्रिक विशेषताएँ

सेठ गोविन्ददास ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को दृष्टिगत रखते हुए शिवाजी के चरित्र में उनके महान् आदर्श और आचरण को व्यक्त किया है। सामान्यतया 'धरोहर' एकांकी के आधार पर शिवाजी के चरित्र की विशेषताएँ अग्रलिखित शीर्षकों में व्यक्त की जा सकती हैं–

1. धीरोदात्त नायक – 'धरोहर' एकांकी में एकांकीकार सेठ गोविन्ददास ने प्रमुख पात्र शिवाजी को एक धीरोदात्त नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। एकांकी में शिवाजी को राजगढ़ दुर्ग के दालान में वीरासन में विचारमग्न चित्रित किया है। पेशवा मोरोपंत पिंगले द्वारा यह समाचार सुनाने पर कि सेनापति आवाजी सोनदेव ने कल्याण प्रांत को जीत लिया है और वहाँ का सारा खजाना लूटकर आ रहे हैं, शिवाजी वीरोचित भाव से धीर और गम्भीर मुद्रा में पेशवा को बैठने के लिए कहते हैं और कहते हैं कि वे अच्छा समाचार लेकर आये हैं। एकांकीकार ने एकांकी में शिवाजी से यह संवाद कहलाकर उनकी धीरता का स्पष्ट चित्र अंकित किया है, शिवाजी से आवाजी सोनदेव विजयी होकर लौटने पर मिलते हैं तो शिवाजी उन्हें युद्ध में एक धीर, वीर और गम्भीर सेनानायक की भाँति पूछते हैं कि किसने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अधिक वीरता दिखाई। इसके अतिरिक्त एक धीरोदात्त नायक होने के कारण अपनी पैदल सेना के अधिपति और अधिकारियों आदि की युद्ध में दिखाई गई वीरता की जानकारी भी प्राप्त करते हैं। इन सब प्रसंगों, संवादों और उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि एकांकीकार ने 'धरोहर' एकांकी में शिवाजी को धीरोदात्त नायक के रूप में चित्रित किया है।

2. कुशल सैन्य संचालक – 'धरोहर' एकांकी के नायक शिवाजी को एक कुशल सैन्य संचालक चित्रित किया गया है। शिवाजी अपनी पैदल सेना में मावलियों और हेटकरियों से युद्ध में वीरता का अच्छा प्रदर्शन करने की जिज्ञासा रखते हैं। साथ ही अपनी घुड़सवार सेना के बारगिरों और शिलेदारों में से किसने अच्छी वीरता का प्रदर्शन किया, इस सम्बन्ध में भी वे सेनापति आवाजी सोनदेव से रुचि लेकर जानकारी प्राप्त करते हैं, शिवाजी के चरित्र में एक कुशल सैन्य संचालक होने के प्रमाण में एकांकीकार ने इस बात का भी चित्रण किया है कि वे सेना के अधपतियों, नायकों, हवलदारों और घुड़सवारों आदि को सैन्य-प्रयाण का उचित निर्देश देते हैं।

3. वीरों का सम्मान करने वाले – इतिहास-प्रसिद्ध चरित्रनायक शिवाजी स्वयं एक वीर योद्धा थे। 'धरोहर' में सेठ गोविन्ददास ने शिवाजी को वीरों का सम्मान करने वाला महान् नायक चित्रित किया है। शिवाजी अपने महान् योद्धा पेशवा मोरोपंत पिंगले को उनके आगमन पर यथास्थान बैठने को कहते हैं और पेशवा द्वारा कल्याण-विजय की सूचना देने पर उसकी प्रशंसा भी करते हैं। अपने योग्य सेनापति आवाजी सोनदेव के बारे में भी पूछते हैं कि वे इस समय कहाँ हैं। सेनापति आवाजी सोनदेव के विजयी होकर लौटने पर शिवाजी उसकी प्रशंसा करते हैं। इन उदाहरणों से हम कह सकते हैं कि शिवाजी के चरित्र में वीरों का सम्मान करने वाला गुण भी एकांकीकार ने सफलता से चित्रित किया है।

4. स्त्री-अपहरण के विरोधी – 'धरोहर' एकांकी के नायक शिवाजी स्त्री-अपहरण के घोर विरोधी चित्रित किये गये हैं। जैसा कि एकांकी में दर्शाया गया है, सेनापति आवाजी सोनदेव कल्याण विजय के उपरान्त खजाना लूट लाने के साथ-साथ सूबेदार अहमद की पुत्रवधू का अपहरण कर लाता है। इससे शिवाजी अपने सेनापति पर एकाएक कुपित हो जाते हैं और आवाजी सोनदेव को क्रोधित होकर कहते हैं –

''आवाजी, तुमने ऐसा काम किया है, जो कदाचित् क्षमा नहीं किया जा सकता। शिवा को जानते हुए, निकट से जानते हुए, तुम्हारा साहस ऐसा घृणित कार्य करने के लिए कैसे हुआ ?'' इन विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि शिवाजी नारियों के अपहरण के कार्य को घृणित मानते हैं। शिवाजी इस घृणित कार्य के लिए आवाजी सोनदेव को खरी-खोटी सुनाते हुए कहते हैं कि – ''जो अधिकार प्राप्त जन हैं, जो सरदार हैं, या राजा, उन्हें..........उन्हें तो इस सम्बन्ध में विवेक, सबसे अधिक विवेक रखना आवश्यक है। आवाजी, क्या तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते थे ? इसलिए तो तुमने यह कृत्य नहीं किया ?'' इस संवाद से स्पष्ट हो जाता है कि शिवाजी उच्च चरित्र के धनी थे और नारी-सम्मान के पक्षपाती थे।

5. पर-स्त्री का सम्मान करने वाले – सेठ गोविन्ददास ने धरोहर एकांकी में शिवाजी को पर-स्त्री का माँ के समान सम्मान करने वाले नायक के रूप में चित्रित किया है। आवाजी सोनदेव द्वारा अहमद की पुत्रवधु को शिवाजी के लिए उपहार में लाने पर और उसे देखने पर शिवाजी उस मुस्लिम स्त्री को माँ कहकर सम्बोधित करते हैं। शिवाजी उस स्त्री को कहते हैं कि यदि मेरी माँ भी आप ही के समान सुन्दर होती, तो सम्भवत: मैं भी दिखने में एक सुन्दर पुरुष होता। इस घटना से स्पष्ट हो जाता है कि शिवाजी पर-स्त्री को माँ के रूप में देखते हैं। शिवाजी अहमद की पुत्रवधु के रूप की प्रशंसा करते हुए कहते हैं – ''माँ, आपकी खूबसूरती को मैं एक..........सिर्फ एक काम में ला सकता हूँ, उसका हिन्दू-विधि से पूजन करूँ, उसकी इस्लामी तरीके से इबादत करूँ। आप जरा भी परेशान न हों। माँ, आपको आराम, इज्जत, हिफ़ादत और खबरदारी के साथ आपके शौहर के पास पहुँचा दिया जायेगा।'' इस कथन से शिवाजी के चरित्र की वह विशेषता उजागर होती है, जिसमें एकांकीकार ने उन्हें पर-स्त्री को माँ कहकर सम्बोधित करने वाला नायक चित्रित किया है।

6. सर्वधर्म-समभाव से मण्डित – धरोहर एकांकी में एकांकीकार ने अपनी धर्म-निरपेक्ष विचारधारा का निरूपण किया है और शिवाजी के चरित्र के माध्यम से सर्वधर्म समभाव का आदर्श दर्शाया है। शिवाजी सर्वधर्म, समभाव वाले नायक हैं। उनकी दृष्टि में हिन्दू और मुस्लिम प्रजा में कोई भेद नहीं है, शिवाजी आवाजी सोनदेव से यह भी कहते हैं कि उनकी सेना में हिन्दू सिपाही भी हैं तो मुस्लिम सिपाही भी हैं। शिवाजी हिन्दू धर्म की भाँति इस्लाम धर्म को भी पूज्य मानते हैं। वे आवाजी सोनदेव से कहते हैं कि ''शिवा ने आजपर्यन्त किसी मस्जिद की दीवार में बाल बराबर दरार भी न आने दी। शिवा को यदि कहीं कुरान भी मिली तो उसने उसे सिर पर चढ़ा उसके एक पन्ने को भी किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये बिना मौलवी साहब की सेवा में भेज दिया।'' इन समस्त तथ्यों के आधार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पर स्पष्ट कहा जा सकता है कि एकांकीकार ने धरोहर एकांकी में शिवाजी को सभी धर्मों का आदर समान भाव से करने वाला नायक चित्रित किया है।

7. शीलवान् – 'धरोहर' एकांकी में शिवाजी को एक आदर्श शीलवान् नायक चित्रित किया गया है। अहमद की पुत्रवधू का अपहरण कर लाने के कारण आवाजी सोनदेव को शिवाजी इतनी खरी-खोटी सुनाते हैं कि इससे उनके शीलवान् नायक कहलाने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। वे कहते हैं कि सभी शासकों, राजाओं, सामन्तों, सेनानायकों और सैनिकों में शील स्वभाव का होना नितान्त आवश्यक है। यदि राजा में शील होगा तो उसके अनुयायी भी शीलवान होंगे। जैसा कि शिवाजी आवाजी सोनदेव से यह संवाद कहते हैं – ''शिवा में यदि शील नहीं, तो उसके सेनापतियों, सरदारों को शील का स्पर्श तक नहीं हो सकता। फिर तो हममें और इन्द्रिय-लोलुप-लुटेरों तथा डाकुओं में कोई अन्तर ही नहीं रह जाता।''

8. सच्चे स्वराज्य के पक्षधर – सेठ गोविन्ददास गाँधीवादी विचारधारा के एकांकीकार हैं। इस एकांकी में उनका गाँधीवादी दर्शन साकार रूप में प्रकट हुआ है। शिवाजी के चरित्र में एक सच्चे स्वराज्य के पक्षधर नायक का रूप उभारने के पीछे एकांकीकार की यही कल्पना साकार हुई है। एकांकी में शिवाजी भी किसी एक निश्चित धर्म-राज्य की स्थापना की अपेक्षा एक धर्म-निरपेक्ष सच्चे स्वराज्य की स्थापना पर बल देते हैं। वे नहीं चाहते हैं कि उनकी प्रजा, सेना आदि मात्र हिन्दू धर्मावलम्बी हो, वे ऐसे राज्य की परिकल्पना करते हैं जिसकी स्थापना करके सभी धर्मों के लोग और सम्पूर्ण मानव जाति सुख से रह सके। आवाजी सोनदेव से अपने इस चरित्र की पुष्टि करते हुए शिवाजी कहते हैं कि ''वह देश में हिन्दू राज्य नहीं, सच्चे स्वराज्य की स्थापना चाहता है। आततायियों से सत्ता का अपहरण कर उदार नेताओं के हाथों में अधिकार देना चाहता है।''

9. नारी सम्मान के पक्षधर – एकांकीकार ने शिवाजी को नारियों का सम्मान करने वाला नायक चित्रित किया है। आवाजी सोनदेव द्वारा अहमद की पुत्रवधू का अपहरण कर लाने पर शिवाजी इस घृणित कार्य के लिए उस मुस्लिम महिला से क्षमा माँगते हैं। शिवाजी इस घटना से अत्यधिक क्षुब्ध होते हैं। अपने इस चरित्र से शिवाजी एक ओर जहाँ अपने सेनापति को फटकारते हैं, वहीं आने वाले युगों के विजेताओं और समर्थवान सेनापतियों को स्त्री-अपहरण जैसा घृणित कार्य न करने का संदेश भी देते हैं। वे यह शिक्षा देते हैं कि परस्त्री को माँ के रूप में देखा जाना चाहिए। इन समस्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि शिवाजी नारी-सम्मान के प्रतीक और पक्षधर चित्रित किये गये हैं।

निष्कर्ष – निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि एकांकी में शिवाजी के चरित्र को जिस रूप में चित्रित किया है, वह बनावटी प्रतीत नहीं होता। शिवाजी जैसे शक्ति सम्पन्न, आदर्श, चरित्रवान व्यक्ति का चरित्र इस एकांकी में स्वाभाविक और विशेष रूप से चित्रित किया गया है। उनके इस चरित्र से जहाँ कथानक में एक नया मोड़ आया है, वहीं इससे आदर्श चरित्र अपनाने की प्रेरणा भी मिलती है।

4. तात्विक विवेचना

धरोहर' एकांकी सुप्रसिद्ध एकांकीकार सेठ गोविन्ददास की एक ऐतिहासिक एकांकी है। यों तो सेठ गोविन्ददास ने कई नाटक लिखे हैं किन्तु एकांकी लेखन के क्षेत्र में भी वे पीछे नहीं रहे हैं। सेठ गोविन्ददास ने सामाजिक, राजनैतिक तथा ऐतिहासिक सभी प्रकार के नाटकों एवं एकांकियों की रचना की है। वे गाँधीवादी विचारधारा के एकांकीकार रहे हैं। उनकी एकांकी कला में पर्याप्त परिपक्वता है। 'धरोहर' में सेठ गोविन्ददास ने शिवाजी के जीवन की एक घटना का चित्रण प्रस्तुत किया है। यह एकांकी कला की दृष्टि से एक श्रेष्ठ रचना है। एकांकी के तत्त्वों में इसका विवेचन निम्नानुसार किया जा रहा है –

1. कथावस्तु – किसी भी एकांकी में कथावस्तु उसकी आधारशिला होती है। कथावस्तु के माध्यम से ही चरित्रों की सृष्टि होती है। 'धरोहर' एकांकी की कथावस्तु इस प्रकार है कि छत्रपति शिवाजी अपने राजगढ़ दुर्ग में बैठे हुए होते हैं। दुर्ग के बाहर एक प्रांगण में भगवा ध्वज लहरा रहा होता है। शिवाजी विचारमग्न बैठे रहते हैं। तभी पेशवा मोरोपन्त पिंगले आकर शिवाजी को उनके सेनापति आवाजी सोनदेव द्वारा कल्याण प्रान्त की विजय का समाचार देते हैं। यह समाचार पाकर शिवाजी प्रसन्न होते हैं और पेशवा को धन्यवाद देते हैं। पेशवा उन्हें पुनः यह भी समाचार देते हैं कि आवाजी सोनदेव ने कल्याण विजय के साथ ही कल्याण प्रान्त का खजाना भी लूट लिया है। आवाजी सोनदेव सारा माल लेकर आने ही वाले हैं। सेनापति आवाजी सोनदेव के आगमन पर, शिवाजी उनकी प्रशंसा करते हैं और युद्ध में किस सैनिक टुकड़ी ने अपनी वीरता का कैसा प्रदर्शन किया, यह बात सेनापति से पूछते हैं। सेनापति सभी के अच्छे प्रदर्शन की प्रशंसा करते हैं। इसके पश्चात् आवाजी सोनदेव शिवाजी को लूटे हुए माल के टोकरे दिखा-दिखा कर अपार धन-सम्पत्ति भेंट करते

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हैं। तत्पश्चात् एक पालकी में एक सुन्दर स्त्री को भी वे शिवाजी को भेंट करना चाहते हैं कि तभी शिवाजी की प्रसन्न मुख मुद्रा बदल जाती है। जब शिवाजी को यह पता चलता है कि यह कल्याण के सूबेदार अहमद की पुत्रवधू है जिसे सेनापति शिवाजी के लिए उपहार में लाए हैं तो शिवाजी की त्यौरियां चढ़ जाती हैं और वे अहमद की पुत्र वधू को सुरक्षित और ससम्मान उसके शौहर के पास पहुँचाने का आश्वासन देते हैं। उसके पश्चात् कथानक में अन्तर्द्वन्द्व चलता है। शिवाजी आवाजी सोनदेव को इस कृत्य के लिए डाँटते हैं तथा कहते हैं कि इस प्रकार की भूल के लिए भविष्य में किसी को भी क्षमा नहीं करूँगा। इस प्रकार शिवाजी अपने उज्वल, उच्च तथा आदर्श चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। शिवाजी के व्यवहार में आदर्श है। इस प्रकार 'धरोहर' की कथावस्तु का अन्त चरम बिन्दु पर होता है। अत: कथावस्तु संक्षिप्त, सुगठित और रोचक है।

2. पात्र एवं चरित्र-चित्रण – 'धरोहर' एकांकी ऐतिहासिक एकांकी है। इसमें मूल रूप से तीन ही पात्र हैं। जिनमें प्रमुख पात्र शिवाजी हैं और सहायक पात्र सेनापति सोनदेव। तीसरे गौण पात्र हैं पेशवा मोरोपन्त पिंगले। शेष अहमद की पुत्रवधू तथा कहारों का तो प्रसंग मात्र ही है। सर्वाधिक प्रभावशाली चरित्र शिवाजी का ही है। शिवाजी में एक योद्धा के गुणों के साथ एक उच्च विचारवान, आदर्श चरित्रवान तथा नारी जाति के सम्मान की रक्षा करने वाले नायक के गुण चित्रित किए गए हैं। वे अपने शत्रु तथा विधर्मी आक्रान्त अहमद की पुत्रवधू को माँ कहकर पुकारते हैं और उसके शील व सम्मान की रक्षा का आश्वासन देते हैं। इतना ही नहीं, पर स्त्री का अपहरण तथा लूटमार आदि के कार्य को शिवाजी घृणित कार्य बताते हैं। प्रस्तुत एकांकी में पात्रानुकूल चरित्र की सृष्टि की गई है। इसमें शिवाजी के बाहरी चरित्र का नहीं बल्कि भीतरी चरित्र का रूप अंकित किया गया है। इसी प्रकार सेनापति आवाजी सोनदेव को एक महान् योद्धा बताया गया है और एक कुशल सैन्य संचालक के रूप में उसका चरित्र-चित्रण किया गया है। इस प्रकार यह छोटा-सा एकांकी आदर्श चरित्र की प्रस्तुति करता है। अत: 'धरोहर' एकांकी पात्र एवं चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी एक उत्कृष्ट एकांकी है।

3. कथोपकथन – कोई भी एकांकीकार अपने एकांकी में अपनी विचारधारा को प्रकट करने का प्रयास करता है। एकांकी के पात्रों के द्वारा उनके मुख से कहलाये जाने वाले संवादों में एकांकीकार की निजी विचारधारा होती है। एकांकी के इसी कथोपकथन नामक तत्त्व में एकांकीकार पाठकों और दर्शकों को उपदेश देना चाहता है। इसके लिए पात्रों के संवादों को ही उचित माध्यम बनाया जाता है। एकांकी मंच पर अभिनय द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। एकांकी में कथोपकथन छोटे, आकर्षक, तर्कसंगत, हाजिरजवाबीपूर्ण, कथा को आगे बढ़ाने वाले, पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले, रोचकता बढ़ाने वाले और वातावरण का निर्माण करने में अत्यंत सहायक होते हैं। 'धरोहर' एकांकी में कथोपकथन की कई विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। ये पात्रों के स्तर के भी अनुरूप हैं। इस एकांकी में मात्र दो ही चरित्रों की सृष्टि की गई है। जिनमें से मात्र शिवाजी का चरित्र ही विशेष रूप से उजागर हुआ है। इस एकांकी में शिवाजी की मन:स्थिति को एकांकीकार ने कथोपकथन के माध्यम से चित्रित किया है।

4. अभिनयशीलता – किसी भी एकांकी की सफलता तभी सिद्ध हो सकती है जब वह अभिनय के योग्य हो। एकांकी का जब अभिनय किया जाता है, तभी पात्रों के हाव-भाव और मनोभाव भली-भाँति व्यक्त हो सकते हैं। अभिनयेता के लिए कथोपकथन नाटकीय, हृदयस्पर्शी, स्वाभाविक और सहज होने चाहिए। एकांकी में रंगनिर्देश दिये गये हों तभी वह अभिनयशील कहा जा सकता है। इस प्रकार के रंग-निर्देश पात्रों की वेशभूषा, हाव-भाव आदि के बारे में दे दिये जाते हैं। मंच पर किये जाने वाले छाया-प्रकाश के बारे में भी निर्देश रहते हैं। अभिनेय एकांकी में ये विशेषताएँ भी होती हैं, जो कि श्रव्यकाव्य की सफलता के लिए जरूरी हैं। इस दृष्टि से 'धरोहर' एकांकी में रंग-निर्देश दिये गये हैं, पात्रों की संख्या न्यून है और भाषा भी सरल है। इसमें राजगढ़ के दुर्ग का दृश्य और कथावस्तु का समय भी दिया गया है। जिसमें मंच और साजसज्जा आदि तय किये जा सकते हैं। इस प्रकार अभिनयशीलता की दृष्टि से भी धरोहर एकांकी को उपयुक्त एकांकी माना जा सकता है।

5. देशकाल और वातावरण – नाटक की तुलना में एकांकी बहुत छोटा होता है। इस कारण इसमें कार्य एवं स्थान की दृष्टि से एकरूपता होनी चाहिए। घटनाएँ एक ही काल की होनी चाहिए। पात्र समकालीन होने चाहिए। जिस युग अथवा जिन परिस्थितियों को लेकर एकांकी की रचना की गई हो उस युग की और उन परिस्थितियों का आन्तरिक और बाह्य वातावरण की छाप एकांकी में अवश्य दिखाई देनी चाहिए। 'धरोहर' एकांकी में जो वर्णन हुआ है वह सन् 1648 ईस्वी की एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना के अनुसार है। उस समय कल्याण एक स्वतन्त्र राज्य था। शिवाजी ने उसे जीता था और उनके सेनापित ने उसे लूटा भी था। एकांकी को पढ़ने और देखने से पाठक या दर्शक को उस युग और स्थान तथा परिस्थिति आदि का भी भान होता है। एकांकी ने राजगढ़ दुर्ग का जो चित्रण किया है, उन वर्णनों से एकांकी में देशकाल और वातावरण का पता चलता है। अत: इस दृष्टि से भी यह एकांकी उपर्युक्त प्रतीत होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. भाषा-शैली – एकांकी मंच पर अभिनीत किये जाने वाली विधा है। मंच पर उसी एकांकी को खेले जाने में सुविधा होती है जिसकी भाषा सरल, प्रभावपूर्ण और रोचक हो। सामान्यतया एकांकी की भाषा पात्रों के स्तर के अनुकूल तथा उनके मनोभावों के अनुरूप होनी चाहिए। प्रस्तुत एकांकी की भाषा में ये सभी गुण विद्यमान हैं। प्रस्तुत एकांकी की भाषा उस काल की परिस्थिति और पात्रानुकूल लिखी गई है। उस काल व वातावरण के अनुसार सैनिकों और सैनिक छावनियों की भाषा हिन्दी-उर्दू मिश्रित थी, अत: इस दृष्टि से इस एकांकी की भाषा हिन्दी और उर्दू मिश्रित है। एकांकी में शिवाजी को अहमद की पुत्रवधू से उर्दू भाषा में बोलते पाया गया है। जैसाकि शिवाजी कहते हैं – ''शिवा अपने सिपहसालार की इस नामाक़ू ल हरक़त पर आपसे मुआफ़ी चाहता है..........और..........आपको आराम, इज़्ज़त, हिफ़ाज़त और ख़बरदारी के साथ आपके शौहर के पास पहुँचा दिया जायेगा। बिना देरी के फ़ौरन।'' इस प्रकार भाषा-शैली की दृष्टि से भी धरोहर एकांकी अनूठी रचना है।

7. संघर्ष और द्वन्द्व – एकांकी जीवन का अनुकरण है और जीवन से जुड़ा हुआ है। जीवन में भी कभी-कभी संघर्ष और द्वन्द्व आते रहते हैं। एकांकीकार द्वारा संघर्ष और द्वन्द्व की स्थिति लाने पर एकांकी मनोरंजक बन जाता है। इससे एकांकी के कथानक में उतार-चढ़ाव और चरम स्थिति तक आ जाती है। पात्रों के चरित्र में भी इससे निखार आता है और एकांकी की रोचकता बढ़ जाती है। जब कथावस्तु के साथ-साथ पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व बढ़ता है तो एकांकी अच्छी लगती है। प्रस्तुत एकांकी में अपने सेनापति की एक भूल से शिवाजी के मन में अन्तर्द्वन्द्व दिखाया गया है। सेनापति आवाजी सोनदेव के कृत्य के साथ उनके अन्तर्द्वन्द्व का संघर्ष बढ़ता है। वे हत्या, लूटमार, अपहरण, रक्तपात आदि को घृणित कार्य बताते हैं। उनका अन्तर्द्वन्द्व तब देखने को मिलता है जब वे कहते हैं कि – ''शिवा में यदि शील नहीं, तो उसके सेनापतियों, सरदारों को शील का स्पर्श तक नहीं हो सकता। ......और............तब तो ये रक्तपात, ये लूटमार, घृणित, अत्यंत घृणित कृतियां हैं। ....और............तब तो हमारे जीवन से हमारी मृत्यु, हमारी विजय से हमारी पराजय, कहीं श्रेयस्कर हैं।'' इस प्रकार धरोहर एकांकी में संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति दिखाई देती है। इसी कारण यह एकांकी एक रोचक एकांकी बन पड़ा है।

एकांकी का उद्देश्य – प्रत्येक एकांकी किसी विशेष उद्देश्य को व्यक्त करने के लिये सृजित की जाती है। एकांकी नाटक और उपन्यास से छोटा होता है किन्तु अपने आप में पूर्ण होता है। एकांकी और नाटक में प्राय: वैसा ही अन्तर होता है , जैसा कि व्यक्ति के शरीर के सम्पूर्ण चित्र में और उसके आवक्ष चित्र में। अर्थात् नाटक में घटना का पूर्ण विस्तार होता है जबकि एकांकी में वही घटना संक्षिप्त में होती है। धरोहर एकांकी का उद्देश्य छत्रपति शिवाजी की चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करना है। यह एकांकी शिवाजी के महान् चरित्र, नारी जाति के प्रति उसके सम्मान, इस्लाम और कुरान के प्रति उनकी श्रद्धा तथा हिन्दु-मुस्लिम प्रजा के साथ समान व्यवहार करने की प्रवृत्ति को दर्शाता है। इस एकांकी के द्वारा शिवाजी का अपने सेनापति को अपहरण की इन घटनाओं के प्रति सचेत कराने का महज उद्देश्य है। शिवाजी लूटमार और रक्तपात को घृणित कार्य मानते हैं, इसके प्रमाण में एकांकीकार ने शिवाजी से कहलवाया भी है –

''तब तो ये रक्त-पात, ये लूट-मार, घृणित, अत्यन्त घृणित कृतियाँ हैं। शिवा में यदि शील नहीं तो उसके सेनापतियों, सरदारों को शील का स्पर्श तक नहीं हो सकता। फिर तो हममें और इन्द्रिय-लोलुप लुटेरों एवं डाकुओं में कोई अन्तर ही निहीं रह जाता। अरे ! तब तो हमारे जीवन से हमारी मृत्यु, हमारी विजय से हमारी पराजय कहीं श्रेयस्कर है।'' इस प्रकार नारी जाति के शील व सम्मान की रक्षा करनी ही शक्तिशाली पुरुषों और क्षत्रियों का परमधर्म है, यही दर्शाना इस एकांकी का प्रमुख उद्देश्य है।

एकांकी की मूल संवेदना या केन्द्रीय भाव – प्रत्येक एकांकीकार जब रचना करता है तो उसकी दृष्टि एकांकी की मूल संवेदना या केन्द्रीय भाव पर टिकी रहती है। एकांकी का यही केन्द्रीय भाव एकांकी में प्राण-तत्त्व का संचार करता है। 'धरोहर' एकांकी में भी एकांकीकार मूल संवेदना को लेकर चलता है। प्राचीनकाल से ही हमारे देश में पुरुष प्रधान समाज का विधान रहा है। समाज में नारी को दूसरी श्रेणी प्राप्त है। इतिहास साक्षी है, यही कारण है कि रामायण और महाभारत काल से लेकर अब तक नारी के अपहरण की घटनाओं से लेकर इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। प्राचीन काल से ही विजेताओं ने पराजितों की महिलाओं का अपहरण करके उनके मान-सम्मान को ठेस पहुँचाई है। इतिहास की इन्हीं काली घटनाओं को धो डालने के लिए एकांकीकार सेठ गोविन्ददास ने 'धरोहर' एकांकी में शिवाजी के सेनापति आवाजी सोनदेव से कल्याण के सूबेदार की पुत्रवधू के अपहरण की घटना प्रस्तुत की है और शिवाजी द्वारा उसे 'धरोहर' मानकर उसके शील-सम्मान की रक्षा करते हुए ससम्मान वापिस भिजवाकर अपना कर्त्तव्य निभाते हुए दर्शाया है। यह घटना उस अनुचित परम्परा का विरोध करती है और प्राचीन परम्परा की तरह नारी को मात्र वस्तु न मानकर उसे एक धरोहर और मान-सम्मान

का प्रतीक मानती है। एकांकीकार ने बाद की पीढ़ी को शिवाजी की तरह पर-नारी को दूसरे की धरोहर समझकर भविष्य में होने वाले किसी भी युद्ध या लूटमार में मात्र वस्तु समझकर उसका अपहरण न किया जाये। यही इस एकांकी का केन्द्रीय भाव व मूल संवेदना है।

निष्कर्ष – संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सेठ गोविन्ददास ने 'धरोहर' एकांकी का महान् उद्देश्य बताया है और महान् उद्देश्य की पूर्ति एकांकीकार ने महान् आदर्श की प्रस्तुति करके की है। शिवाजी जैसे महानायक का चरित्र वैसे भी इतिहास में अमर है, परन्तु एकांकीकार ने इस एकांकी के उद्देश्य को शिवाजी जैसे महान् चरित्रवान् व्यक्ति से जोड़कर उसे और भी अधिक गरिमा प्रदान करके महत्त्वपूर्ण बना दिया है। एकांकीकार अपने उद्देश्य में सफल रहा है। उसे अपने एकांकी के केन्द्रीय भाव और एकांकी की मूल संवेदना को स्पष्ट करने में आशा के अनुरूप सफलता मिली है।

''धरोहर'' हिन्दी के प्रसिद्ध एकांकीकार सेठ गोविन्ददास द्वारा लिखित एकांकी है। यह एक ऐतिहासिक एकांकी है। इसमें इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय किया गया है। इसी कारण इस एकांकी की कथावस्तु एक श्रेष्ठ एकांकी की कथावस्तु की विशेषताओं से समन्वित हो सकी है। जहाँ तक एकांकी में कथावस्तु की उपयोगिता और उसके महत्त्व का प्रश्न है, वह सर्वमान्य है। कोई भी एकांकी छोटी या बड़ी किसी-न-किसी प्रकार की कथावस्तु के बिना नहीं रचा जा सकती। कथावस्तु एकांकी की आधारशिला है। कथावस्तु के आधार पर ही चरित्रों की सृष्टि हो पाती है। जब कथावस्तु और पात्र होते हैं तो पात्रों के क्रियाकलापों और संवादों से कथावस्तु अपने उद्देश्य को व्यक्त करने में ही सहायक होता है। इस प्रकार एकांकी में कथावस्तु का विशेष महत्त्व स्वीकार किया जाता है।

5.4 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

5.4.1 अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. प्रस्तुत एकांकी 'धरोहर' का सम्बन्ध किस घटना से है?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी में छत्रपति शिवाजी के जीवन की एक अत्यन्त लघु घटना को व्यक्त किया है जो उनके चरित्र व उच्चादर्श से सम्बन्धित है।

प्रश्न-2. 'धरोहर' एकांकी का मुख्य उद्देश्य एक पंक्ति में बताइये।

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी धरोहर में पराई स्त्री का सम्मान करने और उसे अपहरण करने अथवा उसके चरित्र को लांछित करने के कार्य को घृणित बताया है।

प्रश्न-3. धरोहर एकांकी किस स्थान से सम्बन्ध रखती है?

उत्तर – 'धरोहर' एकांकी का सम्बन्ध ऐतिहासिक राजगढ़ दुर्ग से है।

प्रश्न-4. छत्रपति शिवाजी के मुख्य सेनापति का क्या नाम है?

उत्तर – छत्रपति शिवाजी के मुख्य सेनापति का नाम आवाजी सोनदेव है।

प्रश्न-5. सेनापति आवाजी सोनदेव छत्रपति शिवाजी को उपहार स्वरूप क्या भेंट करते हैं?

उत्तर – सेनापति आवाजी सोनदेव छत्रपति शिवाजी को सूबेदार अहमद की पुत्रवधु जो अत्यन्त रूपवती है को उपहार स्वरूप भेंट करते हैं।

प्रश्न-6. उपहार स्वरूप लाई गई सुन्दरी को आवाजी सोनदेव कहाँ से लूट कर लाते हैं?

उत्तर – कल्याण प्रान्त पर विजय प्राप्त कर अपार धन-सम्पत्ति के साथ वहाँ के सूबेदार अहमद की पुत्रवधु को भी लूटकर ले आते हैं, जिसे छत्रपति शिवाजी को उपहार स्वरूप दे दी जाती है।

प्रश्न-7. शिवाजी, अहमद की पुत्रवधु में किसकी छवि की कल्पना करते हैं?

उत्तर – अहमद की पुत्रवधु में छत्रपति शिवाजी अपनी माँ की छवि की कल्पना करते हैं।

प्रश्न-8. धरोहर एकांकी में कौन-सी घटना का चित्रण किया गया है?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी में 1648ई. की एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना है जब कल्याण एक स्वतंत्र राज्य था। और शिवाजी ने उस पर फतह प्राप्त की थी।

प्रश्न-9. छत्रपति शिवा किस प्रकार के राज्य की स्थापना करने की चाहत रखते थे ?

उत्तर – शिवाजी देश में हिन्दू राज्य नहीं, बल्कि सच्चे स्वराज्य की स्थापना करना चाहते थे।

प्रश्न-10. ''आपकी खूबसूरती को मैं एक..........सिर्फ एक काम में ला सकता हूँ, उसका हिन्दू विधि से पूजन करूँ, उसकी इस्लामी तरीके से इबादत करूँ।'' कथन में शिवाजी की कौन-सी विशेषता परिलक्षित हुई है।

उत्तर – प्रस्तुत कथन के द्वारा शिवाजी की चारित्रिक विशेषता व उनके उच्चादर्शों का साक्षात्कार होता है।

प्रश्न-11. ''उसकी सेना में मुस्लिम सैनिक तक हैं, वह देश में हिन्दू राज्य की नहीं, सच्चे स्वराज्य की स्थापना चाहे हैं।''

कथन में एकांकीकार की कौन-सी विचारधारा समाहित है ?

उत्तर – प्रस्तुत कथन में एकांकीकार की गाँधीवादी विचारधारा का स्पष्टीकरण होता है।

प्रश्न-12. शिवाजी ने मुस्लिम महिला की खूबसूरती की प्रशंसा किस भाव से की ?

उत्तर – शिवाजी ने मुस्लिम महिला में मातृत्व भाव से खूबसूरती देखते हुए प्रशंसा की थी।

प्रश्न-13. 'धरोहर' एकांकी में शिवाजी को किस प्रकार के व्यक्तित्व के साथ चित्रित किया है ?

उत्तर – 'धरोहर' एकांकी में छत्रपति शिवाजी में एक कुशल योद्धा के साथ एक उच्च विचारवान, आदर्श चरित्रवान और नारी जाति के चरित्र व सम्मान की रक्षा करने वाले नायक के गुणों को चित्रित किया गया है।

प्रश्न-14. सुप्रसिद्ध एकांकीकार सेठ गोविन्ददास की लगभग सभी कृतियाँ किन समस्याओं से युक्त हैं ?

उत्तर – सेठ गोविन्ददास की रचनाओं में उनके सम्पूर्ण राजनैतिक जीवन के अनुभवों, भारतीय जीवन का यथार्थ, सभी वर्गों व उनके आन्दोलनों के जीवन चित्रण देखने को मिलते हैं।

प्रश्न-15. सेठ गोविन्ददास द्वारा विरचित किन्हीं तीन प्रमुख कृतियों के नाम लिखिये।

उत्तर – 'सप्तरश्मि', 'एकादशी' और 'चतुष्पद' आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं।

5.4.2 लघुत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. किसी भी सफल एकांकी में उसके कथोपकथन का क्या महत्त्व होता है, क्या 'धरोहर' एकांकी का कथोपकथन इस दृष्टि से सफल रहा है ? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – कोई भी एकांकीकार अपनी एकांकी में अपनी विचारधारा को प्रकट करने का प्रयास करता है। एकांकी के पात्रों के द्वारा कहलाये जाने वाले संवादों में लेखक की निजी विचारधारा होती है और इसी कथोपकथन नामक तत्त्व में लेखक के द्वारा पाठकों एवं दर्शकों को अपना संदेश देता है। इसके लिये पात्रों के संवाद ही उचित माध्यम है। एकांकी मंच पर अभिनय द्वारा प्रदर्शित की जाती है। इसके कथोपकथन छोटे, आकर्षक, तर्कसंगत, हाजिरजवाब, कथा को आगे बढ़ाने वाले, पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले, रोचकता बढ़ाने वाले, और वातावरण का निर्माण करने में अत्यधिक सहायक होते हैं।

प्रस्तुत एकांकी 'धरोहर' में कथोपकथन की कई विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। ये पात्रों के स्तर के भी अनुरूप हैं। इस एकांकी में भी चरित्रों की सृष्टि की गयी है, जिनमें से मात्र शिवाजी का चरित्र ही मुख्य रूप से उजागर हुआ है। इस एकांकी में शिवाजी की मन:स्थिति को एकांकीकार ने कथोपकथन के माध्यम से स्पष्ट किया है जिसमें सभी गुण मौजूद हैं।

प्रश्न-2. 'धरोहर' एकांकी के उद्देश्य को संक्षिप्त में प्रतिपादित कीजिये।

उत्तर – प्रत्येक रचना के सृजन का अपना एक लक्ष्य होता है। जिसे एकांकीकार उपदेशक की भाँति प्रस्तुत नहीं करता है किन्तु अपने पात्रों, संवादों, कथावस्तु के मोड़ों, आरोह-अवहरोहों द्वारा ही व्यंजित करता है। एकांकीकार को उद्देश्य की अभिव्यक्ति, पात्रों, उनके संवादों, क्रिया-कलापों के माध्यम से करनी पड़ती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.5 सारांश

'धरोहर' एकांकी का उद्देश्य यही है कि दुनियाँ में रक्तपात, मारकाट, लूटपाट, अपहरण जैसी घटनाएँ घटित होती हैं, इन्हें रोका जाये। आक्रमणों से साम्राज्य विस्तार की भावना को समाप्त कर दिया जाये, धन लोलुपता समाप्त की जाये। नारी सम्मान व उसके चरित्र की रक्षा की जाये, उसे मात्र वासनापूर्ति का साधन न समझा जाये। अपने धर्म, अपनी मातृभूमि व परस्त्री को सम्मान प्रदान किया जाये। प्रस्तुत एकांकी 'धरोहर' के रचनाकार उद्देश्य व्यक्त करने की दृष्टि से पूर्णत: सफल रहे हैं।

5.6 अभ्यास प्रश्नावली

1. धरोहर एकांकी कथोपकथन की दृष्टि से सफल एकांकी है। सिद्ध कीजिए।
2. एकांकी तत्त्वों के आधार पर धरोहर एकांकी का मूल्यांकन कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 6 : हमारा स्वाधीनता संग्राम (भारत छोड़ो)

(विष्णु प्रभाकर)

संरचना

6.0 लेखक परिचय
6.1 हमारा स्वाधीनता संग्राम
6.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
6.3 हमारा स्वाधीनता संग्राम – शीर्षक, उद्देश्य एवं कथानक वैशिष्ट्य
6.4 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
6.4.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न
6.4.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न
6.4.3 निबंधात्मक प्रश्न
6.5 सारांश
6.6 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.0 लेखक परिचय

हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट साहित्यकार के रूप में श्रीविष्णु प्रभाकर का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। श्री प्रभाकर ने सभी विधाओं में अपनी मातृभाषा को उत्कृष्ट मौलिक रूप में समाहित किया है। आप अनेक बार सम्मानित हो चुके हैं। यद्यपि आपकी साहित्य साधना विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होती रही है, किन्तु आपकी ख्याति रेडियो एकांकियों के रूपान्तरकार के रूप में हुई है। 'इन्सान', 'माँ का बेटा', 'क्या वह दोषी था ?'' आदि अनेक संग्रहों में आपके एकांकी प्रकाशित हुए हैं। लम्बे समय तक आपने आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से नाटक विभाग में उल्लेखनीय काम किया। आपकी एकांकियों का मूल स्वर राष्ट्रप्रेम है। आप गाँधीजी के विचारों और स्वतंत्र आन्दोलनों से जुड़े रहे हैं। आपमें समग्र साहित्य का सफल विश्लेषण मिलता है। यह मनोविज्ञान विश्लेषण की दृष्टि विशेष रूप से उनके नाटकों में पाई जाती है। आपने जीवन की विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण काफ़ी समझदारी से किया है। आपकी एकांकी विचार प्रधान होती है। आप जो भी संदेश देना चाहते हैं उनमें न तो बौद्धिक कड़वाहट होती है और न उनमें किसी प्रकार की व्यक्तिवादी अहमान्यता ही होती है। जिसमें 'भारत छोड़ो घोषणा' से सम्बन्धित इतिहास चित्रित किया गया है। कुछ वर्णन तो इतने सजीव, रोचक और प्रभावशाली हैं कि इतिहास ही बोल उठा है। यह सच्चे अर्थों में मात्र इतिहास नहीं है, अपितु उस गौरवमय इतिहास की स्वर्णिम झाँकी है। रेडियो रूपक का सम्बन्ध केवल शब्द से ही होता है। उसमें कुछ दिखाया नहीं जाता है बल्कि सब कुछ कहा जाता है और वह भी इस अंदाज से कहा जाता है कि सुनने वालों पर उनका मनचाहा प्रभाव पड़े। इसलिये इसमें सूत्रधार के कथनों की भरमार है और रंगमंच के निर्देश नहीं दिये गये हैं।

6.1 हमारा स्वाधीनता संग्राम

श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित 'रेडियो' एकांकी 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक जीवन्त प्रस्तुति है। इसमें स्वतंत्रता संग्राम आन्दोलन का वृतान्त दिया गया है। यद्यपि यह वृतान्त राष्ट्रीय आन्दोलन और विशेषत: भारत छोड़ो आन्दोलन की झाँकी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत की गई है। रूपककार विष्णु प्रभाकर स्वयं गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित और सक्रिय स्वतंत्रता सेनानी रहे हैं। प्रस्तुत एकांकी में उन्होंने गाँधीजी के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा और देश के प्रति असीम प्रेम की व्यंजना की है। स्वतंत्रता आन्दोलन में गाँधीजी का सहयोग करने से उस आन्दोलन का सम्पूर्ण घटनाचक्र एकांकीकार की दृष्टि में होकर गुजरा है। अत: समस्त

घटनाचक्र को उन्होंने कलात्मक ढंग से इस रेड़ियो रूपक में समेटा है। इसमें कांग्रेस का बम्बई अधिवेशन, चुनाव परिणाम, पं. नेहरू का आगमन, धारा सभा के चुनाव, मुस्लिम लीग का अभ्युदय, द्वितीय विश्वयुद्ध, क्रिप्स मिशन का भारत आगमन, क्रिप्स मिशन का परिणाम, भारत छोड़ो आन्दोलन व उसके परिणाम, गाँधीजी का अनशन, नेताजी का संघर्ष तथा अन्य विशेष घटनाओं का स्पष्ट वृतान्त प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत रेडियो रूपक में श्री विष्णु प्रभाकर ने सन् 1934 के कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन से लेकर सन् 1945 तक के कांग्रेस के ग्यारह वर्ष के लम्बे संघर्ष की कहानी को एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है। अत: इस रेडियो रूपक में मुख्य भूमिका सूत्रधार की है। समय-समय पर सूत्राधार ने परिस्थितियों का वर्णन किया है और विभिन्न स्वरों के माध्यम से अपने विचारों से अवगत कराया गया है।

6.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''उस दिन यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि हम लोग धारा-सभाओं में नये विधान और सरकार से सहयोग करने नहीं, बल्कि उनसे लड़ाई लड़ने के लिए जा रहे हैं। इन चुनावों का परिणाम यह हुआ कि देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक राजनैतिक जागृति का तूफान आ गया, एक क्रांति शुरु हो गयी। सरकार के अनेक बंधनों के बावजूद लोग दल बना-बना कर पोलिंग बूथों पर जाते थे और महात्मा गाँधी को वोट देते थे।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' एकांकी पाठ से अवतरित हैं, जिसे एकांकीकार विष्णुप्रभाकर ने लिखा है। यह रेडियो रूपक है जिसे एक अंश के रूप में सूत्रधार के माध्यम से कहलाया गया है। सन् उन्नीस सौ चौंतीस के बम्बई अधिवेशन में लिये गये निर्णय के अनुसार कांग्रेस धारा सभा के चुनावों में कूद पड़ी थी। सूत्रधार रेडियो पर घोषणा करता है।

व्याख्या – सूत्रधार कहता है कि बम्बई अधिवेशन में उस दिन यह बात सार्वजनिक रूप से स्पष्ट कर दी गई थी कि कांग्रेस पार्टी धारा सभाओं का चुनाव लड़ेगी और नये विधान के अनुसार सरकार का सहयोग नहीं किया जायेगा, बल्कि नये विधान के अनुसार कांग्रेस को जो अधिकार दिये गए हैं उससे कांग्रेस चुनाव जीतकर धारा सभा का सदस्य बनकर सरकार के विरुद्ध अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करेगी। इस उद्देश्य से चुनावों में पार्टी उतर गई। परिणाम यह हुआ कि इस निर्णय से सम्पूर्ण देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक राजनैतिक जागृति आ गई और नई क्रांति ने जन्म ले लिया। चुनावों के प्रति जनता का उत्साह था। सरकार ने जनता पर कई प्रतिबन्ध लगाए थे, किन्तु जनता सरकार के प्रतिबन्धों को तोड़ती हुई कई-कई जत्थे बना-बनाकर वोट डालने के लिए अपने-अपने पोलिंग-बूथों पर जाकर महात्मा गाँधी की जय-जयकार करती हुई गाँधीजी के ही पक्ष में कांग्रेस पार्टी को वोट देती थी।

विशेष – 1. एकांकी की भाँति किसी पात्र से संवाद नहीं कहलवाया गया है बल्कि रेडियो रूपक की तकनीक के अनुसार सूत्रधार द्वारा इस बात की घोषणा की गई थी।

2. भाषा में तारतम्यता तथा प्रवाह है। शैली में रोचकता है।

(2)

''मैं कहा करता था कि ग्रेट-ब्रिटेन को मेरा नैतिक समर्थन प्राप्त है, पर अब यह कहते बड़ा दु:ख होता है कि आज उसे नैतिक समर्थन देने से मेरा दिल इन्कार करता है। एकता लाने की सारी कोशिशें बेकार गईं तब सहज ही मुझे यह तर्क मिला कि जब तक इस देश में अंग्रेजी हुकूमत रहेगी तब तक सच्चा एका न रहेगा।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के विष्णु प्रभाकर द्वारा विरचित एकांकी 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' से अवतरित है। अवतरण में महात्मा गाँधी के विचार हैं, जो उनकी मासिक पत्रिका 'हरिजन' में मई, 1942 के उनके लेख का अंश है। इसमें सर स्टैफर्ड क्रिप्स के भारत विरोधी समझौते के विरोध में विचार प्रकट किए गए हैं। गाँधीजी की तत्कालीन घोषणा को रेडियो पर एक स्वर रूप में इस प्रकार घोषित किया जाता है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – पहले तो मैं यह स्पष्ट रूप से कहा करता था कि मैं, हमारी पार्टी तथा हमारा देश ग्रेट-ब्रिटेन को द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए नैतिक समर्थन देती रहेगी। परन्तु अब ग्रेट-ब्रिटेन को नैतिक समर्थन का वायदा दोहराते हुए बड़ा दुःख होता है। उसकी भारत विरोधी गतिविधियों के कारण उसे नैतिक समर्थन देने का मन नहीं करता। ग्रेट-ब्रिटेन से हमारे एकता लाने के सारे प्रयास व्यर्थ चले गए। इसके परिणामस्वरूप मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जब तक हमारे देश में अंग्रेजों की सरकार रहेगी। तब तक ब्रिटेन के साथ हमारी सच्ची एकता कदापि नहीं हो सकती। क्योंकि भारत ब्रिटेन का उपनिवेश है वह दमनकारी नीति चलायेंगे तो हमें संघर्ष करना पड़ेगा, जिससे एकता का प्रश्न ही नहीं उठता।

विशेष – 1. एकांकीकार ने गाँधीजी के विचारों में आए परिवर्तन को लक्षित किया है। इसे क्रिप्स मिशन के भारत विरोधी समझौते से व्यथित गाँधीजी की पीड़ा का चित्रण किया गया है।

2. भाषा शैली सरल तथा प्रतीकात्मक है।

(3)

''यदि सरकार मुझे मेरी गलती को समझा दे तो मैं प्रायश्चित के लिए तैयार हूँ और यदि वह चाहती है कि कांग्रेस की ओर से मैं कोई प्रस्ताव उनके सामने रखूँ तो मुझे कार्य-समिति के पास भेज दिया जाए।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित एकांकी 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' से अवतरित है। इस अवतरण में सूत्रधार गाँधीजी के उस वक्तव्य को कहता है जो उन्होंने सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के लिए स्वयं पर ब्रिटिश सरकार द्वारा दोष मढ़ने के प्रतिवाद के रूप में कहा था। उसी कथन को उपस्थित करता हुआ सूत्रधार कहता है –

व्याख्या – गाँधीजी ने कहा कि इस आन्दोलन में मैंने क्या गलती की ? यदि सरकार मुझको मेरी गलती बतला दे अथवा मेरी गलती सिद्ध कर दे तो मैं किसी भी प्रकार से प्रायश्चित करने के लिए तैयार हूँ, अर्थात् अपनी गलती स्वीकार करने में भी नहीं हिचकिचाऊँगा। परन्तु अंग्रेज सरकार सारा दोष मुझ पर डाल रही है, यह उसकी स्वार्थी कूटनीति है। इसलिए मुझ पर विश्वास न करके यदि अंग्रेज सरकार यह चाहती है कि कांग्रेस पार्टी की ओर से भारत की आजादी के लिए कोई नया प्रस्ताव लेकर मैं सरकार के समक्ष प्रस्तुत करूँ तो सरकार मुझे कांग्रेस कार्य समिति के पास भेज दे, ताकि नया प्रस्ताव शीघ्र बनाकर लाया जा सके।

विशेष – 1. इस अवतरण को सूत्रधार के द्वारा कहलाकर रेडियो रूपक को रोचक बनाने का प्रयास किया गया है। अंग्रेज सरकार पर महात्मा गाँधी के नेतृत्व के दरबार को दर्शाने में एकांकीकार को पर्याप्त सफलता मिली है।

2. भाषा सरल तथा भावपूर्ण शैली का प्रयोग किया गया है।

(4)

''वे बराबर इसी वीरता से लड़े। देखने में वे हार गए थे, परन्तु भारत को आजादी की राह पर उन्होंने कोसों आगे बढ़ा दिया। तभी तो नेहरू जी ने कहा था – ''जिस काम को कांग्रेस साठ वर्ष के अन्दर न कर सकी उससे बहुत ज्यादा काम नेताजी ने तीन वर्ष में कर दिखाया।'' ठीक इन्हीं दिनों जब आज़ाद हिन्द फ़ौज भारत भूमि पर आज़ादी का युद्ध लड़ रही थी तब गाँधीजी श्री ज़िन्ना के साथ मिलकर हिन्दू-मुसलमान समस्या की गुत्थी सुलझा रहे थे, पर वे सफल न हो सके। घटनाएँ फिर तेजी से घूमने लगीं।''

प्रसंग – यह अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के विष्णु प्रभाकर द्वारा विरचित एकांकी (रेडियो रूपक) 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' से अवतरित है। इसमें सूत्रधार नेताजी सुभाषचन्द्र बोस व उनकी आज़ाद हिन्द फ़ौज की देश-सेवा का वर्णन करते हुए कहता है –

व्याख्या – सूत्रधार कहता है कि आज़ाद हिन्द फ़ौज के नायक नेताजी सुभाषचन्द्र बोस बराबर इसी प्रकार वीरता से लड़े। यद्यपि देखने में तो साधन-सम्पन्न विशाल ब्रिटिश-वाहिनी से वे हार तो गए थे परन्तु उन्होंने हारकर भी भारत को आजादी के मार्ग पर कोसों आगे बढ़ा दिया था, अर्थात् उनका संघर्ष ही आजादी का मूल कारण था। सूत्रधार फिर कहता है कि नेताजी के साहसी कार्य के विषय में पंडित नेहरू ने भी यही कहा था कि देश को स्वाधीनता दिलाने का जो कार्य कांग्रेस पार्टी साठ वर्ष के कालखण्ड में नहीं कर सकी, वह कार्य नेताजी ने तीन वर्ष के भीतर ही कर डाला। सूत्रधार फिर से आगे कहता है कि इधर तो नेताजी भारत की भूमि पर अपनी आजाद हिन्द सेना लेकर स्वाधीनता संग्राम में रत थे और ठीक उन्हीं दिनों गाँधीजी कायदे-आज़म ज़िन्ना के साथ मिल-बैठकर हिन्दू-मुसलमान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एकता तथा उनकी समस्याओं के समाधान के लिए कार्य कर रहे थे। परन्तु गाँधीजी सफल नहीं हो सके, जिसका परिणाम यह हुआ कि राजनैतिक घटनाचक्र तेजी से घूमने लगा।

विशेष – 1. एकांकीकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन में देश की स्वाधीनता के लिए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के महान् योगदान की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। नरम दल के नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू के द्वारा भी सूत्रधार के माध्यम से नेताजी के कार्यों की प्रशंसा की गई है।

2. भाषा सरल तथा शैली भाव प्रधान है।

6.3 हमारा स्वाधीनता संग्राम -शीर्षक, उद्देश्य एवं कथानक वैशिष्ट्य

रेडियो रूपक में कथानक और शीर्षक का समुचित तारतम्य, समन्वय और सम्बद्धता आवश्यक है, जिससे कि श्रोताओं को रसानुभूति होती है। श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' रेडियो रूपक के शीर्षक रूपक की कथावस्तु, उसमें चित्रित घटनाओं आदि से मेल रखने वाला है। यह वर्ण्य-विषय का प्रतिनिधित्व करने वाला मौलिक और इतिहास-बोध कराने वाला शीर्षक है। यद्यपि यह शीर्षक कुछ बड़ा है और अन्य रचनाओं की भाँति इसका शीर्षक आकर्षक नहीं लगता है तथापि इसका लम्बा शीर्षक राष्ट्रीय आन्दोलन की गरिमा लिये हुए हैं यही कारण है कि इतना लम्बा शीर्षक होते हुए भी पाठक या श्रोता इसके महत्व को नजर अन्दाज नहीं कर सकता।

शीर्षक का औचित्य – यह शीर्षक कुछ लम्बा है। प्रत्येक रचनाकार अपनी रचनाओं के शीर्षक बहुत ही कम शब्दों में, सारगर्भित तथा कथावस्तु की भावना, भाषा, और घटनाओं के अनुरूप आकर्षक ढंग से रखता है, परन्तु 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' नामक रेडियो रूपक का यह शीर्षक भले ही उच्चारण करने की दृष्टि से लम्बा प्रतीत होता है। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रमुख घटनाओं का स्पष्ट सूचक है। इस शीर्षक को पढ़ने अथवा सुनने में न कोई अटपटापन लगता है और न कोई असुविधा होती है, बल्कि इसे पढ़ने या सुनने से तत्कालीन आन्दोलनकारी नेताओं, शहीदों, उनके बलिदान आदि का स्मरण हो आता है। रूपककार ने नई पीढ़ी को राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना होम करने वाले देशभक्तों, नेताओं और बलिदानियों की अमर कहानी कहकर आजादी का महत्व बताया है और देशभक्ति का पाठ पढ़ाने का प्रयास किया है। यह इस रूपक के शीर्षक का मूल औचित्य भी है। रूपक का प्रारम्भ कांग्रेस के सन् 1934 के बम्बई अधिवेशन से होता है और उसका अन्त सन् 1945 के ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस नेताओं के बीच हुये शिमला सम्मेलन और उसके परिणाम तक का है। इस ग्यारह वर्ष के लम्बे अन्तराल के आन्दोलन के इतिहास को दोहराना मात्र ही रूपककार का उद्देश्य नहीं है, बल्कि महात्मा गाँधी और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को जो योगदान दिया गया है, उसकी पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालना अभिप्रेत रहा है। यही इस रूपक के शीर्षक का औचित्य है।

प्रत्येक रूपककार अन्य रचनाकारों की भाँति किसी विशेष उद्देश्य को लेकर चलता है। प्रस्तुत रूपक में भी प्रारम्भ से लेकर अन्त तक महात्मा गाँधी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और जवाहरलाल नेहरू द्वारा भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को दिया गया योगदान वर्णित है। गाँधीजी के नाम पर भारत की जनता की आस्था, कांग्रेस के एक युवा वर्ग द्वारा अहिंसा की नीति का विरोध और कांग्रेस से अलग होकर समाजवादी पार्टी की स्थापना करना आदि घटनाएँ चित्रित की गयी हैं। साथ ही केन्द्रीय धारा सभा, प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनावों की चर्चा और द्वितीय विश्वयुद्ध में भारत के योगदान की घटनाओं को उजागर करना भी इस रूपक का उद्देश्य है। इसके पश्चात् रूपककार का मूल उद्देश्य सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की याद ताजा करना, क्रिप्स मिशन का भारत आगमन, मिशन की शर्तें व उसके परिणाम आदि की ओर भावी पीढ़ी का ध्यान आकर्षित करना भी है। भारत छोड़ो आन्दोलन के कारण व परिणाम, उसकी असफलता, गाँधी जी का अनशन और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की आजाद-हिन्द फौज का संघर्ष आदि की ओर नई पीढ़ी का ध्यान दिलाया गया है, ताकि देश की भावी पीढ़ी आजादी के मूल्यों को समझे और देशभक्ति की ओर निरन्तर अग्रसर होती रहे। यही उद्देश्य और मूल संवेदना इस रूपक की है। इस रूपक के मूल उद्देश्य का विस्तृत विश्लेषण निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं –

1. महान् चरित्र को प्रस्तुत करना – श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित इस रूपक में सर्वाधिक उल्लेख महात्मा गाँधी के योगदान का किया गया है। स्वतन्त्रता आन्दोलन को गांधीजी द्वारा दी गयी अहिंसावादी नीति कांग्रेस के युवा वर्ग को नहीं भायी, तो उस युवा वर्ग ने समाजवादी पार्टी की स्थापना कर डाली। गाँधीजी की अहिंसा नीति के विरोध में और मुस्लिम लीग का निरन्तर तुष्टिकरण किये

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाने तथा कांग्रेस में नेतृत्व परिवर्तन के सवाल पर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा कांग्रेस छोड़कर फारवर्ड ब्लाक नाम से एक नये दल का गठन किया गया। इन समस्त घटनाओं के बावजूद रूपककार ने इस रूपक में गाँधीजी के व्यक्तित्व व लोकप्रियता में कमी नहीं आने दी है। इतना ही नहीं, गाँधीजी के नाम पर देश की जनता का उतावला होना और उनके ही नाम पर जनता को वोट डालने के लिए उत्सुक बताना आदि विवरणों से गाँधीजी के चरित्र को उजागर किया गया है। इक्कीस दिन के उपवास की अवधि में सम्पूर्ण राष्ट्र द्वारा गाँधीजी के प्रति संवेदना व्यक्त करना और उपवास से उनकी गम्भीर स्थिति के प्रति सहानुभूति दर्शाना जनता पर उनका प्रभाव और लोकप्रियता का द्योतक है।

2. गाँधीजी की देशभक्ति – इस रूपक में महात्मा गाँधी को महानायक के रूप में चित्रित किया है। ब्रिटिश सरकार से टक्कर लेने वाले महात्मा गाँधी को असहयोग आन्दोलन में असफलता का मुँह देखना पड़ा। ब्रिटिश सरकार असहयोग आन्दोलन शुरू करने का दोष भी गाँधी जी पर मढ़ती रही, तो उसके असफल होने का उत्तरदायी भी गाँधीजी को ही माना। गाँधी जी में रूपककार ने अटल देशभक्ति चित्रित की है। भारत छोड़ो आन्दोलन में गाँधीजी का निर्णय सर्वमान्य होता था और उनका 'करो या मरो' का नारा पूरे देश में गूँजता रहा। इसे गाँधीजी का मूल मन्त्र मानकर लोग भारत छोड़ो आन्दोलन में कूद पड़े। इन घटनाओं को उजागर करके रूपककार ने गाँधीजी के चरित्र में उनके अद्‌भुत नेतृत्व कौशल का चित्रण करने का प्रयास किया है।

3. देशप्रेम की भावना जागृत करना – रूपककार ने इसमें आन्दोलनकारियों को और स्वतन्त्रता सेनानियों को देशप्रेम की भावना से परिपूर्ण बताया है। जो लोग महात्मा गाँधी की विचारधारा से प्रभावित थे, जो उनके आह्वान पर स्वतन्त्रा संग्राम में कूद पड़े थे, उन्हें गाँधी जी की तरह देशभक्त बताकर रूपककार ने सम्मानित किया है। पं. जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और गाँधी जी इन तीन महान् नेताओं का उल्लेख इस रूपक में किया गया है। अन्य गौण पात्रों के मुख से भी स्वरों के माध्यम से देशप्रेम की भावनाएँ व्यक्त की गयी हैं। देशवासियों में यही भावना जागृत करना भी इस रूपक का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

4. नेताजी के योगदान से परिचित कराना – रूपककार ने प्रस्तुत रूपक में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की कांग्रेस से पृथक् होने की घटना, फारवर्ड ब्लाक की स्थापना तथा आजाद हिन्द फौज का गठन करके आजादी की लड़ाई में कूद पड़ने का चित्रण कर राष्ट्रीय आन्दोलन में उनके योगदान की भूमिका बतायी है। रूपककार ने नेताजी के उदात्त चरित्र का चित्रण किया है। नेताजी आजाद हिन्द फौज को लेकर 'दिल्ली चलो, दिल्ली चलो' का ऐतिहासिक नारा देते हैं। उनकी फौज में हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। 'जयहिन्द' का घोष कानों में पड़ता है। 'आजाद हिन्द फौज जिन्दाबाद' के नारे लगते हैं। ब्रिटिश सरकार की नींद भंग हो जाती है। इस प्रकार नेताजी देश के लिए लड़ते हैं। अंग्रेजों को दूर भगाने के लिए नेताजी के सराहनीय प्रयासों की चर्चा सार्थक बतायी गयी है।

रूपक की मूल संवेदना – रूपककार श्री विष्णु प्रभाकर अहिंसावादी और गाँधीवादी विचारधारा के लेखक हैं, इसलिए उनकी रचना में गाँधीवादी दर्शन और अहिंसा का सिद्धान्त यत्र-तत्र दिख यी देता है। रूपककार ने स्वयं राष्ट्रीय आन्दोलन में एक स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में भाग लिया था, इसलिए उन्होंने अपने संस्मरण स्पष्ट रूप से इस रूपक में चित्रित किये हैं। लेखक की इस रूपक की रचना की मूल संवेदना राष्ट्रप्रेम की भावना है। गाँधीजी के विचारों और स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े हुये उनके चिन्तन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सहज रूप से इस रूपक में किया गया है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की मूल दृष्टि इस रूपक में प्रमुख है। यह रूपक विचार प्रधान तो है ही, साथ ही ऐतिहासिक तथ्यों और प्रमुख घटनाओं का भी दिग्दर्शन कराता है। रूपककार इसके माध्यम से कुछ संदेश देना चाहता है। इस रूपक में न तो बौद्धिक कड़वाहट है और न व्यक्तिवादी अहमान्यता। इस रूपक में भारत की आजादी का इतिहास भी रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि यह सच्चे अर्थों में इतिहास तो नहीं है, परन्तु उस गौरवमय इतिहास की स्वर्णिम झाँकी अवश्य है। रेडियोरूपक का सम्बन्ध केवल शब्द से होता है। इसमें कुछ दिखाया नहीं गया है, बल्कि सब कुछ सुनाया या कहा गया है और इस अंदाज में कहा गया है कि सुनने वालों पर इसका प्रभाव अवश्य पड़ जाये। रूपककार देश की युवा पीढ़ी की आजादी का मर्म समझाना चाहता है, आजादी कैसे प्राप्त हुई, यह बताना रूपककार का उद्देश्य है। यही इसकी मूल संवेदना भी है।

निष्कर्ष – निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि रूपककार ने इस रूपक में जहाँ एक ओर गौरवमयी, ऐतिहासिक शीर्षक देकर भारतीय स्वाधीनता संग्राम की घटनाएँ दोहरायी हैं, वहीं हमें राष्ट्र-प्रेम की भावना की ओर उन्मुख किया है। गाँधीजी की अहिंसा, सत्यनिष्ठा व सत्याग्रह की राजनीति का चित्रण करना भी रूपककार का उद्देश्य रहा है। इन सभी दृष्टियों से यह श्रेष्ठ रेडियो रूपक माना जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित रेडियो रूपक 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' कई प्रमुख विशेषताओं से युक्त है। इस रूपक की प्रमुख विशेषताएँ अग्रलिखित हैं –

1. इतिहास की सार्थक प्रस्तुति – रूपककार ने इस रूपक में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास का चित्रण किया है। सन् 1934 के कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन का विवरण सूत्रधार ने स्पष्ट शब्दों में दिया है। इसमें सूत्रधार ने सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन, द्वितीय विश्वयुद्ध, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का स्वाधीनता अभियान, केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनाव के परिणाम, क्रिप्स मिशन का भारत आगमन, उसके समझौते प्रस्ताव और उनके परिणाम आदि का मार्मिक विवरण दिया है। सन् 1945 तक ग्यारह वर्ष के स्वाधीनता संघर्ष का कांग्रेस का पूरा चिट्ठा कहकर सुनाया गया है, जो पाठकों और श्रोताओं पर प्रभाव डालने में समर्थ है। इससे भावी पीढ़ी को देशभक्ति की प्रेरणा प्राप्त होती है।

2. राजनेताओं के योगदान की चर्चा – सूत्रधार की घोषणा और स्वरों के वाचन के माध्यम से रूपककार ने इस रेडियो रूपक में अत्यधिक रोचकता उत्पन्न की है। महात्मा गाँधी तो इस रूपक के त्राण के रूप में प्रतिस्थापित किये गये हैं। प्रत्येक अवसर पर गाँधीजी को प्रमुख रूप से दर्शाया गया है। गाँधीजी द्वारा दिये गये योगदान की चर्चा भी इसका प्रमुख उद्देश्य रहा है। इसके साथ ही पंडित जवाहरलाल नेहरू के योरोप से आगमन पर कांग्रेस की बागडोर संभालने और आन्दोलन को एक नई दशा और दिशा देने का प्रसंग भी चर्चा में आया है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा कांग्रेस छोड़ना और फारवर्ड ब्लाक की स्थापना करना तथा आजादी के संघर्ष के लिए आजाद हिन्द फौज का अभियान आदि का चित्रण करना इस रेडियो रूपक की विशेषता है।

3. सूत्रधार का नियोजन – यह रूपक न तो एकांकी है और न मात्र साधारण रूपक है। इसमें न तो पात्रों को दर्शाया गया है और न मंच आदि को दिखाया जा सकता है। सारे दृश्यों का नियोजन सूत्रधार ही करता है, कहाँ पर सम्मेलन हो रहा है, कहाँ भाषण दिया जा रहा है, आदि घटनाओं का विवरण सूत्रधार के माध्यम से बताया गया है। सूत्रधार ने सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन का जो विवरण दिया है उसका उदाहरण देखिये, सूत्रधार कहता है कि – ''गाँधीजी उन दिनों एक अवतार और पैगम्बर की प्रेरक शक्ति से बोल रहे थे। उनकी प्रत्येक सांस पर देश की भुजायें फड़कती थीं। आखिर आठ अगस्त आ पहुँची। बम्बई में देश के नेता अन्तिम निर्णय के लिए इकट्ठे हुए। भारत छोड़ो का नारा प्रस्ताव के रूप में देश के सामने स्वीकृति के लिए आया। उसमें विश्वयुद्ध और फासिस्टवाद के खतरे की चर्चा थी। स्वतन्त्रता न मिलने पर सत्याग्रह की चर्चा थी और गाँधीजी द्वारा मित्र राष्ट्रों से पत्र व्यवहार करके उचित समझौता करने की चर्चा भी थी। गाँधी जी उसी दिन राजनीति के एक निम्न धरातल से बहुत ऊपर उठकर पद्दलित मानवता के उद्धारक के रूप में देशवासियों को अपने विचारों से अवगत करने के लिए देशवासियों को सम्बोधित करने लगे।'' इस प्रकार इस रूपक में सूत्रधार द्वारा समग्र कथानक का कुशलता से उपस्थापन किया गया है।

4. स्वरवाचन की तकनीक – प्रमुख घटनाओं को चित्रित करने के लिए रूपककार ने जहाँ सूत्रधार का प्रयोग किया है, वहीं पात्रों के संवादों को स्वरों के माध्यम से कहलाया गया है। एकांकी में अपने संवाद मंच पर स्वयं पात्र ही कहते हैं, परन्तु प्रस्तुत रेडियो रूपक में पात्रों के संवाद विभिन्न स्वरों में बताये गये हैं। रूपक में जितने पात्रों की सृष्टि की गई है, वे कथानक में संख्या में अधिक लगते हैं, इसीलिए रूपक में स्वरों की संख्या दी गई है। उदाहरण के लिए 26 जून को गाँधीजी का निम्नलिखित कथन स्वर के माध्यम से कहा गया है – स्वर ''हिन्दुस्तान में भयंकर ज्वालामुखी फूटेगा। तुम लोग उसके साक्षी रहना और जब वह समीप आ जाए तो उसमें कूद पड़ना।'' इसके अतिरिक्त दृश्य में चौथा स्वर कहता है – चौथा स्वर ''लार्ड वेवल इंग्लैण्ड गये और 14 जून को उन्होंने दिल्ली रेडियो से ब्रॉडकास्ट किया-समस्या का हल निकालने के लिए 25 जून से शिमला में राजनैतिक नेताओं का सम्मेलन होगा और कांग्रेस कार्य समिति के सब सदस्यों को रिहाई का आदेश दे दिया गया।'' इस प्रकार स्वरों के वाचन से रूपककार ने पात्रों की अनिवार्यता समाप्त कर दी है। इन स्वरों के प्रावधान से रेडियो रूपक में रोचकता आयी है, कहीं भी पात्रों की कमी का आभास नहीं होने दिया गया है।

श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित 'रेडियो' एकांकी 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' भारतीय स्वतंत्रता की एक जीवन्त प्रस्तुति है, इसमें स्वतंत्रता आन्दोलन का वृत्तान्त दिया गया है। यद्यपि यह वृत्तान्त राष्ट्रीय आन्दोलन और विशेषत: भारत छोड़ो आन्दोलन का स्पष्ट एवं क्रमबद्ध इतिहास नहीं है, तथापि इसमें राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की झांकी स्पष्ट रूप में प्रस्तुत की गई है। रूपककार श्री विष्णु प्रभाकर स्वयं गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित और सक्रिय स्वतन्त्रता सेनानी रहे हैं। प्रस्तुत एकांकी में उन्होंने गाँधीजी के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा और देश के प्रति असीम प्रेम की व्यंजना की है। स्वतंत्रता आन्दोलन में गाँधीजी का सहयोग करने से उस आन्दोलन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का समस्त घटनाचक्र एकांकीकार की दृष्टि से गुजरा है। अत: समस्त घटनाचक्र को उन्होंने कलात्मक ढंग से इस रेडियो रूपक में समेटा है। इसके कथानक का सार निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. कांग्रेस का बम्बई अधिवेशन – रूपककार ने इस रूपक में सूत्रधार के माध्यम से सर्वप्रथम कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन की चर्चा की है। सन् 1934 में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में कांग्रेस का बम्बई अधिवेशन शुरु हुआ। जिसमें आजादी प्राप्त करने के लिए सत्याग्रह करने का मार्ग चुना गया। इसके सभी पहलुओं पर विचार करके यह मंथन किया गया कि सत्याग्रह में पराजय का कोई स्थान नहीं है। इस सत्याग्रह की नीति गाँधीवादी दर्शन के कारण अहिंसात्मक थी। इस नीति का युवा वर्ग ने विरोध किया। फलत: अहिंसा की नीति के विरोधी तथा देश की आजादी के लिए अति उत्साही देशभक्त युवकों ने सन् 1934 में समाजवादी दल की स्थापना कर डाली। इसी समय भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत केन्द्रीय धारा सभा के चुनाव होने थे। अत: कांग्रेस इन चुनावों में भाग लेने के लिए कटिबद्ध हो गयी। लोग उत्साहित हुए। चुनावों का परिणाम कांग्रेस के पक्ष में रहा। धारासभा में चुनकर गये सदस्यों ने केन्द्र सरकार के रेल बजट और सालाना बजट को नामंजूर कर दिया।

2. चुनाव-परिणाम – केन्द्रीय धारा-सभा के चुनाव-परिणाम जब ब्रिटिश सरकार के पक्ष में नहीं रहे, तो रेल के सालाना बजट को नामंजूर करने के साथ-साथ ब्रिटेन और भारत के बीच हुए सम्पत्ति के समझौते को भी रद्द करने की माँग की गयी। आन्दोलन में जो नजरबन्द किये गये थे, उन्हें छोड़ने की माँग उठने लगी और जितने भी दमनकारी कानून बनाये गये थे, उन्हें रद्द करने का प्रस्ताव पारित किये गये। जनता के प्रतिनिधि सरकार को नाकों चने चबाने लगे। तब ब्रिटिश सरकार का दमनचक्र तेजी से घूमने लगा।

3. पं. नेहरू का आगमन – सूत्राधार आगे कहता है कि सन् 1936 में पं. जवाहरलाल नेहरू यूरोप से भारत लौट आये। कांग्रेस का नेतृत्व जवाहरलाल नेहरू ने सम्भाला। राष्ट्रीय आन्दोलन तेज हो गया। ब्रिटिश सरकार के घोर दमन के बावजूद 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनावों में कांग्रेस भाग लेने को तैयार हुई। कांग्रेस के घोषणा पत्र में लगान में कमी लाने, देहात के कर्ज-भार घटाने, दमनकारी कानून समाप्त करने, राजनीतिक बन्दियों को रिहा करने और सविनय-अवज्ञा आन्दोलन के दौरान आन्दोलनकारियों की जब्त जमीनों को वापस करने की घोषणा की गयी। मिल मजदूरों को आठ घण्टे दैनिक मजदूरी करना, शराब का निषेध, बेरोजगारी मिटाने के प्रयास आदि आश्वासन घोषणा पत्रों में दिये गये।

4. धारासभा के चुनाव – धारासभाओं के चुनाव कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को सहायता देने को नहीं, बल्कि सरकार के बीच घुसकर संघर्ष करके अपने अधिकार लेने के लिए लड़ा। देश में इन चुनावों के प्रति राजनैतिक रुझान जागृत हुआ। सरकार के अनेक बन्धनों के बावजूद भारत की जनता ने महात्मा गाँधी के समर्थन में काँग्रेस के पक्ष में भारी मतदान किया। परिणाम कांग्रेस के पक्ष में रहे। धारासभाओं में 1585 सीटों में से 711 सीटों पर कांग्रेस ने कब्जा किया। संयुक्त प्रान्त, बिहार, बम्बई, उड़ीसा, मध्यप्रान्त और मद्रास – इन छ: प्रान्तों में जुलाई सन् 1937 में कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल बने। बाद में असम और सीमा प्रान्त भी कांग्रेस के समर्थन में आ गये। सरकारी इमारतें 'इंकलाब-जिन्दाबाद' और 'वन्देमारतम्' के जयनाद से गूँज उठी।

5. मुस्लिम-लीग का अभ्युदय – लॉर्ड लिलिथगो इन्हीं दिनों वायसराय थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता ब्रिटिश सरकार के उद्देश्यों को सफल नहीं होने दे रही थी। अंग्रेजों ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनाई। मुस्लिम-लीग को अधिक महत्त्व और कांग्रेस की अनदेखी की जाने लगी। मुस्लिम-लीग से संघर्ष बढ़ने लगा। सन् 1939 में कांग्रेस का त्रिपुरा अधिवेशन हुआ। मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम-लीग खुल कर सामने आयी और भारत विभाजन की भूमिका बनने लगी। कांग्रेसियों और लीगियों में आपसी टकराव का ब्रिटिश सरकार ने भरपूर लाभ उठाया। इसी त्रिपुरा अधिवेशन में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने मुस्लिम-तुष्टिकरण से निराश होकर, कांग्रेस के अहिंसात्मक आन्दोलन की रीति-नीति से खिन्न होकर और नेतृत्व परिवर्तन की समस्या की माँग करते हुए कांग्रेस छोड़कर 'फारवर्ड ब्लॉक' की स्थापना की।

6. द्वितीय विश्वयुद्ध – सन् 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ। हिटलर ने पिछले महायुद्ध का बदला लेने के लिए पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। विश्व के कई देश द्वितीय महायुद्ध की लपटों में घिर गये। भारत के वायसराय ने 3 सितम्बर सन् 1939 को भारत को भी उस ज्वाला में झोंक दिया। दूसरे स्वाधीनता उपनिवेशों की तरह किसी ने उसकी राय लेने की चिन्ता नहीं की। गाँधीजी युद्ध में सहयोग देना तो चाहते थे, किन्तु ये शर्तें थीं कि युद्ध के उद्देश्य बताये जायें, किसी बाहरी प्रभाव से मुक्त विधान परिषद् का आयोजन किया जाये और भारत को स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित किया जाय। वायसराय ने शर्तें नामंजूर कर दीं और अपमानजनक बातें कहीं। धारासभा

के मन्त्रिमण्डलों ने इस पर अपने पदों से इस्तीफे दे दिये। संघर्ष चलता ही रहा। अक्टूबर, 1940 को सत्याग्रह की रणभेरी बज उठी। लोग जेलों में ठूँस दिये गये। जून, 1942 में जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया। जापान भी युद्ध में कूद पड़ा और भारत में सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया।

7. क्रिप्स मिशन का भारत आगमन – सत्याग्रह स्थगित करने के बाद जेलों से आन्दोलनकारियों को छोड़ दिया जाने लगा। इसी बीच सर स्टेफर्ड क्रिप्स को समझौते के लिए इंग्लैण्ड से भारत भेजा गया। वे समझौता प्रस्ताव लाये कि युद्ध समाप्त होने पर नयी शासन प्रणाली की व्यवस्था हेतु निर्वाचन संस्था बनेगी, उसमें देशी रियासतें भी भाग ले सकेंगी। नये विधान को स्वीकार न करने का अधिकार किसी भी प्रान्त को हो सकेगा। सरकार और संस्था नें एक संधि होगी, जिसके अनुसार अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए व्यवस्था होगी। शासन परिषद् युद्धकाल में सैनिक, नैतिक और आर्थिक साधनों को संगठित करने की जिम्मेदारी लेगी।

8. क्रिप्स मिशन के परिणाम – रूपक में सूत्रधार आगे कहता है कि इस समझौते से देश की आत्मा को गहरा धक्का लगा। गाँधीजी व्यथित हुए। ब्रिटिश प्रस्तावों को गाँधीजी ने अस्वीकार कर दिया। भारत और ब्रिटेन में शत्रुता बढ़ने लगी। अपनी पत्रिका ''हरिजन'' में गाँधीजी ने खरे-खोटे लेख लिखने शुरू कर दिये। यहाँ तक कि बापू कठोर भाषा का प्रयोग करने लगे। 26 अप्रैल, सन् 1942 के लेखक में गाँधीजी ने लिखा – ''भारत के लिये चाहे इसका कुछ भी फल हो, उसको और ब्रिटेन की सुरक्षा इसी में है कि अंग्रेज शान्तिपूर्वक समय रहते भारत से चले जायें।'' इसी प्रकार बापू अंग्रेजों के खिलाफ लेख लिखते रहे।

9. भारत-छोड़ो आन्दोलन – कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता 8 अगस्त, सन् 1942 को बम्बई में एकत्र हुये। बैठक हुई और निर्णय लिया गया कि आन्दोलन किया जाये। जैसा कि सूत्रधार कहता है – ''भारत छोड़ो का नारा विश्वयुद्ध और फासिस्टवाद के खतरे की चर्चा थी, स्वतन्त्रता न मिलने पर सत्याग्रह की चर्चा थी और गाँधीजी द्वारा मित्र राष्ट्रों से पत्र-व्यवहार करके उचित शर्तों पर समझौता करने की चर्चा भी थी। गाँधीजी उसी दिन राजनीति के एक निम्न धरातल से बहुत ऊपर उठकर पददलित मानवता के उद्धारक के रूप में बोले।'' इसके पश्चात् सन् 1942 का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' पूरे देश में तेजी से फैल गया, जिसने ब्रिटिश सरकार की नींद उड़ा दी। यही आन्दोलन स्वतन्त्रता के लिए मील का पत्थर साबित हुआ। ब्रिटिश सरकार का दमन-चक्र चलता रहा। गाँधीजी बन्दी बनाये गये, देश के बड़े-बड़े नेता बन्दीगृहों में डाले गये। सरकारी सम्पत्ति का नुकसान किया गया।

10. भारत छोड़ो आन्दोलन के परिणाम – सर्वत्र लूटपाट, मारकाट, रक्तपात आदि का वातावरण छा गया। लोगों के मनों में ब्रिटिश सरकार के दमन-चक्र की दहशत फैली गयी। जाने-अनजाने लोगों की धर-पकड़ शुरू हो गयी। एक-दूसरे को संदेह से देखा जाने लगा। इस आन्दोलन में 60 हजार से अधिक व्यक्ति बन्दी बनाये गये। 18 हजार से अधिक नजरबन्द किये गये। ढाई हजार से अधिक मारे गये और घायले हुए। करोड़ों रुपयों का जुर्माना हुआ, सैंकड़ों मकान जलाये गये। आन्दोलनकारियों पर हवाई जहाज से गोलियाँ चलाई गयीं। अंग्रेजों ने सारा दोष गाँधीजी पर डाला। गाँधीजी ने प्रतिवाद किया कि – ''यदि सरकार मुझे मेरी गलती को समझा दे तो मैं प्रायश्चित के लिए तैयार हूँ और यदि वह चाहती है कि कांग्रेस की ओर से मैं कोई प्रस्ताव उनके सामने रखूँ तो मुझे कार्य समिति के पास भेज दिया जाये।'' परन्तु वायसराय ने गाँधीजी की एक न सुनी।

11. गाँधीजी का अनशन – जब वायसराय ने गाँधीजी के सारे प्रस्ताव ठुकरा दिये और उनकी एक भी बात नहीं मानी गयी, तब दुःखी होकर गाँधीजी ने 9 फरवरी, सन् 1943 से इक्कीस दिन का अनशन शुरू कर दिया। उनकी चिन्ताजनक स्थिति को देखकर देश के बड़े-बड़े नेता, जनता और कट्टर से कट्टर गाँधी-विरोधी व्यक्ति भी व्याकुल हो बैठे। अफवाहों का बाजार गर्म हो गया। सारा देश चिन्ता के सागर में डूबा हुआ था। सरकार के जुल्म का विरोध होने लगा। लोग गाँधीजी के बारे में खबरें सुनने के लिए व्याकुल होने लगे। रेडियो गाँधीजी के बारे में जानबूझ कर समाचार प्रसारित नहीं कर रहा था। जब यह समाचार देश ने सुना कि नींबू के मीठे रस से बापू का उपवास तुड़वाया गया है तो देश में हर्ष की लहर फैल गई। फिर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने आजादी का बिगुल बजाकर अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने का बीड़ा उठाया।

12. नेताजी का संघर्ष – नेताजी की आजाद हिन्द फौज के संघर्ष के कारण सम्पूर्ण देश के नौजवान स्वतंत्रता के समर में कूद पड़े। सूत्रधार कहता है – ''वे लड़ते थे देश के लिये। नेताजी ने उनसे कहा था – ''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा। और वे खून देने को पागल थे। वे संख्या की परवाह न करके हजारों की सेना में कूद पड़ते थे। वे मर जाते थे, पर पीछे नहीं हटते थे।'' इस प्रकार नेताजी हिन्दू और मुसलमानों को साथ लेकर आजाद हिन्द फौज के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम लड़ रहे थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13. विशेष घटनाएँ – दिनांक 7 मई, 1945 को द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ। इंग्लैण्ड में मजदूर पार्टी की सरकार बनी, चर्चिल की हार हुयी, लार्ड बेवल इंग्लैण्ड चले गये। 14 जून को दिल्ली रेडियो से प्रसारण हुआ कि 25 जून से शिमला में राजनैतिक सम्मेलन होगा। इस प्रकार कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य जेलों से छूटे। संघर्ष का युग समाप्त हुआ और सुलह-समझौते का युग प्रारम्भ हुआ।

निष्कर्ष – प्रस्तुत रेडियो रूपक में श्री विष्णु प्रभाकर ने सन् 1934 के कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन के विवरण से लेकर सन् 1945 तक के कांग्रेस के ग्यारह वर्ष के लम्बे संघर्ष की कहानी को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है। चूँकि इसमें कोई पात्र नहीं है, अत: इस रेडियो रूपक में मुख्य भूमिका सूत्रधार की रही है। समय-समय पर सूत्रधार ने परिस्थितियों का वर्णन किया है और विभिन्न स्वरों के माध्यम से विचारों से अवगत कराया है। इस प्रकार ऐतिहासिक घटनाक्रम पर आधारित यह सफल रेडियो रूपक है।

6.4 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

6.4.1 अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. प्रस्तुत कहानी 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' में कौन-से इतिहास का चित्रण किया गया है ?

उत्तर – 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' एकांकी में एकांकीकार ने 'भारत छोड़ो घोषणा' से सम्बन्धित इतिहास का चित्रण किया है।

प्रश्न-2. 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' किस प्रकार की रचना है ?

उत्तर – 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' एक रेडियो रूपक एकांकी है।

प्रश्न-3. प्रथम बम्बई अधिवेशन कब और कहाँ पर हुआ था ? रेडियो रूपक 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' के आधार पर बताइये।

उत्तर – अक्टूबर सन् 1934 बम्बई अधिवेशन हुआ था।

प्रश्न-4. समाजवादी दल की स्थापना कब और किसके द्वारा की गई थी ?

उत्तर – असन्तुष्ट दल के युवकों के द्वारा मई, 1934 में समाजवादी दल की स्थापना की गई थी।

प्रश्न-5. सत्याग्रह के स्थगन के बाद कांग्रेस की क्या प्रतिक्रिया हुई ?

उत्तर सत्याग्रह के स्थगन के बाद कांग्रेस स्वतंत्रता का युद्ध काउंसिलों में जाकर लड़ना चाहती थी।

प्रश्न-6. बम्बई अधिवेशन के पश्चात् भारतीय कांग्रेस तथा जनता को सरकार के खिलाफ किन-किन परिस्थितियों से रू-ब-रू होने का अवसर मिला ?

उत्तर – अधिवेशन के समाप्त होते ही कांग्रेस केन्द्रीय धारा सभा के चुनाव मैदान में कूद पड़ी और लोगों ने एक बार फिर यह अनुभव किया कि जैसे उनके जीवन का पुन: संचार हो रहा है। सरकार के विरोध के बावजूद भी जनमत की अपूर्व विजय हुई। जनप्रतिनिधियों ने बार-बार सरकार के प्रतिक्रियावादी प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया।

प्रश्न-7. जवाहर लाल नेहरू ने देश का नेतृत्व कब सँभाला और किस एक्ट के तहत चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया ?

उत्तर – यूरोप से लौटने के बाद 1936 में पं. नेहरू ने देश का नेतृत्व सँभाला और घोर दमन के बावजूद सन् 1935 के एक्ट के अधीन धारासभा के चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया।

प्रश्न-8. धारा चुनावों में भारतीय जनता की सरकार के प्रति क्या प्रतिक्रिया हुई ?

उत्तर – भारतीय जनता ने धारा चुनावो में यह स्पष्ट कर दिया था कि जनता सरकार का सहयोग नहीं बल्कि उससे लड़ने के लिए जा रही है। परिणाम यह हुआ कि देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक र जनैतिक जागृति का तूफान आ गया, एक क्रांति प्रारम्भ हुई। सरकार के अनेक बन्धनों के बावजूद लोग दल बना-बना कर गाते-बजाते हुए पोलिंग बूथों पर जाते थे और महात्मा गाँधी को वोट देते थे।

प्रश्न-9. धारा सभाओं के चुनावों का परिणाम क्या रहा ? रेडियो रूपक 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' के आधार पर बताइये।

उत्तर – जिस कांग्रेस को सरकार ने मरा हुआ समझ लिया था, उसने प्रान्तीय धारा सभाओं की 1585 सीटों में से 711 पर अपना अधिकार कर लिया और 6 प्रान्तों में तो उसका स्पष्ट बहुमत सिद्ध हो गया था।

प्रश्न-10. 'फारवर्ड ब्लॉक' की स्थापना किसने की थी ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्तर – नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने।

प्रश्न-11. गाँधीजी के बाद अहिंसा को समझने वाले एकमात्र व्यक्ति कौन थे ?

उत्तर – विनोबा भावे जो विशुद्ध अहिंसा के युद्ध के प्रथम सैनिक थे।

प्रश्न-12. ''भारत के लिये चाहे इसका कुछ भी फल हो, उसकी और ब्रिटेन की सुरक्षा इसी में है कि अंग्रेज शान्तिपूर्वक समय रहते भारत से चले जायें।'' कथन किसने और किस माध्यम से कहा था ?

उत्तर – उक्त कथन महात्मा गाँधी का है जो अपने पत्र 'हरिजन' के माध्यम से 26 अप्रैल 1942 के लेख द्वारा कहा गया था।

प्रश्न-13. वायसराय के दुर्व्यवहार से खिन्न होकर गाँधीजी ने क्या किया ?

उत्तर – वायसराय के दुर्व्यवहार से खिन्न होकर गाँधीजी ने 9 फरवरी, 1943 से 21 दिन का अनशन प्रारम्भ किया।

प्रश्न-14. ब्रिटिश सरकार के द्वारा 25 जून, 1945 में होने वाले शिमला सम्मेलन में क्या आदेश जारी किये गये ?

उत्तर – काँग्रेस समिति के सभी सदस्यों की रिहाई के आदेश दे दिये गये।

प्रश्न-15. काँग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों की रिहाई की पूर्व सूचना किसने दी और उन्हें कब रिहा किया गया था ?

उत्तर – लार्ड बेबल ने 14 जून, 1945 को दिल्ली रेडियो ब्रोडकास्ट के माध्यम से यह पूर्व सूचना प्रसारित की गई और 15 जून 1945 को बिना किसी शर्त के काँग्रेस कार्यसमिति के सदस्य रिहा कर दिये गये।

6.4.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' रेडियो रूपक के शीर्षक का औचित्य स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – यह शीर्षक कुछ लम्बा है। प्रत्येक रचनाकार अपनी रचनाओं के शीर्षक बहुत ही कम शब्दों में, सारगर्भित तथा कथावस्तु की भावना, भाषा और घटनाओं के अनुरूप आकर्षक ढंग से रखता है, परन्तु 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' नामक रेडियो रूपक का यह शीर्षक भले ही उच्चारण करने की दृष्टि से लम्बा प्रतीत होता है। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रमुख घटनाओं का स्पष्ट सूचक है। इस शीर्षक को पढ़ने अथवा सुनने में न कोई अटपटापन लगता है और न कोई असुविधा होती है, बल्कि इसे पढ़ने या सुनने से तत्कालीन आन्दोलनकारी नेताओं, शहीदों, उनके बलिदान आदि का स्मरण हो आता है। रूपककार ने नई पीढ़ी को राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना होम करने वाले देशभक्तों, नेताओं और बलिदानियों की अमर कहानी कहकर आजादी का महत्व बताया है और देशभक्ति का पाठ पढ़ाने का प्रयास किया है। यह इस रूपक के शीर्षक का मूल औचित्य भी है। रूपक का प्रारम्भ कांग्रेस के सन् 1934 के बम्बई अधिवेशन से होता है और उसका अन्त सन् 1945 के ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस नेताओं के बीच हुये शिमला सम्मेलन और उसके परिणाम तक का है। इस ग्यारह वर्ष के लम्बे अन्तराल के आन्दोलन के इतिहास को दोहराना मात्र ही रूपककार का उद्देश्य नहीं है, बल्कि महात्मा गाँधी और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को जो योगदान दिया गया है, उसकी पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालना अभिप्रेत रहा है। यही इस रूपक के शीर्षक का औचित्य है।

प्रश्न-2. 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' रेडियो रूपक के आधार पर रेडियो रूपक की परिभाषा दीजिये तथा एकांकी और रेडियो रूपक में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – हिन्दी साहित्य में एकांकी नाटक का ही एक लघु रूप अथवा भेद है। यह अंग्रेजी के 'वन एक्ट प्ले' का हिन्दी रूपान्तरण है। यद्यपि आधुनिक हिन्दी एकांकी पर पाश्चात्य प्रभाव दिखाई देता है, तथापि उस पर संस्कृत के नाट्य-रूपों का भी प्रभाव है। संस्कृत में वीथी, भाण, व्यायोग, नाटिका, गोष्ठी, भाणिका, हल्लीश, अंक और प्रहसन आदि रूपक के भेद-उपभेद बताये गये हैं, इनसे हिन्दी एकांकी की प्रकृति मिलती-जुलती है। एकांकी रूपक का ही एक भेद होते हुए भी ऐतिहासिक विधा के रूप में अपना स्वतंत्र अस्तित्व एवं विशेषता रखती है। आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य में इसका अन्यतम स्थान है।

रूपक की रचना एकांकी शैली के ही आधार पर होती है, परन्तु एकांकी व रूपक में बड़ा अन्तर होता है। सामान्यतया रूपकों की रचनाएँ एकांकी की तुलना में कम तो अवश्य हुई है किन्तु वर्तमान समय में रूपकों और विशेषतः रेडियो रूपकों की रचना अधिक होने लगी है। एक विद्वान् के अनुसार ''रेडियो रूपक का सम्बन्ध केवल शब्द से होता है। इसमें दिखाया कुछ नहीं जाता है, बल्कि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

केवल सब कुछ कहा ही जाता है। वह भी इस अन्दाज में कहा जाता है कि सुनने वालों पर उसका वांछित प्रभाव पड़ सके।'' एक अन्य विद्वान् के शब्दों में – ''रूपक साहित्य की वह विधा है जिसे प्रस्तुत करने के लिए न तो मंच होता है और न देखने के लिये कोई दृश्य। न तो इसके पात्र नजर आते हैं और न उनके हावभाव ही दिखते हैं। इसमें सभी कुछ सुनने की ही सामग्री होती है।'' सत्यता यह है कि रूपक में एकांकी की तरह दृश्य की आवश्यकता नहीं होती है।''

एकांकी और रेडियो रूपक में अन्तर – रेडियो रूपक पूर्णतया श्रव्यकाव्य है। इस कारण इसमें न तो पात्रों की आवश्यकता होती है, और न मंच की, न दृश्य की और न साज-सज्जा की। रूपक की प्रस्तुति मंच से भी नहीं की जा सकती, बल्कि रूपक की प्रस्तुति आजकल श्रव्य उपकरणों अर्थात् रेडियो से ही की जाती है। रेडियो रूपक में प्राय: एक सूत्रधार का विधान होता है जो कि पात्रों, घटनाओं आदि का भाव उपस्थित कराता है। एकांकी में पात्र स्वयं संवाद कहते हैं, जबकि रूपक में स्वरों के माध्यम से प्रसारित किया जाता है। रूपक प्राय: ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक कथावस्तु पर ही तैयार किये जाते हैं। रूपक में सूत्रधार के कथनों की भरमार ही रहती है। इसमें रंगमंच का निर्देश देने की आवश्यकता नहीं होती है।

6.5 सारांश

वर्तमान समाज में रेडियो रूपक का अत्यधिक और विशेष स्वागत हुआ है। रूपक में ऐतिहासिक पात्रों का वर्णन करने के लिए वेशभूषा आदि की आवश्यकता नहीं होती है, केवल स्वरों व ध्वनियों के माध्यम से तथा सूत्रधार की घोषणाओं के माध्यम से ही कथानक का रसास्वादन किया जा सकता है। रूपक की रेडियो से प्रस्तुति पर श्रोताओं के मन पर इसका चाहा गया प्रभाव पड़ जाता है। अत: रेडियो रूपक एकांकी से बिल्कुल भिन्न विधा है।

6.6 अभ्यास प्रश्नावली

1. रूपक एवं रेडियो में अन्तर कीजिए।
2. प्रस्तुत एकांकी का महत्त्व बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 7 : राम-रहमान

(डॉ. सुधीन्द्र शाह)

संरचना

7.0 लेखक परिचय

7.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

7.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

7.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

7.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

7.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

7.3 सारांश

7.4 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.0 लेखक परिचय

डॉ. सुधीन्द्र का नाम राजस्थान के राष्ट्रीय भावों से अपने काव्य को सुशोभित करने वाले नाट्यकारों में अत्यन्त सम्मान के साथ लिया जाता है। वे मूलत: राष्ट्रीय विचारधारा के क्रान्तिकारी कवि थे। वैसे उन्होंने कई आलोच्य भी लिखे हैं। हिन्दी कविता युगान्तर (1950) हिन्दी कविता का क्रान्तियुग (1957) आपके मुख्य आलोच्य ग्रंथ हैं जिनका सर्वोत्कृष्ट रूप उनकी राष्ट्रीय भावनाओं से मण्डित कविताओं में देखने को मिलता है। 'शंखनाद', 'जौहर' (खण्ड-काव्य), 'प्रलयवीणा', 'अमृत लेखा' आदि काव्यों में उनकी राष्ट्रवादिता, क्रान्तिकारी विचारधारा और राष्ट्रीय नव निर्माण सम्बन्धित धारणाएँ पूर्ण दृढ़ता से अभिव्यक्त हुई है। आपके काव्य मे राष्ट्र और राष्ट्रभारती के पुरातन गौरवगान, उनकी वर्तमान हीन अवस्था तथा भावी समृद्धि की झाँकी बड़ी ही सुन्दर एवं ओजपूर्ण भाषा में मिलती है। ''जौहर'' में कवि ने भारतीय सतीत्व की उज्ज्वल प्रतिभा पद्मिनी के अपूर्व बलिदान की इतिहास प्रसिद्ध कथा लेकर सम्पूर्ण कथानक का ओजपूर्ण भाषा में वर्णन किया है। आपके द्वारा विरचित काव्य 'शंखनाद' भी पर्याप्त ओजस्विता से युक्त है।

डॉ. सुधीन्द्र एक अच्छे नाट्यकार भी रहे, इस दृष्टि से आपके लगभग सात एकांकी हमें मिले हैं जिनकी मूल-चेतना में राष्ट्रीयता समाहित है। 'खून की होली', 'राखी', 'नया वर्ष नया संदेश', 'संगम', 'रेवा का राजमुकुट', 'राम-रहमान', 'ज्वाला और ज्योति' आदि पाश्चात्य तकनीकि पर लिखे गये एकांकी हैं। इनकी एक महत्ती विशेषता प्रतीकात्मकता है। 'स्टेज इफेक्ट' उत्पन्न कर के आवश्यकतानुसार गीतों का भी प्रयोग किया है, जिनमें सुमधुरता है। सही मायने में ये रंगमंच के उद्देश्य से ही लिखे गये हैं। इनमें नारी पात्रों की अधिकता है। नारी चरित्रों को प्रस्तुत करने में डॉ. सुधीन्द्र ने विशेष मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। इन सब में उनका आशावाद कलात्मक रूप में प्रकट हुआ है। 'राम-रहमान' नाटक सौहार्द के भावों को स्पष्ट करता है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि सभी धर्मों का मूल तत्व एक ही परमात्मा है। एक न एक दिन मजहब की यह दिखावटी दीवार टूट कर गिर जाएगी और मानव-मानव के बीच पुन: नैसर्गिक सम्बन्ध कायम होगा। मज़हब छोटे-बड़े सम्प्रदायों में विभक्त नहीं होगा। इस एकांकी का दृष्टिकोण मानवतावादी है।

7.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''न जाने क्यों मेरे हृदय में उसके लौटने की आशा काले बादलों में बिजली की तरह चमक चमक जाती है। बसन्त में जैसे कोकिल एक दिन आकर 'कुहू' से उपवन को गुंजा देती है, वैसे ही यदि मेरा रामचरण आ जाता तो उसे अपने पिंजड़े में बाँध रखती।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के डॉ. सुधीन्द्र द्वारा विरचित 'राम-रहमान' एकांकी से उद्धृत है। परमेश्वरी अपने पति कैलाशनाथ से अपने पुत्र रामचरण के वियोग में अतीव व्यथित होकर कहती है, रामचरण आजाद हिन्द फौज का बन्दी सैनिक है। इस अवतरण में उसको लक्ष्यकर परमेश्वरी अपने व्याकुल उद्‌गार प्रकट करती हुई कह रही है –

व्याख्या – न जाने क्यों मेरा हृदय मेरे पुत्र रामचरण के लौट आने की आशा कर रहा है। न जाने क्यों मेरे हृदय में उसके लौटने की आशा के काले बादल बिजली की तरह चमक-चमक कर मेरे उदास मन को आशान्वित कर रहे हैं। जिस प्रकार बसन्त ऋतु में कोयल अपनी कूक से उपवन को मीठे स्वर में गुंजा देती है उसी प्रकार से मेरा घर रूपी उपवन भी मेरे प्रिय रामचरण रूपी कोकिल की गूँज से गूँज जाता, तो कितना अच्छा होता। तब तो मैं अपने रामचरण को अपने घर रूपी पिंजड़े में बाँधकर रख देती, ताकि वह फिर कहीं भी न जा सके।

विशेष – 1. एकांकीकार ने माँ के ममत्व को तथा ममता की भावना को उजागर किया है। माँ का अपने बिछुड़े हुए पुत्र से मिलने की व्याकुलता का सजीव चित्रण इस अवतरण में किया गया है।

2. आलंकारिक तथा भावपूर्ण भाषा का प्रयोग किया गया है। शैली प्रतीकात्मक है।

(2)

''तुम भाग्यवान् हो भाई, जो मादरे-वतन को आजाद देख लोगे। मैं आजाद-हिन्द फौज की फतहयाबी नहीं देख सका। मुल्क के आजाद होने से पहले ही जा रहा हूँ। ओह ! अब ना जाने कब मिलेंगे। नेताजी को मेरा संदेश पहुँचा देना कि मैंने राष्ट्रीय झण्डे के नीचे देश की आजादी के लिए हँसते-हँसते जान दी।''

प्रसंग – प्रस्तुत प्रसंग हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के डॉ. सुधीन्द्र द्वारा रचित एकांकी 'राम-रहमान' से लिया गया है। यह कैलाशनाथ के पुत्र आजाद हिन्द फौज के सैनिक रामचरण के द्वारा उपस्थापित एक अन्य साथी सैनिक रहमान का कथन है। युद्ध भूमि में घायल होकर रहमान रामचरण के समक्ष अपने जो भाव व्यक्त करता है, रामचरण उसे ही प्रस्तुत अवतरण में अपने पिता को सुनाता है।

व्याख्या – रामचरण अपने पिता कैलाशनाथ से रहमान के उन शब्दों को सुनाता है जो वह कराहते-कराहते उसकी गोद में सिर रखकर बोलता है कि भाई रामचरण तुम तो भाग्यवान हो जो बन्दीगृह से मुक्त होकर अपने घर लौट रहे हो। भाई, तुम तो अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र हुए देख ही लोगे परन्तु मुझे इस बात का दुःख है कि मैं आजाद हिन्द फौज की विजय नहीं देख सका और आज मैं अपने देश को स्वाधीन कराने से पूर्व ही जा रहा हूँ। भैय्या, अब न जाने हम कब मिल सकेंगे। रहमान आगे कहता है कि भाई रामचरण तुम नेताजी को मेरा यह संदेश पहुँचा देना कि रहमान ने राष्ट्रीय ध्वज के नीचे कार्य किया है, अंग्रेजों से संघर्ष किया है और अपने देश की स्वाधीनता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ते-लड़ते, हँसते-हँसते अपने प्राणों की बलि दे दी।

विशेष – 1. एकांकीकार ने रामचरण के मुख से रहमान के देश-प्रेम की भावना को रेखांकित किया है। मातृभूमि के लिए रहमान की अगाध भक्ति और आजाद हिन्द फौज की सफलता के प्रति अटूट श्रद्धा दर्शाने में एकांकीकार को सफलता मिली है।

2. भाषा सरल, प्रवाहमयी एवं ओजपूर्ण है।

(3)

''जब तक हमारी मातृभूमि स्वतन्त्र नहीं होगी तब तक हमें हार नहीं माननी है। हमें अपना खून देकर अपनी आजादी पानी होगी। स्वतन्त्रता का रास्ता रक्तदान, त्याग और बलिदान का रास्ता है। हम रक्त देंगे, हमें आजादी मिलेगी। 'दिल्ली चलो' हमारा विजय-गान है। 'जय हिन्द' हमारा अभिवादन है। बस मुझे आज के अवसर पर इतना ही कहना है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के डॉ. सुधीन्द्र द्वारा रचित 'राम-रहमान' एकांकी से लिया गया है। यह अवतरण प्रस्तुत एकांकी के पात्र रामचरण का आजादी के दीवानों को एक जुलूस के अवसर पर सम्बोधित करते हुए उसके भाषण का अंग है। रामचरण आजादी के वीरों को सम्बोधित करते हुए कह रहा है –

व्याख्या – हे मेरी मातृभूमि के दीवानो ! अभी हम ब्रिटिश सरकार की दासता में हैं। हमारी मातृभूमि गुलामी की बेड़ियों में जकड़ी हुयी हैं। हमें अपनी मातृभूमि को बेड़ियों से मुक्त कराना है। जब तक हम अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र नहीं कर लेते, तब तक हमें अपना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संघर्ष नहीं छोड़ना चाहिए। हम ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध तब तक लड़ते रहेंगे जब तक अपनी मातृभूमि भारत को स्वतन्त्र नहीं करा देंगे। तब तक हम अपनी हार नहीं मानेंगे। हमें अपना रक्त और प्राण देकर भी अपनी भारत-माता को मुक्त कराना है। भाइयों! स्वतन्त्रता का मार्ग रक्तदान, त्याग और बलिदान का है। इस पर चलकर हमें स्वाधीनता पानी है। आप जानते हैं कि नेताजी का यह नारा कि 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा'। इस नारे की हमें सार्थकता सिद्ध करनी है ओर अपना रक्त देकर स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है। आजाद-हिन्द फौज का जो गान है कि दिल्ली चलो, दिल्ली चलो, दिल्ली चलेंगे.........इसे गा-गाकर आगे बढ़ते हुए हमें दिल्ली की गद्दी प्राप्त करनी है यही हमारा विजय-गान है। प्रत्येक भारतवासी के लिये 'जय-हिन्द' के दो शब्द हमारा अभिवादन है। आज के इस जुलूस के अवसर पर मैं इतना ही कहना चाहता हूँ।

विशेष – 1. रामचरण आजाद-हिन्द फौज का एक सच्चा सैनिक है। उसकी रग-रग में आजाद हिन्द फौज के नायक नेताजी का आदर्श परिलक्षित होता है। नेताजी की प्रेरणा रामचरण में स्पष्ट दिखायी देती है। एकांकीकार ने इस अंश में आजाद-हिन्द फौज के गौरव-गान दिल्ली चलो एवं जयहिन्द के अभिवादन को उजागर किया है।

2. भाषा ओजपूर्ण और शैली में प्रवाह है।

(4)

''तू मेरा ही दूध है बेटा! परन्तु मेरा भगवान तुझसे और मुझसे भी बड़ा है। मैं उसके आगे कैसे जाऊँ। मैं रोज दीप जलाकर भगवान की पूजा करती हूँ। मुझे उस दीपक के प्रकाश में भगवान मुस्कराते दिखायी देते हैं। तुमने माता का दुःख दूर करने के लिए प्रयत्न किया, यह मैंने भगवान से कहा तो मेरे भगवान मुस्कराये थे। आज उन्हीं से यह कह दूँ कि मेरा बेटा विधर्मी हो गया है? उनसे कहूँ जो कहते हैं – सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ? तो क्या वे आँसू नहीं बहायेंगे?''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के डॉ. सुधीन्द्र द्वारा रचित 'राम-रहमान' एकांकी से अवतरित है। यह अवतरण इस एकांकी के पात्र रामचरण की माँ परमेश्वरी के द्वारा कहा गया संवाद है। रामचरण अपनी माँ से जब यह पूछता है कि रहमान की बहिन को अपनी बहन बना लेने से तुम मुझसे रूठ गयी हो और अनशन कर रही हो तो क्या मेरे लिए तुम्हारे घर में कोई स्थान नहीं है और क्या माँ मैंने तुम्हार दूध नहीं पिया है। इस पर परमेश्वरी रामचरण से कहती है –

व्याख्या – बेटे, मैंने तुम्हें अपना दूध पिलाया है, तुम मेरे पुत्र हो, इस तरह तुम साक्षात् रूप में मेरे दूध ही हो, परन्तु माँ और पुत्र से भी ईश्वर बड़ा है। वह तुझसे व मुझसे से भी अधिक शक्तिमान है। मैं उस सर्वशक्तिमान ईश्वर के सम्मुख इस स्थिति में कैसे जा सकती हूँ। मैं तो रोज दीपक जला-जलाकर तेरे कल्याण की कामना करते हुए उस सर्वशक्तिमान ईश्वर की पूजा-अर्चना किया करती हूँ। ईश्वर के सामने उस जलते हुए दीपक के प्रकाश में मुझे मुस्कराते हुए मेरे भगवान दिखाई देते हैं। मानो वे मुझ पर व्यंग्यात्मक मुस्कान का प्रहार कर रहे हों कि परमेश्वरी, तेरे पुत्र ने यह क्या किया ? पुत्र, तुमने तो भारत माता की बेड़ियाँ काटने के लिए, उसे विदेशी दासता से मुक्त करने के लिए प्रयत्न किया था और तुम्हारे इस पुनीत कार्य की बात मैंने भगवान से कही थी तो मेरे भगवान प्रसन्न होकर मुस्कराये थे तो क्या मैं उन्हीं भगवान से यह कह दूँ कि रहमान की बहिन करीमा को बहन बना करके मेरा पुत्र विधर्मी बन गया है। यह बात मैं उन भगवान् से कहूँ कि जो गीता में उपदेश देते हुए सभी भक्तों से कहते हैं कि तुम सभी धर्मों को त्याग कर केवल मेरी शरण में आ जाओ। तो क्या भगवान् अपने भक्तों को धर्म से विरक्त होते देखकर इस बात पर आँसू नहीं बहाएँगे।

विशेष – 1. एकांकीकार ने रामचरण की माँ परमेश्वरी के अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट किया है। एक ओर पुत्र के प्रति उसकी ममता है और दूसरी ओर पुत्र द्वारा करीमा को बहन बनाने पर उसके विधर्मी बन जाने पर क्षोभ है। वह ईश्वर के समक्ष अपने पुत्र के कार्य से स्वयं को अपराध-बोध से ग्रस्त महसूस करती है।

2. भाषा सरल व सरस तथा शैली भावपूर्ण है।

7.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

7.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. 'राम-रहमान' एकांकी किस प्रकार की रचना है तथा इसमें कौन-सी प्रेरणा पर बल दिया गया है ?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी 'राम-रहमान' एक राष्ट्रीय समस्या मूलक एकांकी है। इसकी कथावस्तु साम्प्रदायिक सद्भावना और सर्वधर्म समभाव से प्रेरित और ओत-प्रोत है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-2. 'राम-रहमान' एकांकी में रामचरण की माँ के क्षुब्ध होने का क्या कारण रहा है ?

उत्तर – करीमा और रामचरण एक-दूसरे को मिठाई खिलाते हैं और करीमा रामचरण को रहमान भाई कहकर पुकारती है अत: साम्प्रदायिक भेद-भाव व जातीय घृणा के कारण रामचरण की माँ अत्यंत क्षुब्ध होती है।

प्रश्न-3. राम-रहमान एकांकी के कथावस्तु की सम्बद्धता कौन-कौन से पात्रों द्वारा विकसित होती है ?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी की कथा-वस्तु रामचरण, करीमा और परमेश्वरी को लेकर ही विकसित होती है।

प्रश्न-4. राम-रहमान एकांकी के कथानक का सबसे अधिक कौतुहल किस बात का बना रहता है ?

उत्तर – यद्यपि परमेश्वरी के मन में साम्प्रदायिक भेदभाव के द्वेष के कारण परिवार के लोगों में कौतुहल बना रहता है, किन्तु सबसे बड़ा कौतुहल इस बात का है कि करीमा को परमेश्वरी अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार करेगी अथवा नहीं ?

प्रश्न-5. 'राम-रहमान' एकांकी में परमेश्वरी अचेत क्यों हो जाती है तथा होश में आने पर उसके मन में क्या प्रतिक्रिया होती है ?

उत्तर – जब रामचरण और करीमा अपनी माँ परमेश्वरी की गोद में स्थान न मिल पाने के कारण भारत माता की गोद में चले जाना चाहते हैं यह सुनकर परमेश्वरी अचेत हो जाती है, किन्तु होश में आने पर वह अपने पुत्र रहमान व पुत्री करीमा को बुलाकर गले से लगा लेती है।

प्रश्न-6. परमेश्वरी के कौन-से कथन में सर्वाधिक मार्मिकता का अनुभव होता है ? राम-रहमान एकांकी के आधार पर बताइये।

उत्तर – जब परमेश्वरी कहती है कि ''ना राम मेरा बेटा था। वह रहमान बनने के साथ ही मर गया, अब न राम रहा और न रहमान, मैं किसे रोकूँगी ?''

प्रश्न-7. 'राम-रहमान' एकांकी का मुख्य पात्र रामचरण क्या करता है ?

उत्तर – रामचरण आजाद हिन्द फौज का सैनिक है, वह चार वर्ष तक अपने माता-पिता से अलग रहकर सरकारी विद्रोह के जुर्म में बन्दी रहता है।

प्रश्न-8. ''सचमुच, आजाद हिन्द फौज के साथ बन्दी एक-एक करके छूटते जा रहे हैं, जाने रामचरण किस कारागार में होगा ?'' प्रस्तुत कथन किसका है और इसमें कौन-सी भावना का समावेश है ?

उत्तर – प्रस्तुत कथन रामचरण के पिता कैलाशनाथ का है, इसमें एक पिता का अपने पुत्र के प्रति हार्दिक प्रेम व चिन्ता का भाव निहित है।

प्रश्न-9. रामचरण अपने मित्र रहमान के किस वचन की अनुपालना हर संभव करता है ?

उत्तर – वह रहमान की बहन करीमा को अपने साथ घर पर ले जाता है और अपनी माँ के कड़े विरोध के बावजूद वह उसे अपने स्नेह छाँव तले रखता है।

प्रश्न-10. ''अपने आजाद रेजीमेन्ट में पिताजी, हम लोग हिन्दु-मुसलमान का कोई भेद नहीं रखते थे, सब अपने आपको हिन्दुस्तानी कहते थे।'' कथन किसका है और इसमें कौन-सा भाव निहित है ?

उत्तर – प्रस्तुत कथन रामचरण अपने पिता कैलाशनाथ से कहता है, इस कथन में धर्म-निरपेक्ष और राष्ट्रीयता की भावना समाहित है।

प्रश्न-11. रामचरण के किस कृत्य से उसके दयालु चरित्र का पता चलता है ? 'राम-रहमान' एकांकी के आधार पर बताइये।

उत्तर – जब रामचरण कई दिनों की थकी भूखी और असहाय करीमा को दुलार के साथ अपने हाथ से भोजन कराता है।

प्रश्न-12. 'राम-रहमान' एकांकी की चरित्र-नायिका परमेश्वरी किस प्रकार के चरित्र की महिला है ?

उत्तर – परमेश्वरी देवी धार्मिक कट्टरपंथी, रूढ़ीवादी किन्तु भावुक हृदय स्त्री है।

प्रश्न-13. डॉ. सुधीन्द्र द्वारा विरचित प्रमुख आलोच्य ग्रंथों के नाम बताइये।

उत्तर – 1. हिन्दी कविता में युगान्तर (1950) तथा

2. हिन्दी कविता का क्रान्तियुग (1957)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रश्न-14. डॉ. सुधीन्द्र के काल में मुख्यत: किस प्रकार की धारणाएँ व्यक्त हुई हैं ?

उत्तर – इनके काव्य में राष्ट्रवादिता, क्रांतिकारी विचारधारा और राष्ट्रीय नव-निर्माण की धारणाएँ व्यक्त होती हैं।

प्रश्न-15. प्रस्तुत नाटक 'राम-रहमान' के द्वारा हमें कौन-सा संदेश मिलता है और इसका दृष्टिकोण क्या है ?

उत्तर – प्रस्तुत नाटक हमें संदेश देता है कि सब धर्मों का मूल तत्त्व एक ही परमात्मा है, एक दिन मजहब की दिखावटी दीवार टूट कर गिर जाएगी और मानव-मानव सब एक होंगे। मजहब छोटे-बड़े सम्प्रदायों में विभक्त नहीं रहेगा। दृष्टिकोण मानवतावादी है।

7.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. डॉ. सुधीन्द्र द्वारा विरचित राम-रहमान एकांकी का कथावस्तु कौतुहल उत्पन्न करने वाला है। स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – 'राम-रहमान' हिन्दी के सुप्रसिद्ध एकांकीकार डॉ. सुधीन्द्र द्वारा लिखित एकांकी है। डॉ. सुधीन्द्र एकांकी कला के गिने-चुने कलाकारों में से हैं। इस कारण यह अपेक्षा की जाती है कि उनके द्वारा लिखा गया यह एकांकी कला की कसौटी पर खरा उतरेगा। 'राम-रहमान' एक राष्ट्रीय समस्या मूलक एकांकी है। इसकी कथावस्तु साम्प्रदायिक सद्भावना और सर्वधर्म समभाव से प्रेरित और ओत-प्रोत है। कथावस्तु एकांकी की आधारशिला होती है। कथा-वस्तु में ही एकांकीकार के विचारों और भावनाओं की पहचान होती है। कथावस्तु के आधार पर ही पात्र रचना और चरित्रों की सृष्टि हो पाती है। जब कथावस्तु और पात्र होते हैं तो पात्रों के क्रियाकलापों, संवादों से कथावस्तु अपने उद्देश्य और एकांकीकार की विचारधारा को व्यक्त करने में भी सहायक होती है। एकांकी में रस की सृष्टि होती है और रस से मनोरंजन। एकांकी के तत्त्वों में अभिनेयता की विशेषताएँ लाने की दृष्टि से भी कथावस्तु सहायक होती है।

'राम-रहमान' एकांकी की कथावस्तु प्रारम्भ से अन्त तक कौतूहल उत्पन्न कराती है। पाठक या दर्शक इस एकांकी में आरम्भ में ही तब कौतूहल की स्थिति में होते हैं, जब रामचरण कारागार में होता है और उसकी माँ परमेश्वरी उसके लिए अत्यन्त व्याकुल दिखाई देती है। परमेश्वरी कैलाशनाथ से कहती है कि, ''न जाने क्यों मेरे हृदय में उसके लौटने की आशा काले बादलों में बिजली की तरह चमक चमक जाती है। बसन्त में जैसे कोकिल एक दिन आकर 'कुहु' से उपवन गुँजा देती है, वैसे ही यदि मेरा रामचरण आ जाता तो उसे अपने पिंजड़े में बाँधे रखती।'' यहाँ तक पाठक या दर्शक को यह ज्ञात नहीं होता है कि रामचरण कौन है ? और कहाँ है ? कथानक का ऐसा उपस्थान अतीव कौतूहलपूर्ण है। इसके पश्चात् एकांकी की कथावस्तु में कौतूहल तब होता है जब रामचरण घर जाता है और अपने साथ पाजामा और ओढ़नी पहने एक मुसलमान-सी लगने वाली लड़की को घर लाता है। इसके पश्चात् रामचरण अपने स्नेह का प्रदर्शन करते हुए करीमा के मुँह में अपने हाथ से पेड़ा देता है और करीमा भी अपनी ओर से रहमान के मुँह में लड्डू देती है। इस दृश्य में यद्यपि एक ओर परमेश्वरी में साम्प्रदायिक भेदभाव का द्वेष जागता है तथापि इस दृश्य से परिवार के अन्य लोगों को कौतूहल होता है। करीमा को परमेश्वरी अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार करेगी या नहीं, यह कौतूहल भी एकांकी में बना रहता है।

प्रश्न-2. 'राम-रहमान' एकांकी के शीर्षक और कथावस्तु में निहित सम्बद्धता को संक्षिप में स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – कोई भी एकांकीकार अपने एकांकी की कथावस्तु के आधार पर ही उसके शीर्षक का नामकरण करता है, ताकि कथावस्तु और शीर्षक दोनों में सम्बद्धता बनी रहे। प्रस्तुत एकांकी का शीर्षक 'राम-रहमान' रखा गया है। चूँकि यह साम्प्रदायिक सद्भावना की राष्ट्रीय समस्या से ओत-प्रोत कथावस्तु है, इसलिए इस एकांकी का शीर्षक 'राम-रहमान' और कथावस्तु के मध्य नितान्त आकर्षक सम्बद्धता देखने को मिलती है। इस एकांकी में रामचरण अपने मित्र और स्वतन्त्रता सेनानी शहीद रहमान के वचन को निभाकर उसकी बहिन करीमा को अपनी बहिन मानकर अपने घर ले आता है। दोनों का एक-दूसरे से स्नेह होता है। करीमा रामचरण को स्नेह के कारण अपना भाई रहमान ही कहा करती है। करीमा और रामचरण एक-दूसरे को मिठाई खिलाते हैं। रामचरण की माँ को एक मुसलमान लड़की के हाथ से उनके पुत्र के मुँह में मिष्ठान्न देने की घटना से साम्प्रदायिक छुआछूत का द्वेष बढ़ता है। रामचरण की माँ करीमा द्वारा रामचरण को रहमान भाई कहकर पुकारने से भी अत्यन्त क्षुब्ध होती है और उसके मन में साम्प्रदायिक भेदभाव व घृणा जन्म लेती है, जिसे वह सहन नहीं कर पाती है। कथावस्तु रामचरण, करीमा और परमेश्वरी को लेकर ही विकसित होती है। इसीलिए इस एकांकी के शीर्षक 'राम-रहमान' में कथावस्तु की सम्बद्धता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

प्रश्न-3. 'राम-रहीम' एकांकी का कथावस्तु एक निश्चित उद्देश्य को लिए हुए है, संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – डॉ. सुधीन्द्र द्वारा रचित 'राम-रहमान' एकांकी की कथावस्तु का प्रारम्भ तो मार्मिक है ही, इसका मध्य और अन्त भी अत्यधिक मार्मिक बन पड़ा है। आहत रामचरण के ये शब्द पाठक के मर्म को प्रभावित किये बिना नहीं रहते, जिसमें वह वीणा के यह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कहने पर कि किधर जाओगे भैय्या ? का उत्तर देते हुए कहता है कि – ''जहाँ वीणा और करीमा में कोई भेद न हो, जहाँ रहमान वीणा का भाई हो सकता है, जहाँ करीमा राम की बहिन हो सकती हो। जहाँ रहमान और राम, करीमा और वीणा चारों माँ की गोद में बैठ सकें, उसी माँ की गोद में बैठ सकें, उसी माँ के यहाँ जायेंगे वीणा।'' ऐसी ही मार्मिकता परमेश्वरी के इस कथन से भी उत्पन्न हो पायी है जब वह कहती है कि ''ना राम मेरा बेटा था। वह रहमान बनने के साथ ही मर गया, अब न राम रहा और न रहमान, मैं किसे रोकूँगी ?'' इन कथनों से एकांकी के कथानक में स्वाभाविक रूप से मार्मिकता का समावेश हुआ है।

इस एकांकी के उद्देश्य का सम्बन्ध राष्ट्रीय समस्या से जुड़ा हुआ है। आज हमारे देश में हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक कट्टरता का उन्माद बहुत जोरों से उठ रहा है। आवश्यकता है हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक भेदभाव मिटाने की, साम्प्रदायिक सद्भावना बढ़ाने की और भाईचारे की भावना से मिल-जुलकर राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त करने की। इस दिशा में एकांकीकार को अपने उद्देश्य में एक सीमा तक सफलता मिलती है। एकांकीकार ने दर्शाया है कि एक हिन्दू भाई मुस्लिम बहन के स्नेह के लिए अपनी माँ को दुर्भावनाओं के कारण त्यागने का निर्णय ले लेता है। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए एकांकीकार का यह उद्देश्य निःसंदेह अत्यन्त प्रेरणादायी है।

7.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. 'राम-रहमान' एकांकी के शीर्षक पर विचार करते हुए इसके औचित्य तथा मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

उत्तर – एकांकी में उपयुक्त शीर्षक का भी अपना विशिष्ट महत्त्व होता है। यदि एकांकी में कथावस्तु और वर्ण्य-विषय के अनुसार शीर्षक का नाम नहीं दिया जाता है तो शीर्षक सुन्दर तथा सम्बद्ध नहीं लगता है। प्रायः कथानक तथा वर्ण्य-विचार के अनुसार उसी से मिलता-जुलता तथा पात्रों के चरित्रों, भावों एवं एकांकी के उद्देश्य आदि से मेल खाता हुआ शीर्षक ही रखने का हर एकांकीकार प्रयास करता है। कहीं तो शीर्षक सूक्ष्म भी होता है और कहीं अधिक शब्दों के भी शीर्षक देखे गए हैं। शीर्षक वैसे छोटा, मौलिक तथा रोचक हो तो उसे देखते ही सामान्य पाठक आकर्षित हो जाता है। यदि शीर्षक देखते ही पाठक को कौतूहल उत्पन्न हो जाता है तो वह उसे पढ़े बिना नहीं रहता है। अतः एकांकी का अच्छा प्रभाव डालने के लिए सभी एकांकीकार प्रायः बहुत सोच-विचार कर शीर्षक दिया करते हैं। इसी से एकांकीकार की लेखन-क्षमता, कला व सूझ-बूझ का परिचय मिलता है।

'राम-रहमान' शीर्षक का औचित्य – यह शीर्षक मात्र दो शब्दों और दो नामों का रखा गया है। दो नाम दो अलग-अलग धर्मों के प्रतीक दिखाई देते हैं। स्पष्ट है 'राम' एक हिन्दू नाम है और 'रहमान' मुस्लिम। इस शीर्षक को पढ़ते ही पाठकों को 'राम' तथा 'रहमान' के विषय में जानने की उत्कण्ठा जगती है। पाठक यह भी सोच सकता है कि 'राम' कहीं दशरथी 'राम' तो नहीं, या यह 'राम' कौन हो सकता है ? वैसे ही 'रहमान' के विषय में सोचा जाए तो पाठक यह भी सोच सकता है कि 'रहमान' कहीं अल्लाह अथवा पैगम्बर मोहम्मद के लिए तो नहीं कहा गया होगा ? या यह रहमान कौन हो सकता है ? इसे राम के साथ क्यों जोड़ा गया है ? 'राम' और 'रहमान' का इस एकांकी में क्या वर्णन किया गया होगा? इसके अतिरिक्त भी पाठक इस शीर्षक के नामकरण पर कई अनुमान लगा सकता है। यदि वर्ण्य-विषय की दृष्टि से भी देखा जाय तो यह शीर्षक नितान्त सम्बद्धता से युक्त लगता है। इसका कथानक राम तथा रहमान पर ही आधारित है और सम्पूर्ण कथावस्तु भी राम और रहमान के कारण ही विकसित होती है। वर्ण्य-विषय, कथावस्तु आदि के साथ-साथ जो सर्वाधिक महत्त्व इस शीर्षक का है, वह है, इसका नायक रामचरण अथवा राम और राम के द्वारा निभाई गयी, अपने मित्र रहमान की मित्रता। वस्तुतः राम के द्वारा अपने मित्र रहमान की बहिन करीमा को बहिन बनाकर अपने घर लाना, इस सम्बन्ध में रहमान को दिया अपना वचन निभाना, इस वचन को निभाने के लिए रामचरण का अपनी माँ परमेश्वरी के अन्तर्कलह को झेलना इत्यादि इस एकांकी की कथावस्तु है।

प्रस्तुत एकांकी की कथावस्तु में रहमान, रामचरण, करीमा और परमेश्वरी के कारण अन्तर्द्वन्द्व उभरा है। इसके निमित्त हुए हैं रहमान तथा रामचरण और तभी इस एकांकी को 'राम-रहमान' शीर्षक दिया गया है। आज हमारे समाज में तथा सम्पूर्ण राष्ट्र में धार्मिक भेदभाव गहराई से जनमानस पर छाया हुआ है। कथानक में इसी भेदभाव की भावना को एक समस्या के रूप में उठाया गया है। परमेश्वरी जब देखती है कि उसका रामचरण रहमान की बहिन करीमा को अपनी बहिन बनाकर घर ले आया है। बड़े स्नेह से उसके मुँह में अपने हाथ से पेड़ा खाने को देता है। बदले में करीमा भी रामचरण को अपना प्यारा रहमान भाई कहकर सम्बोधित करती हुई उसके मुँह में अपने हाथ से लड्डू खाने के लिए देती है, तो रामचरण की माँ परमेश्वरी इसमें छुआछूत व धार्मिक भेदभाव मानती है और दोनों को अपने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

घर पर नहीं रहने देना चाहती है। इसी धार्मिक भेद-भावना तथा धार्मिक छूतछात की भावना से भरे होने के कारण उसकी कथावस्तु का विकास होता है। इसी कारण एकांकी का नाम 'राम-रहमान' रख दिया गया है। यह नामकरण पात्रों के नाम पर आधारित है, परन्तु इसमें मानवीय भावना एवं साम्प्रदायिक सद्भाव की व्यंजना भी हुई है। अत: प्रस्तुत एकांकी का यह शीर्षक कथावस्तु, पात्रों के चरित्र, व्यक्तित्व तथा कृतित्व के अनुरूप तथा औचित्यपूर्ण है।

एकांकी की मूल संवेदना

प्राय: सभी एकांकीकार अपने एकांकियों में किसी-न-किसी सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक आदि संवेदनाओं का निरूपण करते हैं। किसी-न-किसी संवेदना को अपने विचारों के रूप में एकांकीकार अपने एकांकी के माध्यम से प्रकट करते हैं। यही रचना-धर्मिता का मूल आधार भी है। 'राम-रहमान' एकांकी में भी एकांकीकार डॉ. सुधीन्द्र ने अपनी वैचारिक संवदेना प्रकट की है। यह संवेदना है, साम्प्रदायिक सौहार्द की भावना को स्पष्ट करना। सब धर्मों का मूलाधार तथा तत्त्व एक ही है, और वह है सर्वशक्तिमान ईश्वर। इस प्रकार इस एकांकी की मूल संवेदना का विश्लेषण निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से किया जा सकता है–

1. धार्मिक भेदभाव मिटाना – रामचरण की माँ जब यह देखती है कि उसका पुत्र अब राम नहीं बल्कि वह करीमा का भाई रहमान हो गया है और मुस्लिम लड़की करीमा उसके मुँह में अपने हाथ से लड्डू खिला रही है तो वह हतप्रभ रह जाती है और सोचती है कि मेरा बेटा रामचरण इस मुस्लिम लड़की के हाथ का लड्डू खा रहा है। वह इसे धार्मिक छूत-छात मानती है। इसके साथ ही जब रामचरण कारागार से मुक्त होकर घर आता है और अपने साथ करीमा को लाता है तो घर के दरवाजे से अन्दर आते ही वह पजामा और ओढ़नी पहने एक मुसलमान लड़की को देखती है तो उसी समय उसके मन में धार्मिक भेदभाव घर कर जाता है जो द्वेष को बढ़ाता है। अपनी माँ के द्वारा इस प्रकार के धार्मिक भेदभावना को तोड़ते हुए रामचरण जब अपने पिता कैलाशनाथ से कहता है कि – "अपने आजाद रेजीमेन्ट में पिताजी, हम लोग हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नहीं रखते थे। सब अपने आप को हिन्दुस्तानी कहते थे।" इस कथन के माध्यम से एकांकीकार ने देश तथा समाज में व्याप्त धार्मिक भेदभाव का आवरण उठाया है तथा जातीय विद्रेष के विरुद्ध अपनी संवेदना प्रकट की है।

2. धार्मिक छुआछूत मिटाना – हमारे समाज में आज भी धार्मिक छुआछूत देखने को मिल रहा है। हिन्दू-मुसलमानों में परस्पर छूत-छात अभी भी विद्यमान है। 'राम-रहमान' एकांकी में रामचरण द्वारा अपने हाथ से करीमा के मुँह में पेड़ा खाने को देने तथा करीमा द्वारा अपने हाथ से रामचरण के मुँह में लड्डू देने पर रामचरण की माँ परमेश्वरी इसे छूत-छात मानती है। वह देखती है कि मेरा बेटा रामचरण शुद्ध हिन्दू होते हुए भी एक मुस्लिम लड़की के हाथ का लड्डू खा रहा है। वह धार्मिक विद्रेष की भावना से ग्रस्त हो जाती है। जब रामचरण उसी समय अपनी सहोदर बहिन वीणा को भी अपने हाथ से पेड़ा खाने को देता है, तो रामचरण की माँ तपाक से वीणा को नहीं खाने के लिए सावचेत करती हुई कहती है– "ना तू न खाना वीणा ! तूने अभी पूजा नहीं की है।" नहीं खाने का दिखावटी बहाना पूजा नहीं होना बताया गया है, परन्तु वास्तविकता छुआछूत ही है। वह नहीं चाहती कि मेरी लड़की वीणा भी मुस्लिम लड़की का छुआ हुआ पेड़ा खाकर अपना धर्म भ्रष्ट करे। परमेश्वरी छुआछूत से ग्रस्त होने से ईश्वर की पूजा तक नहीं करती है। करीमा के भाई रहमान (रामचरण) की माँ अब मुसलमान की माँ है, वह हिन्दुओं के भगवान (देवता) के सामने पूजा के लिए कैसे जा सकती है ? कहीं भगवान नाराज हो गये कि इसने मुझे भी भ्रष्ट कर दिया तो ? अत: वह पूजा भी नहीं करती और बिना पूजा किए भोजन भी नहीं कर पाती। उसे भूखा रहना पड़ रहा है। अत: छुआछूत की भावना का आवरण उठाना एकांकी की मूल संवेदना का एक प्रमुख तथ्य है।

3. साम्प्रदायिक सौहार्द की प्रेरणा देना – यह देश हिन्दुओं और मुसलमानों की जन्म-धरा है। दोनों धर्मों के लोग यहाँ रह रहे हैं, किन्तु आज भी साम्प्रदायिक दुर्भावना दोनों में है। एकांकीकार इस एकांकी में हिन्दू और मुसलमानों को भाईचारे की भावना से रहते देखना चाहता है। साम्प्रदायिक सौहार्द बनाए रखना ही इस एकांकी की मूल संवेदना है। रामचरण अपने पिता से आजाद रेजीमेट में हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना का जिक्र करता है कि वहाँ हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद ही नहीं था। सब स्वयं को हिन्दुस्तानी मानते थे। इस पर रामचरण के पिता कैलाशनाथ का यह कथन द्रष्टव्य है कि – "न जाने वह दिन हिन्दुस्तान में कब आयेगा बेटा जब हिन्दु-मुसलमान का भेद न रहेगा। जब मस्जिद-मन्दिर के झगड़े दूर हो जायेंगे। जब कुरान और गीता एक ही धर्म की पुस्तकें हो जाएँगी।" कैलाशनाथ का यह कथन साम्प्रदायिक सौहार्द की भावना से ओत-प्रोत है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परमेश्वरी साम्प्रदायिकता के कारण करीमा को अपने घर पर नहीं रखना चाहती है, तब रामचरण घर छोड़ने को उद्यत हो जाता है। उसकी बहिन वीणा उससे कहती है कि वह अब कहाँ जायेगा ? तो रामचरण कहता है कि, ''जहाँ वीणा और करीमा में कोई भेद न हो, जहाँ रहमान वीणा का भाई हो सकता हो, जहाँ करीमा राम की बहिन हो सकती हो। जहाँ रहमान और राम करीमा और वीणा, चारों माँ की गोद में बैठ सकें, उसकी माँ के यहाँ जायेंगे वीणा।'' और वह माँ रामचरण की माँ परमेश्वरी नहीं है बल्कि साम्प्रदायिक सद्भावना की माँ, हिन्दू-मुस्लिम भाइयों की माँ, धर्म-निरपेक्षता की माँ, भारत माता ही है, अन्य कोई नहीं है। साम्प्रदायिक सौहार्द की माँ, भारत माता ही अपने हिन्दू-मुस्लिम बेटे-बेटियों को अपने ममतामयी आंचल में शरण दे सकती है। इसी भारत माता की गोद में मानव-मानव एक हो सकेंगे। धर्म छोटे-बड़े सम्प्रदायों में विभक्त नहीं होगा। अपने इस मानवतावादी-सर्व-धर्म समभाव के दृष्टिकोण का प्रतिपादन करना ही एकांकीकार का मूल उद्देश्य रहा है। अन्ततोगत्वा परमेश्वरी का हृदय परिवर्तन हो जाता है। अब न वह राम व रहमान में भेद मानती है और न करीमा और वीणा में अन्तर देखती है। सच्चे अर्थों में वह साम्प्रदायिक सौहार्द की पर्याय बन जाती है। एकांकीकार ने इस मूल संवेदना को मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है।

निष्कर्ष – इस प्रकार 'राम-रहमान' एकांकी का शीर्षक वर्ण्य-विषय, कथावस्तु तथा पात्रों के चरित्र के अनुसार अति उत्तम है और समाज में अथवा देश में साम्प्रदायिक सौहार्द की प्रेरणा देना, भाईचारे से रहना तथा धार्मिक भेदभाव को त्यागना आदि इस एकांकी की मूल संवेदना है।

प्रश्न- 2. डॉ. सुधीर द्वारा लिखित 'राम-रहमान' एकांकी की कथावस्तु की समीक्षा कीजिए।

उत्तर – 'राम-रहमान' हिन्दी के सुप्रसिद्ध एकांकीकार डॉ. सुधीन्द्र द्वारा लिखित एकांकी है। डॉ. सुधीन्द्र एकांकी कला के गिने-चुने कलाकारों में से हैं। इस कारण यह अपेक्षा की जाती है कि उनके द्वारा लिखा गया यह एकांकी एकांकी कला की कसौटी पर खरा उतरेगा। 'राम-रहमान' एक राष्ट्रीय समस्यामूलक एकांकी है। इसकी कथावस्तु साम्प्रदायिक सद्भावना और सर्वधर्म समभाव से प्रेरित और ओत-प्रोत है। कथावस्तु एकांकी की आधारशिला होती है। कथावस्तु में ही एकांकीकार के विचारों और भावनाओं की पहचान होती है। कथावस्तु के आधार पर ही पात्र रचना और चरित्रों की सृष्टि हो पाती है। जब कथावस्तु और पात्र होते हैं तो पात्रों के क्रियाकलापों, संवादों से कथावस्तु अपने उद्देश्य को व्यक्त करने में समर्थ होती है। इस प्रकार कथावस्तु एकांकी के उद्देश्य और एकांकीकार की विचारधारा को व्यक्त करने में भी सहायक होती है। एकांकी में रस की सृष्टि होती है और रस से मनोरंजन। एकांकी के तत्त्वों में अभिनेयता की विशेषताएँ लाने की दृष्टि से भी कथावस्तु सहायक होती है।

'राम-रहमान' एकांकी की कथावस्तु की समीक्षा

प्रस्तुत एकांकी की कथावस्तु की विवेचना करने पर निम्नलिखित विशेषताएँ सामने आती हैं –

1. कथावस्तु और शीर्षक में सम्बद्धता – कोई भी एकांकीकार अपने एकांकी की कथावस्तु के आधार पर ही उसके शीर्षक का नामकरण करता है, ताकि कथावस्तु और शीर्षक दोनों में सम्बद्धता बनी रहे। प्रस्तुत एकांकी का शीर्षक 'राम-रहमान' रखा गया है। चूँकि यह साम्प्रदायिक सद्भावना की राष्ट्रीय समस्या से ओत-प्रोत कथावस्तु है, इसलिए इस एकांकी का शीर्षक 'राम-रहमान' और कथावस्तु के मध्य नितान्त आकर्षक सम्बद्धता देखने को मिलती है। इस एकांकी में रामचरण अपने मित्र और स्वतन्त्रता सेनानी शहीद रहमान के वचन को निभाकर उसकी बहिन करीमा को अपनी बहिन मानकर अपने घर ले आता है। दोनों का एक-दूसरे से स्नेह होता है। करीमा रामचरण को स्नेह के कारण अपना भाई रहमान ही कहा करती है। करीमा और रामचरण एक-दूसरे को मिठाई खिलाते हैं। रामचरण की माँ को एक मुसलमान लड़की के हाथ से उनके पुत्र के मुँह में मिष्ठान्न देने की घटना से साम्प्रदायिक छुआछूत का द्वेष बढ़ता है। रामचरण की माँ करीमा द्वारा रामचरण को रहमान भाई कहकर पुकारने से भी अत्यन्त क्षुब्ध होती है और उसके मन में साम्प्रदायिक भेदभाव व घृणा जन्म लेती है, जिसे वह सहन नहीं कर पाती है। कथावस्तु रामचरण, करीमा और परमेश्वरी को लेकर ही विकसित होती है। इसीलिए इस एकांकी के शीर्षक 'राम-रहमान' में कथावस्तु की सम्बद्धता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

2. कौतूहलोत्पादक कथावस्तु – 'राम-रहमान' एकांकी की कथावस्तु प्रारम्भ से अन्त तक कौतूहल उत्पन्न कराती है। पाठक या दर्शक इस एकांकी में आरम्भ से ही तब कौतूहल की स्थिति में होते हैं, जब रामचरण कारागार मे होता है और उसकी माँ परमेश्वरी उसके लिए अत्यन्त व्याकुल दिखाई देती है। परमेश्वरी कैलाशनाथ से कहती है कि – ''न जाने क्यों मेरे हृदय में उसके लौटने की आशा काले बादलों में बिजली की तरह चमक जाती है। बसन्त में जैसे कोकिल एक दिन आकर 'कुहु' से उपवन गुँजा देती है, वैसे ही यदि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मेरा रामचरण आ जाता तो उसे अपने पिंजड़े में बाँधे रखती।'' यहाँ तक पाठक या दर्शक को यह ज्ञात नहीं होता है कि रामचरण कौन है ? और कहाँ है ? कथानक का ऐसा उपस्थापन अतीव कौतूहलपूर्ण है। इसके पश्चात् एकांकी की कथावस्तु में कौतूहल जब होता है जब रामचरण घर जाता है और अपने साथ पाजामा और ओढ़नी पहने एक मुसलमान-सी लगने वाली लड़की को घर लाता है। इसके पश्चात् रामचरण अपने स्नेह का प्रदर्शन करते हुए करीमा के मुँह नें अपने हाथ से पेड़ा देता है और करीमा भी अपनी ओर से रहमान के मुँह में लड्डू देती है। इस दृश्य में यद्यपि एक ओर परमेश्वरी में साम्प्रदायिक भेदभाव का द्वेष जागता है तथापि इस दृश्य से परिवार के अन्य लोगों को कौतूहल होता है। करीमा को परमेश्वरी अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार करेगी या नहीं, यह कौतूहल भी एकांकी में बना रहता है।

3. संगठित कथावस्तु – 'राम-रहमान' एकांकी की कथावस्तु प्रारम्भ से ही पाठको के मन को आकृष्ट करने वाली है। इस एकांकी की कथावस्तु अतीव संगठित है। इसके प्रारम्भ में परमेश्वरी और कैलाशनाथ की पारस्परिक वार्ता दिखाई गई है। फिर रामचरण आता है। वह अपने माता-पिता से करीमा का परिचय कराता है – ''यह करीमा है माँ, यह रहमान की बहिन है पिताजी ! वह बचपन का मेरा साथी ! यहाँ से बिछड़ा हुआ फौज में जाकर मिला....... फिर बोला राम-भैया एक प्रार्थना है। मेरी इकलौती बहिन ही मेरी माँ की धरोहर है, वह घर पर मेरी दिन-रात खैर मनाती होगी। अब वह तुम्हारी बहन है राम ! उसे अपनी बहन की तरह रखना। आह, मेरी करीमा !'' रामचरण के इस कथन से पाठकों को करीमा के विषय में जानकारी मिलती है। इसी प्रकार इस एकांकी में एक स्थल पर परमेश्वरी रामचरण के बारे में कहती है कि वह विधर्मी हो गया है। मेरा राम रहमान बनकर तो मेरे घर में नहीं रह सकता, क्योंकि मैं अब राम की माँ नहीं हूँ। अब तो मैं रहमान की माँ हो गयी हूँ। रामचरण कहता है कि ''मैं करीमा के लिए रहमान हूँ माँ ! तुम करीमा को अपनी वीणा बना लो, मैं फिर से तुम्हारा ही राम हो जाऊँगा। बेचारी लड़की ! 'रहमान' के ही सहारे वह जीती रही है। मेरे रहमान की अकेली धरोहर। क्या तुम करीमा की माँ नहीं बन सकती माँ ?'' इस प्रसंग और दृश्य में भी पाठकों के मन में माँ की प्रतिक्रिया जानने और आगे क्या होने वाला है यह जानने की उत्सुकता स्वत: ही हो जाती है। यह इस एकांकी की संगठित कथावस्तु की अन्यतम विशेषता है।

4. कथानक का स्वाभाविक विकास – कथानक का आरम्भ और विकास बहुत ही स्वाभाविक और सहज है। प्रारम्भ में ही रामचरण के लापता होने पर उसकी माँ परमेश्वरी द्वारा व्याकुलता का चित्रण किया गया है और उसी क्षण रामचरण के आने की सूचना का तार भी प्राप्त होता है। कैलाशनाथ प्रसन्न होकर रामचरण के आगमन के लिए हरिचरण से स्वागत का प्रबन्ध करने, वीणा को अच्छे-अच्छे पकवान बनाने और घर में नृत्य-गान करने को कहता है। हरिचरण रामचरण को लेने स्टेशन जाता है। करीमा के साथ रामचरण घर में प्रवेश करता है। वह करीमा का परिचय अपने पिता कैलाशनाथ आदि से कराता है, घर में खुशियाँ मनायी जाती हैं। वीणा अपनी सखियों सहित नृत्यगान करती है। उसके बाद रामचरण और करीमा के पारस्परिक स्नेह से परमेश्वरी में धार्मिक विद्वेष की भावना बलवती होती है। यहाँ तक एकांकीकार ने घटनाओं को स्वाभाविक रूप से चित्रित किया है। घायल रहमान को कराहता हुआ दिखाया गया है और रहमान द्वारा रामचरण को बहिन करीमा का दायित्व निर्वाह करने का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। कथावस्तु में चरम विकास की स्थिति वहाँ आती है जहाँ करीमा रामचरण को रहमान भाई कहकर पुकारती है और दोनों परस्पर एक-दूसरे को स्नेह-सिक्त होकर अपने-अपने हाथों से परस्पर मिठाई खिलाते हैं। रामचरण के उन्हीं हाथों से अपनी बहिन वीणा को भी पेड़ा देने पर परमेश्वरी वीणा को रोकती है और बहाना बनाकर कहती है कि बिना पूजा किये वह कुछ न खाये।

कथावस्तु में चरम विकास की स्थिति तब आती है, जब परमेश्वरी रामचरण को अपना पुत्र नहीं मानती है और करीमा को अपनी पुत्री वीणा जैसा मातृ-स्नेह देने को तैयार नहीं होती है। साथ ही राम और करीमा को रहमान और करीमा बताते हुए कहती है कि इस घर में करीमा और रहमान के लिए कोई स्थान नहीं है। साम्प्रदायिक भेदभाव की यह चरम सीमा चित्रित की गयी है। इस प्रकार कथावस्तु में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न की गयी है। जब रामचरण और करीमा अपनी माँ परमेश्वरी की गोद में स्थान न मिल पाने के कारण उस भारत माता की गोद में चले जाना चाहते हैं, जो राम के समान ही रहमान को भी अपना पुत्र माने और वीणा व करीमा को अपनी पुत्री माने। अर्थात् जहाँ साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना नहीं हो, वे उस माँ के आँचल में स्थान पाने के लिए जाना चाहते हैं, इससे परमेश्वरी अचेत हो जाती है। परन्तु जब परमेश्वरी होश में आती है, तो वह अपने पुत्र रहमान और पुत्री करीमा को पुकारती है और उन्हें गले से लगाती है। तब वह कहती है कि तुम सब मुझे छोड़कर कहीं मत जाओ। इस प्रकार कथावस्तु का प्रारम्भ, मध्य और अन्त तीनों की परिस्थितियाँ भिन्न हैं, परन्तु कथावस्तु में तीनों अवस्थाओं में सामंजस्य और सम्बद्धता बनाये रखने में कहीं भी कमी नहीं आने दी गई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. कथावस्तु की मार्मिकता – डॉ. सुधीन्द्र द्वारा रचित 'राम-रहमान' एकांकी की कथावस्तु का प्रारम्भ तो मार्मिक है ही, इसका मध्य और अन्त भी अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। आहत रामचरण के ये शब्द पाठक के मर्म को प्रभावित किये बिना नहीं रहते, जिसमें वह वीणा के यह कहने पर कि किधर जाओगे भैया ? का उत्तर देते हुए कहता है कि ''जहाँ वीणा और करीमा में कोई भेद न हो, जहाँ रहमान वीणा का भाई हो सकता है, जहाँ करीमा राम की बहिन हो सकती हो, जहाँ रहमान और राम, करीमा और वीणा – चारों माँ की गोद में बैठ सकें, उसी माँ के यहाँ जायेंगे वीणा।'' ऐसी ही मार्मिकता परमेश्वरी के इस कथन से भी उत्पन्न हो पायी है जब वह कहती है कि ''ना राम मेरा बेटा था। वह रहमान बनने के साथ ही मर गया, अब न राम रहा और न रहमान, मैं किसे रोकूँगी ?'' इन कथनों से एकांकी के कथानक में स्वाभाविक रूप से मार्मिकता का समावेश हुआ है।

6. उद्देश्य-परक कथावस्तु – डॉ. सुधीन्द्र द्वारा रचित 'राम-रहमान' एकांकी की कथावस्तु एक निश्चित उद्देश्य को लिये हुए है। उद्देश्य का सम्बन्ध राष्ट्रीय समस्या से जुड़ा हुआ है। आज हमारे देश में हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक भेद-भाव मिटाने की, साम्प्रदायिक सद्‌भावना बढ़ाने की और भाईचारे की भावना से मिल-जुल कर राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त करने की। इस दिशा में एकांकीकार को अपने उद्देश्य में एक सीमा तक सफलता मिली है। एकांकीकार ने दर्शाया है कि एक हिन्दू भाई मुस्लिम बहन के स्नेह के लिए अपनी माँ को दुर्भावनाओं के कारण त्यागने तक का निर्णय ले लेता है। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए एकांकीकार का यह उद्देश्य निःसंदेह अत्यन्त प्रेरणादायी है।

निष्कर्ष – इस प्रकार हम देखते हैं कि एकांकीकार ने प्रस्तुत एकांकी की कथावस्तु में सभी विशेषताओं को प्रतिष्ठापित किया है। कथावस्तु की दृष्टि से एकांकी और एकांकी की दृष्टि से कथावस्तु दोनों प्रभावोत्पादक हैं। पाठक और दर्शक दोनों को ही यह एकांकी प्रभावित करने में पूर्णतया सक्षम और सफल दिखाई देता है।

प्रश्न- 3. 'राम-रहमान' की एकांकी के आधार पर रामचरण का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी की पात्र-योजना के अनुसार रामचरण इसका प्रमुख पुरुष पात्र है। वह उन देशभक्तों का प्रतिनिधि पात्र है, जो आजाद हिन्द फौज के सच्चे सैनिक थे। वह चार वर्ष से अपने माता-पिता से दूर किसी अज्ञात स्थान पर बन्दी बनाया गया था और कारागार से छूट कर अपने एक शहीद मित्र रहमान की छोटी बहिन करीमा को अपना वचन निभाते हुए, अपनी छोटी बहिन के रूप में अपने घर ले आता है। यद्यपि प्रस्तुत एकांकी में रामचरण के चरित्र को अधिक विस्तार से चित्रित नहीं किया गया है, परन्तु जिस संदर्भ में और जिस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसका चरित्र प्रस्तुत किया गया है, उस सन्दर्भ में यह बड़े महत्त्व का सिद्ध हुआ है। सामान्यतः रामचरण के चरित्र का विश्लेषण हम निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से कर सकते हैं –

1. देशभक्त सेनानी – रामचरण आजाद हिन्द फौज का सैनिक है। वह चार वर्ष तक अपने माता-पिता से अलग सरकार के विरुद्ध विद्रोह के कारण कारागार में बन्दी रहता है। वह अपने एक साथी रहमान के साथ मोर्चे पर खंदक के अन्दर रहकर लड़ाई करता रहता है। इस प्रसंग में रामचरण को आजाद हिन्द फौज का एक देशभक्त बन्दी सैनिक चित्रित किया गया है। एकांकी के प्रारम्भ में उसका परिचय देते हुए उसके पिता कैलाशनाथ कहते हैं – ''सचमुच, आजाद हिन्द फौज के सब बन्दी एक-एक करके छूटते जा रहे हैं। जाने रामचरण किस कारागार में होगा। पंजाब, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बम्बई की सब जेलों में रामचरण नहीं है।'' इन संवादों से भी प्रमाणित होता है कि रामचरण आजाद हिन्द फौज का सिपाही है। इससे रामचरण के चरित्र की यही विशेषता दृष्टिगोचर होती है कि वह एक ऐसा देशभक्त है जो देश के लिए कारागार में बन्दी भी रह चुका है।

2. सच्चा मित्र – एकांकी में रामचरण के चरित्र की एक अन्य विशेषता सच्चे मित्र के रूप में बताई गई है। वह आजाद हिन्द फौज के एक सैनिक रहमान का घनिष्ठ मित्र है। उनकी मित्रता बचपन ही से है। रहमान भी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संघर्ष के कारण खंदक के अन्दर रामचरण के साथ रहता है। रामचरण खंदक में घावों के कराहते हुए रहमान को अपनी गोद में लिटाकर रखता है। रहमान रामचरण से कहता है कि मैं तो मुल्क की आजादी को नहीं देख पाऊँगा। तुम कारागृह से मुक्त होकर जा रहे हो तो मेरी बहन करीमा को अपनी बहिन की तरह रखना और उसे दिये गये वचन को निभाना है। वह रहमान की बहिन करीमा को अपने साथ अपने घर ले आता है और माँ के कड़े विरोध के बावजूद उसे अपने स्नेह की छाया देता है। इस चित्रण से एकांकी में रामचरण को एक आदर्श पात्र और सच्चा मित्र दर्शाया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. दायित्ववान् भाई – डॉ. सुधीन्द्र द्वारा रचित 'राम-रहमान' नामक एकांकी के प्रमुख पुरुष पात्र रामचरण के चरित्र में एक आदर्श और दायित्यवान् भाई के भरपूर लक्षण दिखाई देते हैं। रहमान ने अपने बचपन के मित्र रामचरण को आजाद हिन्द फौज में सरकार के विरुद्ध संघर्ष में शहीद होने के पूर्व एक दायित्व सौंपा था – ''मेरी इकलौती बहिन ही मेरी माँ की धरोहर है, वह घर पर मेरी दिन-रात खैर मनाती होगी। अब वह तुम्हारी बहिन है, राम उसे अपनी बहिन की तरह रखना।'' रामचरण रहमान के इन वचनों को अन्त तक निभाता है और करीमा की किसी भी भावना को ठेस नहीं लगने देता है। अपने घर लाकर जब वह देखता है कि करीमा कुछ खा भी नहीं रही है तो वह अपने हाथ से करीमा को उसके मुँह में पेड़ा खाने को देता है। रामचरण करीमा को अपनी बहिन वीणा की तरह मानता है। रामचरण जानता है कि मैं तो करीमा की दृष्टि में उसका भाई रहमान ही हूँ, परन्तु हमारे घर के अन्य सदस्य अभी करीमा को वीणा की तरह नहीं समझ रहे हैं। रामचरण अपने घर में उसकी झिझक दूर करने का प्रयास करता है। वह अपना दायित्व निभाते हुए करीमा के लिए अपनी माँ परमेश्वरी तक को छोड़ने का भी मानस बना लेता है। एकांकी में इन्हीं प्रसंगों और कथनों के आधार पर हम कह सकते हैं कि रामचरण के चरित्र में एक आदर्श और दायित्ववान् भाई के पूरे लक्षण विद्यमान हैं।

4. धर्म-निरपेक्ष व्यक्तित्व – एकांकीकार ने रामचरण के चरित्र में अपनी धर्म निरपेक्ष विचारधारा का समावेश किया है। उसकी छवि इस एकांकी में एक धर्म निरपेक्ष युवक की छवि के रूप में चित्रित की गई है। रामचरण वैसे भी आजाद हिन्द फौज सेना का सिपाही है। आजाद हिन्द सेना में साम्प्रदायिक सद्भावना का उदाहरण देते हुए वह अपने पिता कैलाशनाथ से कहता है – ''अपने आजाद रेजीमेन्ट में पिताजी, हम लोग हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नहीं रखते थे। सब अपने आप को हिन्दुस्तानी कहते थे।'' रामचरण की धर्म-निरपेक्ष भावना उसके इस कथन से भी व्यक्त होती है जब उसके पिता कहते हैं कि हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुसलमान का भेद, मस्जिद-मन्दिर के झगड़े दूर कब होंगे और कुरान तथा गीता को एक ही धर्म की पुस्तक कब माना जायेगा ? तो एक ही पंक्ति में रामचरण का यह उत्तर कि – ''वह दिन जल्दी ही आने वाला है पिताजी।'' हिन्दू और मुसलमान का भेद रामचरण के चरित्र में है ही नहीं। वह तो ऐसी भारत माता को अपनी माता मानता है जिसके हृदय में हिन्दू और मुसलमान का कोई भेद न हो। करीमा का भाई रहमान बन जाने पर जब रामचरण की माँ परमेश्वरी उसे स्वीकार नहीं करती है तो घर छोड़ने का अपना निर्णय सुनाते हुए वह कहता है – ''मेरा निर्णय हो गया है माँ ! मेरी माँ ने मुझे नहीं अपनाया पर मेरी भारत माँ की गोद मुझे बुला रही है। एक गोद ने मुझे गिरा दिया है, दूसरी गोद मुझे उठा रही है।'' इस कथन से रामचरण का संकेत धर्म-निरपेक्ष भारत माता की ओर है, जो उसके धर्म-निरपेक्ष व्यक्तित्व का परिचायक है।

5. दयालु-प्रवृत्ति – एकांकीकार ने 'राम-रहमान' एकांकी में रामचरण को एक दयालु प्रवृत्ति का पात्र चित्रित किया है। रामचरण के हृदय में अनाथों, घायलों व असहायों के प्रति दया की भावना कूट-कूट कर भरी है। उसमें यदि दया की भावना नहीं होती तो अपने शहीद मित्र रहमान की असहाय बहिन करीमा को आश्रय देने के लिए अपने घर नहीं लाता। उसके चरित्र में दयालुता का उदाहरण हमें उसके इस कथन से मिलता है – ''मैं करीमा के लिए रहमान हूँ माँ! तुम करीमा को अपनी वीणा बना लो, मैं फिर से तुम्हारा ही राम हो जाऊँगा। बेचारी लड़की रहमान के ही सहारे ही जीती रही है। मेरे रहमान की अकेली धरोहर। क्या तुम करीमा की माँ नहीं बन सकती माँ ?'' इस एकांकी से रामचरण के दयालु चरित्र का चित्रण उस समय भी किया गया है जब रामचरण कई दिनों की थकी, भूखी और असहाय करीमा को बड़े दुलार से अपने हाथ से भोजन कराता है।

6. कर्त्तव्यपरायण – रामचरण का चरित्र एक कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति का चरित्र है। आज़ाद हिन्द फौज का सैनिक होने के कारण सरकार के विरुद्ध विद्रोह करना वह अपना कर्त्तव्य मानता है। रामचरण रहमान की असहाय व अकेली बहिन करीमा को आश्रय और स्नेह देकर अपने मित्र को दिये गये वचन के अनुसार अपने कर्त्तव्य को अन्त तक निभाता है। अपने कर्त्तव्य को निभाने के लिए रामचरण अपनी माँ परमेश्वरी को भी त्यागने का निर्णय तक ले लेता है। अपने मित्र की धरोहर को संभाले रखने के लिए वह अपनी कर्त्तव्यपरायणता का सुन्दर परिचय देता है। यही कर्त्तव्यपरायणता रामचरण के व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेषता है।

7. स्पष्टवादिता – रामचरण के चरित्र में स्पष्टवादिता आदि से अन्त तक चित्रित की गई है। जब वह करीमा को लेकर घर आता है और उसके पिता कैलाशनाथ उससे पूछते हैं – ''यह कौन है बेटा ?'' तो रामचरण स्पष्ट शब्दों में अपने पिता से कहता है – ''यह दूसरी वीणा है, पिताजी ! यह रहमान की बहिन है पिताजी।'' एक और उदाहरण रामचरण की स्पष्टवादिता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। परमेश्वरी उसके रहमान बन जाने पर रूठ जाती है। तब रामचरण अपनी माँ से कहता है कि ''क्यों माँ, मेरे रहमान बन जाने पर तुम मुझसे रूठी हो.......क्या मैंने तुम्हारा दूध नहीं पिया है ? जब रामचरण करीमा को लेकर घर से जाने का निर्णय लेता है तो उसकी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बहिन वीणा उससे पूछती है कि तुम किधर जाओगे भैया ? इस पर रामचरण स्पष्ट शब्दों में कहता है कि – ''जहाँ वीणा और करीमा में कोई भेद न हो, जहाँ रहमान वीणा का भाई हो सकता हो, जहाँ करीमा राम की बहन हो सकती हो। जहाँ रहमान और राम, करीमा और वीणा चारों माँ की गोद में बैठ सकें, उसकी माँ की गोद में बैठ सकें, उसी माँ के यहाँ जायेंगे वीणा।'' इन कथनों से रामचरण की स्पष्टवादिता का स्पष्ट पता चलता है। यह स्पष्टवादिता भी उसके चरित्र की एक विशेषता है।

8. नेताजी का प्रबल समर्थक – एकांकी में रामचरण को नेताजी का प्रबल समर्थक चित्रित किया गया है। इसका प्रमाण यही है कि वह आजाद रेजीमेंट का सैनिक था और चार वर्ष से कारागृह में बन्दी रहा, जब वह कारागार से मुक्त होकर आता है तो जनता उसका स्वागत करती है। लगभग पाँच हजार लोगों के जुलूस में वह चलता है। जनसभा को सम्बोधित करते हुए वह 'नेताजी की जय' और हमारा नारा : 'जयहिन्द' कहता है। अपने सम्बोधन में वह कहता है कि – ''आजाद हिन्द फौज ने देश का एक नया इतिहास लिखना चाहा था.........और.........हमें घर-घर में आजाद हिन्द फौज के सिपाही तैयार करने हैं। हमारे नेताजी मरे नहीं हैं। वे मर नहीं सकते। वे एक दिन फिर आयेंगे। हमें उनके स्वागत के लिए तैयार रहना है। 'जयहिन्द' हमारा अभिवादन है।'' रामचरण द्वारा आजाद हिन्द फौज और नेताजी के बारे में कहे गये ये कथन स्पष्ट रूप से व्यंजित करते हैं कि वह नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का प्रबल समर्थक है। यह उसके चरित्र की प्रमुख विशेषता है।

निष्कर्ष – इस प्रकार हम देखते हैं कि रामचरण के चरित्र में देशभक्ति कूट-कूट कर भरी है और सच्चा मित्र, दायित्ववान् भाई का चरित्र उसने सफलता से निभाया है। वह धर्म निरपेक्षता की प्रतिमूर्ति लगता है, वह साम्प्रदायिक सद्भावना का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। राष्ट्र के प्रति वह कर्त्तव्यपरायण बना रहता है और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का प्रबल समर्थक है। कुल मिलाकर रामचरण का चरित्र मानवीय गुणों से मण्डित और आदर्शमय है।

प्रश्न- 4. ''राम-रहमान'' एकांकी के आधार पर परमेश्वरी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर – प्रत्येक एकांकीकार अपने पात्रों के चरित्र को बड़े सजीव और कलात्मक ढंग से चित्रित करता है, जिससे न केवल कथावस्तु में ही रोचकता आती है, बल्कि एकांकी भी रोचक और मनोरंजक बन जाता है। कथावस्तु में पात्र और चरित्र एकांकी का प्राण तत्त्व होता है। एकांकीकार अपने कथानक को रोचक बनाता है और अपने कमजोर पात्र का चरित्र भी कलात्मक ढंग से उभारता है। ''राम-रहमान'' एकांकी की पात्र योजना भी इसी प्रकार की है, जिसे एकांकीकार ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से उभारने का सार्थक प्रयास किया है।

प्रस्तुत एकांकी में परमेश्वरी प्रमुख स्त्री-पात्र है। वह कैलाशनाथ की पत्नी और रामचरण की माँ है। उसके चरित्र और व्यक्तित्व में अनेक विशेषताएँ दिखाई गई हैं, जिन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा रहा है –

1. वत्सल माता – एकांकीकार ने 'राम-रहमान' एकांकी में परमेश्वरी को आजाद-हिन्द फौज के बन्दी सैनिक रामचरण की माँ के रूप में उपस्थित किया है। उसका पुत्र रामचरण चार वर्ष से लापता है। न जाने अंग्रेजों की कैद में कहाँ है। वह अपने पुत्र के लिए अत्यन्त व्याकुल रहती है। उसका यह स्वाभाविक ममतामय रूप है। क्योंकि हर माँ अपने पुत्र के बिछोह में हर प्रकार व्याकुल रहती है। इसी प्रकार परमेश्वरी पुत्र बिछोह में व्याकुल होकर अपने पति कैलाशनाथ से कहती है कि ''आह ! मेरा रामचरण, बचपन में अपनी मीठी बोली से मुस्कान की कलियाँ खिला देता था। जाने किस पिंजड़े में वह होगा ?'' उसके इस कथन से उसके चरित्र में पुत्र से मिलने की तीव्र उत्कंठा दिखाई देती है, लेकिन माँ की ममता इससे भी चरम सीमा पर तब पहुँचती है, जबकि हर माँ यह आशा करती है कि उसका बिछुड़ा हुआ बेटा आज ही आने वाला है। उसके इन मनोभावों की अभिव्यक्ति इस कथन से प्रकट होती है, जब वह पुनः कैलाशनाथ से कहती है कि ''न जाने क्यों मेरे हृदय में उसके लौटने की आशा काले बादलों में बिजली की तरह चमक-चमक जाती है। बसन्त में जैसे कोकिल एक दिन आकर 'कुहू' से उपवन को गुंजा देती है, वैसे ही मेरा रामचरण आ जाता – तो उसे अपने पिंजड़े में बाँधे रखती।''

2. आस्था रखने वाली – परमेश्वरी ईश्वर में आस्था एवं विश्वास रखने वाली आस्तिक महिला के रूप में चित्रित की गयी है। जब तार मिलता है कि उसका पुत्र रामचरण आ रहा है तो प्रसन्न होकर वह कहती है – ''सच ! मेरा रामचरण आ जाये तो घर में गोविन्द भगवान् के लिए मन्दिर बनवाऊँगी।'' और ''मेरे गोविन्द भगवान् ने मेरी विनती सुन ली।'' उसके इन वाक्यों से स्पष्ट होता है कि परमेश्वरी आस्तिक है और पूर्ण रूप से ईश्वर में विश्वास करने वाली महिला है। परमेश्वरी भगवान् को सुख-दुःख में अवश्य याद करती है और सदैव उसकी शक्ति में आस्था रखती है। वह भगवान् के लिए अपना सर्वस्व त्यागने को तत्पर रहती है। वह भगवान् को अपने पुत्र से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानकर उनके अनुसार ही श्रद्धा रखती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. धार्मिक कट्टरपंथी स्त्री – एकांकीकार ने परमेश्वरी को धार्मिक कट्टरपंथी स्त्री के रूप में चित्रित किया है। वह अपने धर्म के अलावा किसी अन्य धर्म को मान्यता नहीं देती है। जब उसका पुत्र रामचरण करीमा को लेकर घर में प्रवेश करता है तो वह शंकित होती हुई कहती है – ''अरे यह लड़की कौन है ? पाजामा और ओढ़नी पहने ? यह तो मुसलमान सी लगती है।'' इसके अतिरिक्त परमेश्वरी अपने धर्म को सनातन मानती है और दूसरे धर्म को नश्वर। कैलाशनाथ जब उसे यह समझाते हैं कि जात-पांत और मजहब का भेद अब संसार से समाप्त हो रहा है, बस, अब तो एक ही धर्म बचा है। वह है मानव धर्म। तो अरुचि के भाव से परमेश्वरी उस कथन का उत्तर देती हुई कहती है – ''होगा ! उसे देखने को भगवान् मुझे न छोड़े। पुराणों में यही लिखा है कि एक दिन कलयुग आ जायेगा। धर्म नष्ट हो जायेगा और प्रलय हो जायेगी।'' इतना ही नहीं, वह अपने पुत्र को रहमान के रूप में अपने घर पर स्थान नहीं देना चाहती है, क्योंकि करीमा उसे रहमान मानती है तो वह राम के स्थान पर रहमान को घर में कैसे रख सकती है ? वह अपने पुत्र को किसी दूसरे धर्म के प्रभाव में देखकर उसे त्यागने को तत्पर हो जाती है। वह अपने धर्म के विनाश से पहले भगवान् से मृत्यु की प्रार्थना करती है। उसके ये सारे भाव उसे धार्मिक कट्टरपंथी स्त्री के रूप में चित्रित करते हैं।

4. छुआछूत मानने वाली – परमेश्वरी अपने धर्म को परम पवित्र तथा मुसलमान धर्म को अपवित्र समझती है। उसके इस भाव की पुष्टि उस समय होती है, जब करीमा अपने हाथ से रामचरण के मुँह में लड्डू देती है और रामचरण अपने हाथ से करीमा को पेड़ा खिलाता है। यह दृश्य देखकर उसे लगता है कि एक अपवित्र मुसलमान लड़की के हाथ का छुआ लड्डू खाकर रामचरण का हिन्दू धर्म नष्ट हो गया है। जब रामचरण उसी हाथ से एक पेड़ा अपनी बहिन वीणा को देना चाहता है तो परमेश्वरी तपाक से वीणा को संकेत में कहती है – ''ना, तू ना खाना वीणा, तूने अभी पूजा भी नहीं की है।'' वह अपनी पुत्री वीणा को भी दूसरे धर्म की अपवित्रता से बचाना चाहती है। परमेश्वरी छुआछूत को इतनी मान्यता देती है कि वह घर के अन्दर भगवान् की पूजा तक नहीं करती, क्योंकि वह रहमान की माँ बनकर स्वयं को अपवित्र समझती है। अत: एक विधर्मी की माँ यदि भगवान् के सामने जायेगी तो उसके भगवान् भी अपवित्र हो जायेंगे। इस छुआछूत के कारण परमेश्वरी पूजा और भोजन दोनों ही छोड़ देती है। यह उसके चरित्र की सबसे बड़ी कमजोरी बतायी गई है।

5. अनिष्ट की आशंका वाली – परमेश्वरी का पुत्र करीमा को घर लाता है। करीमा उसे अपना भाई रहमान मानती है और परमेश्वरी अपने पुत्र रामचरण को राम के रूप में नहीं, बल्कि रहमान के रूप में देखती है। उसके लिए रामचरण विधर्मी हो गया है। कैलाशनाथ जब उससे कहता है कि हिन्दू और मुसलमान दो फेफड़ों की तरह हैं, वे कभी अलग नहीं हो सकते। इस पर परमेश्वरी कहती है कि ''न जाने तुम क्या कहते हो ? मुझे तो मेरे भगवान् की भौंहें टेढ़ी दिखाई दे रही है। हे भगवान् ! आज के दिन तुमने मुझे यह क्या दिखाया ?'' उसके इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उसके पुत्र के रहमान बनने से और करीमा को घर लाने से जो धार्मिक छुआछूत हुई है उससे वह अन्धविश्वास व्यक्त करती है कि उन दोनों के कारण उसके भगवान् भी उससे कुपित हो गये हैं। इन बातों से परमेश्वरी के चरित्र में अनिष्ट की आशंका करने वाला भाव उजागर होता है।

6. रूढ़िवादी स्त्री – एकांकीकार ने परमेश्वरी को इस एकांकी में एक रूढ़िवादी स्त्री के रूप में चित्रित किया है। वह पुराने परम्परागत संस्कारों में आस्था रखती है। नये विचारों से वह अनभिज्ञ रहना चाहती है। कैलाशनाथ जब परमेश्वरी से कहते हैं कि तुमने अधूरा ही पुराण पढ़ा है। तुम नया पुराण पढ़ो, सब कुछ समझ जाओगी तो परमेश्वरी कहती है कि– ''न जाने तुम कैसी नयी बात कहते हो। तुम, हरि, वीणा सब नयी-नयी बातें किया करते हो। मेरी पुरानी बुद्धि में कुछ समाता ही नहीं।'' उसके इस कथन से एकांकीकार ने उसे रूढ़िवादी स्त्री के रूप में चित्रित किया है।

7. अपराध-बोध से ग्रस्त – परमेश्वरी के चरित्र में अपराध बोध से ग्रस्त होने का भाव भी इस एकांकी में दिखायी देता है। उसके इस चरित्र की पुष्टि तब होती है, जब उसका पुत्र रामचरण कहता है कि मेरे रहमान बनने पर क्या तुम मुझसे रूठी हो ? क्या मैंने तुम्हारा दूध नहीं पिया है ? इस पर परमेश्वरी रामचरण से कहती है कि ''तू मेरा ही दूध है बेटा ! परन्तु मेरा भगवान् तुझसे और मुझसे भी बड़ा है। मैं उसके आगे कैसे जाऊँ ? मैं रोज दीपक जलाकर भगवान् की पूजा करती हूँ। मुझे उस दीपक के प्रकाश में भगवान मुस्कराते दिखाई देते हैं। तुमने माता का दु:ख दूर करने के लिए प्रयत्न किया। यह मैंने भगवान् से कहा, तो मेरे भगवान् मुस्कराये थे। आज उन्हीं से कह दूँ कि मेरा बेटा विधर्मी हो गया है ?'' परमेश्वरी भगवान् के मुस्कराने को अपने पर व्यंग्य मानती है। वह समझती है कि उसका बेटा विधर्मी हो गया है, तो इसका दोष भी मेरा ही दूध है। अत: वह स्वयं भी अपराधबोध से ग्रस्त रहती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. हठधर्मी स्त्री – इस एकांकी में एकांकीकार ने रामचरण की माँ परमेश्वरी को एक हठी स्वभाव वाली स्त्री के रूप में भी चित्रित किया है। रामचरण द्वारा करीमा को अपने घर ले आने पर वह उसे घर में स्थान नहीं देने की हठ पर अड़ी रहती है। इसकी पुष्टि उसके इस कथन से होती है – ''पर मेरा राम रहमान बनकर मेरे घर में नहीं रहेगा बेटा ! मेरा राम रहता तो मैं राम की माँ रहती। तुने मुझे अपनी माँ नहीं रहने दिया, नहीं तो तू ''रहमान'' न हो जाता।'' परमेश्वरी चाहती है कि उसका पुत्र मेरे घर में तभी रहेगा, जब वह राम बनकर रहेगा। अपने इसी हठधर्मी स्वभाव के कारण वह अपने पुत्र तक को त्यागने पर अड़ जाती है।

9. हृदय से दुर्बल स्त्री – परमेश्वरी के चरित्र में उसके हृदय की दुर्बलता का भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। जब उसका पुत्र लापता होता है, तो वह अत्यन्त व्याकुल रहती है और जब उसका पुत्र रामचरण रहमान बनकर करीमा को लाता है, तो एक ओर वह पुत्र के आगमन पर प्रसन्न होती है तथा दूसरी ओर उनमें धार्मिक बदलाव देख वह दु:खी रहती है। वह स्वयं की कहती है कि ''मेरी दशा किसी भिखारिन रानी की तरह हो रही है आज। मैं फूली नहीं समाती थी, अभी-अभी। पर अब मेरा सारा आनन्द जैसे लुट गया है। देखती हूँ कि मेरा राम, राम नहीं रहमान बनकर आया है। वह अब मेरा राम नहीं रहा, वह करीमा का रहमान हो गया है। वह विधर्मी है।'' इस कथन से स्पष्ट होता है कि वह हृदय से दुर्बल है। उसके चरित्र की यह कोमलता चरम सीमा पर तब पहुँचती है, जब वह करीमा और अपने पुत्र को स्वीकार नहीं करती है। रामचरण जब घर त्यागने की घोषणा करता है तो वह इसे सहन नहीं कर पाती और भावातिरेक में आकर अचेत हो जाती है। उसे पुत्र का पुन: बिछोह सहन नहीं होता है। यह घटना उसकी हृदय की दुर्बलता परिलक्षित करती है।

10. भावुक स्वभाव वाली – परमेश्वरी रामचरण और करीमा के कारण पहले तो अत्यधिक दु:खी होती है। वह रामचरण को विधर्मी तक कह देती है। उसे अपने पुत्र राम के रूप में नहीं, बल्कि रहमान के रूप में मान्यता देकर अपने साथ भी नहीं रखना चाहती है। उसे पूर्ण रूप से धार्मिक कट्टरपंथी, हठधर्मी तो चित्रित किया ही गया है, परन्तु अन्ततोगत्वा उसके चरित्र में ममताजन्य भावुकता के दर्शन करवाने में एकांकीकार सफल हो जाता है। रामचरण के घर छोड़ने की घोषणा सुनकर वह अचानक अचेत हो जाती है। तब सब घबरा जाते हैं। कैलाशनाथ कहता है कि वह अक्सर अचेत हो जाया करती है। अभी ठीक हो जायेगी। उनके सम्भालने के बाद थोड़ी ही देर में जब परमेश्वरी को चेत होता है, तो वह पुत्र रहमान और पुत्री करीमा को पुकार कर गले लगाती है और उन्हें अपना मानकर कहीं भी न जाने का आग्रह करती है। इससे उसके भावुक स्वभाव का उद्घाटन हुआ है। इस प्रकार एकांकीकार ने अन्त में उसके चरित्र में सुधार लाने का प्रयास किया है।

7.3 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'राम-रहमान' एकांकी में परमेश्वरी को ऐसी स्त्री-पात्र के रूप में दिखाया गया है, जो प्राचीन परम्परावादी और रूढ़ियों से ग्रस्त रहती है। उसमें अन्धविश्वास भी दिखाई देता है, लेकिन उसके चरित्र में ममता और स्नेह की कमी नहीं रहती है। एकांकीकार ने उसके चरित्र को सहज और स्वाभाविक रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। इस कारण उसके चरित्र में कमियों और दोषों के साथ ही गुणों का भी समावेश दिखाया गया है। कथानक के अन्त में परमेश्वरी के चरित्र में ममतामयी माँ का निरूपण कर उसके चरित्र से आदर्श पात्र की अभिव्यक्ति हुई है।

7.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. परमेश्वरी का चरित्र-चित्रण कीजिए।
2. राम-रहीम एकांकी की मूल संवेदना लिखिए।

Jan Vishwa Bharati Institute (Deemed University), Lachhmangarh

इकाई-8 : समाज-दर्पण

(पंडित उदयशंकर भट्ट)

संरचना

8.0 लेखक परिचय

8.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

8.3 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

8.3.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

8.3.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

8.3.3 निबंधात्मक प्रश्न

8.4 सारांश

8.5 अभ्यास प्रश्नावली

8.0 लेखक परिचय

पं. उदयशंकर भट्ट एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार व भाव नाट्यकार के उच्च स्थान पर आसीन रहे हैं। आपके लगभग 17 बड़े नाटक तथा 11 एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। आपने पौराणिक ऐतिहासिक, सामाजिक, भावनाट्य, गीति नाट्य, रेडियो रूपक आदि सभी प्रकार के नाटकों का सुन्दर सृजन किया। भावनाट्य आपकी एक महत्ती विशेषता है। वैसे आपका लेखन क्षेत्र सामाजिक रहा है और हमारे जीवन की अनेक समस्याओं का जीवन्त चित्रण हमें आपकी रचनाओं में प्राप्त होता है। श्री भट्ट ने शास्त्री पक्ष की अपेक्षा मूल उद्देश्य और समस्या-निर्देश की ओर विशेष ध्यान दिया है। एकांकी के शिल्प विधान की जटिलता में वे कभी नहीं उलझे। श्री भट्ट का एकांकी साहित्य सामाजिक आलोचना, राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक पुनरुत्थान आदि से सम्बन्धित है। आधुनिक, कृत्रिम और सभ्य जीवन की कमजोरियाँ उन्होंने अपने एकांकियों के माध्यम से स्पष्ट की है, जिनमें आधुनिक जीवन की यथार्थता और विषमताओं का चित्रण है।

भट्ट साहब ने अपने 'आदिमयुग' संग्रह में प्रारम्भिक आर्य संस्कृति, वैदिक कालीन भारतीय संस्कृति तथा मध्य कालीन संस्कृति का रूप चित्रित किया है। तब से आज तक समाज का सम्पूर्ण लेखा-जोखा आपकी एकांकियों में देखने को मिल जाता है।

आपके द्वारा विरचित एकांकी संग्रह में – 1. आदिम युग, 2. समस्या का अन्त, 3. धूम शिखा, 4. अभिनव एकांकी, 5. स्त्री का हृदय, 6. आज का आदमी, 7. पर्दे के पीछे आदि उल्लेखनीय हैं। आपके गीति नाट्यों में कवि हृदय की भावुकता के साथ-साथ राष्ट्रप्रेम व देशभक्ति सम्बन्धी भाव पाये जाते हैं। आप पुरानी पीढ़ी के सर्वश्रेष्ठ नाट्यकारों में से एक प्रकाश स्तम्भ माने जाते हैं। प्रस्तुत एकांकी 'समाज दर्पण' में आधुनिक समाज की उच्छृंलता का यथार्थ चित्रण है।

8.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''शुरमा लगाओ गोरी, शुरमा लगाओ। बाबा को चुप कराओ पियार से शियामा। कितना रोता है शाला ? रोता ही जाता है। अभी शाब आता होगा। हम पसन्द हैं शियामा। हमने भी एक किया था, बड़ा सुन्दर था, मर गिया। हमारा एक आँख बीमारी में खो गिया, शियामा, काना होने से क्या हुआ ? तू भी तो काला है, मोटा भैंसा-सा। हम तुम से गोरा है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के पंडित उदयशंकर भट्ट द्वारा विरचित 'समाज-दर्पण' एकांकी से उद्धृत है। प्रोफेसर जयन्त का बच्चा रो रहा है। बच्चे की देख-रेख करते समय उनके घरेलू नौकरों श्यामा तथा भोला के बीच चुहलबाजी होती है। जब भोला श्यामा की आँखों में लगे सुरमा की बात करता है और श्यामा भोला से पूछती है कि उसकी आँखों में लगा सुरमा (काजल) क्या बढ़िया लग रहा है ? इस पर भोला कहता है कि –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – श्यामा तुम तो गोरी, उजली और सुन्दर हो, तुम तो अपनी आँखों में सुरमा लगाओ। सुरमा लगते ही तुम्हारा रूप भी निखर आयेगा और सुरमई आँखों में देखोगी तो बाबा को अर्थात् प्रोफेसर जयन्त के बच्चे को चुप करा लोगी। देखा तो यह बच्चा (प्यार से) कितना रो रहा है। यह तो चुप होता ही नहीं है, लगातार कितनी देर से रो रहा है। अभी साहब (प्रोफेसर जयन्त) भी आने वाले हैं। बच्चे को चुप कराओ, वे सोचेंगे तो कहेंगे कि दो-दो नौकर हैं फिर भी बच्चे को रुला रहे हैं। ठीक तरह से देख-भाल नहीं करते हैं। भोला फिर बात बदल कर श्यामा से कहता है कि श्यामा क्या तुम हमको (मुझको) पसन्द करती हो। मैं भी अकेला ही हूँ। मैंने भी अपनी एक सुन्दर जीवन संगिनी बनाई थी लेकिन अब वह इस संसार में नहीं है। उसके बाद मेरी दुर्दशा-सी हो गई। बीमारी हुई तो उसमें मेरी एक आँख ही चली गई। यद्यपि मैं अब काना हो गया हूँ तथापि काना हूँ तो क्या हो गया ? पुरुष तो पूर्ण हूँ। बस मात्र काना ही तो हूँ। फिर भोला श्यामा से चुहलबाजी अर्थात् विनोद के स्वर में बोलता है। अरी श्यामा, तेरी और मेरी जोड़ी बढ़िया रहेगी। यदि मैं काना हूँ तो तू कौनसी सुन्दर है, तू भी तो भैंस की तरह मोटी और काली है। फिर भी मैं तुझसे गोरा ही हूँ। मैं तो तुझसे उन्नीस नहीं हूँ, बीस ही हूँ।

विशेष – 1. घरेलू नौकरों के बीच पारस्परिक मनोविनोद, प्रणय निवेदन तो दर्शाया ही है, साथ ही अपने स्वामी एवं स्वामिनी की अपने बच्चे के प्रति उदासीनता का व्यवहार देखकर सेवकों के अनुचित लाभ उठाते हुए भी चित्रित किया गया है।

2. भाषा सरल है तथा भोला के मुख से निकलते शब्दों से पता चलता है कि वह हिन्दीभाषी नहीं है,

तब भी हिन्दी बोल ही लेता है।

(2)

''आपका मतलब मैं समझ गया। देश की उन्नति का सबसे बड़ा राज यह है कि स्त्रियों को आपके पास आने की खुली छूट दे दी जाय और आप उनको नापें-तोलें, उनकी आँख, कान, नाक, गला, होंठ, छाती, कमर पिंडलियाँ, पैर अपने ढंग से नापें, तौलें, देखें, परखें, क्यों ?''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के पंडित उदयशंकर भट्ट द्वारा विरचित 'समाज-दर्पण' एकांकी से उद्धृत है। यह कथन वे आगन्तुक को सम्बोधित करते हुए कहते हैं। आगन्तुक सौन्दर्य प्रतियोगिता कम्पनी का एजेंट होता है और जयन्त की पत्नी मीना को उक्त प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए जयन्त से ब तचीत करता है। तब उस आगन्तुक (इकराम) से जयन्त कहता है –

व्याख्या – मैं आप की सारी बात अच्छी तरह से समझ चुका हूँ। आप यही कह रहे हैं कि देश की प्रगति का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि इस देश की स्त्रियों को खुली छूट दे दी जाय। वे अपनी स्वाभाविक मर्यादाओं की पालना भी नहीं करें और इस प्रकार की सौन्दर्य प्रतियोगिताओं के लिए आपके पास खुली आती-जाती रहें ताकि आप उनकी इस स्वतंत्रता का अनुचित लाभ उठाते रहें, उनका शोषण करते रहें, आप अनुचित ढंग से उनके शरीर को नापते व तोलते रहें और उनके अंगों की जाँच-परख करते रहें। सौन्दर्य परीक्षण के नाम पर आप स्त्रियों की नाक व कान की लम्बाई-चौड़ाई की नाप लेते रहें, उनके होठों को निहारते रहें, उनके गले की नाप लेते रहें, उनकी छाती (वक्षस्थल) तथा कमर (कटि) का अनुचित निरीक्षण करते रहें, ताकि उनके पैरों तथा पिंडलियों को अपने ही ढंग से अर्थात् दृष्टि से नाप सकें, तोल सकें, देख सकें तथा अपने निहित स्वार्थ के लिए उनका शोषण कर सकें। क्यों यही है न आप का उद्देश्य ? मैं आपके इस उद्देश्य को भली-भाँति समझ गया हूँ।

विशेष – 1. प्रोफेसर जयन्त के द्वारा सौन्दर्य प्रतियोगिता आयोजित करने वाली कम्पनी के कार्यकर्ता को उनके कार्यों के प्रति खरी-खोटी सुनाई गई है। सौन्दर्य प्रतियोगिता के नाम पर नारी के अंग-प्रत्यंग को उपहास की वस्तु बनाने वाले आयोजकों की पोल खोल दी गई है। स्त्रियों को खुली छूट देने पर होने वाली अश्लील क्रिया-कलापों से बचने की सलाह देने में एकांकीकार सफल रहा है।

2. भाषा सरस, शब्दावली नपी-तुली तथा शैली व्यंग्यात्मक है।

(3)

''बाबा ? बाबा तुम्हारे पास रहेगा। तुम जो हो जयन्त, जरा देखभाल रखना। वक्त पर दूध दिलवा देना। दवा श्यामा देती रहेगी। कपड़े बदलती रहना श्यामा। हाँ, भला ! बात ही कितनी है ? क्या करूँ मैं नहीं जाना चाहती थी, पर जाना पड़ रहा है। क्या करूँ ? बड़े आदमी हैं। दोस्ती है, तो निभाना तो होगा ही।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के पंडित उदयशंकर भट्ट द्वारा विरचित 'समाज-दर्पण' एकांकी से उद्धृत है। प्रोफेसर जयन्त की स्वेच्छागामी पत्नी अपने बीमार बच्चे की परवाह किये बिना एक सप्ताह के लिए बाहर जाने की तैयारी में व्यस्त है। उसके पति द्वारा यह पूछे जाने पर कि बीमार बच्चे को छोड़कर वह तीन-चार दिन के लिए बाहर जायेगी तो बाबा (बच्चे) की देखरेख कौन करेगा ? इस बात पर मीना जयन्त से कहती है कि –

व्याख्या – मुझे मालूम है कि मेरे बच्चे (बाबा) की तबियत कुछ ठीक नहीं है, परन्तु मैं उसे अपने साथ नहीं ले जा सकती। वैसे भी तुम घर पर ही हो। वह तुम्हारे ही पास रहेगा। जयन्त तुम पिता हो उसके। उसके साथ तुम जो हो, कोई मेरा उसके साथ रहना आवश्यक थोड़े ही है। जब तुम उसके साथ हो तो उसकी देखभाल करते रहना। भूख लगे उसे, तो समय-समय पर उसे दूध पिलाते रहना। श्यामा भी तो आखिर यहीं है, तुम अकेले तो नहीं हो। श्यामा किसलिए रखी है ? यह उसे दवाई पिलाती रहेगी, और हाँ ! श्यामा सुनो ! बाबा का ध्यान अच्छी तरह रखना। उसकी नित्य सफाई का ध्यान रखना। बाबा को साफ-सुथरा रखना। नियमित रूप से उसके कपड़े बदलती रहना। तीन-चार दिन के लिए ही तो मैं बाहर जा रही हूँ। कोई ज्यादा दिनों की बात थोड़े ही है। इतने दिनों में क्या बिगड़ जायेगा, बाबा का ? कोई बात नहीं है।

वह अपने पति जयन्त तथा सेविका श्यामा से अपनी विवशता प्रकट करती हुई फिर कहती है कि क्या करूँ, मैं विवश हूँ। विवशता में जा रही हूँ। अन्यथा मैं तो जाना भी नहीं चाहती, परन्तु जब वे साथ आने की जिद कर रहे हैं तो मुझे जाना ही पड़ रहा है। वे हैं भी तो बड़े आदमी। मेरी जब बड़े आदमियों से मित्रता है तो मित्रों की बात भी तो नहीं टाली जाती। मित्रता तो मुझे निभानी ही पड़ेगी न ! या तो बड़े आदमियों की संगति नहीं करती और बड़े आदमियों की संगति की है तो अब निभाने के समय पीछे तो नहीं हट सकती।

विशेष – 1. प्रोफेसर जयन्त की पत्नी मीना की स्वेच्छाचारिणी मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है। भारतीय नारी का यह एक विकृत रूप है। मीना माँ के नाम पर एक कलंक है। यहाँ नारी की उस स्वतंत्रता की धज्जियाँ उड़ाई गयी हैं जिससे वह स्वयं अपने पुत्र को बीमार अवस्था में छोड़कर मात्र पति तथा नौकरानी को सौंपकर जा रही है।

2. भाषा सरल और भावपूर्ण है।

(4)

''बात कुछ भी नहीं है। तुम मुझे जाने नहीं देना चाहते, किसी के साथ मिलने नहीं देना चाहते। तुम हमेशा से मेरे क्लब जाने का विरोध करते रहे हो। क्लब तुम्हें बदमाशों का घर मालूम होता है। रेस तुम्हें पसन्द नहीं है। मैं बॉल रूम जाती हूँ तो तुम्हें वहाँ भी मेरा जाना, उसमें नाचना बुरा लगता है। मिस्टर जयन्त, बड़ा आदमी बनने के लिए बड़ों में बैठना-उठना जरूरी है। उनके साथ खाना-पीना, घूमना जरूरी है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के पंडित उदयशंकर भट्ट द्वारा विरचित 'समाज-दर्पण' एकांकी से उद्धृत है। मीना मसूरी जाने की हठ कर बैठती है। उसका पति जयन्त उसे बीमार बच्चे की स्थिति से अवगत कराता है। वह स्वयं छुट्टी न ले सकने की असमर्थता व्यक्त करता है। मीना उसे डाँटती है कि वह कैसा प्रोफेसर है जो मेरी परिस्थितियों को भी नहीं समझ सकता। जयन्त उसके जाने का कारण पूछता है तो वह डपट कर कहती है –

व्याख्या – कोई बड़ी बात नहीं है। तुम अनावश्यक ही इसे महत्त्वपूर्ण बना रहे हो। वास्तविकता यह है कि तुम मुझे बाहर जाने से रोकना चाहते हो। अन्यथा तुम्हारी परिस्थितियाँ विपरीत नहीं है। तुम्हारा उद्देश्य है कि मैं किसी से भी मिल-जुल नहीं सकूं। और तो और, मैंने तुम से क्लब जाने के मामले में तुम्हारा विरोध भी झेला है, क्योंकि मेरे क्लब जाने के भी तुम घोर विरोधी हो। शायद तुम समझते हो कि क्लब में सभ्य लोग नहीं आते, क्लब में बड़े लोग नहीं आते। तुम्हें तो वह क्लब भी लफंगों और बदमाशों का अड्डा नजर आता है। मेरे कितने शौकों से तुम मुझे रोकना चाहते हो ? मेरा रेस में जाना तुम्हें कतई पसन्द नहीं है। कहाँ-कहाँ तुम मुझको नहीं रोकना चाहते। नृत्य-गान के लिए मैं बॉल रूम जाया करती हूँ उस पर भी तुम नाक-भौं सिकोड़ लेते हो। वहाँ मेरा जाना तथा मन बहलाव के लिए नाचना-गाना भी तुमको अच्छा नहीं लगता। मेरे शौक में हर समय तुम बाधक बनते हो। आज मैं मसूरी घूमने जा रही हूँ तो मुझे रोक रहे हो।

मीना डपटकर जयन्त से कहती है – मिस्टर जयन्त ! बड़ा आदमी बनना कोई हँसी खेल नहीं है। बात-बात में मेरे शौक व उत्साह पर रोक लगाकर मुझे घर में बिठाकर रखने से बड़ा आदमी नहीं बना जा सकता। बड़ा आदमी बनने के लिए बड़े-बड़े लोगों के साथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उठना-बैठना, घूमना-फिरना आना-जाना, खाना-पीना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए आधुनिक बनना नितान्त आवश्यक है। उनके क्रिया-कलाप का अनुसरण-आचरण करना पड़ता है, तभी व्यक्ति बड़ा आदमी बन सकता है।

विशेष – 1. इस अवतरण में मीना की दिनचर्या, उसकी रुचियों एवं बड़ा आदमी बनने के प्रति उसके विचार प्रकट कर एकांकीकार ने उसके अति स्वतंत्र चरित्र का चित्रण किया है। वह बड़ा आदमी बनने के लिए क्लबों में नाचना पसन्द करती है, बॉलरूम में जाना पसन्द करती है। रेस में जाना उसकी रुचि है और बड़े लोगों के साथ खाना-पीना, उठना-बैठना, घूमना-फिरना चाहती है।

2. भाषा सरल तथा शैली आवेशपूर्ण है।

8.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

8.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. प्रस्तुत एकांकी 'समाज-दर्पण' के लेखक का नाम बताइये।

उत्तर – 'समाज-दर्पण' एकांकी का सृजन पं. उदयशंकर भट्ट ने किया है।

प्रश्न-2. पं. उदयशंकर भट्ट ने किस प्रकार की रचनाएँ की हैं ?

उत्तर – पं. उदयशंकर भट्ट ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, भावनाट्य अथवा गीतिनाट्य और रेडियो रूपकों की रचनाएँ की हैं।

प्रश्न-3. पं. उदयशंकर भट्ट के कुल एकांकी व नाटक प्रकाशित हो चुके हैं ?

उत्तर – भट्ट साहब के 17 बड़े नाटक व 11 एकांकी प्रकाशित हुए हैं।

प्रश्न-4. उदयशंकर भट्ट की एकांकी किन बिन्दुओं से सम्बन्धित है ?

उत्तर – उदशंकर भट्ट की एकांकी साहित्य सामाजिक आलोचना, राष्ट्रीय जागरण तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान से सम्बन्धित है।

प्रश्न-5. प्रस्तुत एकांकी 'समाज-दर्पण' में किस यथार्थ का चित्रण किया गया है ?

उत्तर – 'समाज-दर्पण' एकांकी में आधुनिक नारी समाज की उच्छृंखलता का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रश्न-6. 'समाज-दर्पण' एकांकी की मुख्य पात्र किस प्रकार के चरित्र विशेष की महिला है ?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी की मुख्य पात्र मीना है, जो एक अहंकारी, गृह-कार्य की आलसी, घुमक्कड़, महत्वाकांक्षी व उच्छृंखल स्वभाव वाली महिला है।

प्रश्न-7. समाज-दर्पण एकांकी में किस समस्या का चित्रण किया है ?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी 'समाज-दर्पण' मध्यम वर्गीय परिवार की समस्या पर आधारित है।

प्रश्न-8. 'समाज-दर्पण' एकांकी की पात्र मीना को किस प्रकार की महिला के रूप में प्रस्तुत किया है ?

उत्तर – मीना प्रोफेसर जयन्त की पत्नि है जिसे एक आधुनिक सुशिक्षित महिला के रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रश्न-9. 'समाज-दर्पण' एकांकी की मूल संवेदना को एक अथवा दो वाक्यों में लिखिये।

उत्तर – दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी को मर्यादित जीवन जीना चाहिये अन्यथा स्वतंत्रता उच्छृंखलता में बदल जाती है।

प्रश्न-10. मीना के अनुसार विवाह किस प्रकार का बन्धन है ?

उत्तर – मीना के अनुसार शादी एक कान्ट्रेक्ट है।

प्रश्न-11. 'समाज-दर्पण' एकांकी के मूल उद्देश्य को एक वाक्य में स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – स्वतंत्रता को उच्छृंखल नहीं बनने देना चाहिये। सुखी परिवार के लिये यह आवश्यक है।

प्रश्न-12. प्रो. जयन्त और मीना का दाम्पत्य जीवन के तबाह हो जाने का मूल कारण क्या रहा ? समाज-दर्पण एकांकी के आधार पर बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्तर – आधुनिक खेल-कूद, सौन्दर्य प्रतियोगिता, आपसी स्वच्छन्द मेल-जोल व अधिकतर घर से बाहर रहने की घुमक्कड़ प्रवृत्ति मीना सुशिक्षित व स्वतंत्र स्त्री की प्रतिष्ठा मानती है। इसी आदत से उनका दाम्पत्य जीवन तबाह हो जाता है।

प्रश्न-13. ''मैं मजबूर नहीं हूँ कि हमेशा एक ही दूकान से सौदा खरीदती रहूँ।'' मीना के इस कथन में वह किस परिवेश की स्थिति को स्पष्ट करना चाहती है ?

उत्तर – उक्त कथन से मीना नारी-स्वतंत्रता के बदलते हुए परिवेश की बात कहती है।

प्रश्न-14. ''तो देश की स्वतंत्रता के बाद यह बहुत बड़ा काम आपने उठा लिया है।'' लेखक का यह व्यंग्य किस यथार्थ को स्पष्ट करना चाहता है ?

उत्तर – आजादी के बाद नारी स्वतंत्रता की बात क्या उठी कि महिलाओं ने पूरी मनमानी शुरु कर दी। उन्हें न कुल की मर्यादा का ध्यान है, न समाज की मर्यादा का। प्रस्तुत व्यंग्य इसी यथार्थ को स्पष्ट करता है।

प्रश्न-15. समाज-दर्पण एकांकी के अनुसार नारी का सच्चा सुख कहाँ पर निहित है ?

उत्तर – नारी का सच्चा सुख घर-परिवार की मर्यादाओं व कर्त्तव्यों में निहित है, यह सुख बाहर की वस्तु नहीं है।

8.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. 'समाज-दर्पण' एकांकी की मूल-संवेदना स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी भले ही एक सीधी-सी और साधारण-सी बात पर आधारित प्रतीत होता है लेकिन यह हमें एक गंभीर समस्या की ओर आकर्षित करने के लिए विवश करता है। इस एकांकी की मूल संवेदना यह है कि स्वतन्त्रता अपने आप में बुरी बात नहीं, परन्तु स्वतन्त्रता और उच्छृंखलता में बहुत अन्तर है। ध्यान रखने की बात यह है कि स्वतन्त्रता की रट लगाने वाला व्यक्ति इस बात का ध्यान रखे कि उसकी स्वतन्तत्रा कहीं उच्छृंखलता न बन जाये। उच्छृंखलता निश्चित रूप से बड़ी बुराई है। आज नारी की स्वतन्तत्रा की बात कही जाती है। नारी पर युगों से अत्याचार होते आये हैं। नर-नारी दोनों को स्वतन्त्र रूप से जीवन-यापन करने की स्वतन्त्रता आवश्यक है, परन्तु स्वतन्त्रता का सही अर्थ न समझकर यदि स्त्री घर में अपनी जिम्मेदारी न निभाये, तो विवाहित जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता है। पुरुष घर से बाहर की जिम्मेदारी न निभाये, तो विवाहित जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता है। पुरुष घर से बाहर की जिम्मेदारी और पत्नी घर की जिम्मेदारी निभाती है। यदि वह मीना की तरह अपने बीमार बच्चे की परवाह न करे, तब उस निरपराध अबोध बच्चे की क्या हालत होगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। नौकर-चाकर घर का काम जिम्मेदारी के साथ पूरा करें यह निश्चित नहीं है। माँ के उदासीन रहने पर तो वे और भी लापरवाह हो जाते हैं। पिता बाहर की जिम्मेदारियों को निभाता है तभी घर-गृहस्थी की आर्थिक समस्याओं को हल कर पाता है। यदि वह नौकरी छोड़कर घर पर बैठ जाये तो घर के खर्चे पूरे न हों। पत्नी स्वतन्त्रता के नाम पर खर्चे और बढ़ा दे, तब तो उस घर का हाल और भी बुरा हो जायेगा। पत्नी की भी एक मर्यादा होती है। पत्नी की ही क्यों, पति को भी मर्यादा का पालन करना पड़ता है। पत्नी मनमाने ढंग से चाहे, जिस व्यक्ति के साथ घूमे, तो पति को कष्ट होगा और घर की बदनामी भी होगी। ऐसी स्थिति में पति-पत्नी का जीवन सच्चे अर्थों मे जीवन नहीं रह जायेगा। इसीलिए जयन्त कहता है कि मीना की स्वतन्त्रता उच्छृंखलता हो गयी है। यही प्रस्तुत एकांकी की मूल संवेदना है। मीना के उच्छृंखल होने से उसका बीमार बच्चा मर जाता है। इसलिए उसका पति और भी दु:खी रहने लगता है।

प्रश्न-2. 'समाज-दर्पण' एकांकी का उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी का उद्देश्य यह है कि समाज में यह चेतना जरूरी है कि वह नारी को अपने बंधनों में भले ही न रखें, परन्तु उसे ऐसी स्वतन्त्रता भी न दें कि स्त्री उच्छृंखल हो जाये और अपने दाम्पत्य जीवन के सुख-चैन को नष्ट कर दे। कहीं ऐसा न हो कि स्त्री की आजादी उसे गृहस्थी का मोह त्यागने के लिए विवश कर दे, वह घर के दायित्वों से विमुख न हो जाये और अपनी संतान से कहीं उसकी ममता भी समाप्त न हो जाये। एकांकीकार का उद्देश्य स्वतन्त्रता का विरोध करना नहीं है, परन्तु वह स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं मानता है कि स्त्री को अपनी मान-मर्यादा का भी ध्यान न रहे। यदि स्त्री की मान-मर्यादा चली गयी तो समाज की दशा विकृत हो जायेगी। इससे समाज में संस्कारों और चारित्रिक मूल्यों का पतन हो जायेगा। तब समाज में न सभ्यता अक्षुण्ण रहेगी और न नैतिक मूल्यों की रक्षा हो पायेगी। कुल मिलाकर एकांकीकार अपने उद्देश्य में सफल हुआ है और जिस उद्देश्य को लेकर समाज को वह संदेश देना चाहता है। उसे इसमें एक बहुत बड़ी सीमा तक पर्याप्त सफलता मिली है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.2.3 निबन्धात्मकप्रश्न

प्रश्न-1. ''समाज-दर्पण'' एकांकी में एकांकीकार ने आधुनिक समाज की उच्छृंखलता का यथार्थ चित्रण किया है।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

''स्वतन्त्रता के नाम पर नारी की उच्छृंखलता एक सामाजिक दोष है।'' 'समाज-दर्पण' एकांकी के आधार पर इस कथन का विवेचन कीजिए।

उत्तर – आधुनिक युग में स्वतन्त्रता की भावना को महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है। संसार के देशों में नारी पर लगे अनेक प्रकार के बंधन दूर किये जाने की माँग की जा रही है। यह सही है कि पिछले समय में नारी जाति पर अनेक बंधन लगाये गये। इस कारण उसके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र रूप से विकास न हो सका, वह घर की चहार-दीवारी में रहकर जिन्दगी काट देने के लिए विवश रही, उसका जीवन दुःखमय रहा। प्रस्तुत एकांकी में लेखक यह बताना चाहता है कि स्वतन्त्रता बुरी चीज नहीं है, परन्तु स्वतन्त्रता की सीमा को जान लेना भी जरूरी है, अन्यथा स्वतन्त्रता, उच्छृंखलता में बदल सकती है। तब उसके खतरनाक परिणाम हो सकते हैं। यह स्वतन्त्रता का युग है ऐसा मानकर यदि एक पत्नी घर की जिम्मेदारियों और मर्यादाओं का ध्यान न रखे तथा मनमानी करने को स्वतन्त्रता मान ले, तो यह स्थिति उसके लिए, उसके परिवार के लिए और समाज के लिए भी अच्छी नहीं होगी। आधुनिक समाज की इसी यथार्थ स्थिति का चित्रण करने के लिए एकांकीकार ने ऐसा कथानक उपस्थित किया है। लेखक ने अपनी बात स्पष्ट करने के लिए कहीं-कहीं पैने व्यंग्य किये हैं, कहीं मीना द्वारा अपनायी गई अनैतिकता, गैर-जिम्मेदारी और नासमझी के दुष्परिणाम दिखाये हैं। उसने सचेत किया है कि मानवीय गुणों के त्याग का नाम स्वतन्त्रता न होकर उच्छृंखलता है। स्वततंत्रता तो मानवीय गुण प्राप्त करने के लिए है, उनका त्याग करने के लिए नहीं। नारी को अपने व्यक्तित्व का विकास कर घर की सुख-समृद्धि में वृद्धि करने में सहायक होना चाहिए।

स्वतन्त्रता का उचित उपयोग – प्रस्तुत एकांकी में इस युग की स्वतन्त्रता के बारे में कई बार कहा गया है और स्वतन्त्रता का उपयोग करते हुए पात्रों का वर्णन किया गया है। प्रोफेसर जयन्त के घर पर भोला और श्यामा दो नौकर-नौकरानी काम करते हैं। दोनों ही एक तरह से स्वतंत्र हैं। वे अपनी जिम्मेदारी को गहराई से अनुभव नहीं करते हैं। भोला नौकर के कथन से पता चलता है कि मालिक के घर से कोई चीज गायब हो जाती है। भोला कहता है कि आज फिर एक चीज गायब हो गई। घर में दो ही नौकर हैं, तो स्पष्ट है कि उन दोनों में से ही किसी एक ने चीज चुरायी होगी। नौकर को स्वतन्त्रता दिये जाने का यह मतलब नहीं है कि वह मालिक के घर से चीजों की चोरी करने लगे। घर की वस्तुओं को संभालकर रखे। यह उनकी नैतिक जिम्मेदारी है, परन्तु वह स्वतन्त्रता का ऐसा उपयोग करते हैं कि अपना काम सुचारु रूप से नहीं करते हैं।

नौकरों की दायित्वहीनता – श्यामा स्वतन्त्रता के नाम पर काम नहीं करना चाहती, इसलिए वह एक नौकरी छोड़कर दूसरी जगह नौकरी खोज लेती है। यदि मेहनत करने की आदत होती तो एक नौकरी छोड़ने की स्थिति ही उत्पन्न न होती। प्रायः सभी नौकरों की यह स्थिति है। भोला भी कई मालिकों के यहाँ नौकरी कर चुका है। श्यामा को घर पर मालिक ने बच्चे की देखभाल करने के लिए रखा है, परन्तु जयन्त का बीमार बच्चा रोता रहता है और श्यामा उसे चुप कराने के लिए प्रयास नहीं करती है। वह कहती है – ''रोने दो, जब माँ नहीं परवाह करती, बाप नहीं परवाह करता, तो मैंने ही कौन-सा इसे जिलाने का ठेका ले रखा है।'' भोला उसको मनमानी करता देखकर कहता है – ''श्यामा, यह जमाना औरत का है।'' आज के नौकर जानते हैं कि काम ढंग से न करने पर भी कोई दण्ड तो देगा नहीं, यदि नौकरी से हटा देगा, तो दूसरी जगह खोज लेंगे। नौकर बात-बात पर नौकरी छोड़ने की धमकी देते रहते हैं।

मीना की स्वतन्त्रता – मीना स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करती है। वह घर से कई दिन बाहर रहती है। उसके मिलने-जुलने वालों का घर पर ताँता लगा रहता है। जयन्त जानता है कि मीना स्वतन्त्र है। उससे मिलने आने वालों से वह कहता है, यह स्वतन्त्रता का युग है। जयन्त को कुछ मालूम तक नहीं रहता और उसकी पत्नी मीना के लिए दूसरे लोग रेस के टिकट तक लेकर आ जाते हैं। अविवाहित नवयुवक अपने घोड़ों की दौड़ के अवसर पर मीना को आमन्त्रित करता है, उसे घर पर बुलाने आ जाता है। मीना को अपने बीमार बच्चे का ध्यान नहीं रहता। वह नौकरानी श्यामा से अपेक्षा करती है कि वह बच्चे की देखभाल करे। मीना जानती है कि नौकरानी श्यामा उसके बच्चों की ढ़ंग से देखभाल नहीं करेगी। नौकरानी बिना मीना के घर में मनमानी करती है। मालिकन और नौकरानी दोनों स्वतन्त्र रहना चाहती हैं। परिणाम बच्चे को भोगना पड़ता है। नौकरानी श्यामा मीना को साफ शब्दो में कह देती है कि मैं रात-दिन बाबा को नहीं संभाल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सकती। जब बात-बात पर ईनाम का लोभ दिया जायेगा तो नौकरानी बिगड़ेगी कैसे नहीं ? नौकरानी जब स्वयं अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझती है तभी वह अच्छी तरह काम करती है।

ममतारहित स्वतंत्रता – एकांकी में मीना बच्चे को अपनी स्वतन्त्रता में बाधक मानती है। वह अपने पति जयन्त से कहती है कि ''मैं तो परिवार-नियोजन के पक्ष में हूँ। मुझे नहीं चाहिए ये चिल्ल-पिल्ल तुम्हारी।'' जयन्त को मीना का बाहर घूमना पसंद नहीं आता। वह मीना को मना करता है, तो मीना किस प्रकार स्वतंत्रता की दुहाई देती है, देखिये – ''सुनो जयन्त ! आज नारी का दृष्टिकोण बदल गया है। वह शादी को अब एक कॉन्ट्रेक्ट मानती है।'' मीना इस हद तक स्वतन्त्र रहना चाहती है कि वह चाहे जिस व्यक्ति के साथ घूमे या रहे। वह कहती है कि ''मैं मजबूर नहीं हूँ कि एक ही दूकान से हमेशा सौदा खरीदती रहूँ।'' वह जयन्त से स्पष्ट कह देती है कि मैं घर में बँध-कर नहीं रह सकती हूँ। यह नारी की स्वतन्त्रता का युग है।

उचछृंखलता पर व्यंग्य – प्रस्तुत एकांकी में स्वतन्त्रता के नाम पर समाज में प्रचलित उच्छृंखलता पर व्यंग्य किया गया है। नौकरानी श्यामा स्वतंत्र है। मालकिन यानी मीना स्वतन्त्र है। वे किसी का कोई बंधन न मानने को स्वतत्रता मानती हैं, तथा बंधनहीन रहना अपना अधिकार मानती हैं। इस एकांकी में लेखक ने यह व्यक्त किया है कि जिसे वह स्वतंत्रता मानती है, वह स्वतंत्रता नहीं उच्छृखंलता है। श्यामा और मीना दोनों ही में नैतिकता, सहृदयता और मानवीय गुणों का अभाव है, इसीलिए वह उच्छृंखल हो गयी हैं। श्यामा काम नहीं करना चाहती, जिसके लिए वह वेतन लेती है। वह वेतन के अतिरिक्त ईनाम पाती है फिर भी मालकिन के बीमार बच्चे की भी ढंग से देखभाल नहीं करती है। बीमार बच्चे के साथ भी बेरहमी से बर्ताव करती है। उसे डाँटती है, चपत लगाती है और पालने में पटक देती है। मीना बिल्कुल उच्छृंखल हो गयी है। वह अपने पति को यह बताना तक जरूरी नहीं समझती कि वह कहाँ जा रही है। उसके मिलने-जुलने वाले विवाहित-अविवाहित पुरुष जब चाहें तब उसके घर आते रहते हैं। मीना को उस बात की परवाह नहीं कि उसके पति जयन्त को यह सब कैसा लगता होगा। जयन्त मीना से मिलने आने वाले आगन्तुक से व्यंग्यपूर्वक कहता है कि ''तो देश की स्वतन्त्रता के बाद यह बहुत बड़ा काम आपने उठा लिया है।'' लेखक व्यंग्य द्वारा इस सामाजिक यथार्थ को स्पष्ट करना चाहता है कि आजादी के बाद नारी स्वतंत्रता की माँग क्या उठी कि महिलाओं ने पूरी मनमानी शुरु कर दी है। उन्हें न कुल की मर्यादा का ध्यान है, न समाज की मर्यादा का। उन्हें न अपने बीमार बच्चे की चिन्ता है, न अपने पति की भावनाओं का। वे अपने शरीर के अंगों को अववाहित पुरुषों से नाप-जोख कराने में कोई शर्म महसूस नहीं करती हैं। जयन्त द्वारा लेखक ने व्यंग्यपूर्ण अविवाहित आगन्तुक को कहलवाया है कि ''लोग वाकई बेवकूफ हैं जो अपनी औरतें व लड़किया आपके हवाले नहीं कर देते।'' लेखक ऐसी स्वतन्त्रता को वासना का खिलवाड़ मानता है। अब पति स्वतन्त्र नारी पर बंधन लगाने में अपने आपको असमर्थ पाता है। जयन्त कहता है – ''मैं बुरा मानने वाला कौन होता हूँ ? मीना स्वतंत्र है।''

इस प्रकार लेखक नारी की तथाकथित स्वतन्त्रता को सर्वथा अनुचित ठहराता है व उसे घर की बर्बादी का कारण मानता है। ये कैसी स्वतन्त्रता है ? पत्नी अपने पति को यह बताना उचित न समझे कि वह कहाँ जा रही है ? जयन्त के पूछने पर वह जवाब देती है, ''कह तो दिया हजार बार, लाख बार कह दिया बाहर, बाहर। सुना तुमने ! कान में रूई डाल ली है क्या ?'' लेखक मीना द्वारा पति को दिये गये जवाब के इस ढंग को स्वतंत्रता नहीं उच्छृंखलता मानता है।

एकांकी में मीना को सुखी दिखाया गया है, परन्तु उसका अशक्त व लाचार पुत्र बीमार और पति परेशान दिखायी पड़ता है। वह नौकरानी से अपने मन की व्यथा को कहता है, ''नहीं श्यामा ! मीना की स्वतन्त्रता उच्छृंखलता हो गयी है।'' सच पूछा जाये तो लेखक का यह व्यंग्य नारी स्वतन्त्रता के लिए एक चुनौती भी है। लेखक समाज को यह बताना चाहता है कि एक बुद्धिजीवी प्रोफेसर जो कि समाज को दर्पण दिखाने वाला है, वही स्त्री की उच्छृंखल स्वतन्त्रत का भुक्तभोगी है। जब समाज में बुद्धिजीवी ही अपनी पत्नी को इस तथाकथित आधुनिकता के गन्धयुक्त वातावरण में झोंक देता है तो सामान्य जन की क्या स्थिति हो सकती है ? आज समाज में पश्चिमी सभ्यता की नकल का एक दौर चल रहा है। लेखक भारतीय समाज को पाश्चात्य सभ्यता की अन्धाधुन्ध नकल रोकने के लिए सावचेत करना चाहता है। प्रायः हमारे समाज में पाश्चात्य सभ्यता की नकल करने से ही विकृतता आयी है, जिसका प्रभाव पारिवारिक विघटन और नैतिक मूल्यों के ह्रास का कारण बना है। इस तरह का चित्रण कर एकांकीकार ने आधुनिकता से ग्रस्त शिक्षित नारी समाज के विकृत व्यवहार को एक दर्पण दिखाने का सार्थक प्रयास किया है।

निष्कर्ष – इस प्रकार लेखक ने प्रस्तुत एकांकी में व्यंग्यपूर्वक यह स्पष्ट किया है कि नारी की स्वतन्त्रता एक सीमा तक ही उचित है। सीमा से बाहर होने पर स्वतन्त्रता उच्छृंखलता बन जाती है। यदि पत्नी और पुत्र का ध्यान रखने की नैतिकता भी न रखे, बीमार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पुत्र, दुःखी पति के प्रति भी सहृदय न बने, तो उसकी ऐसी स्वतन्त्रता किस काम का यह स्वतन्त्रता नहीं निरी उच्छृंखलता है। पत्नी उस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करती है। वह सुखी होने का भ्रम भले ही पाले रहे, परन्तु वह सुखी रहने का तरीका नहीं है। क्योंकि सुख भीतर है, घर पर है, वह बाहर की वस्तु नहीं है। आधुनिक नारी को यह तथ्य समझ लेना चाहिए।

प्रश्न- 2. 'समाज-दर्पण' एकांकी के आधार पर मीना का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर – 'समाज-दर्पण' एकांकी की प्रमुख पात्र मीना है। वह उन महिलाओं की प्रतिनिधि पात्र है जो यह मानती हैं कि यह नारी स्वतन्त्रता का युग है। मीना घर के वातावरण से दूर रहना पसंद करती है और घर की जिम्मेदारियों से बचकर स्वच्छंद वातावरण में उन्मुक्त विचरण करना चाहती है। वह न तो अपने पति की परवाह करती है और न अपने बच्चे से उसकी कोई ममता ही है। वह सब प्रकार से स्वतन्त्र रहना चाहती है। उसकी इसी दुष्प्रवृत्ति के कारण उसका बच्चा बीमार होता है, उसकी हालत बिगड़ती है और वह जीवित नहीं रह पाता। अपनी तथाकथित स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति के कारण उसने अपने पति को असहाय, विवश और दुःखी कर दिया है। उनका दाम्पत्य जीवन अव्यवस्थित और घुटन भरा हो जाता है, परन्तु इन सबके बावजूद मीना स्वयं को बहुत सुखी मानती है। वस्तुतः स्वयं को सुखी मानना उसका भ्रम है। एकांकीकार बताना चाहता है कि मीना का जीवन-यापन का तरीका सुखी रहने का अथवा अपने पति को सुखी रखने का कदापि नहीं है। 'समाज-दर्पण' एकांकी में एकांकीकार ने उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताओं का स्पष्ट चित्रण किया है –

1. प्रोफेसर की पत्नी होने का घमण्ड – मीना एक प्रोफेसर की पत्नी है, उसका पति जयन्त पढ़ा-लिखा, सुशिक्षित व्यक्ति है। स्वयं मीना भी एक शिक्षित महिला है। उसका एक छोटा-सा परिवार है, जिसमें उसका पति जयन्त, एक वर्षीय बच्चा और वह स्वयं है। इतने छोटे परिवार का कार्यभार निभाना कोई कठिन नहीं है। एक अच्छी गृहिणी इतने छोटे परिवार का कार्यभार सुखपूर्वक और दक्षता से निभा सकती है, परन्तु मीना को इतने छोटे परिवार का दायित्व निभाना भी बोझ लगता है। हास्यास्पद बात तो यह है कि वह अपने आप को इतनी उच्चवर्गीय मानती है और उसे स्वयं पर घमंड है कि वह एक प्रोफेसर की पत्नी है। बस इसी घमण्ड से उसने अपने छोटे से परिवार के दायित्व को निभाने के लिए दो-दो नौकर रखे हुए हैं। यदि वह किसी कम पढ़े-लिखे की पत्नी होती, किसी मध्य श्रेणी की नौकरी वाले व्यक्ति की पत्नी होती और स्वयं भी सामान्य पढ़ी-लिखी होती, तो सम्भवतः उसे इससे भी बड़े परिवार का दायित्व निभाना पड़ता। तब उसमें इतनी अधिक स्वतन्त्रता की चेतना भी शायद न आयी होती। प्रोफेसर की पत्नी के रूप में प्रस्तुत कर लेखक ने यह संकेत किया है कि सुशिक्षित-समझदार व्यक्ति पत्नी पर अनावश्यक बंधन थोपना उचित नहीं मानते, लेकिन अधिक स्वतन्त्रता मिल जाने से कुछ महिलाएँ अत्यधिक उच्छृंखल हो जाती हैं।

2. नौकरों पर आश्रित रहने वाली – मीना अपने घर का काम कराने के लिए नौकरों पर आश्रित रहती है। जबकि उसका परिवार बहुत ही छोटा है तब भी उसने दो-दो नौकर रखे हुए हैं। यहाँ तक कि अपने बच्चे की देखभाल भी वह स्वयं नहीं करती है। बच्चा बीमार है, उसे वह दवाई तक खुद नहीं पिलाती है, उसके लिए भी उसे नौकरों का ही सहारा लेना पड़ता है। उसकी सारी देखभाल नौकरानी पर ही छोड़ देती है। जब वह मसूरी जाने की तैयारी करती है तो अपनी पसंद की चीजें जो उसे स्वयं रखनी चाहिए थीं, नौकरों से एकत्रित करवाती है। वह जाने से पहले जयन्त से कहती है कि "लड़के के लिए मैंने नौकरानी का प्रबन्ध कर दिया है। श्यामा उसकी अच्छी तरह देखभाल करेगी।" उसका यह कथन और स्वभाव सिद्ध करता है कि वह सर्वथा अपने नौकरों पर आश्रित रहने वाली स्त्री है।

3. प्रलोभन देने वाली – मीना एक नहीं दो नौकर रखती है। वह उन्हें कम काम का भी अच्छा वेतन देती है। नौकरों को पूरी स्वतन्त्रता देती है और स्वयं घर से गायब रहती है। नौकरों के भरोसे काम छोड़ा जाये तो वे उसे बखूबी नहीं निभाते, यह बात मीना जानती है और इसीलिए उन्हें खुश करने के लिए समय-समय पर ईनाम का लालच देती रहती है। मीना स्वयं पैसों की लालची है, अतः वह नौकरों को भी उसी दृष्टि से देखती है। इसका परिणाम यह होता है कि मीना की अनुपस्थिति में नौकर उच्छृंखल होकर बिगड़ जाते हैं और देखभाल नहीं करके बहाना बनाते हैं। जब बाबा काफी देर से लगातार रोता रहता है तो श्यामा आलस्य के कारण बाबा को चुप नहीं कराती है और जब जयन्त पूछता है कि बाबा क्यों रो रहा है ? तो वह झूठ बोलती है कि उसने बाबा को सुबह से गोद में लिया हुआ है।

4. घुमक्कड़ स्वभाव वाली – मीना घर पर बहुत कम रहती है। एकांकी में उसकी अनुपस्थिति का चित्रण किया गया है। जब वह थोड़ी देर के लिए घर आती भी है तो फिर कई दिनों तक घर से बाहर जाने की योजना बनाती रहती है। वह कभी ब्यूटी-कॉन्टेस्ट में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भाग लेती है, कभी रेस देखने जाती है। वह मिल-मालिक व उसकी पत्नी के साथ एक लम्बी अवधि के लिए मसूरी चली जाती है। इसके अलावा मीना को क्लब आदि में जाने का भी शौक है। इन्हीं दुर्गुणों के कारण उसके घर पर सौन्दर्य प्रतियोगिता कम्पनी के और रेस एजेन्सी के विवाहित और अविवाहित युवकों का ताँता लगा रहता है। वह घर से बाहर घूमने-फिरने को सुशिक्षित व स्वतन्त्र स्त्री की प्रतिष्ठा मानती है। उसकी इसी आदत से उसका दाम्पत्य जीवन तबाह हो जाता है। उसके मिलने-जुलने वाले लोग उसके पति की अनुपस्थिति में ज्यादा मिलते हैं और जो उसके पति की उपस्थिाति में मिलते हैं, वे लोग भी उसके पति को उसके बारे में पूरी जानकारी नहीं देते हैं। एक नवयुवक मीना से मिलने आता है। मीना घर पर नहीं मिली तो वह नौकर से कहता है – ''यह लो एक रुपया ईनाम। साहब को मालूम न हो।'' यह कहकर वह नौकर के पास मीना के लिए एक पत्र दे जाता है। मीना का मानना है कि बड़ा आदमी बनने के लिए धनिक वर्ग से मिलना-जुलना जरूरी होता है। तभी समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है। वह इस घूमने-फिरने में शादी और बच्चे को भी बन्धन मानती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मीना घर से बाहर विचरण करने वाली अथवा घुमक्कड़ स्वभाव वाली स्त्री है।

5. स्वतन्त्र रहने वाली – मीना अपने दाम्पत्य जीवन में न तो किसी प्रकार का बन्धन चाहती है और न अपनी दिनचर्या में उसे अपने पति का हस्तक्षेप ही अच्छा लगता है। यहाँ तक कि वह जयन्त जैसे सुशिक्षित प्रोफेसर से शादी करके पछताती है। वह इतनी स्वतन्त्र है कि उसके मन में अपने बच्चे के प्रति ममता का कोई भाव उत्पन्न नहीं होता है और अपने बीमार बच्चे की स्थिति पर उसके हृदय में कोई सहानुभूति ही नहीं होती है। वह अपने पति जयन्त को बच्चे की देखभाल करने के लिए कह जाती है, परन्तु खुद अपना स्वतन्त्र रहकर घूमना बन्द नहीं करती है। वह एक पत्नी, माता और गृहिणी है। उसे घर के सारे काम-काज स्वयं करने चाहिए थे, परन्तु उल्टा वह अपने पति से कहती है कि वह बच्चे की देख-रेख करने के लिए कॉलेज से छुट्टी ले लें, परन्तु वह अपनी स्वतन्त्रता को रोकना नहीं चाहती है। वह अपने पति से कहती है कि मेरी भी अपनी इच्छाएँ हैं, मेरे भी अपने शौक हैं। मैं मजबूर नहीं हूँ। मैं तुमसे उपदेश सुनना नहीं चाहती, मैं जो चाहूँगी करूँगी। मैं घर में बंधकर नहीं रह सकती। उसका उक्त कथन और स्वभाव उसे एक स्वतंत्र और गैर-जिम्मेदार स्त्री के रूप में चित्रित करने में सहायक है।

6. ममता-शून्य – प्रत्येक स्त्री को अपने पुत्र पर ममता होती है, परन्तु मीना में इसका सर्वथा अभाव है। वह अपनी इच्छानुसार विचरण करती है। उसका एक वर्ष का निरीह बच्चा उचित देखरेख के अभाव से बीमार है। वह उस बीमार बच्चे को नौकरों के भरोसे छोडकर मसूरी घूमने चली जाती है। वह अत्यन्त ममताहीन स्त्री है। वह अपने ही बच्चे को अपनी गोद में इसलिए नहीं लेती है कि कहीं वह उसकी कीमती साड़ी को पेशाब करके गंदा न कर दे। वह कहती भी है – और पेशाब वगैरह कर दिया तो नई साड़ी है चार सौ की? मीना के इस ममताहीन स्वभाव से उसका पति जयन्त उससे अत्यन्त दु:खी रहता है।

7. उच्छृंखल – मीना स्वतन्त्रता को उच्छृंखलता में बदल देती है। वह स्वतन्त्रता की परिभाषा से भ्रमित है। जैसा कि जयन्त ने कहा है – ''श्यामा ! मीना की स्वतन्त्रता-उच्छृंखलता हो गयी है।'' उसमें न ममता है, न नैतिकता है, न पारिवारिक, न सामाजिक मर्यादा की चेतना है। वह केवल अपनी इच्छाओं के अनुसार चलकर स्वयं का सुख देखती है। वह स्वयं का हित साधने के लिए अनावश्यक लोगों के बीच उलझकर अपने नारीत्व पर अंगुली उठाने के लिए विवश कर देती है। मीना अपनी इस चारित्रिक कमजोरी को नहीं पहचानती है। वह जयन्त से अपनी संतान के बारे में कहती है – ''मैं तो 'फेमिली-प्लानिंग' के पक्ष में हूँ। मुझे नहीं चाहिए, यह चिल्ल-पिल्ल तुम्हारी।'' मीना अपने पति से इतनी निर्लज्जता से बात करती है और कहती है कि ''न जाने तुमने कैसे एम.ए. पास कर लिया है। कैसे लड़कों को पढ़ाते होंगे।'' वह अपने सामने अपने प्रोफेसर पति को कुछ समझती ही नहीं। वह जयन्त को बकवास समझती है। जयन्त से अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहती है – ''जो भी है वह साफ है। मैं तुम्हारे दर्शन-फिलासफी से बंधी हुई नहीं हूँ।'' मीना के ये कथन सिद्ध करते हैं कि वह नितान्त उच्छृंखल और मर्यादाहीन स्त्री है।

8. महत्त्वाकांक्षी – मीना महत्त्वाकांक्षी नारी है। उसकी महत्त्वाकांक्षा ऊँची उड़ान भरती हैं। वह बड़ा आदमी बनना चाहती है, इसलिए वह बड़े-बड़े लोगों के सम्पर्क में रहती है। धनिक वर्ग के लोगों से मित्रता बनाये रखती है। वह बड़ा बनने का स्वप्न देखती है। कहती है कि ''बड़ा आदमी बनने के लिए बड़ों में उठना-बैठना जरूरी है। उनके साथ खाना-पीना, उठना-बैठना और घूमना-फिरना जरूरी है। वह दिन दूर नहीं जब मैं खुद घोड़े रखूँगी और रेस में दौड़ाउँगी।'' वह सौन्दर्य-प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए सम्बन्धित कम्पनी के एजेन्ट को अपना मित्र बनाये रखती है। अपनी महत्त्वाकाँक्षाओं की पूर्ति के लिए वह क्लबों में नृत्य करती है।

9. लापरवाह स्त्री – मीना अत्यन्त लापरवाह स्त्री है, उसमें एक सद्गृहिणी स्त्री के गुणों का नितान्त अभाव है। जैसा प्राय: देखा जाता है कि नारियों में अपने घर-परिवार के प्रति स्वाभाविक मोह-माया रहती है, परन्तु वह मोह-माया मीना में नहीं है। हर समय घर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से बाहर रहना,घूमना-फिरना, अपने पति और बच्चे से विमुख रहना, नौकरानी के भरोसे पति और बच्चे को छोड़ देना उसकी चारित्रिक दुर्बलता है। मीना की इसी चारित्रिक लापरवाही ने उसके परिवार को अशान्त और अव्यवस्थित बना दिया है। वास्तव में एकांकीकार ने मीना को लापरवाह और निर्लज्ज स्त्री के रूप में चित्रित किया है।

निष्कर्ष – इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी में मीना को ऐसी तथाकथित आधुनिकता के रूप में चित्रित किया गया है जो शादी को बन्धन मानती है, जो बच्चे को आफत मानती है, जिसे अपना पति ही अपनी स्वतंत्रता के मार्ग का रोड़ा नजर आता है। मीना को ऐसी नारी के रूप में चित्रित किया गया है, जो निर्मम, स्वार्थी और आवश्यकता से अधिक स्वतंत्र है। वह सामाजिक, पारिवारिक और नारी की मर्यादाओं को व्यर्थ मानने वाली है।

प्रश्न- 3. 'समाज-दर्पण' नामक एकांकी का कथासार प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर – पं. उदयशंकर भट्ट ने प्राय: मध्यमवर्गीय समाज की समस्याओं पर ही एकांकी-लेखन के लिए अपनी लेखनी का उपयोग किया है। भट्ट जी की जीवन की एक साधारण-सी बात को लेकर एकांकी रच देने में सिद्धहस्त हैं। प्रस्तुत एकांकी 'समाज-दर्पण' मध्यवर्गीय परिवार की सामान्य-सी लगने वाली समस्या पर आधारित है। यह एकांकी प्रोफेसर जयन्त और उनकी पत्नी मीना के दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित है। मीना एक आधुनिक सुशिक्षित महिला है। वह आज के युग में नारी स्वतन्त्रता के विचार की समर्थक है। वह जिस प्रकार की स्वतन्त्रता का उपयोग करती है, वह उसके बच्चे एवं पति के लिए कष्टप्रद है और साथ ही शिक्षित बुद्धिजीवी की प्रतिष्ठा पर एक प्रश्नचिह्न भी है। उसकी यह स्वतन्त्रता मनमानी, गैर-जिम्मेदारी और निर्लज्जता की सीमा तक जा पहुँची है।

एकांकी का प्रारम्भ प्रोफेसर जयन्त के नौकर भोला के कथन से होता है। उसके अतिरिक्त नौकरानी श्यामा भी वहीं काम करती है। घर में काम करते समय भोला को एक तस्वीर गायब मिलती है। वह उसके बारे में श्याम से पूछता है। भोला चिन्ता करता है कि शाम को घर आकर साहब ने यदि तस्वीर के बारे में पूछ लिया तो वह क्या उत्तर देगा ? श्यामा भी तस्वीर के बारे में अनभिज्ञता दर्शाते हुए कहती है कि मैं पहली बार तो नौकरानी नहीं बनी हूँ। इससे पहले भी कई जगह नौकरानी रह चुकी हूँ। इस बीच प्रोफेसर जयन्त का बच्चा रोता है। श्यामा उसे चुप कराना चाहती है। वह चुप नहीं होता है। श्यामा भी उस बच्चे के प्रति अपनत्व का भाव नहीं दिखाती है। वह रोते हुए बच्चे को डाँटती है। भोला श्यामा को याद दिलाता है कि साहब के आने से पहले चुप करा लो। श्यामा कहती है कि यह बच्चा तो अभागा है, क्योंकि इसकी माँ इसकी परवाह नहीं करती, इसका बाप इसकी चिन्ता नहीं करता, तो क्या मैंने इसे जिन्दा रखने का ठेका ले रखा है ? श्यामा की बात सुनकर भोला कहता है कि तुम ठीक कहती हो। आज का युग औरत का युग है। भोला एक आँख से काना है। बच्चा रोता है, श्याम चुप कराना चाहती है, परन्तु वह चुप नहीं होता। श्यामा उस पर एक चपत मारती है। बच्चा और भी रोने लगता है। थोड़ी देर बाद प्रोफेयर जयन्त भी आ जाता है और श्याम से बच्चे के रोने का कारण पूछता है। वह पत्नी मीना के बारे में पूछता है कि वह कहाँ गई है ? श्यामा जवाब देती है कि बाबूजी, मैं तो सुबह से ही बच्चे को गोद में लेकर चुप करा रही हूँ। इसकी माँ सुबह से ही न जाने कहाँ गई ? जयन्त उससे पूछता है कि बच्चे को डॉक्टर से दिखाया या नहीं ? वह कहती है कि दिखाया तो था, परन्तु अभी ठीक नहीं हुआ है।

मीना के बारे में पूछे जाने पर श्यामा कहती है कि वह तो एक बाबू और बीबी जी के साथ सुबह से ही गई है। इसी बीच एक व्यक्ति आता है, वह जयन्त से कहता है कि वह मीना से मिलने आया है। जब मीना नहीं मिलती है तो वह जयन्त को कहता है कि मीना जी को हमारे ब्यूटी कॉन्टेस्ट में आना था। वह व्यक्ति जयन्त को बताता है कि ब्यूटी कॉन्टेस्ट अखिल भारतीय स्तर का है। इसमें सभी तरह से सुन्दर स्त्रियों को आमन्त्रित किया जाता है। वह मीना को इस कार्य के लिए हर प्रकार से उपयुक्त बताता है। वह आगे बताता है कि कॉन्टेस्ट में बीमा करने का भी प्रावधान है। भाग लेने वाली महिलाओं की टाँगों तक का बीमा होता है।

जयन्त को उस व्यक्ति की बातें अच्छी नहीं लगती हैं। फिर भी वह उसे चाय पिलाता है और व्यंग्य में कहता है कि वे लोग मूर्ख हैं जो कॉन्टेस्ट में भाग लेने के लिए अपनी औरतें व लड़कियाँ आपके सुपुर्द नहीं कर देते। स्त्रियों को आपके पास आने की खुली छूट दे दी जाये। आप उनको नापें-तौलें, देखें-परखें, यही देश की उन्नति का राज है। आगन्तुक जयन्त का व्यंग्य समझ जाता है। इस पर जयन्त उससे कहता है कि इस कार्यक्रम के माध्यम से आप स्त्रियों को घरों से निकालकर दुनिया की ललचाई वासना की आँखों का शिकार बना देना चाहते हैं। जब वह व्यक्ति जयन्त से कहता है कि आप तो बुरा मान गये, तो जयन्त कहता है कि मैं बुरा मानने वाला कौन होता हूँ। मीना स्वतन्त्र है, मैं उसकी स्वतन्त्रता में कैसे बाधक बन सकता हूँ ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पहले आगन्तुक के जाने के बाद दूसरा व्यक्ति आता है। वह भी मीना देवी से मिलना चाहता है। वह जयन्त द्वारा पूछे जाने पर बताता है कि मीना जी को रेस जाना था। मैंने उनके लिए टिकट भी ले रखा है। जयन्त भीतर जाता है। बच्चा जागकर रोने लगता है। आगन्तुक भोला को एक कार्ड और एक पत्र देकर चला जाता है। जयन्त डॉक्टर के पास जाता है। इसके थोड़ी देर बाद मीना आती है। वह बच्चे के रोने का कारण पूछती है। बीमार होने की सूचना दिये जाने पर वह कहती है कि तुम सब किसलिए रखे गये हो। भोला जब बच्चे के बीमार होने की बात दोहराता है तो मीना उसे डाँट देती है और कहती है कि बच्चे क्या बीमार नहीं हो ? बीमार बच्चों की देखभाल तुम्हें करनी चाहिए।

भोला मीना को पत्र दे देता है, तो मीना कुछ दिन बाहर जाने की बात कहती है। भोला को निर्देश देती है कि वह बच्चे का इलाज करा ले। कोई खास बात नहीं है। मीना श्यामा से कहती है कि देखभाल रखना, मैं तुम्हारी तनख़्वाह बढ़ा दूँगी। जब वह बाहर जाने के लिए निकलती है, तभी जयन्त आ जाता है। मीना जयन्त से कहती है कि बच्चे को दवा दे दी है। मैं बाहर जा रही हूँ, तुम उसकी देख-रेख के लिए कॉलेज से छुट्टी ले लो। वह कहती है कि मैंने बड़े लोगों के परिवार से दोस्ती की है तो निभानी पड़ेगी, इसलिए मुझे बाहर जाना है। जयन्त उससे पूछता है कि वह कहाँ और किसके साथ जा रही है ? तो मीना बुरा मान जाती है। वह कहती है कि तुम तो बाल की खाल निकालते हो। जयन्त फिर पूछता है कि आखिर तुम जा कहाँ रही हो ? तो वह झल्लाकर बोलती है। लाख बार कह दिया, बाहर, बाहर। कान में रूई डाली है क्या ? जयन्त कहता है कि मेरा ओवरटाइम में क्लास लेना जरूरी है, मेरा प्रोबेशन पीरियड है इसलिए छुट्टी नहीं ले सकता। मीना कहती है, तो क्या करूँ ? कहीं बाहर न जाऊँ ? वह कहती है कि न जाने तुमने कैसे एम.ए. कर लिया है और कैसे तुम लड़कों को पढ़ाते हो ? तुम्हें मेरा क्लब में, रेस में और बॉल रूम में जाना ही पसन्द नहीं है। फिर वह अपने बच्चे के लिए कहती है कि यह लड़का भी बदतमीज है जो चुप नहीं रहता है। इसी बीच एक व्यक्ति साड़ियों का गट्ठर लाता है और कहता है कि मीना जी, इन तीस साड़ियों में से जितनी चाहें ले लें और ये पाँच सौ रुपये भी हैं। वह उन्हें जयन्त से छिपाकर रखती है। जब जयन्त वहाँ पर आता है तो वह उससे कहती है कि मुझे यह चिल्ल-पिल्ल पसंद नहीं है। जयन्त कहता है कि ऐसे कोई गृहस्थी चलती है ? मैंने भूल की जो तुम्हें इतनी आजादी दी।

इस प्रकार मीना जयन्त से चिढ़ते हुए कहती है कि सुनो जयन्त! आज नारी का दृष्टिकोण बदल गया है। वह शादी को एक कॉन्ट्रेक्ट मानती है। जब तक वह निभे निभाती जायेगी। जयन्त उस कॉन्ट्रेक्ट को बिजनिस मानता है। वह जयन्त से कहती है मुझे तुमसे उपदेश नहीं सुनना है। मैं घर में बँध कर नहीं रह सकती। यह नारी स्वतन्त्रता का युग है। तभी एक साहब कार लेकर आते हैं और मीना उनके साथ चली जाती है। बच्चे की तबीयत खराब हो जाती है। वह अन्तिम साँसें गिन रहा होता है। जयन्त को लगता है कि स्वतन्त्रता और उच्छृंखलता की सीमा कोई नहीं खींच सकता। मीना की स्वतन्त्रता उसे उच्छृंखलता प्रतीत होती है।

8.3 सारांश

अत: निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि लेखक ने एकांकी के द्वारा समाज को सुखी गृहस्थी के लिए एक आवश्यक जानकारी प्रस्तुत की है। यही जानकारी देना इस एकांकी की मूल संवेदना व उद्देश्य है।

8.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. मीना का चरित्र चित्रण कीजिए।
2. समाज-दर्पण एकांकी का सार लिखिए।

Jain Vishwa Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई- 9 : वीर-बल्लू
(पद्मश्री देवीलाल सामर)

संरचना

9.0 लेखक परिचय

9.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

9.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

9.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

9.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

9.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

9.3 सारांश

9.4 अभ्यास प्रश्नावली

9.0 लेखक परिचय

उदयपुर में जन्मे देवीलाल सामर की कृतियाँ राजस्थान में लोक-कलाओं के पुनरुद्धार के रूप में अत्यन्त सराहनीय रही है। साहित्य जगत में श्री सामर की सेवाएँ चिर स्मरणनीय रही हैं। लोकनृत्य, कठपुतली, अभिनय, नाटक एकांकी आदि क्षेत्रों में श्री सामर की सेवाएँ उल्लेखनीय हैं। श्री सामर स्वयं एक कोटि के कलाकार, नाट्यकार, अभिनेता और गायक हैं। राजस्थान में नाटकों को रंगमंच पर लाने की दृष्टि से अपने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। हिन्दी साहित्य में अभिनय नाटकों की न्यूनता, दृश्यों की अधिकता, पात्रों की बहुलता और कथानकों की जटिलता के कारण जो कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं, उनसे हिन्दी एकांकी का उद्धार करने वालों में भी आपका नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। आपने अभिनय योग्य एकांकियों का पर्याप्त लेखन और अभिनय किया है। साथ ही रंगमंच की आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखा है। आपने यह भी अनुभव किया कि जिन नाटकों का रंगमंच पर जीवन नहीं हो सकता, उनकी अपील केवल वाचनालयों अथवा पुस्तकालयों तक ही सीमित है। रंगमंच विहीन नाटकों के द्वारा सांस्कृतिक कलाओं का पुनरुत्थान संभव नहीं है। अत: रंगमंच का अनुभव लेकर अभिनय तथा नृत्यकलाओं को दृष्टि में रखते हुए आपने अभिनय एकांकियों का सृजन किया। आपका प्रत्येक नाटक और एकांकी रंगमंच पर सरलतापूर्वक अभिनीत किया जा सकता है। आपने हिन्दी में अभिनय नाटकों का आधुनिक नाट्यकला से वेष्टित किया है तथा आधुनिक विचारों एवं समस्याओं का आधुनिक ढंग से प्रतिपादन किया है।

'वीर बल्लू' के दो प्रसिद्ध वीर राजपूत परिवारों सक्तावत और चूड़ावतों में इस बात की स्पर्धा रहती है कि कौन बड़ा है ? दोनों ही परिवार वीरता, शौर्य और देश के लिये बलिदान करने में एक से बढ़कर एक थे। महाराणा ने अन्त में यह निर्णय दिया कि जिसने भी किले के किवाड़ों को कीलों सहित हाथियों की टक्कर से अपनी छाती को छिदवा लेगा वही वीर बल्लू हरावल में रहने का अधिकारी है। सक्तावत ही अधिक वीर है। वीर बल्लू ने सच्चाई स्पष्ट करते हुए कहा कि किले का फाटक टूटने से पूर्व ही वीरवर जैत्तसिंह का सिर पहले ही दीवार को पार कर किले के अन्दर पहुँच चुका था। महाराणा ने वीर बल्लू को उसकी सच्चाई पर बधाई दी।

9.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''इसका भी कोई खास कारण है। तुम जानते नहीं, हम बहादुर महाराणा प्रताप के देश में हैं। यहाँ का बच्चा-बच्चा महाराणा का भक्त है। हम लोग सब उनके शत्रु हैं। हर मिनट महाराणा की आँख इन थानों पर लगी हुई है। न मालूम कब हमला हो जाय। बाहर से हमले की इत्तला आने पर हमें फौरन थाने में इत्तला देकर फौज को तैयार करना होगा।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के पद्मश्री देवीलाल सामर द्वारा विरचित 'वीर बल्लू' एकांकी से उद्धृत है। कायमखाँ ने किले में पहरा देने के लिये दो सिपाही बैठा रखे हैं। एक सिपाही बशीर दूसरे सिपाही वजीरखाँ से कहता है कि यहाँ किले के बाहर भी और भीतर भी क्यों हमें पहरे पर बैठाया गया है। इस पर वजीर खाँ बशीरखाँ से कहता है कि –

व्याख्या – बशीर भाई ! भले ही सब जगह किले के बाहर पहरा दिया जाता है किन्तु इस किले के बाहर भी और भीतर भी पहरा दिया जा रहा है, इसका कोई विशेष ही कारण है। क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि हम इस समय मेवाड़ केसरी महाराणा प्रताप के देश में उनकी पवित्र तथा महान् बलिदानी एवं शौर्यवान भूमि पर बने किले में पहरा दे रहे हैं। महाराणा प्रताप ने अपने शौर्य, त्याग, वीरता तथा दृढ़ प्रण के इतिहास में एक अमिट छाप छोड़ दी है और अब यहाँ का बच्चा-बच्चा भी महाराणा प्रताप को अपना आदर्श मानता है, अपना आराध्य मानता है और प्रताप का भक्त है। हम मुगल तो मेवाड़ वालों के शत्रु हैं। महाराणा प्रताप के पुत्र महाराणा अमरसिंह की चौकस आँखें प्रतिपल इन ठिकानों (थानों) पर लगी रहती है, क्योंकि महाराणा प्रताप के ये थाने मुगलों ने जीत लिये थे, अब महाराणा अमरसिंह कभी भी धावा बोलकर इन थानों व किलों को छीन सकता है। न जाने कब महाराणा इन किलों पर आक्रमण कर दें। इसीलिए किले के अन्दर तथा बाहर हम पहरा दे रहे हैं ताकि बाहर से अमरसिंह के आक्रमण की सूचना मिलने पर तुरन्त थाने के अन्दर भी सूचना देकर शत्रु का प्रतिरोध करने के लिए सेना को शीघ्रातिशीघ्र तैयार कर सकें। क्योंकि हमारी सेना तो किले के भीतर ही है। यदि किले के भीतर आक्रमण की सूचना देने में विलम्ब हो गया तो अनर्थ हो जायेगा।

विशेष – 1. एकांकीकार ने मुगल सैनिकों में महाराणा प्रताप की वीरता व शौर्य का भय दिखाया है। किलों व थानों के भीतर व बाहर प्रहरी नियुक्त करने का उद्देश्य भी स्पष्ट किया गया है।

2. भाषा सरल है तथा मुगल सैनिकों की भाषा उर्दू होने के कारण यथास्थान उर्दू के शब्दों का भी उपयोग किया गया है।

(2)

''यह क्या, राजपूतों की तलवारें आपस में ही चल पड़ीं ? अपनी बहादुरी की परीक्षा भाई-भाई की गर्दन पर करने के बजाय शत्रुओं पर करो। आज समस्त मेवाड़ मुगल सेना के आतंक से आक्रान्त हो रहा है। आपसी भेदभाव भुलाकर एक बार अपनी शक्ति संगठित करो और मुगलों को मेवाड़ से बाहर निकाल फैंको।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के पद्मश्री देवीलाल सामर द्वारा विरचित 'वीर बल्लू' एकांकी से उद्धृत है। महाराणा अमरसिंह की सेना कायमखाँ के किले पर आक्रमण करके दरवाजा तोड़कर किले के अन्दर प्रवेश करती है, परन्तु तभी उनकी सेना के चूड़ावत और सक्तावत सरदारों में राड़ ठन जाती है। चूड़ावत कहते हैं कि किले के अन्दर अपनी वीरता का प्रदर्शन करते हुए पहले चूड़ावत प्रविष्ट हुए तो सक्तावत यह श्रेय अपनी वीरता को देना चाहते हैं। इस पर जब दोनों गुटों के सैनिक आपस में तलवारें निकालते हैं तभी महाराणा अमरसिंह आकर उनसे कहते हैं –

व्याख्या – राजपूत सैनिकों, यह क्या कर रहे हो ? अपनी वीरता को सिद्ध करने के लिए राजपूत योद्धाओं ने क्या आपस मे ही तलवारें निकाल लीं। क्या यह समय है आपस में लड़ने का ? यदि तुम राजपूत योद्धाओं को अपनी वीरता तथा पराक्रम का प्रदर्शन करना है तो ऐसे समय में आपस में क्यों लड़ रहे हो ? भाई-भाई की गर्दन पर अपनी वीरता का प्रदर्शन क्यों कर रहे हो ? यदि वीरता का प्रदर्शन ही करना है तो अन्दर जो मुगल सैनिक हैं उन पर करो। उनकी गर्दन पर चलाओ तलवार। क्या यही तुम्हारी वीरता है ? क्या यही तुम्हारा युद्ध कौशल है ? एक ओर तो समस्त मेवाड़ मुगल सेना के आक्रमण से भयभीत हो रहा है। अभी हमने मुगलों से अपने किले भी नहीं छीने हैं और तुम आपस में तलवार चला रहे हो ? यह कैसी शूर-वीरता है। हे समस्त राजपूत सरदारों ! अपनी वीरता का प्रदर्शन करना है तो आपसी भेदभाव भूल जाओ, एक विशाल सेना संगठित करो तथा अपनी शक्ति का परिचय मुगलों को दो। उन्हें मेवाड़ से बाहर निकाल फेंको। तभी ज्ञात हो सकेगा कि सक्तावत अधिक वीर हैं या चूड़ावत।

विशेष – 1. एकांकीकार ने राजपूतों की वीरता प्रदर्शन की भावना को उजागर किया है। राजपूतों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता तथा उनकी चारित्रिक दुर्बलता की ओर भी संकेत किया गया है।

2. भाषा सरल और शैली प्रवाहपूर्ण है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''आपके अभिवादन के लिए धन्यवाद ! आप मेरी वीरता की कितनी ही प्रशंसा करें, परन्तु क्षत्रिय बालक सच्चाई को अधिक समय तक नहीं छिपा सकता। सच तो यह है कि राणा जी की हरावल का अधिकार वास्तव में चूड़ावतों का ही है, सक्तावतों का नहीं। किले का फाटक टूटने के पूर्व ही वीरवर जैत्रसिंह का सिर पहले ही दीवार को पार कर किले के अन्दर पहुँच चुका था। मेरा मस्तष्क उस वीरवर के चरणों पर सदा झुका रहेगा।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के पद्मश्री देवीलाल सामर द्वारा विरचित 'वीर बल्लू' एकांकी से उद्धृत है। महाराणा की सेना के हरावल टुकड़ी में स्थान पाने के लिए सक्तावतों और चूड़ावतों में होड़ लगती है। महाराणा ने निर्णय सुनाया कि सक्तावत सैनिक बल्लू ने किले के किवाड़ों की कीलों से हाथी की टक्कर द्वारा अपनी छाती को छिदवाकर किले का द्वार खुलवाया, इसलिए हरावल में रहने का अधिकार सक्तावतों का है। वीर बल्लू को यह श्रेय मिला तो उससे न रहा गया और वह महाराणा मेवाड़ को वास्तविक सच्चाई कहने लगा –

व्याख्या – महाराणा के निर्णय और सैनिकों के द्वारा मेरी जय-जयकार के लिए मैं आप सबको धन्यवाद देता हूँ। मेरा जो अभिवादन आप कर रहे हैं उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। भले ही आप मेरी वीरता की कितनी भी प्रशंसा कर लें, भले ही मैंने किले की फाटक खुलवाने के लिए कीलों पर खड़े होकर हाथी की टक्करों से घायल होकर, अपनी पीठ छिदवाकर किले का फाटक ही क्यों न तोड़ दिया हो, परन्तु यह भी ध्यान रहे कि मैं एक सच्चा क्षत्रिय बालक हूँ और क्षत्रिय अर्थात् राजपूत बालक होने के कारण मैं वास्तविकता और सच्चाई आप लोगों को बताना चाहता हूँ। इस सच्चाई को छिपाया नहीं जा सकता। महाराणाजी, वास्तविकता और सत्यता तो यह है कि मुझसे पहले ही एक चूड़ावत सैनिक ने वीरवर जैत्रसिंह का सिर किले की दीवार को पार करके किले के अन्दर पहुँचा दिया था। ऐसे वीर शिरोमणि की महान् वीरता के आगे मेरा मस्तक उस वीरवर के चरणों पर सदा झुकारहेगा, अर्थात् मैं तो स्वयं वीर हूँ परन्तु वह तो मुझसे भी परमवीर सिद्ध हुआ। मैं उसकी वीरता का लोहा मानता हूँ। अतः महाराणा की सेना की हरावल टुकड़ी में रहने का वास्तविक अधिकार चूड़ावतों को ही है न कि हम सक्तावतों को।

विशेष – 1. एकांकीकार ने वीरवर बल्लू को एक वीर योद्धा के साथ-साथ सत्यवादी तो बताया ही है, साथ ही वास्तविक वीर को श्रेय दिलाने की न्यायप्रियता का भी सफल अंकन किया है। एकांकीकार ने यह सिद्ध कर दिया कि राजपूत अपने निहित स्वार्थ की प्राप्ति के लिए और झूठे यश की प्राप्ति के लिए असत्य का सहारा नहीं लेते हैं।

2. भाषा सरल, ओजस्वी और प्रवाहपूर्ण है।

9.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

9.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. वीर बल्लू एकांकी की कथावस्तु का सम्बन्ध किससे है ?

उत्तर – यह एक ऐतिहासिक एकांकी है, उसकी कथावस्तु महाराणा प्रताप के वीर पुत्र अमरसिंह से सम्बन्धित है।

प्रश्न-2. वीर बल्लू एकांकी में किन परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है ?

उत्तर – मुगलों ने मेवाड़ के कई किलों और ठिकानों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था और वहाँ पर अपने किलेदार नियुक्त कर दिये थे। प्रस्तुत एकांकी में इन्हीं परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है।

प्रश्न-3. मेवाड़ के 'ऊँठाले' नामक किले पर मुगल शहजादे सलीम ने किस व्यक्ति को किलेदार के रूप में नियुक्त कर दिया था ?

उत्तर – मुगल शहजादे सलीम ने मेवाड़ के 'उँठाले' नामक किले पर कायम खाँ नामक सरदार को किलेदार के रूप में नियुक्त किया।

प्रश्न-4. राजूपत सैनिक किले के अन्दर मुगल सेना पर आक्रमण करने से पूर्व किस बात पर उलझ गये थे ?

उत्तर – राजूपत सैनिक मुगल सेना पर आक्रमण करने से पूर्व इस बात पर आपस में उलझे कि किले के अन्दर पहले शक्तावत राजपूतों की टुकड़ी ने प्रवेश किया अथवा चूड़ावत राजूपतों ने पहले प्रवेश किया ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-5. महाराणा ने मेवाड़ की हरावल सेना में रहने का अधिकार देने की घोषणा की थी ?

उत्तर – महाराणा द्वारा यह सिद्ध करने के बाद कि किले में किस सैनिक टुकड़ी ने पहले प्रवेश किया है ? जिसने पहले प्रवेश किया, उसी को हरावल सेना में रहने की घोषणा की गई।

प्रश्न-6. वीर-बल्लू एकांकी के रचनाकार ने प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से कौन-से ऐतिहासिक सत्य को उजागर करने का प्रयास किया है ?

उत्तर – एकांकीकार ने प्रस्तुत कहानी के माध्यम से इस ऐतिहासिक सत्य को उजागर करने का प्रयास किया है कि राजपूत वीरता और शौर्य में कभी किसी से पीछे नहीं रहे। देशभक्ति और बलिदान में भी राजूपतों का इतिहास गर्व के साथ स्वत: बोलता है, किन्तु इनके चरित्र में कमियाँ रही हैं।

प्रश्न-7. प्रस्तुत एकांकी वीर-बल्लू का उद्देश्य क्या है ?

उत्तर – वर्तमान और भावी पीढ़ी के चरित्र की इन कमियों को दूर करने की शिक्षा दी गई है जो कमियाँ मध्यकालीन राजूपतों में रही हैं। वर्तमान और भावी पीढ़ी को सावचेत करने का उद्देश्य प्रस्तुत कहानी का रहा है।

प्रश्न-8. ''तेरी बहादुरी को धन्य है और धन्य है तेरी जननि को, जिसने ऐसे वीर पुत्र को जन्म दिया।'' प्रस्तुत कथन किसका है और किसके लिए प्रयुक्त हुआ है ?

उत्तर – यह कथन सक्तावत सरदार का है, जो वीर-बल्लू के लिये प्रयुक्त हुआ है।

प्रश्न-9. बाहर से आवाज आती है – ''मेरा सिर धड़ से अलग कर दो।'' कथन में कौन-सा भाव व्यक्त हुआ है ?

उत्तर – प्रस्तुत कथन से राजूपतों के बलिदान व वीरता का भाव व्यक्त होता है।

प्रश्न-10. वीर-बल्लू ने किस सच्चाई को व्यक्त किया है कि सब ओर खलबली मच गई ?

उत्तर – बल्लू ने कहा कि राणाजी की हराबल सेना का अधिकार सक्तावतों का नहीं बल्कि चूड़ावतों का है। किले का फाटक टूटने के पूर्व ही वीरबर जैत्रसिंह का सिर पहले ही दीवार को पार कर किले के अन्दर पहुँच चुका था।

9.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. वीर-बल्लू एकांकी के आधार पर राजपूत सैनिकों की मानसिकता के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर – पद्मश्री देवीलाल सामर द्वारा रचित एकांकी 'वीर-बल्लू' मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह की सेना की दो राजूपत सैनिक टुकड़ियों के पारस्परिक विवाद पर आधारित है। इसके कथानक के अनुसार महाराणा की सेना में सक्तावत तथा चूड़ावत राजूपत प्राय: एक-दूसरे को नीचा दिखाने की स्पर्धा में लगे रहते हैं। सक्तावत चाहते हैं कि मेवाड़ी सेना की हरावल में रहने का अधिकार उन्हें मिले तथा चूड़ावत चाहते हैं कि वे ही हरावल में रहने के अधिकारी बने रहें। दोनों वर्ग एक-दूसरे की निन्दा करते हैं। वह भी ऐसे समय में जबकि महाराणा मेवाड़ मुगलों से अपना हारा हुआ प्रदेश, किले तथा थाने वापस छीनना चाहते हैं। मेवाड़ी सेना सर्वप्रथम ''ऊँठाले के'' किले पर आक्रमण करती है। सेना किले का प्रवेश द्वार तोड़कर उसके अन्दर प्रवेश करती है। परन्तु तभी मुगल सेना पर आक्रमण करने के स्थान पर इस बात पर पारस्परिक विवाद खड़ा हो जाता है कि हम में से पहले जिसने किले के अन्दर प्रवेश किया, वही महाराणा मेवाड़ की हरावल सेना में रहने का अधिकारी है। चूड़ावत कहते हैं कि पहले हमने प्रवेश किया और सक्तावत कहते हैं कि किले के अन्दर पहले हम प्रविष्ट हुए। एकांकीकार ने इसी परिस्थिति का इस एकांकी में चित्रण किया है, जिसमें राजपूतों की चारित्रिक विशेषताओं का भी भरपूर चित्रण हुआ है।

प्रश्न-2. पद्मश्री देवीलाल सामर द्वारा रचित एकांकी 'वीर-बल्लू' के कथावस्तु पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर – 'वीर-बल्लू' एक ऐतिहासिक एकांकी है। मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह मुगलों के विरुद्ध अपने किलों, थानों और इलाकों को वापस छीनने के लिए संघर्ष करते हैं। मुगलों ने प्रत्येक किले में एक-एक मुगल किलेदार को उसकी रक्षा सौंपी हुयी है। इस एकांकी की कथा प्रारम्भ होती है, मेवाड़ के एक स्थान ''ऊँठाले'' के किले से। इस किले का किलेदार कायम खाँ है। कायम खाँ के दो सैनिक आपस में बातचीत कर रहे होते हैं। पहला सैनिक कहता है कि हम दिल्ली जैसे अच्छे शहर को छोड़कर इस जंगल में पड़े हैं और किले

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के बाहर भी और भीतर न जाने क्यों पहरा दे रहे हैं। दूसरा मुगल सिपाही उसे समझाते हुए कहता है कि इस समय महाराणा का पुत्र बड़ी शक्ति से आक्रमण करके इन थानों, किलों तथा प्रदेशों को वापस छीनने के लिए संघर्षरत है, इसलिए वह कभी भी हमारे इस किले पर आक्रमण कर सकता है। इसी बीच राजूपत सेना आक्रमण के लिए आती है, किले के दरवाजे पर प्रहार होते हैं, बाहर से एक कटा हुआ सिर किले के अंदर गिरता है और फिर किले का भारी-भरकम दरवाजा तोड़कर राजूपत सेना अंदर आ जाती है। एक सरदार किले पर अधिकार करने का आदेश देता है, परन्तु इसी बीच एक सक्तावत सरदार सबको रोकते हुए कहता है कि किले पर अधिकार करने से पूर्व इस बात का फैसला हो जाने दीजिए कि इस किले के अंदर सबसे पहले किसने प्रवेश किया है ? सक्तावतों और चूड़ावतों में विवाद छिड़ जाता है। दोनों पक्ष एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोपण करते हैं। स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि दोनों जाति के राजपूत आपस में तलवारें निकाल कर लड़ने को तैयार हो जाते हैं।

इसी बीच पीछे से महाराणा अमरसिंह प्रवेश करता हैं, वे राजूपतों को समझाते हैं कि तुम्हारी तलवारें शत्रु पर चलनी चाहिए न कि भाई-भाई की गरदनों पर। महाराणा भी दोनों का पक्ष सुनते हैं और निर्णय लेते हैं कि सक्तावत ही इस किले के अंदर पहले आये हैं इसलिए वे ही हरावल में रहने के अधिकारी होंगे। सक्तावत राजूपत महाराणा के निर्णय से उत्साहित होकर महाराणा की जय ! सक्तावतों की जय ! और वीर बल्लू की जय ! का घोष करते हैं। अन्त में अचानक कथावस्तु में नया मोड़ आता है। सक्तावत वीर बल्लू महाराज से स्पष्ट शब्दों में कहता है कि ''सच तो यह है कि राणा की हरावल का अधिकार वास्तव में चूड़ावतों का ही है, सक्तावतों का नहीं। किले का फाटक टूटने के पूर्व ही वीर जैत्रसिंह का सिर दीवार को पार कर किले के अंदर पहुँच चुका था। मेरा मस्तक उस वीरवर के चरणों पर सदा झुका रहेगा।'' महाराणा अमरसिंह 'वीर-बल्लू' को उसकी सच्चाई पर धन्यवाद देते हैं। इसीबीच कायमखाँ की फौज के साथ राजपूत सेना भिड़ जाती है और चूड़ावत सरदार के लिए महाराणा आदेश देते हैं कि हरावल का अधिकार प्राप्त कीजिए और बहादुरी से शत्रुओं का मुकाबला कीजिए।

9.2.3 निबन्धात्मकप्रश्न

प्रश्न-1. 'वीर बल्लू' एकांकी की मूल संवेदना और उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर – 'वीर बल्लू' एक ऐतिहासिक एकांकी है। इसकी कथावस्तु महाराणा प्रताप के वीर अमरसिंह से सम्बन्धित है। मुगलों ने मेवाड़ के कई किलों और ठिकानों पर अपना आधिपत्य जमा लिया था और वहाँ अपने किलेदार नियुक्त कर दिये थे। प्रस्तुत एकांकी इन्हीं परिस्थितियों की देन है। इसका कथानक इस प्रकार है कि मेवाड़ के 'ऊँठाले' नामक किले पर मुगलों का अधिकार हो जाता है। जहाँ शहजादे सलीम ने कायम खाँ नामक एक सरदार को किलेदार नियुक्त किया है। महाराणा अमरसिंह इस किले को भी कायम खाँ से छीनकर वापस लेना चाहते हैं। महाराणा की सेना इस किले को लेने के लिए आक्रमण करती है। राजपूत सैनिक किले का दरवाजा तोड़कर अंदर प्रवेश करते हैं। वे किले के अन्दर मुगल सेना पर आक्रमण करने से पूर्व इस बात पर आपस में उलझते हैं कि किले के अन्दर पहले सक्तावत राजपूतों की सैनिक टुकड़ी ने प्रवेश किया या चूड़ावत राजपूतों ने। कथानक का घटनाचक्र इसी द्वन्द्व और संघर्ष में उलझा हुआ है। आक्रमण करने से पहले महाराणा को भी यह सिद्ध करना पड़ता है कि किले के अन्दर किस सैनिक टुकड़ी ने पहले प्रवेश किया। उसी को वे मेवाड़ की हरावल सेना में रहने का अधिकार देते हैं।

एकांकी की मूल संवेदना

प्रस्तुत एकांकी में जो मूल संवेदना व्यक्त हुई है, उसका उल्लेख निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा रहा है –

1. राजपूती शौर्य की व्यंजना – इस एकांकी की कथावस्तु ऐतिहासिक है, यह घटना चक्र इतिहास से सम्बन्धित है। इसके पात्र भी ऐतिहासिक हैं। इसमें एकांकीकार ने राजपूतों की वीरता, पराक्रम और शौर्य का चित्रण करना चाहा है जो एक सीमा तक सफल रहा है। जब मुगल सैनिक 'ऊँठाले' के किले के भीतर और बाहर कड़ा पहरा दे रहे होते हैं, तो आपसी बातचीत में राजपूतों की वीरता की चर्चा करते हैं। एकांकीकार ने उन मुगल सैनिकों के मुख से राजूपतों के शौर्य व अदम्य साहस की प्रशंसा करवायी है। वे राजूपतों के शौर्य से प्रभावित हैं और उन्हें यह भय होता है कि हम परम प्रतापी महाराणा के देश में हैं। महाराणा प्रताप के पुत्र महाराणा अमरसिंह कभी भी विशाल सेना लेकर मुगलों के किले और थाने वापस छीन सकते हैं। इसलिए वे भयभीत भी हैं और सावधान भी। वे यह भी याद करते हैं कि हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप ने अदम्य शौर्य का प्रदर्शन कर मुगलों के छक्के छुड़ा दिये थे। वे कहते हैं कि अच्छा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हुआ जो महाराणा का घोड़ा लंगड़ा हो गया, अन्यथा इतिहास पलट गया होता। राजपूतों के शौर्य का चित्रण करके एकांकीकार ने आज की पीढ़ी को अतीत की घटनाओं से और तत्कालीन इतिहास पुरुषों से जोड़ने की कोशिश की है और वीर राजपूतों के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव व्यक्त किया है।

2. राजपूतों के पारस्परिक कलह का चित्रण – वीर और पराक्रमी होने के साथ-साथ एकांकीकार ने राजपूतों के स्वभाव के प्रति एक और संवेदना व्यक्त की है। वह यह कि राजूपतों में पारस्परिक कलह चरम सीमा पर थी जो कि जाति, धर्म और देश सबके लिए अहितकर सिद्ध हुआ है। महाराणा अमरसिंह की सेना मुगलों से 'ऊँठाले' का दुर्ग वापस छीनने के लिए अभियान पर निकलती है। राजपूत 'ऊँठाले' के दुर्ग पर आक्रमण करते हैं। किले का फाटक खुल जाने पर राजपूतों के बीच एक विवाद जन्म लेता है। सक्तावत राजूपतों का कहना है कि उनकी जाति का वीर बल्लू ही किले के फाटक को खुलवाने में सफल रहा है, उसने किले के दरवाजे की कीलों पर छाती रखकर हाथी से टक्कर दिलवाई है, उसने अपनी छाती छिदवाई है और तब किले का दरवाजा टूटा है। इस प्रकार बल्लू पहले किले के अन्दर गया है। अत: वह सक्तावत राजूपत ही महाराणा मेवाड़ की हरावल सेना में रहने के अधिकारी हैं। चूड़ावतों का कहना है कि हमारी जाति के वीर राजपूत जेत्रसिंह ने अपना सिर कटवा कर पहले किले के अन्दर फिंकवाया है। इस प्रकार चूड़ावत किले के अन्दर पहले गए हैं। अत: हरावल में रहने के अधिकारी चूड़ावत ही हैं। दोनों राजूपत जातिया एक-दूसरे से बड़ा बताने की होड़ में लगी हैं। वह भी ऐसे समय में जब वे शत्रु के द्वार पर उसे ललकारने गए हैं। एकांकीकार ने राजपूतों की इसी कमजोरी को उजागर करने का प्रयास किया है। राजपूत वीर हैं, योद्धा हैं, किन्तु उनका जातीय अहंकार तथा दम्भ उनकी कमजोरी है। परस्पर विवाद करना, स्पर्धा बढ़ाना तथा कर्त्तव्य छोड़कर अधिकार के लिए लड़ना एक अनुशासनहीनता है। अत: राजपतों की अनुशासनहीनता तथा पारस्परिक कलह के प्रति एकांकीकार ने संवेदना प्रकट की है।

3. श्रेष्ठता की होड़ पर व्यंग्य – इस एकांकी में सक्तावत तथा चूड़ावतों में स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की होड़ लगाते चित्रित किया गया है। एकांकीकार स्वयं मानता है कि सम्पूर्ण राजूपत जाति शौर्य एवं वीरता से मण्डित है। अत: राजूपतों की अलग-अलग उपजातियों का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। इसके बावजूद सक्तावतों का चूड़ावतों की कमियाँ गिनवाना और चूड़ावतों के द्वारा सक्तावतों की कमी गिनवाना, एकांकीकार की भावनाओं को आहत करती प्रतीत होती है, जिसे उसने अपनी संवेदना से व्यक्त किया है। एकांकीकार का तात्पर्य यही है कि अनुचित अवसर पर पारस्परिक प्रतिस्पर्धा राजूपतों की एक कमी रही है। यही संवेदना आलोच्य एकांकी में प्रस्फुटित हुई है।

4. राजपूतों की अदूरदर्शिता बताना – राजपूत वीर तथा पराक्रमी हैं, किन्तु अदूरदर्शी हैं। एक ओर तो मुगलों का आतंक मेवाड़ पर छाया रहता है। मुगलों से वे अपने किलों तथा थानों को पुन: वापस लेने की होड़ नहीं करते बल्कि उसके स्थान पर आपस में ही तलवारें खनका रहे होते हैं। एकांकीकार ने अपनी इस संवेदना को महाराणा मेवाड़ के शब्दों में इस कथन में व्यक्त किया है – ''यह क्या राजूपतों की तलवारें आपस में ही चल पड़ीं ? अपनी बहादुरी की परीक्षा भाई-भाई की गर्दन पर करने के बजाय शत्रुओं पर करो।'' राजपूतों को पारस्परिक मतभेदों को समाप्त करना चाहिए था तथा एक होकर मुगलों का प्रतिरोध कर मेवाड़ की पवित्र धरा से उन्हें खदेड़ देना चाहिए था। इस संवेदना को महाराणा मेवाड़ के कथन से इस प्रकार स्पष्ट किया गया है – ''आपसी भेदभाव भुलाकर एक बार अपनी शक्ति संगठित करो और मुगलों को मेवाड़ से बाहर निकाल फेंको।'' राजपूतों की अदूरदर्शिता इससे अधिक और क्या हो सकती है कि महाराणा मेवाड़ के इन कथनों को सुनने पर वे महाराणा की बात से एक स्वर में सहमत तो हो जाते हैं किन्तु पुन: उसी विवाद के निपटारे की बात करने लग जाते हैं।

'वीर-बल्लू' एकांकी का उद्देश्य

जब कोई भी एकांकीकार किसी एकांकी की रचना करता है तो रचना से पूर्व ही उसका उद्देश्य उसके मानस पटल अथवा मस्तिष्क में स्थान पा लेता है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह पूरे एकांकी का ताना-बाना बुनकर उसका ढाँचा खड़ा करता है। 'वीर बल्लू' एकांकी भी किसी-न-किसी निश्चित उद्देश्य को परिलक्षित करता है। पद्मश्री देवीलाल सामर ने 'वीर बल्लू' एकांकी की रचना जिस उद्देश्य से की है, उस उद्देश्य की समीक्षा निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर की जा रही है –

1. कर्त्तव्य को सर्वोपरि मानना – एकांकीकार का उद्देश्य यह बताना है कि किसी भी व्यक्ति अथवा देशभक्त के लिए अपना कर्त्तव्य ही सर्वोपरि होता है। देश-भक्त के लिए देश की सेवा सर्वोपरि है। मातृभूमि के लिए अपने स्वार्थों का होम करना ही सच्ची वीरता तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

देशभक्ति है। कर्त्तव्य निभाते समय अधिकारों की बात करना देशभक्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है। 'वीर-बल्लू' एकांकी में राजपूतों को कर्त्तव्य के प्रति सजग रहने के स्थान पर अधिकारों के प्रति सजग रहना चित्रित किया गया है। सक्तावतों और चूड़ावतों में अपनी वीरता को श्रेष्ठ सिद्ध करने की होड़ लगाते दर्शाया गया है। वह होड़ भी मात्र इसलिए कि जो जाति सर्वाधिक श्रेष्ठ तथा वीर सिद्ध हो जाये, वही महाराणा मेवाड़ की हरावल सेना में रहने का अधिकारी है। यह श्रेष्ठता की होड़ विवाद का विषय बन जाता है। वह भी उस स्थिति में जबकि राजपूत सेना अपना किला मुगलों से छीनने के लिए कायमखाँ पर आक्रमण करती है और किले का फाटक तोड़कर किले के अन्दर प्रवेश कर चुकी होती है। फाटक के अन्दर प्रवेश करके राजूपतों की सेना को भीषण आक्रमण करना चाहिए था, किन्तु वे इस विषय में विवाद करते हैं कि हम में से कौन पहले किले के अन्दर प्रविष्ट हुआ है और कौन श्रेष्ठ है ? इस अधिकार के लिए सक्तावत भी संघर्षरत हो जाते हैं और चूड़ावत भी। किन्तु कायमखाँ से किला छीनने की बात गौण रह जाती है। राजपूत कर्त्तव्य को भुलाकर अधिकारों के लिए उलझते हैं। कर्त्तव्य अधिकार से महत्त्वपूर्ण होता है। एकांकी का यही उद्देश्य प्रमुख रूप से व्यंजित हुआ है।

2. समय का महत्त्व समझाना – समय कभी लौटता नहीं। पल-पल, क्षण-क्षण परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। उचित समय पर जो कार्य हो जाता है वह सफलता कहलाती है। व्यक्ति को समय का महत्त्व पहचानना आवश्यक है। 'वीर बल्लू' एकांकी में एकांकीकार इसी उद्देश्य को अपने पाठकों तक पहुँचाना चाहता है। इस एकांकी में महाराणा मेवाड़ की सेना के राजपूत सैनिक समय का महत्त्व नहीं समझते। जब कायमखाँ से किला वापस छीनने का समय आया, जब राजपूत सेना ने किले का दरवाजा तोड़कर किले के अन्दर प्रवेश कर लिया था, तभी उन्हें पूरे मनोयोग से एकजुट हाकर कायमखाँ की सेना पर भीषण आक्रमण कर देना चाहिए था, किन्तु राजपूत सेना ने ऐसा नहीं किया, बल्कि उल्टे आपस में विवाद में पड़ गई। एकांकी में इस विवाद को चित्रित करके लेखक यह सिद्ध करना चाहता है कि विवाद का वास्तविक समय वह नहीं था। वह तो जमकर आक्रमण करके मुगलों से 'ऊँठाले' का किला वापस लेने का समय था। इस तरह लेखक ने समय का महत्त्व बताने के उद्देश्य से भी एकांकी की रचना की है। राजपूतों के इस चरित्र को वर्तमान सन्दर्भ में न दोहराये जाने की चेतावनी देना भी इस एकांकी का उद्देश्य है।

3. एकता की भावना पर बल देना – प्रस्तुत एकांकी में एकता की भावना पर बल दिया गया है। लेखक ने राजपूतों के पारस्परिक कलह को माध्यम बनाकर उस ऐतिहासिक सत्य को वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत कर आज की पीढ़ी को एकता के सूत्र में बँधे रहने की प्रेरणा देने का प्रयास किया है। चूड़ावतों तथा सक्तावतों के बीच पारस्परिक वैमनस्य, ईर्ष्या और द्वेष का चित्रण करने का यही उद्देश्य रहा है कि यदि राजपूतों में एकता का अभाव नहीं होता और वे आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं, तो उनकी छवि पर आँच नहीं आयी होती। वीरता और शौर्य के धनी होने के बावजूद राजपूतों में पारस्परिक एकता नहीं थी। वे कर्त्तव्य को गौण तथा अधिकार को सर्वोपरि मानते रहे। लेखक ने भावी पीढ़ी को इन कमियों के प्रति सजग करना चाहा है और एकता की भावना रखने का सन्देश दिया है।

निष्कर्ष – इस प्रकार एकांकीकार ने इस एकांकी में राजपूती शौर्य का चित्रण किया है, परन्तु साथ ही राजपूतों की चारित्रिक दुर्बलता का प्रमुख दुर्गुण पारस्परिक ईर्ष्या तथा कलह को भी स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। समय का महत्त्व न समझना, व्यक्तिगत व जातिगत वीरता प्रदर्शन की होड़, अधिकार को कर्त्तव्य से अधिक प्राथमिकता देना आदि कमियों के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त की है। साथ ही राजपूतों की कमियों और वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत कर भावी पीढ़ी को सावचेत किया है कि समाज, राष्ट्र तथा जातीय गौरव को गरिमामय बनाने के लिए एकता की भावना सर्वोपरि है।

प्रश्न- 2. वीर बल्लू एकांकी के आधार पर राजपूतों की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण कीजिए।

उत्तर – इस एकांकी के आधार पर राजपूतों का चरित्रांकन निम्न बिन्दुओं के अनुसार किया जा रहा है –

1. जातीय-गौरव की भावना – प्रस्तुत एकांकी में राजपूतों में जातीय-गौरव की भावना का चित्रण किया गया है। सक्तावत राजपूतों में अपनी जाति के प्रति अधिक गौरव रहता है तो चूड़ावतों में भी जातीय-गौरव की भावना अत्यधिक दर्शायी गई है। सक्तावतों का सरदार कहता है कि "यह तो सूरज की तरह साफ है कि पहले हमारे बहादुर सिपाही बल्लू ने हाथी की चोट अपनी छाती पर लेकर दरवाजे को तुड़वाया है और किले में पहले घुसकर मेवाड़ी फौज की हरावल में रहने का अधिकार पाया है।" इस कथन में "हमारे बहादुर सिपाही बल्लू" से तात्पर्य सक्तावत जाति के राजपूत सिपाही बल्लू से है, जो कि स्पष्ट रूप से सक्तावत राजपूतों की जातीय गौरव की भावना की ओर संकेत करता है। इसी प्रकार चूड़ावतों के सरदार का कथन है कि "बिल्कुल झूठ! वीर चूड़ावत जैत्र सिंह ने अपनी गर्दन कटवाकर किले में इसलिए फिंकवायी, ताकि किले में सबसे पहले प्रवेश कर महाराणा की हरावल में रहने का अधिकार चूड़ावतों का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बना रहे।'' इस कथन में ''हरावल में रहने का अधिकार'' चूड़ावतों की जातीय गौरव की भावना का परिचायक है। इस प्रकार दोनों राजपूत जातियों में अपनी जातियों के प्रति गौरव की होड़ दर्शायी गई है।

2. वीरता व शौर्य-प्रदर्शन – एकांकीकार ने राजपूतों की वीरता एवं शौर्य का बढ़-चढ़ कर चित्रण किया है। बाहर से आने वाली आवाज का यह वाक्य कि ''मेरा सिर धड़ से अलग कर दो'' राजपूतों की बलिदान एवं वीरता का परिचायक है। एक सक्तावत सरदार का यह कथन राजपूतों की वीरता एवं शौर्य के लिए कितना उपयुक्त उदाहरण है कि ''वीरो! किधर है हमारा वीर-बल्लू, जिसने अपनी छाती को किले के दरवाजे की कीलों से छिदवाया है? शाबाश मेरे शेर! तेरी बहादुरी को धन्य है और धन्य है तेरी जननी को जिसने ऐसे वीर-पुत्र को जन्म दिया।'' सक्तावत सरदार के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि राजपूतों के चरित्र तथा स्वभाव में वीरता और शौर्य प्रदर्शन की भावना कूट-कूट कर भरी रहती है।

3. जातीय प्रतिस्पर्धा – प्रस्तुत एकांकी में ऐतिहासिक तथ्य के साथ राजपूतों की जातीय प्रतिस्पर्धा की भावना के कई उदाहरण विद्यमान हैं। राजपूतों में अपनी जाति को ऊँचा बताना तथा दूसरे की जाति को अपनी जाति की तुलना में कमजोर या तुच्छ बताना एक स्वाभाविक बात है, जो इस एकांकी में चित्रित किया गया है। क्रोधपूर्वक कहते हुए एक चूड़ावत सरदार कहता है कि ''ऐसे कायर तुम सक्तावत होंगे जो युद्ध का मैदान छोड़कर विश्वासघात करें।'' चूड़ावतों का अपनी जाति को ऊँचा बताना तथा सक्तावतों को कायर तथा विश्वासघाती बताकर मैदान छोड़ने वाला बताना जातीय प्रतिस्पर्धा का चित्रण है। सक्तावतों तथा चूड़ावतों में जातीय प्रतिस्पर्धा का उदाहरण एक सक्तावत का यह कथन है – ''यह सक्तावतों की ही हिम्मत थी कि ऐसी बहादुरी का काम कर सके। चूड़ावत तो उस वक्त कहीं पीछे खड़े थे।'' इस तरह के कथनों से दो राजपूतों के चरित्र में जातीय प्रतिस्पर्धा की भावना का चित्रण किया गया है।

4. कर्त्तव्य के प्रति असावधान रहने वाले – इस एकांकी में एकांकीकार ने राजपूतों को अपने कर्त्तव्य के प्रति अत्यधिक असावधान रहने वाले चित्रित किया है। ऊंठाले के किले को वापस लेने के लिए मेवाड़ की सेना ने आक्रमण किया है। वे ऊंठाले के किले को मुगलों से वापस लेने के लिए आये हैं। किले पर आक्रमण करते हैं और किले का दरवाजा तोड़कर अन्दर प्रवेश करते हैं, किन्तु अन्दर प्रवेश करने पर जोरदार आक्रमण करने के स्थान पर इस बात पर विवाद खड़ा कर देते हैं कि जो वीर राजपूत जाति सर्वप्रथम किले के अन्दर घुसी है, वही महाराणा की सेना के हरावल में रहने की अधिकारी होगी। यह राजपूतों के चरित्र में कर्त्तव्य के प्रति उनकी लापरवाही की भावना को प्रदर्शित करता है। यहाँ एकांकीकार ने राजपूतों के चरित्र में अधिकार को महत्त्व देने वाला तथा कर्त्तव्य को गौण समझने वाला चित्रित किया है। एक राजपूत सरदार सलाह देता है कि महाराणा के आने से पूर्व ही किले पर अधिकार कर लो तो सबको रोकते हुए सक्तावत सरदार प्रतिरोध करते हुए कहता है – ''अभी ठहर जाइए। पहले इसका तो निर्णय हो जाने दीजिये कि किले में पहले किसने प्रवेश किया?'' यह कथन कर्त्तव्य को गौण मानने वाले चरित्र की पुष्टि करता है। वे किले को अधिकार में बाद में लेना चाहते हैं पहले तो वे यह निर्णय करना चाहते हैं कि मेवाड़ी सेना की हरावल में रहने का अधिकार उन्हें ही मिले।

5. जातिगत आक्षेप लगाने वाले – राजपूतों के चरित्र में सर्वाधिक दुर्बलता यह है कि वे एक-दूसरे पर तथा एक-दूसरे की जाति पर आक्षेप लगाते हैं। युद्ध के मैदान में जहाँ शत्रु के सेना पर टूट पड़ने के अतिरिक्त कोई दूसरा कर्त्तव्य नहीं होना चाहिए तथा किला छीनने के अतिरिक्त कोई दूसरा लक्ष्य नहीं होना चाहिये, वहाँ दोनों राजपूत जातियाँ आपस में ही विवाद खड़ा कर देती हैं और जमकर एक-दूसरे की जाति पर आक्षेप करने लगते हैं। एक सक्तावत चूड़ावतों की जाति का उपहास करते हुए कहता है – जा जा, बहुत देखें हैं तुझ जैसे चूड़ावत! भूल गया! मदारिया के युद्ध में महाराणा को अकेला छोड़कर भाग गया था।'' इस पर जब चूड़ावत अपने भागने की बात को झूठा सिद्ध करता है और कहता है कि उसे तो खुद महारणा ने ही आगे का मोर्चा ठीक करने भेजा था, तो सक्तावत व्यंग्य करते हुए उसे नीचा दिखाने के लिए एक आपेक्ष और लगाते हुए कहता है – ''बड़ा मोर्चा ठीक करने भेजा था। यों कह न कि अपने गांव चला गया था।'' इस तरह के कथन सिद्ध करते हैं कि राजपूतों में एक-दूसरे पर जातिगत आक्षेप लगाने की एक स्वाभाविक दुर्बलता रही है। प्रस्तुत एकांकी में उनके चरित्र की इस दुर्बलता को यथार्थ रूप में उभारा गया है।

6. युद्ध के समय आपसी कलह वाले – 'वीर-बल्लू' एकांकी के पात्र राजपूत यह नहीं देखते कि हम युद्ध लड़ने तथा मेवाड़ की खोयी हुई प्रतिष्ठा को पुन: प्राप्त करने के लिए आये हैं, हमें ऊंठाले के किले को मुगलों से वापस लेना है, इसके लिए हमें कायमखाँ की सेना पर भीषण आक्रमण करना होगा, उसे पराजित करके ऊँठाले का किला वापस छीनना होगा। इस समय हमारा इसके अतिरिक्त कोई दूसरा लक्ष्य नहीं है। लेकिन राजपूत इस बात की कोई चिन्ता नहीं करते तथा उस महत्त्वपूर्ण समय में व्यर्थ का विवाद खड़ा कर

देते हैं कि जिस राजपूत जाति के वीर ने ऊंठाले के किले के अन्दर पहले प्रवेश किया है, वही राजपूत जाति महाराणा की मेवाड़ी सेना के हरावल में रहने की अधिकारी होगी। इस तरह वे अपनी वीरता की परीक्षा आपस में ही करते हैं न कि शत्रु पर। राजपूतों की तलवार मुगलों पर उठनी चाहिए थी न कि आपस में ही एक-दूसरे पर। राजपूतों के चरित्र के इस दोष को एकांकी में बड़ी स्पष्टता से चित्रित किया गया है।

7. आत्मप्रशंसा वाले – इस एकांकी में राजपूतों के चरित्र की एक कमी यह भी दर्शाई गयी है कि वे अपनी आन-बान और शान का बखान करने में एक-दूसरे से कम नहीं हैं। किले के अन्दर सक्तावतों तथा चूड़ावतों में पहले किसने प्रवेश किया यह विवाद छिड़ जाता है, इस पर एक चूड़ावत जब यह कहता है कि हम चूड़ावतों की ही हिम्मत है जिन्होंने अपना सिर काट कर अपनी जाति की प्रतिष्ठा बढ़ाई तथा धड़ से सिर काट कर किले के अन्दर फेंका। तब एक सक्तावत कहता है – ''चूड़ावतों और सक्तावतों के युद्ध में वह, वैसे ही मर ही चुका था। मुर्दे के धड़ से खोपड़ी काटकर किले में फेंकने में कौन-सी तारीफ की बात थी ?'' अर्थात् जब जेत्रसिंह किले के बाहर ही अपने धड़ से सिर को अलग करवा गया था तो वह किले के बाहर की मृत्यु की गोद में सो गया था, अत: किले के अन्दर उसका मृत सिर ही तो गया, वह जीवित तो न जा सका, जबकि बल्लू ने हाथी के धक्कों से दरवाजे की नुकीली कीलों के बीच छाती रखकर किले का दरवाजा तोड़कर अन्दर प्रवेश किया है। इस प्रकार सक्तावत तथा चूड़ावत आपस में अपनी-अपनी थोथी शान की प्रशंसा करते हैं।

8. अनुशासनहीनता – इस एकांकी में जहाँ राजपूतों के चरित्र में वीरता का चित्रण किया गया है, वहीं उन्हें अनुशासनहीन भी दर्शाया गया है। राजपूतों की अनुशासनहीनता का प्रमाण यह है कि वे अपने सैनिक अधिकारी का आदेश तक नहीं मानते तथा मनमानी करते हैं। उनका सरदार आदेश देता है कि ''महाराणा के आने से पूर्व ही थाने पर कब्जा कर लो।'' इस पर कई सिपाही तैयार हो जाते हैं, परन्तु एक सक्तावत सरदार बीच में ही आदेश की अनदेखी करते हुए सबको रोकता है और कहता है कि ''अभी ठहर जाइये, पहले इसका तो निर्णय हो जाने दीजिये कि इस किले में पहले किसने प्रवेश किया ?'' राजपूत सेना में ताल-मेल का अभाव दिखाया गया है। इतना ही नहीं, राजपूत सरदार और सिपाही महाराणा के आदेश की ही अनदेखी कर जाते हैं। महाराणा कहते हैं कि ''आपसी भेदभाव भुलाकर एक बार अपनी शक्ति संगठित करो और मुगलों को मेवाड़ से बाहर निकाल फेंको।'' इस पर भी महाराणा की बात मानने से पूर्व वे यह निर्णय लिवा लेना चाहते हैं कि ''महाराणा जी, पहले यह तय कीजिये कि मेवाड़ की हरावल में रहने का अधिकार किसका है ?'' ये कथन तथा तथ्य सिद्ध करते हैं कि राजपूत सेना मनमानी करने वाली रही है और उनका जो चरित्र-चित्रण किया गया है, उसके अनुसार वे अनुशासनहीन दिखाई देते हैं।

9.3 सारांश

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत एकांकी में राजपूतों के चरित्र में शौर्य और पराक्रम का चित्रण कर अच्छाइयाँ बताई गई हैं, परन्तु साथ ही उनमें कुछ कमजोरियाँ भी दिखाई गई हैं। ऐसे समय पर जबकि किले पर अधिकार करने के लिए शीघ्रता करनी चाहिए थी, वे आपस में ही विवाद करने लगे और महाराणा अमरसिंह का आदेश भी न मानकर हरावल में स्थान प्राप्त करने के लिए बहस करने लगे। इस दृष्टि से एकांकीकार ने तत्कालीन स्थितियों के साथ राजपूतों की कमजोरियों का सुन्दर चित्रण किया है।

9.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. मीना का चरित्र-चित्रण कीजिए।
2. समाज-दर्पण एकांकी का सार लिखिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-10 : सिंह जागरण

(श्री सुदर्शन)

संरचना

10.0 लेखक परिचय

10.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

10.3 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

  10.3.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

  10.3.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

  10.3.3 निबंधात्मक प्रश्न

10.4 सारांश

10.5 अभ्यास प्रश्नावली

10.0 लेखक परिचय

द्विवेदी युग के एकांकीकारों में श्री सुदर्शन का नाम अत्यन्त प्रशंसनीय और उल्लेखनीय है। इस युग में भी राष्ट्रीय ऐतिहासिक धारा के अन्तर्गत अनेक नाटकों का सृजन किया जा रहा था, देश में सर्वत्र राजनैतिक जागृति हो रही थी। अत: हमारे एकांकीकारों का ध्यान भारत के गौरवमय अतीत की याद करने में लगा। परिणाम यह हुआ कि भारत के इतिहास, मुख्यत: राजस्थान के अतीत की गौरवमयी घटनाओं को चित्रित करना उनका लक्ष्य रहा। श्री सुदर्शन की रचना राजस्थान के गौरवमय अतीत की एक स्वर्णिम झाँकी है। गंभीर एकांकियों में आपकी एकांकी 'सिंह जागरण' एक प्रसिद्ध रचना है। सन् 1926 तक भारतीय एकांकी के क्षेत्र में पारसी रंगमंच का पूरा प्रभाव था और प्राचीन पद्धति के नाटकों की तरह दोहे, शेरोशायरी, संगीत आदि की प्रमुखता रहती थी। इस कृत्रिमता के विरुद्ध विद्रोह करने और यथार्थवादी दृष्टिकोण स्वाभाविक जीवन सम्बन्धी एकांकी लिखने में सुदर्शन जी का एक ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपकी एकांकी 'औनरेरी मजिस्ट्रेट' कृत्रिम पद्धति के विरुद्ध यथार्थवादी शैली में लिखा गया है।

कुछ आलोचकों का मत है कि "श्री सुदर्शन का नाटक-साहित्य पुरानी लीक के अन्दर फँसा हुआ है। उगते हुए नये साहित्य के इनकी रचनाओं में कोई लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। लेखन की कृत्रिमता के विरुद्ध क्रान्ति कर यह एकांकी तथा 'छाया' नाटक यथार्थवादी एकांकी लिखे हैं। इनमें जिस सहज और स्वाभाविक शैली का प्रयोग किया गया है यही आगे चलकर नाटकों में विकसित हुई। आपकी सबसे बड़ी सफलता चुस्त नाटकीय कथोपकथन है। चरित्र-चित्रण में भी आपको विशेष सफलता मिली है। जहाँ आपके ऐतिहासिक एकांकियों का आदर्शवाद हृदय को स्पर्श करता है, वहाँ सामाजिक व्यंग्य एक नवीन क्रान्ति के लिये प्रोत्साहित करता है। आपके नारी-चरित्र, विशेषत: राजपूत रानियों के चरित्र सजीव और आकर्षित सुरुचि का विशेष ध्यान रखा है। प्रस्तुत एकांकी 'सिंह-जागरण' में क्षत्रियत्व के उच्चतम आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है। एक पत्नी युद्ध में भागे हुए राजपूत को घर में नहीं आने देती है। माता का हृदय भी तभी उज्ज्वल होता है, जब उसका पुत्र वीरता से शत्रु को पराजित करता हुआ आता है, अथवा वीरगति को प्राप्त हो जाता है। माता और पत्नि दोनों ही इस बात से प्रसन्न हैं कि उसका पुत्र और उसका पति जसवन्तसिंह कायरता का दाग मिटाने को तैयार हो गया है।

10.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

"अगर वह राजपूत था, अगर उसने वीर माता का दूध पिया था, अगर वह राजपूत सिंहनी की गोद में पलकर जवान हुआ था, तो उसे चाहिए था, रणभूमि में डट जाता, मृत्यु के भय को पाँव तले मसल डालता और संसार को दिखा देता कि राजपूत का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बच्चा मृत्यु और जीवन दोनों को समान समझता है। माँ! मैं समझती थी, मेरा पति सूरमा है। मेरा ख्याल था, वह आदर के जीवन और आदर की मृत्यु दोनों की व्यवस्था जानता है, मगर हाय शोक! यह मेरी भूल थी – वह हारकर भी, अपनी और दूसरों की दृष्टि में अपमानित होकर भी, जिंदा रहना चाहता है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के श्री सुदर्शन द्वारा विरचित 'सिंह जागरण' एकांकी से उद्धृत है। इसमें जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह की महारानी महामाया और राजमाता कुलीना में पारस्परिक वार्तालाप होता है। जब जोधपुर के महाराजा युद्धभूमि से भागकर आते हैं तो महारानी महामाया क्षुब्ध एवं लज्जित होकर राजमाता कुलीन से कहती है –

व्याख्या – राजमाता, यदि मेरे पति जाति से सच्चे राजपूत हैं और राजपूती परम्परा के अनुसार अगर उन्होंने अपनी वीर क्षत्राणी माता का दूध पिया है तो आज क्यों उन्होंने युद्ध से भागकर अपनी र जपूती शान मिटा दी और माता का दूध लजा दिया। अगर महाराजा आप जैसी वीर सिंहनी माता की गोद में पलकर जवान हुए हैं तो माता की कोख और गोद दोनों की लाज रखते हुए उन्हें इस तरह रणभूमि में डट जाना चाहिए था तथा मृत्यु के भय को वे अपने पैरों के तले रौंद डालते अर्थात् उन्हें रणभूमि में मृत्यु का भय त्यागकर शत्रु सेना पर टूट पड़ना चाहिए था, फिर चाहे विजय होती या पराजय। उन्हें संसार को दिखा देना चाहिए था कि राजपूत का बच्चा जीवन और मृत्यु दोनों को समान समझता है। अर्थात् राजपूत वीर न जीवन से मोह रखते हैं और न मृत्यु से आक्रान्त होते हैं। माँ! मैं तो अपने मन में सदैव यही समझा करती थी कि मैं एक वीर योद्धा की पत्नी हूँ और मेरा पति एक महान् वीर योद्धा है। मैं सोचती थी कि मेरे वीर पति सम्मानपूर्वक जीवन जीना तो जानते ही हैं, लेकिन साथ ही सम्मानपूर्वक युद्ध भूमि में वीरगति को प्राप्त करना भी जानते होंगे, यही मेरी भूल थी। आज उनके युद्ध भूमि से पीठ दिखाकर भाग आने से उन्होंने मेरा भ्रम तोड़ दिया और मेरा गर्व चूर कर दिया। मुझे इस बात का दुःख है। रण से पीठ दिखाकर भाग आने से उन्होंने अपनी हार तो स्वीकार की ही है, अपनी और संसार की दृष्टि में अब वे अपमानित होकर जीवित रहना चाहते हैं, जो कि उनके लिये, हमारे लिये और सम्पूर्ण राजपूत जाति के लिए एक लज्जाजनक बात है।

विशेष – 1. एकांकीकार ने इस अवतरण में एक राजपूत स्त्री की उस मनोदशा का वर्णन किया है जिसमें वह अपने पति के युद्धभूमि से पीठ दिखाकर भाग आने से संसार के सामने लज्जित होती है।

2. भाषा सरल है और शैली में ओज है।

(2)

''क्या तुझे मेरे दुर्भाग्य पर दया नहीं आती? राजपूत माँ की कोख से जन्म लिया, राजपूतों के वीर-परिवार में ब्याही गई और फिर भी मुझे भीरू, कायर, जीवन का लोभी पति मिला। जहाँ शूरवीर हर्ष से पागल हो उठता है, जहाँ सच्चे राजपूतों को आगे-पीछे का ध्यान नहीं रहता, उसने वहाँ भी अपने प्राणों को प्यारा समझा और भागकर घर में आश्रय लेने आया है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के श्री सुदर्शन द्वारा विरचित 'सिंह जागरण' एकांकी से उद्धृत है। जोधपुर के राजा जसवंतसिंह युद्धभूमि से पीठ दिखाकर जब वापस आते हैं, तो रानी महामाया उनके इस कार्य को राजपूती मर्यादा के विरुद्ध मानकर अत्यधिक दुःखी होती है। वह राजमाता कुलीना से वार्तालाप करती हुई अपने भाग्य को कोसती है। यह अवतरण उसी अवसर पर महामाया का कथन है।

व्याख्या – महामाया राजमाता कुलीन के कंधे पर सिर रखकर और आह भरकर कहती है कि क्या आपको मेरे दुर्भाग्य पर जरा भी दया नहीं आती है? मैंने राजपूत माँ की कोख से जन्म लिया है और राजपूतों के वीर परिवार में मेरा विवाह हुआ है, इसलिए मुझे अपनी राजपूती मान-मर्यादा का गौरव होने लगा था। परन्तु मेरा यह गौरव आज समाप्त हो गया है। क्योंकि मुझे ऐसा डरपोक, कमजोर, कायर और अपने प्राणों का लोभ रखने वाला पति मिला जो युद्ध-भूमि से प्राण बचाकर घर भाग आया है। सच्चे राजपूत वीर युद्ध-क्षेत्र में अपना पराक्रम दिखाते हैं और हर्ष के साथ अपने प्राणों की बाजी लगाते हैं। ऐसे अवसर पर सच्चे राजपूत वीर प्रसन्नता से पागल हो उठते हैं। वस्तुतः यह राजपूतों का विशेष गौरव माना जाता है। इस कारण सच्चे राजपूतों को युद्ध में आगे-पीछे का जरा भी ध्यान नहीं रहता है, अर्थात् उन्हें अपने प्राणों की चिन्ता नहीं रहती है। ऐसे राजपूत तो सदा विजय प्राप्त करने के लिए ही जन्म लेते हैं और अपने सम्मान की रक्षा अन्तिम दम तक रखते हैं। परन्तु मेरा यह दुर्भाग्य है कि युद्धभूमि में अपने प्राणों को प्यारा समझकर मेरा कायर पति भागकर आया है और अब वह घर में आश्रय माँग रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अभिप्राय यह है कि युद्ध-क्षेत्र से पीठ दिखाकर भागने वाले जसवंतसिंह ने राजपूती मर्यादा का पालन नहीं किया है। ऐसे पति के कारण महामाया लज्जा का अनुभव करती है तथा अपने भाग्य को कोसती है।

विशेष – 1. राजपूती मान-मर्यादा, वीरता, त्याग-बलिदान आदि श्रेष्ठ परम्पराओं की ओर संकेत किया गया है। वीर क्षत्राणी का मनोभाव पूरे ओज के साथ व्यक्त हुआ है।

2. भाषा सरल और शैली ओजपूर्ण है।

(3)

''शायद यह राणा न हो, कोई छलिया उनके रूप में धोखा देने आया हो। वह ऐसे कायर न थे। उनकी रगों में न हारने वाली शक्ति, उनके लहू में न बुझने वाली अग्नि, उनकी भुजाओं में न झुकने वाली ताकत थी। मैंने उनको निकट होकर देखा है। मैंने उनका दिल पढ़ा है – वे सूरमा थे। उनको आन प्यारी थी, उनको जान प्यारी न थी।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के श्री सुदर्शन द्वारा विरचित 'सिंह जागरण' एकांकी से उद्‌धृत है। जोधपुर की महारानी महामाया अपने पति महाराणा जसवंतसिंह के युद्धभूमि से पीठ दिखाकर भाग आने की घटना से व्यथित होकर राजमाता कुलीना से कहती है कि –

व्याख्या – माँ, कहीं ऐसा तो नहीं कि यह राणा न हो और युद्धभूमि से पीठ दिखाकर भाग आने का छल करते हुए कोई छलिया ही हो, जो उनके रूप में अर्थात् स्वयं को महाराणा जसवंतसिंह बताकर हमें लज्जित करने अथवा धोखा देने आया हो। क्योंकि मुझे अपने वीर पति पर यह विश्वास नहीं होता कि वे युद्ध से भागकर आये हों। हमारे महाराज ऐसे कायर तो न थे। माता, मैं तो उनको अच्छी प्रकार से जानती हूँ कि मेरे पति की रगों में असीम शक्ति थी। ऐसी शक्ति जो कभी पराजित हो ही नहीं सकती थी। उनकी शिराओं में जो लहू बह रहा है उसमें हमेशा तप्त अग्नि के समान कभी न बुझने वाली लौ थी। मुझे उनके बाहुबल पर पूर्ण भरोसा है। उनकी समर्थ भुजाओं में हार मानने वाली और झुकने वाली शक्ति तो नहीं थी। मैंने तो उन्हें बहुत निकट से देखा-परखा है। मैंने इतने वर्षों से उनके साथ रहकर उनके विशाल हृदय को अन्तर्मन से पढ़ा है। मेरे पति तो जन्म से ही सूरमा थे। उन्हें अपनी राजपूती वीरता की आन प्यारी थी। वे अपनी आन-बान और शान के लिए मर मिटने वाले वीर योद्धा थे। अपनी वीरता और शौर्य के लिए उन्होंने कभी भी अपने प्राणों से मोह नहीं रखा। क्योंकि उन्हें अपने प्राण तो प्यारे थे ही नहीं। अर्थात् मुझे अब भी सन्देह है कि हमारे महाराज पीठ दिखाकर नहीं भागे हैं बल्कि कोई छलिया ही उनका रूप धारण कर हमें छलने आया है।

विशेष – 1. महारानी महामाया को विश्वास नहीं होता कि उनका पति युद्धभूमि से शत्रुओं को अपनी पीठ दिखाकर भागकर आया है। महारानी की दृष्टि में महाराज इतने कायर नहीं हैं, वे तो एक वीर पराक्रमी और योद्धा हैं। भागकर आये हुए व्यक्ति को रानी महामाया महाराज जसवन्तसिंह मानने को तैयार नहीं हैं। **2.** भाषा सरल व मार्मिक है। शैली भावप्रधान है।

(4)

''काहे को समझोगी ? जैसे तुम अभी दूध पीती बच्ची हो, जैसे कुछ जानती ही नहीं। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि लोहे से लोहा बजते देखकर मेरा बेटा मेरी गोदी में छिपने के लिए यहाँ भागकर आया है। क्या तुम उसे यहाँ से भी भगाना चाहती हो ? बेटी ! अब यह कहाँ जायेगा, यहाँ से भागकर उसे आश्रय पाने को स्थान कहाँ मिलेगा – परमेश्वर के लिये यह लोहे की कलछी बाहर फेंक दो। कहीं ऐसा न हो, वह फिर लोहे की कढ़ाई से टकरा जाये और मेरा बेटा डर कर यहाँ से भी भाग निकले, फिर मैं क्या करूँगी ?''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के श्री सुदर्शन द्वारा विरचित 'सिंह जागरण' एकांकी से उद्‌धृत है। महामाया अपने पति महाराणा जसवंतसिंह को लज्जित करने के लिए हलवा बनाती हुई कड़ाही पर कलछी चला रही है, तो कुलीना कलछी बाहर निकालने को कहती है कि अंधेर हो जायेगा। इस पर महामाया राजमाता से अँधेर का आशय पूछती है और इसका उत्तर देती हुयी राजा माता कहती हैं –

व्याख्या – बेटी महामाया, कड़ाही पर जोर-जोर से कलछी चल रही है। इसीलिए मैं तुमसे कलछी बाहर निकालने को कह रही हूँ, जिसे तुम नहीं समझ रही हो ? किसलिए समझोगी ? क्या तुम अभी दूध पीती बच्ची या अबोध बालिका हो, जैसे कि कुछ भी नहीं जानती। तुम्हारे हलवा बनाने में कड़ाही में कलछी घूम रही है जिसमें लोहे से लोहा बज रहा है। लोहे से लोहा बजने की ध्वनि से तो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मेरा बेटा युद्ध भूमि से पीठ दिखाकर भाग आया है और किले के अन्दर मेरी गोदी में छिपा है। बेटी, कड़ाही से कलछी की टकराहट को कहीं मेरा बेटा तलवारों की खनखनाहट न समझ बैठे और कहीं वह किले के अन्दर ही युद्ध भूमि समझकर यहाँ से भी न भाग जाये। क्या तुम मेरे पुत्र को इस शान्त सुरक्षित किले से ही भगा देना चाहती हो ? बड़ी कठिनाई से युद्ध भूमि से वह अपने प्राण बचाकर भागकर मेरी गोद में छिपा बैठा है। अब बेचारा भागकर कहाँ जायेगा और कहाँ आश्रय पायेगा ? मैं इसीलिए कह रही हूँ कि बेटी, इस कलछी को कड़ाही से न टकराओ, इसे बाहर फेंक दो। मुझे यह भी डर है कि कहीं मेरा बेटा रणभूमि में शत्रु सेना के बदले में तुम्हारी रसोई की इस कड़ाही से ही न टकरा जाये। यदि ऐसा हुआ तो मेरा बेटा कहीं यहाँ से भी भाग जाये तो फिर मैं क्या करूँगी। मैं अपने बेटे के बिना कैसे रहूँगी। ?

विशेष – 1. एकांकीकार ने कुलीना से यह कथन कहलाकर अपने व्यंग्यबाणों से युद्धभूमि से पीठ दिखाकर भागकर आये हुए अपने पुत्र महाराणा जसवंतसिंह को अत्यन्त लज्जित कर दिया है। एक क्षत्राणी के हृदय को भी अपने वीर पुत्र के रणक्षेत्र से भाग आने का दु:ख व्यथित कर रहा है। **2.** भाषा ओजस्वी व प्रवाहपूर्ण और शैली आद्योपान्त व्यंग्यात्मक है।

(5)

''बस कर, माँ ! बस कर। तूने मेरी आँखें खोल दी हैं। तूने मुझे जगा दिया है, तूने मुझे अंधेरे से निकालकर ज्योति और जीवन के पथ पर डाल दिया है। कितनी लज्जा और शोक की बात है कि राजपूत का बच्चा पराजित होकर भाग आये। भगवान् जाने मुझे क्या हो गया था। मुझे वहीं कटकर मर जाना चाहिये था। परन्तु तुम्हारा कहा-सुना व्यर्थ नहीं गया। मैं अपनी कायरता के लिए तुमसे क्षमा माँगता हूँ।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के श्री सुदर्शन द्वारा विरचित 'सिंह जागरण' एकांकी से उद्धृत है। अपनी माँ के व्यंग्य बाणों से जब उनका सोया हुआ पौरूष जाग उठा है तो वे राजमाता कुलीना को सम्बोधित कर आत्मग्लानि भरे शब्दों में कहते हैं कि –

व्याख्या – माँ ! आपने बहुत कुछ कह दिया है, अब और अधिक व्यंग्यबाण मुझ पर न चलाओ। अब बस करो, अपने इन गौरव प्रदान करने वाले व्यंग्य बाणों से तुमने मुझे मेरी भूल का अहसास करा दिया है। मुझे भान हो गया है कि मैंने भूल की है। माँ, ये वचन कहकर तुमने तो मानो मेरी आँखें ही खोल दी हैं तथा मुझे जीवन और प्राणों की मोह निद्रा से जगा दिया है। जीवन के प्रति मुझमें जो मोह था उस मोह के अन्धकार से आपने मुझे बाहर निकाल दिया है और जीवन के पथ पर अपने कर्त्तव्य की ओर चलने के लिये प्रेरित करने की ज्योति से तुमने मेरे जीवन को ज्योतर्मय कर दिया है। एक वीर राजपूत योद्धा होते हुए भी मेरे लिए कितनी लज्जा और दु:ख की बात है कि मैं युद्धभूमि से पराजित होकर प्राण बचाने के लिए पीठ दिखाकर भाग आया हूँ। राजपूतों के लिये यह कलंक की बात है। अपने इस कृत्य से राजपूतों की महान् परम्पराओं, उच्च आदर्शों और आन-बान एवं शान को मैंने मलिन कर दिया है। माँ, ईश्वर ही जाने उस रणभूमि में न जाने मुझे क्या हो गया था ? न जाने मुझे क्यों अपने प्राणों का मोह हो गया जो मैं भागकर चला आया। मुझे तो पीठ दिखाकर भाग आने के स्थान पर युद्ध भूमि में ही कट-कट कर वीरगति को प्राप्त हो जाना चाहिए था। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपने जितना भी कहा और मुझे सुनाया वह व्यर्थ नहीं जायेगा। मैं अपनी इस कायरता के लिए आपसे क्षमा माँगता हूँ और पुन: विश्वास दिलाता हूँ कि अब युद्धभूमि से पीठ दिखाकर नहीं जाऊँगा, चाहे मुझे वीरगति ही क्यों न प्राप्त हो जाये।

विशेष – 1. एकांकीकार इस कथन को महाराणा जसवन्तसिंह के मुख से कहलाकर अपने उद्देश्य में सफल हो गया है। राजमाता कुलीना के व्यंग्यबाणों का प्रभाव महाराणा पर पड़ा हुआ स्पष्ट दिखायी देता है और महाराणा को पुन: अपनी वीरता, शौर्य और पराक्रम प्रदर्शन करने के लिए उद्यत दिखाया गया है।

2. भाषा सरल और प्रतीकात्मक है।

10.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

10.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. श्री सुदर्शन किस युग के एकांकीकार हैं ?

उत्तर – श्री सुदर्शन द्विवेदीयुगीन एकांकीकार हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-2. प्रस्तुत एकांकी सिंह जागरण में कौन-से आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है ?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी सिंह जागरण में क्षत्रियत्व के उच्चादर्श की प्रतिष्ठा हुई है।

प्रश्न-3. सिंह-जागरण एकांकी के अनुसार वीर माँ का गौरव कब उज्ज्वल होने लगता है ?

उत्तर – जब उसका पुत्र वीरता से शत्रु को पराजित करता है अथवा स्वयं मर जाता है तब वीर माँ का हृदय गौरवान्वित होता है।

प्रश्न-4. माता कुलीना और पत्नि महामाया को जसवंतसिंह की कौन-सी बात से प्रसन्नता होती है ? सिंह जागरण एकांकी के आधार पर बताइये।

उत्तर – प्रसन्नता की बात यह थी कि जसवंतसिंह अपनी कायरता का दाग मिटाने के लिए तैयार हो जाता है।

प्रश्न-5. सिंह जागरण एकांकी में किस बात का चित्रण किया गया है ?

उत्तर – सिंह जागरण एकांकी में क्षत्रियत्व के उच्चादर्शों की प्रतिष्ठा की गई है। इसमें जोधपुर नरेश जसवंतसिंह के चरित्र को निरूपित कर ऐतिहासिक घटना और राजपूती गौरव का सुन्दर चित्रण किया है।

प्रश्न-6. एकांकीकार सुदर्शन ने प्रस्तुत एकांकी का शीर्षक किस आधार पर निर्धारित किया है ?

उत्तर – जसवंतसिंह की माँ कुलना और पत्नि महामाया ने अपने व्यवहार और व्यंग्यबाणों के माध्यम से एक सोते हुए शेर अर्थात् जसवंतसिंह को युद्ध के लिए तैयार किया अर्थात् उसे जगाया है, इसी आधार पर इस एकांकी का शीर्षक 'सिंह जागरण' रखा गया है।

प्रश्न-7. प्रस्तुत एकांकी 'सिंह जागरण' की मूल संवेदना क्या है ?

उत्तर – युद्ध भूमि से पराजित होकर या युद्ध से भाग कर आना राजपूतों की वीरतापूर्ण परंपरा के विपरीत है। ऐसी महान् व गौरवपूर्ण परम्परा वाले इतिहास को किसी ने आज तक भी कलंकित नहीं किया है। गौरवपूर्ण अतीत के माध्यम से अपनी मूल संवदेना व्यक्त करते हुए ऐतिहासिक महत्त्व को स्पष्ट किया है।

प्रश्न-8. प्रस्तुत एकांकी सिंह जागरण का उद्देश्य एक या दो पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – अपने देश की आजादी के लिए प्रत्येक भारतवासी संघर्षरत रहे, कोई भी अपने कर्त्तव्य से विमुख न हो। यही इस एकांकी का उद्देश्य है।

प्रश्न-9. सिंह जागरण एकांकी की महत्त्वपूर्ण पात्र महामाया किस प्रकार के चरित्र वाली महिला है ?

उत्तर – महामाया राजपूती आन वाली, वीरता पर विश्वास करने वाली, कठोर वचनों वाली व्यथित राजूपत महिला है।

प्रश्न-10. 'राजपूत' के बेटे के लिए युद्ध से भागकर आना ऐसा पाप है, जिसका कोई प्रायश्चित नहीं है।'' कथन में कौनसी भावना व्यक्त हुई है। एकांकी सिंह जागरण के आधार पर बताइये।

उत्तर – प्रस्तुत कथन में स्वाभिमान की भावना की पुष्टि हुई है।

प्रश्न-11. ''खैर यह साधारण बात है, प्राण बच गये, यही बड़ी बात है। प्राण रक्षा तो क्षत्रिय का सर्वप्रथम धर्म है।'' कथन किसका है तथा इसमें कौन-सा भाव व्यक्त हुआ है ?

उत्तर – प्रस्तुत कथन महामाया का है, जिसमें अपने पति के लिये व्यंग्यभाव समाहित है।

प्रश्न-12. प्रस्तुत एकांकी सिंह-जागरण में कौन-कौन से आदर्शवादों की पुष्टि की गई है ?

उत्तर – सिंह जागरण एकांकी में ऐतिहासिक शौर्य एवं राजपूती तथा सामाजिक आदर्शवाद की पुष्टि की गई है।

प्रश्न-13. **''भल्ला हुआ तो मारिया, वहणी म्हारा कंतु। लज्जेजं तुअ वयम सिअठ, जई भग्गा घर अंतु॥''** पंक्तियों में किनकी भावनाओं के विषय में अभिव्यक्ति दी है ?

उत्तर – तत्कालीन सामाजिक परिवेश में राजपूत स्त्रियों की भावनाओं के विषय में अभिव्यक्ति की है।

प्रश्न-14. ''जी चाहता है कि हम उनको बता दें कि जो राजपूत युद्ध से हारकर घर की तरफ भागता है, उसके घर की स्त्रियाँ उसकी गर्दन काटने के लिए द्वार पर नंगी तलवार लेकर खड़ी हो जाती है।'' प्रस्तुत कथन किसने और किससे कहा था ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्तर – प्रस्तुत कथन आदर्शवाद की पुष्टि करते हुए महामाया ने अपनी सखी शक्ति से कहती है।

प्रश्न-15. सुदर्शनजी द्वारा विरचित एकांकी 'ऑनरेरी मजिस्ट्रेट' किस शैली में लिखा गया है ?

उत्तर – आपका एकांकी 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' कृत्रिम पद्धति के विरुद्ध यथार्थवादी शैली में लिखा गया है।

10.2.2 लघूत्तरात्मकप्रश्न

प्रश्न-1. ऐतिहासिक घटना के आधार पर 'सिंह जागरण' एकांकी के नामकरण का औचित्य स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – 'सिंह जागरण' एक ऐतिहासिक एकांकी है। इसमें जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह के जीवन की एक घटना चित्रित है। जसवन्तसिंह युद्ध से पराजित होकर अपने प्राण बचाते हुए भाग आते हैं। जब यह समाचार राजमाता कुलीना और उनकी रानी महामाया को मिलता है, तो उन्हें गहरा आघात लगता है। कुलीना और महामाया महाराणा के इस कायरतापूर्ण कृत्य पर अत्यंत क्षुब्ध और लज्जित हो जाती हैं। रानी महामाया इतनी क्रोधित होती हैं कि वह किले का दरवाजा तक नहीं खुलवाती। महामाया कहती है कि महाराणा के कायरों की भांति अपने प्राणों को बचाने के लिए युद्ध से भागकर आने से राजपूत जाति कलंकित हो गई है। महामाया महाराणा को बहुत कोसती है और उन्हें घायलावस्था में उनके भगोड़े सैनिकों सहित आठ दिन तक किले के फाटक से बाहर ही रखती है। राजमाता कुलीन किसी तरह से किले का फाटक खुलवाती है और महामाया को इस बात के लिए राजी करती है। कुलीना महामाया को सलाह देती है कि वह महाराणा को रसोईघर में बिठाकर उनके लिए हलवा बनाये। महामाया ऐसा ही करती है। कुलीना कहती है कि महमाया हलवा बनाने के लिए कड़ाही से कलछी न टकराये, क्योंकि युद्धभूमि में तलवारों की झनकार और लोहे से लोहा बजता देखकर उसका पुत्र डरकर अपने प्राण बचाने के लिए अपनी माँ की गोद में आ छिपा है। इसलिए कहीं ऐसा न हो जाए कि कड़ाही से कलछी के टकराने की आवाज को युद्धभूमि में टकराती हुई तलवारों की आवाज समझकर मेरा बेटा पुन: डरकर यहाँ से भी न भाग जाये। बेचारा मेरा शक्तिहीन पुत्र यहाँ से भागकर कहाँ जायेगा। इतने में महामाया थाल पर हलवा लाकर परोसती है। तब जसवन्तसिंह थाल को परे सरकाकर तनकर खड़े होकर कहते हैं – ''बसकर, माँ! बसकर! तूने मुझे जगा दिया है, मेरी आँखें खोल दी हैं, तूने मुझे अंधेरे से निकालकर ज्योति और जीवन के पथ पर डाल दिया है। कितनी लज्जा और शोक की बात है कि राजूपत का बच्चा पराजित होकर भाग आए। मैं अपनी कायरता के लिए तुमसे क्षमा माँगता हूँ।'' इस प्रकार महाराणा जसवन्तसिंह युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं। कुलीन तथा महामाया अपने उद्देश्य में सफल हो जाती हैं। कुलीना और महामाया ने एक सोये हुए सिंह को जगा दिया अर्थात् सिंह का जागरण किया। इसीलिए श्रीसुदर्शन ने ऐतिहासिक घटना के आधार पर इस एकांकी का शीर्षक 'सिंह जागरण' रखा है जो कि औचित्यपूर्ण है।

प्रश्न-2. श्री सुदर्शन द्वारा विरचित एकांकी 'सिंह जागरण' के मूल उद्देश्य पर अपने संक्षिप्त विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर – कोई भी एकांकीकार जब किसी एकांकी की रचना करता है तो एकांकीकार उद्देश्य उसके मानस-पटल पर छाया रहता है। साहित्यकार ऐसा भावुक चिन्तक होता है, जो अपनी रचना के द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ समाज का पथ-प्रदर्शन भी करता है। साहित्य चूँकि समाज का दर्पण होता है, इसलिए साहित्यकार साहित्य रूपी दर्पण में समाज को प्रतिबिम्बित करता है। अपनी रचना का उद्देश्य साहित्यकार अपनी कृति में स्पष्ट रूप से परिलक्षित करता है। श्री सुदर्शन ने अपने एकांकी 'सिंह-जागरण' में समाज को अपने उद्देश्य से अवगत कराया है। सुदर्शन द्विवेदी युग के एकांकीकार हैं वे उस पीढ़ी के एकांकीकार हैं, जिस युग में देश में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध भारतीय जनता संघर्ष कर रही थी। अपने देश की आजादी के लिए प्रत्येक भारतवासी संघर्षरत रहे, कोई भी भारतवासी अपने कर्त्तव्य से विमुख न हो जाए, इस दृष्टि से समाज को जागृत करने के लिए लेखक ने 'सिंह जागरण' एकांकी की रचना की है। उन्होंने अपने उद्देश्य की अभिव्यक्ति के लिए जसवन्तसिंह से सम्बन्धित घटना को माध्यम बनाया है, परन्तु उसे आधुनिक संदर्भ में जोड़ा गया है। कुलीना और महामाया को लेखक ने अपने विचारों का माध्यम बनाया है और उनके संवादों के माध्यम से अपने लेखन के उद्देश्य की पूर्ति की है। एकांकीकार ने भागकर आये हुए जसवंतसिंह की स्थिति का चित्रण करके समस्या को खड़ा तो किया है, साथ ही जसवंतसिंह को पुन: युद्ध के लिए जाने के लिए तैयार करके समस्या का समाधान कर अपने उद्देश्य की पूर्ति कर दी है।

10.2.3 निबन्धात्मकप्रश्न

प्रश्न-1. '' 'सिंह जागरण' एकांकी में ऐतिहासिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा के साथ व्यंग्यात्मकता की क्रान्तिकारी अभिव्यक्ति हुई है।'' इस कथन पर सोदाहरण प्रकाश डालिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्तर – ''सिंह जागरण'' ऐतिहासिक घटनाक्रम पर आधारित एकांकी है। श्री सुदर्शन ने इसमें जोधपुर के महाराणा जसवन्तसिंह के जीवन की एक घटना का निरूपण किया है। इसके कथानक के अनुसार जसवन्तसिंह युद्ध से पीठ दिखाकर लौट आते हैं। इस तरह वे राजपूती मान-मर्यादा को भूल जाते हैं, उनका शौर्य प्रसुप्त हो जाता है। उनके इस कायारतपूर्ण आचरण को देखकर रानी महामाया अत्यधिक व्यथित हो जाती है। वह पति को किले में प्रवेश करने की अनुमति नहीं देती है। अपने भाग्य को कोसती हुई वह राजामाता कुलीना से कहती है कि ''अगर वह राजपूत था, अगर उसने वीर माता का दूध पिया था, अगर वह राजपूत सिंहनी की गोद में पलकर जवान हुआ था, तो उसे चाहिए था, रणभूमि में कट जाता, मृत्यु के भय को पाँव तले मसल डालता और संसार को दिखा देता कि राजपूत का बच्चा मृत्यु और जीवन दोनों को समान समझता है।'' इस तरह अपने राजपूती गौरव को ठेस लगती देखकर रानी महामाया अत्यन्त लज्जित हो जाती है। एकांकीकार ने कुलीना और महामाया के आचरण में ऐतिहासिक आदर्शों का समावेश किया है तथा उनके कथनों में व्यंग्यात्मकता भी दर्शायी है।

एकांकी में ऐतिहासिक आदर्शवाद

प्रस्तुत एकांकी में ऐतिहासिक आदर्शवाद अनेक प्रकार से व्यक्त हुआ है, उसे निम्नलिखित रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है –

1. शौर्य का आदर्शवाद – मध्यकालीन इतिहास में शौर्य की परम्परा अद्वितीय थी। योद्धा युद्ध भूमि में जाकर शत्रुओं का संहार करे, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे और शत्रुओं का राज्य अपनी सीमा में मिलाये, युद्ध भूमि से कभी पराजित होकर न आये, यही एक शौर्यवान् योद्धा की पहचान होती थी। मध्यकाल में शौर्य योद्धा का आभूषण माना जाता था और शौर्यवान् वीर पति क्षत्रिय-स्त्री का शृंगार हुआ करता था। क्षत्राणी इस बात पर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करतो थी कि उसका पति वीर योद्धा है और युद्ध में विजयश्री प्राप्त करके लौटा है। राजपूत स्त्रियों में उस युग में यह भावना थी कि उसका पति युद्ध से विजयी होकर लौटे और यदि विजयश्री उसके हाथ न लगे तो अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए युद्ध-भूमि में वीरगति प्राप्त कर ले। परन्तु राजपूत स्त्री को कभी यह स्वीकार्य नहीं था कि उसका पति रण-भूमि से शत्रु को पीठ दिखाकर अपने प्राण बचाने के लिए घर भाग आये। तत्कालीन समाज में शौर्य की चरम सीमा थी योद्धा द्वारा रणभूमि में शत्रुओं द्वारा विजय प्राप्त करना या वीरगति को प्राप्त हो जाना। ''सिंह-जागरण' एकांकी में इसी मध्यकालीन शौर्य की ऐतिहासिक एवं आदर्शवादी परम्परा का चित्रण किया गया है।

2. राजपूती आदर्शवाद – मध्यकालीन शौर्य का प्रदर्शन राजपूतों के इतिहास की एक अनमोल निधि रही है। राजपूती इतिहास में भी ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जबकि योद्धाओं ने अपनी वीरता और शौर्य का चमत्कार दिखाया है। शौर्य को यदि हम राजपूत आदर्शवाद कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। तत्कालीन सामाजिक परिवेश में राजूपत स्त्रियों की भावनाओं के विषय में यह उक्ति प्रचलित थी कि –

''भल्ला हुआ जु मारिया, बहणी म्हारा कंतु। लज्जेजं तुह वयम् सिअउ, जइ भग्गा घर अन्तु॥''

अर्थात् हे सखि! अच्छा हुआ जो मेरा पति युद्ध भूमि में वीरगति को प्राप्त हो गया। यदि वह युद्ध भूमि से भागकर घर आता तो मैं अपनी सखियों में लज्जित हो जाती। 'सिंह जागरण' एकांकी में जब जसवन्तसिंह पराजित होकर रणभूमि से भागकर आते हैं तो एक वीर राजपूत-स्त्री होने के कारण राजमाता कुलीना और महामाया किले का फाटक नहीं खोलती हैं और आठ दिन तक जसवन्तसिंह को बाहर ही रखती हैं। महामाया अपने पति के इस कायरतापूर्ण कृत्य से अत्यधिक लज्जित होती है। महामाया का यह कथन इस भाव की पुष्टि करता है, जब वह कुलीना से कहती है कि ''मगर वह कायर है। उसने दुश्मन को पीठ दिखायी है। वह प्राण बचाने के लिए रण-क्षेत्र से भागा है। माँ! जरा सोचो, लोग अपने-अपने घर में हमारे बारे में क्या कहते होंगे? मेरी सखियाँ जो मेरा भाग्य सराहती थीं, आज मेरे दुर्भाग्य पर शोक कर रही होंगी।'' शौर्य के राजपूती आदर्शवाद में एक धारणा यह भी थी कि वीर क्षत्राणी के गर्भ से वीर पुत्र ही उत्पन्न होता है और वीर क्षत्राणी माँ का दूध पीने वाला वीर पुत्र ही होता है। परन्तु जब जसवन्तसिंह भागकर आता है तो महामाया को सन्देह होता है कि महाराणा ने यदि वीर माता का दूध पिया होता तो वह ऐसा कायरतापूर्ण कार्य नहीं करते। वह कुलीन से कहती है – ''माँ! क्या सचमुच वह तेरा बेटा है? नहीं, मालूम होता है वह तेरा बेटा नहीं है। तूने किसी का पुत्र लेकर पाल लिया है। तू सच्ची राजपूतनी है। तेरे दूध में यह निर्लज्जता नहीं हो सकती। वह तेरा बेटा नहीं है। वह तेरा बेटा नहीं हो सकता।'' सत्य है, उस युग में राजपूत आदर्शवाद के अनुसार वीर माता के गर्भ से वीर पुत्र उत्पन्न होता था और वीर क्षत्राणी का दूध पीने वाला वीर योद्धा ही होता था। इस प्रकार एकांकीकार ने इस एकांकी में राजपूती शौर्य के आदर्शवाद की खुलकर अभिव्यंजना की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. सामाजिक आदर्शवाद – मध्यकालीन ऐतिहासिक युग में शौर्य को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। उस युग में क्षत्रिय की पहचान यह थी कि उसके हाथ में तलवार हो, वह घोड़े पर सवार हो और वह सदा युद्ध-भूमि में डटा रहे। समाज भी उन्हीं योद्धाओं को महत्त्व देता था जो रण-भूमि से विजयश्री लेकर आते थे, उन्हीं योद्धाओं को अमर माना जाता था जो वीर-गति को प्राप्त होते थे। परन्तु जो प्राण बचाने के लिए शत्रु को पीठ दिखाकर भाग आते थे, उनहें कायर कहकर सम्बोधित किया जाता था। तत्कालीन समाज में क्षत्रिय को युद्धों के लिए तथा वीर-गति पाने के लिए जन्मा हुआ माना जाता था। यह कथन तत्कालीन समाज में क्षत्रियों के महत्त्व को और भी अधिक बढ़ाता है कि –

बारह बरस तक कूकर जीवें, बरस अट्ठारह जीयें सियार।
तीस बरस तक क्षत्रिय जीवें, आगे जीने को धिक्कार॥

अत: स्पष्ट है कि उस युग में क्षत्रिय को युद्ध में काम आ जाने के लिए ही जन्मा माना जाता था। परन्तु जिस क्षत्रिय को प्राणों का मोह हो जाये और अधिक जीवन की कामना के लिए वह रण-भूमि से पीठ दिखाकर भाग आये, तो उसे समाज में कलंकित माना जाता था। 'सिंह जागरण' एकांकी में तत्कालीन सामाजिक आदर्शवाद की इसी धारणा और मान्यता की अभिव्यंजना की गयी है। यह अभिव्यंजना महामाया के इस कथन में है जब वह कुलीन से कहती है कि एक बार महाराणा से मैंने हँसकर पूछा था कि यदि कभी वे युद्धभूमि से भाग आये तो क्या होगा ? तब महाराणा ने कहा था – ''महामाया ! अगर कभी मेरे जीवन में ऐसा अशुभ समय आ जाये तो अपनी कटार मेरी छाती में भोंक देना।'' इस एकांकी में एक अन्य स्थान पर इसी आदर्शवाद की पुष्टि करते हुए महामाया अपनी सखी शक्ति से कहती है-''जी चाहता है, हम उनको बता दें कि जो राजपूत युद्ध से हारकर घर की तरफ भागता है, उसके घर की स्त्रियाँ उसकी गर्दन काटने के लिए द्वार पर नंगी तलवार लेकर खड़ी हो जाती हैं।''

इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि श्री सुदर्शन द्वारा रचित 'सिंह जागरण' एकांकी में चित्रित आदर्शवाद अत्यधिक गरिमामय है, इसमें वीर भावों की सृष्टि हुई है। ऐतिहासिक आदर्शवाद पाठकों के हृदय को स्पर्श करने में पूर्णतया समर्थ है।

एकांकी का व्यंग्यात्मक रूप

एकांकीकार अपनी रचना में अपने चिन्तन, विचारधारा और भावों की अभिव्यक्ति करता है। इस अभिव्यक्ति को वह अपने पात्रों और उनके संवादों के द्वारा स्पष्ट करता है। संवादों में कथोपकथन का बड़ा महत्त्व होता है। यदि कथोपकथन की शैली व्यंग्यात्मक हो तो एकांकी के भाव, भाषा तथा महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है, एकांकी में रोचकता आ जाती है, पाठकों में कौतूहल उत्पन्न होता है और उसमें प्रभावान्विति उत्पन्न होती है। 'सिंह-जागरण' एकांकी के व्यंग्यपूर्ण संवाद इस बात के ज्वलन्त प्रमाण हैं। इस एकांकी में व्यंग्य करने वाली दो महिला पात्र हैं। प्रथम पात्र महामाया है, जो राजमाता कुलीना और महाराणा पर व्यंग्य करती है। दूसरी स्त्री-पात्र राजमाता कुलीन है जो भागे हुए पुत्र पर व्यंग्य करती है। अत: दोनों पात्रों के व्यंग्य का पृथक्-पृथक् विश्लेषण निम्नलिखित रूपों के अनुसार किया जा सकता है –

जसवन्तसिंह : (जमीन की ओर देखते हुए) महामाया ! यह पराजय जीवन भर न भूलूँगा।

महामाया : (तीखी दृष्टि से देखकर) खैर, यह साधारण बात है। प्राण बच गये, यही बड़ी बात है। प्राण-रक्षा राजपूत का सर्वप्रथम धर्म है।

जसवन्तसिंह : मैंने अपनी तरफ से पूरा-पूरा यत्न किया, परन्तु मेरी कोई पेश न गई।

महामाया : सत्य है, असहाय मनुष्य कर भी क्या सकता है।

जसवन्तसिंह : (क्रोध से) मालूम होता है, तुम मेरी हँसी उड़ा रही हो।

महामाया : राम, राम ! मुझमें यह साहस कहाँ कि आप जैसे विश्व-विजयी की हँसी उड़ा सकूँ ?

जसवन्तसिंह : (तेज होकर) आखिर तुम क्या चाहती थीं ? मैं मर जाता, तो तुम खुश हो जातीं ?

महामाया : कायरों के लिए मरना बहुत कठिन है। वे मौत को देखकर दूर ही से भाग निकलते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. कुलीना द्वारा किये गये व्यंग्य – कुलीना जसवन्तसिंह की माता है, उसे भी इस बात का दु:ख है कि उसका पुत्र रण-भूमि से भाग आता है और उसने माँ का दूध लजा दिया है। उसने जसवन्तसिंह को आठ दिन बाद किले के फाटक खुलवा दिये और व्यंग्य बाणों से जसवन्तसिंह का हृदय परिवर्तन करने की योजना बनायी। उसी योजना के अन्तर्गत महामाया हलुआ बनाती है। जब महामाया हलुआ बनाते हुए लोहे की कलछी को कड़ाही पर चलाती है तो लोहे से लोहा टकराने की आवाज आती है। तब कुलीना व्यंग्य करती हुई कहती है कि –

कुलीना : महामाया ! यह किस चीज की आवाज है – यह तुम क्या कर रही हो ?

महामाया : (आश्चर्य से) कड़ाही में कलछी चला रही हूँ माँजी !

कुलीना : अरी बेटी ! कलछी बाहर निकाल, नहीं तो अँधेर हो जायेगा।

महामाया : (और भी चकित होकर) माँ ! इससे अँधर हो जायेगा, मैं कुछ समझी नहीं......... ।

कुलीन : क्या तुम्हें मालूम नहीं कि लोहे से लोहा बजता देखकर मेरा बेटा मेरी गोदी में छिपने के लिए यहाँ भागकर आया है । क्या तुम उसे यहाँ से भी भगाना चाहती हो ? बेटी यह लोहे की कलछी बाहर फेंक दो । कहीं ऐसा न हो, वह लोहे की कड़ाही से टकरा जाये और मेरा बेटा डरकर यहाँ से भी भाग निकले, फिर मैं क्या करूँगी ?

इस प्रकार कुलीना ने भी अत्यधिक पैने और प्रभावशाली व्यंग्य कहकर जसवंतसिंह के मन को उद्वेलित किया है।

व्यंग्य से सामाजिक क्रान्ति – 'सिंह जागरण' एकांकी में महामाया और कुलीना के द्वारा मर्मस्पर्शी व्यंग्य कहे गये हैं। जहाँ एक ओर जसवन्तसिंह के पीठ दिखाकर भाग आने से कुलीना और महामाया को मर्मान्तक पीड़ा हुई है, उनका गौरव छिना है और समाज के समक्ष वे लज्जित हुई हैं, वहीं माता और पत्नी के व्यंग्य-बाणों का प्रभाव जसवन्तसिंह पर भी पड़ता है और उनका मन उद्वेलित हो जाता है। जसवन्तसिंह का हारा हुआ, थका हुआ और डरा हुआ मन पुन: सम्बल पाता है। उसके मन में एक क्रान्ति उत्पन्न होती है और वह अपने अपमानजनक जीवन जीने तथा व्यंग्य-बाण सहने की अपेक्षा पुन: युद्धभूमि में जाने को तैयार हो जाता है। यह क्रान्ति और ये विचार जो उसके मन में उत्पन्न होते हैं, इसका श्रेय कुलीना और महामाया के व्यंग्य-बाणों को जाता है। कुलीना और महामाया के ये व्यंग्य-संवाद न केवल जसवन्तसिंह को क्रान्ति के लिए प्रेरित करते हैं बल्कि दर्शकों के मनोभावों को भी आन्दोलित कर देते हैं।

श्री सुदर्शन स्वतंत्रता-संग्राम के युग में एकांकीकार हैं। उनकी आँखों के सामने एक ओर स्वाधीनता आन्दोलन का दृश्य था तथा दूसरी ओर उसमें भारतीयों की भूमिका का चिन्तन था। वे तत्कालीन भारतीय जनता को राष्ट्रीय आन्दोलन की क्रान्ति में कूद पड़ने के लिए जागृत करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने जसवन्तसिंह, महामाया और कुलीन को माध्यम बनाकर भगोड़े जसवन्तसंह को प्रतिबिम्बित किया है और राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति निष्क्रिय व उदासीन जनता को जगाने का कार्य किया है। अत: तत्कालीन भारतीय जनता रूपी सिंह में जागृति लाना अर्थात् 'सिंह जागरण' की व्यंग्यात्मकता का उद्देश्य भी यही दिखाई देता है।

निष्कर्ष – इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'सिंह-जागरण' एकांकी एक आदर्शवादी ऐतिहासिक एकांकी है और इसका ऐतिहासिक आदर्शवादी पाठकों व दर्शकों के हृदय को तथा उनकी भावनाओं के स्पर्श करता है। इस एकांकी को हम एक व्यंग्यपूर्ण एकांकी भी कह सकते हैं। क्योंकि इसमें सभी पात्रों के कथन अत्यन्त व्यंग्यपूर्ण हैं और इनमें सामाजिक चेतना में क्रान्ति तथा प्रोत्साहन की क्षमता विद्यमान है। इस तरह यह आदर्शवादी और व्यंग्यात्मक श्रेष्ठ रचना है।

प्रश्न- 2. 'सिंह जागरण' एकांकी के नामकरण का औचित्य सिद्ध करते हुए इसकी मूल-संवेदना और उद्देश्य पर प्रकाश डालिये।

उत्तर – 'सिंह जागरण' श्रीसुदर्शन का श्रेष्ठ ऐतिहासिक घटना पर आधारित एकांकी है। इस रचना में क्षत्रियत्व के उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा की गई है। इसमें जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह के चरित्र को निरूपित कर ऐतिहासिक घटना और राजपूती गौरव का सुन्दर चित्रण किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नामकरण का औचित्य

एकांकी का शीर्षक या नामकरण एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है। एकांकी का नामकरण पात्र-विशेष या नायक-नायिका के नाम पर आधारित, विशेष घटना पर आधारित, चारित्रिक विशेषता, विशेष प्रसंग, उत्सव या प्रवृत्ति पर आधारित होता है। एकांकी का नामकरण पाठक को आकृष्ट करने वाला, वर्ण्य-विषय के अनुरूप, संक्षिप्त, मौलिक तथा कौतूहल उत्पन्न करने वाला होना चाहिए। उसे वर्ण्य-विषय से असम्बद्ध नहीं होना चाहिए। प्रायः पाठक एकांकी में सबसे पहले शीर्षक को ही देखता है। यदि पाठक को शीर्षक सुन्दर, रोचक और कौतूहल उत्पन्न करने वाला लगता है तो मन पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से एकांकी का शीर्षक बहुत सोच-विचार कर बहुत सुन्दर और मौलिक रखा जाना चाहिए। जहाँ तक श्रीसुदर्शन द्वारा रचित एकांकी 'सिंह जागरण' का प्रश्न है, इस एकांकी का नामकरण सर्वथा उचित किया गया है। इसके औचित्य को निम्न बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है—

1. ऐतिहासिक घटना के आधार पर – 'सिंह जागरण' एक ऐतिहासिक एकांकी है। इसमें जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह के जीवन की एक घटना विचित्र है। जसवन्तसिंह युद्ध से पराजित होकर अपने प्राण बचाते हुए भाग आते हैं। जब यह समाचार राजमाता कुलीना और उनकी रानी महामाया को मिलता है, तो उन्हें गहरा आघात लगता है। कुलीना और महामाया महाराणा के इस कायरतापूर्ण कृत्य पर अत्यंत क्षुब्ध और लज्जित हो जाती हैं। रानी महामाया इतनी क्रोधित होती है कि वह किले का दरवाजा तक नहीं खुलवाती। महामाया कहती है कि महाराणा के कायरों की भांति अपने प्राणों को बचाने के लिए युद्ध से भागकर आने से राजपूत जाति कलंकित हो गई है। महामाया महाराणा को बहुत कोसती है और उन्हें घायलावस्था में उनके भगोड़े सैनिकों सहित आठ दिन तक किले के फाटक के बाहर ही रखती है। राजमाता कुलीना किसी तरह से किले का फाटक खुलवाती है और महामाया को रसोईघर में बिठाकर उनके लिए हलवा बनाये। महामाया ऐसा ही करती है। महामाया हलवा बनाती है और महाराजा को पास में बैठाकर उन पर व्यंग्यबाण चलाती है। महारानी हलवा बनाने के लिए कड़ाही से कलछी न टकराये, क्योंकि युद्धभूमि में तलवारों की झनकार और लोहे से लोहा बजता देखकर उसका पुत्र डरकर अपने प्राण बचाने के लिए अपनी माँ की गोद में आ छिपा है। इसलिए कहीं ऐसा न हो जाए कि कड़ाही से कलछी के टकराने की आवाज को युद्धभूमि में टकराती हुई तलवारों की आवाज समझकर मेरा बेटा पुनः डरकर यहाँ से भी न भाग जाये। बेचारा मेरा शक्तिहीन पुत्र यहाँ से भागकर कहाँ जायेगा। इतने में महमाया थाल पर हलवा लाकर परोसती है। तब जसवन्तसिंह थाल को परे सरकाकर तनकर खड़े होकर कहते हैं – "बसकर, माँ! बसकर। तूने मुझे जगा दिया है, मेरी आँखें खोल दी हैं, तूने मुझे अंधेरे से निकालकर ज्योति और जीवन के पथ पर डाल दिया है। कितनी लज्जा और शोक की बात है कि राजपूत का बच्चा पराजित होकर भाग आए। मैं अपनी कायरता के लिए तुमसे क्षमा माँगता हूँ।" इस प्रकार महाराणा जसवन्तसिंह युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं। कुलीना तथा महामाया अपने उद्देश्य में सफल हो जाती हैं। कुलीना और महामाया ने एक सोये हुए सिंह को जगा दिया अर्थात् सिंह का जागरण किया। इसीलिए श्री सुदर्शन ने ऐतिहासिक घटना के आधार पर इस एकांकी का शीर्षक 'सिंह जागरण' रखा है जो कि औचित्यपूर्ण है।

2. पाठकों की मनोवृत्ति के आधार पर – प्रस्तुत एकांकी का शीर्षक मौलिक है। लेखक ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर इस एकांकी के शीर्षक का नामकरण किया है और यह शीर्षक पाठक की रुचि के अनुसार रखा गया है। एकांकीकार जानता है कि ऐतिहासिक कथानक वाले एकांकी को वीर रस की निष्पत्ति करने वाला नाम ही अधिक उपयुक्त और समीचीन हो सकता है। इसलिए एकांकीकार ने इसका शीर्षक 'सिंह जागरण' दिया है। प्रस्तुत एकांकी में लेखक ने राजपूतों को उनकी खोई हुई प्रतिष्ठा दिलाने के लिए एकांकी के पात्र महाराणा जसवंतसिंह को माध्यम बनाया है। महाराणा जसवन्तसिंह युद्ध से भागकर आये हैं और उन्हें अपने कर्त्तव्य, दायित्व तथा राजपूती आन-बान का भान कराना आवश्यक हो जाता है। इसीलिए नाटकीय ढंग से उन्हें पुनः अपने कर्त्तव्य की ओर उन्मुख करने के लिए उन्हें जागृत करना पड़ता है और चूंकि महाराणा स्वयं एक सिंह हैं, इसलिए सोये हुए सिंह का जागरण किया गया है। एकांकी के शीर्षक को पढ़कर पाठक को ऐसा लगे कि किस सिंह का जागरण किया गया है। इस दृष्टि से भी इस एकांकी का नामकरण 'सिंह जागरण' औचित्यपूर्ण लगता है।

'सिंह जागरण' एकांकी की मूल संवेदना

प्रस्तुत एकांकी की मूल संवेदना यह है कि एकांकीकार पाठक को इस घटना की ओर आकर्षित कराता है कि जोधपुर के महाराजा युद्ध में घायल हो जाते हैं और अपने प्राण बचाने के लिए रणभूमि से भाग आते हैं। युद्ध से भागकर आना राजपूतों की वीरतापूर्ण परम्परा के विपरीत है। राजपूतों की वीरता और शौर्य के इतिहास में अनेकों उदाहरण हैं। राजपूतों की परम्परा रही है कि वे युद्ध में शत्रु को मारकर अथवा पराजित कर विजयी होकर लौटे। अन्यथा हारना एवं हारकर प्राण बचाने के लिए रणभूमि से डरकर भाग आने से तो युद्ध-भूमि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

में वीर गति को प्राप्त होना वे अधिक अच्छा मानते हैं। राजपूतों का इतिहास अत्यंत आन-बान और शान का रहा है। ऐसी महान परम्पराओं वाले गौरवपूर्ण इतिहास को कभी किसी राजपूत ने कलंकित नहीं किया। युद्ध भूमि से पराजित होकर शत्रु के डर से घायल होकर भाग आना राजपूतों के इतिहास में पहली घटना का चित्रण इस एकांकी में किया गया है। श्री सुदर्शन ने इस घटना का माध्यम जोधपुर नरेश जसवंतसिंह को बनाया है।

इस एकांकी में भले ही जसवंतसिंह की पराजय और भागकर आने की घटना एक सामान्य-सी बात हो सकती है, परन्तु राजपूती परम्परा को जानने वाले पाठक के हृदय में यह घटना एक वेदना उत्पन्न करती है। राजपूती परम्परा में युद्ध क्षेत्र से युद्ध भूमि से भाग आना एक लज्जापूर्ण और कलंकयुक्त बात है, परन्तु इस घटना के लिए जसवंतसिंह की रानी और राजमाता कुलीना का क्षुब्ध होना पाठक को सोचने के लिए विवश करता है। राजपूत स्त्रियों में यह भावना होती थी कि भले ही उनका पति युद्धभूमि में वीरगति प्राप्त करले, परन्तु पीठ दिखाकर भागकर आने वाले पति से वे स्वयं को कलंकित मानती थीं। प्रस्तुत एकांकी में कुलीना और महामाया भी इन्हीं विचारों की हैं। महामाया तो अपने पति के भाग आने पर अत्यधिक व्यथित हो उठती है और अपने पति को अपने व्यंग्य कथनों से, गहरे तानों से और विष से बुझे हुए एक-एक शब्द रूपी बाणों से अपमानित करती है। महामाया के माध्यम से लेखक ने कहलाया है कि ''अगर वह राजपूत था, अगर उसने वीर माता का दूध पिया था, अगर वह राजपूत सिंहनी की गोद में पलकर जवान हुआ था, तो उसे चाहिए था रणभूमि में डट जाता, संसार को दिखा देता कि राजूपत का बच्चा मृत्यु और जीवन दोनों को समान समझता है।'' इतना ही नहीं इस घटना से आहत होकर महामाया कुलीना से कहती है – ''माँ! क्या तुझे मेरे दुर्भाग्य पर दया नहीं आती? राजपूत माँ की कोख से जन्म लिया, राजपूतों के वीर परिवार में ब्याही गई और फिर भी मुझे भीरू, कायर, जीवन का लोभी पति मिला।'' वास्तव में एकांकीकार ने महामाया के इन कथनों में अपनी भावनाओं की सृष्टि की है और राजपूतों के गौरवपूर्ण अतीत के प्रति अपनी मूल संवेदना व्यक्त करते हुए इस घटना को वर्तमान संदर्भ से जोड़ने का प्रयास किया है। इस प्रकार लेखक ने एकांकी के द्वारा राजपूतों के गौरवपूर्ण अतीत की झाँकी प्रस्तुत की है और इस एकांकी को ऐतिहासिक महत्व देकर पाठकों को महामाया और कुलीना की भावनाओं की सराहना करवाने में सफलता प्राप्त की है।

एकांकी का उद्देश्य

कोई भी एकांकी जब किसी एकांकी की रचना करता है तो एकांकी का उद्देश्य उसके मानस-पटल पर छाया रहता है। साहित्यकार ऐसा भावुक चिन्तक होता है, जो अपनी रचना के द्वारा मनोरंजक के साथ-साथ समाज का पथ-प्रदर्शन भी करता है। साहित्य-चूँकि समाज का दर्पण होता है, इसलिए साहित्यकार साहित्य रूपी दर्पण में समाज को प्रतिबिम्बित करता है। अपनी रचना का उद्देश्य साहित्यकार अपनी कृति में स्पष्ट रूप से परिलक्षित करता है। श्रीसुदर्शन ने अपने एकांकी 'सिंह जागरण' में समाज को अपने उद्देश्य से अवगत कराया है। सुदर्शन द्विवेदी युग के एकांकीकार हैं वे उस पीढ़ी के एकांकीकार हैं, जिस युग में देश में अंग्रेजी सत्ता विरुद्ध भारतीय जनता संघर्ष कर रही थी। अपने देश की आजादी के लिए प्रत्येक भारतवासी संघर्षरत रहे, कोई भी भारतवासी अपने कर्त्तव्य से विमुख न हो जाय, इस दृष्टि से समाज को जागृत करने के लिए लेखक ने 'सिंह जागरण' एकांकी की रचना की है। उन्होंने अपने उद्देश्य की अभिव्यक्ति के लिए जसवन्तसिंह से सम्बन्धित घटना को माध्यम बनाया है, परन्तु उसे आधुनिक संदर्भ में जोड़ा गया है। कुलीना और महामाया को लेखक ने अपने विचारों का माध्यम बनाया है और उनके संवादों के माध्यम से अपने लेखन के उद्देश्य की पूर्ति की है। एकांकीकार ने भागकर आये हुए जसवंतसिंह की स्थिति का चित्रण करके समस्या को खड़ा तो किया है, साथ ही जसवंतसिंह को पुन: युद्ध के लिए जाने के लिए तैयार करके समस्या का समाधान कर अपने उद्देश्य की पूर्ति कर दी है।

10.3 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत एकांकी का नामकरण इसके वर्ण्य-विषय के अनुरूप है, जो कि आकर्षक और रोचक है। लेखक ने राजपूतों के अतीत की घटना के प्रति पाठकों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है और अपना विचार पाठकों तक पहुँचाकर अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की है।

10.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. सिंह जागरण एकांकी की मूल संवेदना लिखिए।
2. प्रस्तुत एकांकी का व्यंग्यात्मक रूप लिखिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-11 : उजड़े नौआखाली में प्रकाश

(डॉ. रामचरण महेन्द्र)

संरचना

11.0 लेखक परिचय

11.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

11.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

 11.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

 11.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

 11.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

11.3 सारांश

11.4 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.0 लेखक परिचय

डॉ. रामचरण महेन्द्र एकांकी साहित्य के आलोचक एवं निर्माता दोनों ही रूपों में विशेषज्ञ हैं। आपके शोधग्रंथ 'हिन्दी एकांकी : उद्‌भव और विकास' पर डॉक्टर की उपाधि मिली। ''हिन्दी एकांकी एवं एकांकीकार'', ''नये हिन्दी एकांकीकार'' आदि आपके ग्रंथ प्रकाशित हुए। आपके कई एकांकी संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं, जिनमें – ''अमर आत्माएँ'' और ''सिंह सपूत'' उल्लेखनीय हैं। आपके लगभग 40 सांस्कृतिक और ऐतिहासिक एकांकी प्रकाशित हुए हैं, जिन पर गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा शोध कार्य भी किया जा रहा है। ''इंसानियत जिन्दाबाद'' संग्रह के समस्त एकांकी सामाजिक यथार्थ को चित्रित करते हैं, जिनमें अत्यन्त कारुणिक चित्र प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

डॉ. रामचरण द्वारा विरचित एकांकियों को तीन भागों मे विभक्त किया जा सकता है – 1. ऐतिहासिक, 2. सामाजिक और 3. सांस्कृतिक। 'सिंह सपूत' तथा 'वीर आत्माएँ' संग्रहों में ऐतिहासिक एकांकी समाहित हैं। इनमें वीरत्व, ओज एवं प्राचीन भारतीय वीर परम्परा भी जीवित है। एकांकियों में भारतीय वीर विजयी चित्रित है। वे स्वतंत्रता, उच्च आदर्शों या अपने वचन की रक्षा के लिए युद्ध करते थे। उनमें महाराणा प्रताप, पुरु, हाड़ारानी, लक्ष्मीबाई, बन्दा बैरागी पर लिखे गये एकांकियों में प्राचीन वीरता और शौर्य के आदर्श प्रस्तुत किये गये हैं। 'संस्कृति की धरोहर' (1965) संग्रह के सात एकांकियों में भारतीय संस्कृति के उच्च और पवित्र आदर्श अंकित किये गये हैं। सामाजिक एकांकियों जैसे 'इंसानियत जिन्दाबाद' में आधुनिक सभ्य समाज की विषमताओं, शोषण और विद्रूपताओं को स्पष्ट किया गया है।

प्रस्तुत एकांकी में महात्मागाँधी के सद्‌भावना यात्रा-हिन्दु-मुस्लिम एकता का संदेश दिया गया है। तत्कालीन समाज और देश की स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है। अहिंसा की शक्ति से लाभ चित्रित करना एकांकी का मुख्य उद्देश्य है।

11.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''मुझे पूरा विश्वास है कि आज मानवता की दृष्टि में गिने जाने वाले महापुरुष को पूर्वी बंगाल के इस जिले से निराश नहीं जाना पड़ेगा। आपके अमृत सदृश वचनों का पान कर हमारी घृणा की भावनाएँ भस्मीभूत हो रही हैं। हिन्दू-मुसलमान के नाम पर जो पाशविक नर-हत्याकाण्ड हो रहा है, उसकी संकुचितता सत्य के प्रकाश में मालूम पड़ रही है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के डॉ. रामचरण महेन्द्र द्वारा विरचित 'उजड़े नौआखाली में प्रकाश' एकांकी से उद्‌धृत है। इस एकांकी का कथानक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। प्रसंग यह है कि नौआखाली में साम्प्रदायिक संघर्ष

हुआ है। हिन्दू-मुसलमानों का रक्त बहा है। बापू वहाँ साम्प्रदायिक सद्भावना उत्पन्न करने के लिए आए हैं। बापू नौआखाली में लोगों को अपनी यात्रा का उद्देश्य बताते हैं तो वहाँ का एक वृद्ध बापू को विश्वास दिलाते हुए कहता है कि –

व्याख्या – आप नि:सन्देह अपने उद्देश्य में सफल रहेंगे। मैं जानता हूँ कि आप इस युग के एक महापुरुष हैं। आप जैसे युगपुरुष जिस कार्य को करने के लिए निकल पड़ते हैं तो फिर पीछे नहीं हट सकते हैं। आप यहाँ जिस उद्देश्य के लिए आये हैं, उसे पूर्ण करके ही छोड़ेंगे। पूर्वी बंगाल के इस नौआखाली जिले से आप अपना मनोरथ पूर्ण किये बिना खाली हाथ अर्थात् निराश होकर कदापि नहीं लौटेंगे। हम लोगों ने अब तक यहाँ पर घृणा और हिंसा को बढ़ाया है, किन्तु अब आप जैसे महापुरुष के साम्प्रदायिक सद्भावना के, उन कल्याण के व सुखी मानवता के सम्बन्ध में जो विचार हमने सुने हैं, वे अमृत वचन हैं और आपके इन अमृत वचनों का पान कर अर्थात् सुन-समझकर हमारे मन से ईर्ष्या, द्वेष, घृणा तथा हिंसा की पाशविक भावनाएँ भस्मीभूत हो रही हैं। सारी बुराइयों का शमन आपकी अमृतवाणी ने कर दिया है।

वह वृद्ध कहता है कि बापू! हमने धर्म के नाम पर, हिन्दू और मुसलमान के नाम पर अब तक इस नौआखाली में हिंसा तथा घृणा की जो प्रलयंकारी व विध्वंसकारी पाशविकता उत्पन्न की थी, जो नर संहार किया था, आज आपके आगमन पर आप जैसे महामानव के विचार सुनकर, आप जैसे सन्त पुरुष की अमृतवाणी सुनकर, आपके व्यक्तित्व और कृतित्व द्वारा फैलाये गए इस सत्य के प्रकाश में हमारी सारी संकीर्णता और सारी पाशविकता मिट गयी है। इस सत्य के प्रकाश में ही हमारी संकीर्णता अब हमें स्पष्ट दिखाई दे रही है। अर्थात् अब हमें अपनी करनी पर पश्चात्ताप हो रहा है।

विशेष – 1. इस अवतरण में एकांकीकार ने महात्मा गाँधी के प्रति नौआखाली की जनता की श्रद्धा तथा आदर का भाव चित्रित किया है। इस कथन से ही बापू को नौआखाली की यात्रा का उद्देश्य तथा वहाँ की जनता पर बापू की अमृतवाणी व उनके व्यक्तित्व का प्रभाव बताया गया है। नौआखाली में जो कुछ हुआ उसके प्रति वहाँ की जनता का बापू के समक्ष प्रायश्चित प्रकट करना इस अवतरण में अंकित किया गया है। **2.** भाषा सरस और भावानुकूल है।

(2)

''क्षणिक् आवेश में न बहो, भाई! हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुए हैं, उन्हें सुनकर तुम्हारा रक्त खौल उठा है। बहादुर बनो। हमारे अन्दर अहिंसा की बहादुरी है। वह बहादुरी केवल मरने की शिक्षा देती है, मारने की नहीं। यह जगत् प्रतिक्षण बदलता है। इसमें संहार की इतनी शक्तियाँ हैं कि कोई स्थिर नहीं रह सकता, परन्तु फिर भी मनुष्य जाति का संहार नहीं हुआ, इसका यही अर्थ है कि सब जगह अहिंसा ओत-प्रोत है। मैं उसका दर्शन करता हूँ। गुरुत्वाकर्षण के समान अहिंसा संसार की सारी चीजों को अपनी ओर खींचती है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण डॉ. रामचरण महेन्द्र द्वारा रचित 'उजड़े नौआखाली में प्रकाश' एकांकी से उद्धृत है। गाँधीजी नौआखाली की जनता के बीच साम्प्रदायिक हिंसा में घायल व्यक्ति को संभालते हैं तो एक व्यक्ति उस घायल को देखकर आवेश में आकर कहता है कि मेरा खून खौल रहा है। मुझे लगता है कि संसार का राज हिंसा व बल पर ही चल सकता है। बापू उसके आवेश को रोकते हुए कहते हैं कि –

व्याख्या – अरे भाई, आवेश क्षणिक् ही होता है। इस क्षणिक् आवेश में मत बहो। इतना क्रोध मत करो। मैं मानता हूँ इस नौआखाली में हिन्दुओं पर भीषण अत्याचार हुए हैं और हिन्दुओं पर हुए अत्याचारों को प्रत्यक्ष देखकर व सुनकर ही तुम्हारा रक्त खौल उठा है, अर्थात् तुम बदले की भावना में बह रहे हो, प्रतिशोध की ज्वाला में जल रहे हो। स्वयं पर नियन्त्रण करो। यह आवेश में आना, खून खौलना और प्रतिशोध की भावना भड़काना यह सब कायरता है। कायर मत बनो। बहादुर बनो। प्रत्येक मनुष्य के भीतर अहिंसा की वीरता है। हिंसा करने से कोई वीर नहीं कहलाता। अहिंसा भी एक शक्ति है। यह अहिंसा की भावना किसी समर्थवान में ही हो सकती है। अत: समर्थ बनो। वीरता मरने की शिक्षा देती है न कि मारने की। क्योंकि अपने कर्त्तव्य-पथ पर मर-मिटना ही वीरता है। किसी को मारने की शिक्षा वीरता नहीं देती।

बापू कहते हैं कि यह संसार प्रतिपल समायानुसार बदलता रहता है। समय-समय पर इस संसार में संहारकारी शक्तियाँ जन्म लेती रही हैं। इस संसार में इतनी संहारक शक्तियाँ हैं कि यदि कोई शक्ति स्थिर रहना चाहे तो स्थिर नहीं रह सकती और न वे शक्तियाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किसी को स्थिर रख सकती हैं। इतनी संहारक शक्तियों के होने के बावजूद फिर भी इस संसार से मानव जाति का विनाश नहीं हुआ। मानव के अन्दर की अहिंसा की शक्ति ने उसे विनाश से बचाया है और उलटा उसका विकास किया है। इन समस्त तथ्यों का अर्थ यही है कि संसार में सर्वत्र अहिंसा का अस्तित्व है और सर्वत्र अहिंसा विद्यमान है। गाँधीजी कहते हैं कि मैं उसी अहिंसा के दर्शन इस संसार में करता हूँ। अर्थात् इसी संसार में मुझे अहिंसा दिखाई देती है। अहिंसा में एक तीव्र आकर्षण है। ऐसा आकर्षण जैसा कि गुरुत्वाकर्षण में होता है। यही अहिंसा संसार की समस्त वस्तुओं को गुरुत्वाकर्षण के समान अपनी ओर खींचती है। अर्थात् वर्तमान समय में विश्व-शान्ति के लिये और मानव-कल्याण के लिए समस्त विश्व को अहिंसा का सहारा लेना नितान्त आवश्यक है।

विशेष 1. एकांकीकार ने महात्मा गाँधी के अहिंसावादी दर्शन की व्याख्या करने का सफल प्रयास किया है। एकांकीकार ने गाँधीजी की अहिंसा को वीरता की संज्ञा दी है। ऐसी वीरता जो मारने की नहीं बल्कि स्वयं को मरने की शिक्षा देती है। एकांकीकार का गाँधीवादी अहिंसा का दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है। **2.** भाषा परिमार्जित एवं सरस है तथा शैली में तारतम्यता और उपदेशात्मकता है।

(3)

''विवेक बुद्धि को जाग्रत कीजिए। दूसरे के लिए प्राणार्पण करना प्रेम की पराकाष्ठा है और उसका शास्त्रीय नाम अहिंसा है। अहिंसा प्रचण्ड शास्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है। वह भीरू से दूर भागती है। वह वीर पुरुष की शोभा है। वह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं, चेतन है, आत्मा का एक गुण है। आप लोग चिन्तित न हों। प्रेम का प्रकाश अवश्य फैलेगा।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण डॉ. रामचरण महेन्द्र द्वारा रचित 'उजड़े नौआखाली में प्रकाश' एकांकी से उद्धृत है। नौआखाली में महात्मा गाँधी जनता को सत्य और अहिंसा का मर्म समझाने की कोशिश करते हैं। तभी एक व्यक्ति कहता है कि इस तरह अहिंसा का उपदेश देकर हमें कायर बनाया जा रहा है। यदि हम शत्रु से बदला नहीं लेंगे तो बंगाल में एक भी हिन्दू जीवित नहीं रह सकेगा। तब गाँधीजी उसे समझाते हुए अहिंसा की विशेषता बतलाते हैं। यह अवतरण उसी अवसर पर कहा गया महात्मा गाँधी का कथन है।

व्याख्या – गाँधीजी कहते हैं कि आप सब लोग उत्तेजित नहीं होवें। आप सभी को अपनी विवेक बुद्धि जाग्रत करनी चाहिए। बिना विवेक के व्यक्ति सत्य और अहिंसा का मर्म नहीं समझ सकता है। जब व्यक्ति दूसरों के लिए अपने प्राणों को अर्पित करने की चेष्टा करता है, तो उस दशा में वह मानव प्रेम की श्रेष्ठ भूमिका निर्वाह करता है। इस तरह का आचरण करना ही विशुद्ध रूप से अहिंसा कहलाती है। गाँधीजी कहते हैं कि अहिंसा ऐसा प्रचण्ड शस्त्र है जिसके सामने बड़े-बड़े बलशाली पराजित हो जाते हैं। अहिंसा मानव के लिये परम पुरुषार्थ है, क्योंकि उससे वह अपने मन की कायरता को दूर कर देता है। कायर या अशक्त व्यक्ति के पास अहिंसा नहीं रहती है, वह वीर पुरुष की शोभा है। अहिंसा कोई नीरस, जड़ और अचेतन पदार्थ नहीं है, वह तो आत्मा का एक श्रेष्ठ गुण है, जिसके बल पर मानव मानवता से अलंकृत हो गया है। इसलिए आप सभी हिंसा को देखकर चिन्तित नहीं होवें। एक न एक दिन मानव प्रेम का प्रकाश फैलेगा और अहिंसा के द्वारा सभी प्राणियों का हित होगा। इसलिए अहिंसा रूपी शस्त्र को अपनाने से ही मानव-समाज में शान्ति और प्रेमभाव स्थापित हो सकता है।

विशेष – 1. अहिंसा को प्रचण्ड शस्त्र, परमपुरुषार्थ और आत्मा का गुण बताकर उसकी श्रेष्ठता सिद्ध की गई है। गाँधीजी ने अहिंसा को मानव-समाज और राष्ट्र के लिये हितकारी बतलाया है।

2. भाषा सरल और भावपूर्ण है, शैली उपदेशात्मक-विवेचनात्मक है।

(4)

''यह समझना एक बड़ी भूल है कि अहिंसा केवल व्यक्तियों के लिए ही लाभदायक है, जन-समूह के लिए नहीं। जितना वह व्यक्ति के लिए धर्म है, उतना ही वह राष्ट्रों के लिये भी धर्म है.........अहिंसा का कुछ ऐसा स्वभाव है कि वह दौड़-दौड़ कर हिंसा के मुख में चली जाये हिंसा का स्वभाव है कि दौड़-दौड़कर जो जहाँ मिले, उसको खा जाये।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण डॉ. रामचरण महेन्द्र द्वारा रचित 'उजड़े नौआखाली में प्रकाश' एकांकी से उद्धृत है। बापू नौआखाली की जनता को अहिंसा के मर्म को समझा रहे हैं। जब एक व्यक्ति यह कहता है कि अहिंसा केवल व्यक्तियों के जीवन को लाभान्वित कर सकती है, जन-समूह को नहीं, तो प्रत्युत्तर में बापू कहते हैं कि –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – भाईयों ! यह समझना नितान्त गलत है कि अहिंसा केवल व्यक्तियों को ही लाभान्वित कर सकती है। यह एक बड़ी भूल होगी। इससे भी अधिक बड़ी भूल यह समझना होगा कि अहिंसा का लाभ जन-समूह को नहीं मिलता। परन्तु वास्तविकता यह है कि अहिंसा व्यक्ति के लिये भी लाभदायक है, समाज के लिये भी और राष्ट्रों के लिए भी लाभदायक होती है। अहिंसा व्यक्ति के लिए धर्म है। अहिंसा व्यक्ति का कर्त्तव्य है और यदि अहिंसा व्यक्ति का कर्त्तव्य है तो अहिंसा एक राष्ट्र के लिए भी कर्त्तव्य है। व्यक्ति का कर्त्तव्य ही यदि धर्म है तो सभी राष्ट्रों व विश्व मानव समाज के लिए भी अहिंसा एक धर्म है। अहिंसा की प्रवृत्ति ही ऐसी है कि वह अपने स्वभाव के कारण भाग-भागकर हिंसा के बीच चली जाती है। हिंसा को रोकने के लिए ही अहिंसा का सहारा लेना पड़ता है, किन्तु हिंसा का स्वभाव अहिंसा के स्वभाव के विपरीत है। हिंसा की प्रवृत्ति तो भयंकर ही है, वह तो मानव समाज के बीच दौड़-दौड़कर तेजी से महामारी की भाँति जाती है और जो जहाँ मिले उसे वहीं अपने आगोश में दबाकर, मारकर निगल जाती है। हिंसा भयावह है और अहिंसा सुखदायी है।

विशेष – 1. एकांकीकार ने अहिंसा के महत्व को समझाया है और अहिंसा तथा हिंसा का तुलनात्मक विवेचन किया है। हिंसा की तुलना में अहिंसा को व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के हित में बताया गया है। हिंसा के स्वभाव की तथा अहिंसा के स्वभाव की भी तुलना की गई है।

2. भाषा सरल, भाव-सार्थक तथा सारगर्भित है और शैली उपदेशात्मक है।

(5)

''संघर्ष, विग्रह, घृणा, हिंसा, प्रतिशोध तो पाप है। प्रेम से ही शान्ति की स्थायी तौर पर स्थापना की जा सकती है। जहाँ प्रेम और शान्ति है, वहीं जीवन है, विकास है और जहाँ घृणा और प्रतिशोध है, वहाँ विनाश है। हिंसा के हथियार को फेंक देने के बाद ही प्रेम का प्याला प्रस्तुत किया जा सकता है। आवेश और क्रोध को वश में कर लेने से ही शक्ति बढ़ती है और आवेश को आत्मबल के रूप में बदलकर ही मनुष्य विजयी हो सकता है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण डॉ. रामचरण महेन्द्र द्वारा रचित 'उजड़े नौआखाली में प्रकाश' एकांकी से उद्धृत है। साम्प्रदायिक हिंसा में एक घायल व अपने परिजनों की हत्या से व्यथित व्यक्ति अर्धचेतन स्वर में हिंसा, प्रतिहिंसा, प्रमाद तथा आक्रोश भरे शब्दों की झड़ी लगाता है, विभाजन को कोसता है, परन्तु बापू के द्वारा समझाने पर वह ग्लानि व पश्चाताप व्यक्त करता है। इस पर बापू कहते हैं कि –

व्याख्या – इस संसार में मनुष्य के लिए आपसी संघर्ष, विग्रह (शत्रुता), द्वेष, घृणा, हिंसा और प्रतिशोध की भावना रखना घोर पाप है, क्योंकि मनुष्य इन विकारों व दुर्गुणों के रहते सुखपूर्वक नहीं रह सकता, शान्ति से नहीं रह सकता और कमियों के रहते हुए मानव समाज में शान्ति की स्थापना ही की जा सकती है। वास्तविकता तो यह है कि संसार में जहाँ पारस्परिक प्रेम की भावना है और जहाँ मानव के बीच शान्ति है, वहीं सुखी जीवन संभव है, वहीं मानव जाति का विकास हो सकता है और जहाँ समाज जीवन में, राष्ट्र जीवन में घृणा तथा प्रतिशोध की भावना व्याप्त है, वहाँ विकास का तो प्रश्न ही नहीं उठता, वहाँ तो विनाश ही होता है।

बापू कहते हैं कि हिंसा का शस्त्र मनुष्य का शत्रु है। जब तक मनुष्य हिंसा के इस भयावह शस्त्र का परित्याग नहीं कर देता, तब तक मनुष्य इस संसार में सुख नहीं बांट सकता। द्वेष, ईर्ष्या, घृणा तथा हिंसा त्यागने पर ही समाज को प्रेम का प्याला पिलाया जा सकता है। क्रोध, आवेश मनुष्य के भीषण शत्रु हैं। ये मनुष्य का विनाश कर देते हैं, शक्ति क्षीण कर देते हैं। जब मनुष्य क्रोध और आवेश को अपने वश में करने में सफल हो जावेगा तभी शक्ति में वृद्धि होगी, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार मनुष्य अपने भीतर उत्पन्न होने वाले आवेश को जब अपने आत्मबल में बदलेगा तभी जीवन के हर छोर पर वह विजयी हो सकता है।

विशेष – 1. गाँधीजी के माध्यम से एकांकीकार संघर्ष, विग्रह, घृणा, हिंसा, प्रतिशोध आदि के शमन की प्रेरणा देता है। घृणा और प्रतिशोध को विनाश का कारण बताया गया है और आवेश तथा क्रोध को वश में कर लेने से आत्मबल और शक्ति बढ़ने का सन्देश दिया गया है।

2. भाषा सरल, प्रवाहमान तथा शैली प्रतीकात्मक-उपदेशात्मक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

11.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. 'उजड़े नौआखाली में प्रकाश' एकांकी में किस समस्या पर प्रकाश डाला गया है?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी में साम्प्रदायिकता और धर्मान्धिता की राष्ट्रीय समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

प्रश्न-2. महात्मा गाँधी को सर्वाधिक मर्मान्तक पीड़ा का अनुभव कब हुआ ? ''उजड़े नौआखाली में प्रकाश'' के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – बापू को मर्मान्तक पीड़ा तब हुई जब नौआखाली में सर्वाधिक हिंसा व मारकाट तथा साम्प्रदायिकता का नग्न ताण्डव होने लगा था।

प्रश्न-3. नौआखाली किस स्थान का नाम है ?

उत्तर – नौआखाली बंगाल के एक जिले का नाम है, जहाँ पर आजादी से पूर्व सर्वाधिक साम्प्रदायिक दंगे भड़के थे।

प्रश्न-4. प्रस्तुत आलोच्य एकांकी 'उजड़े नौआखाली में प्रकाश' के माध्यम से एकांकीकार किन उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहता है ?

उत्तर – साम्प्रदायिक सद्भावना की प्रेरणा देकर अहिंसा, एकता व देश प्रेम की भावना को जागृत करने का उद्देश्य प्रस्तुत किया है।

प्रश्न-5. प्रस्तुत एकांकी 'उजड़े नौआखाली में प्रकाश' की मूल संवेदना को संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी में हिन्दु-मुस्लिम भेदभाव को राष्ट्रीय समस्या माना है। साम्प्रदायिक सद्भावना व एकता इस समस्या का निराकरण है। यही इस एकांकी की मूल संवेदना है।

प्रश्न-6. नौआखाली के लिये बापू की सहायता कब से प्रारम्भ हुई ?

उत्तर – बापू की यह महायात्रा 2 जनवरी, 1947 से प्रारम्भ हुई।

प्रश्न-7. 'मैं नौआखाली से तब तक वापिस नहीं जाऊँगा जब तक कि मुझे यह आश्वासन नहीं मिल जाता कि आप भाई-भाई की तरह एक साथ रहोगे।'' प्रस्तुत कथन में बापू का क्या संदेश मिलता है।

उत्तर – प्रस्तुत कथन के माध्यम से बापू का उद्देश्य समाज का भाईचारा व एकता है।

प्रश्न-8. अहिंसा का तात्पर्य है – प्राणी मात्र के प्रति दुर्भाग्य का पूर्ण अभाव। प्रस्तुत तर्क में बापू ने किसको सम्बोधित किया है ?

उत्तर – प्रस्तुत तर्क अहिंसा के सम्बन्ध में बापू के द्वारा किया गया है जो रक्त पिपासु लोगों को शान्त करने के लक्ष्य से है।

प्रश्न-9. डॉ. रामचरण महेन्द्र की एकांकियों को कितने भागों में विभक्त किया जा सकता है ?

उत्तर – 1. ऐतिहासिक, 2. सामाजिक और 3. सांस्कृतिक।

प्रश्न-10. प्रस्तुत एकांकी में किसका वर्णन किया गया है ?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी में महात्मा गाँधी की सद्भावना यात्रा का वर्णन किया गया है ?

11.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. हम कैसे कह सकते हैं कि 'उजड़े नोआखाली में प्रकाश' एकांकी तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण प्रस्तुत करते हुए गाँधीवाद की प्रतिष्ठापना करती है ?

उत्तर – नौआखाली में हिन्दू और मुसलमान धर्म के आधार पर जातीय द्वेष व घृणा फैलाये हुए आपस में मारकाट मचा रहे होते हैं। देश के लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे हो रहे होते हैं। आये दिन एक-दूसरे का गला काटता है। धर्म के नाम पर पाशविक और अमानवीय व्यवहार का नग्न रूप दिखायी दे रहा होता है। बापू का रोम-रोम हिन्दुस्तानियों के इन कुकृत्यों से पीड़ित होता है। बापू नौआखाली में मासिमपुर, चाँदपुर, श्रीरामपुर आदि गाँवों का दौरा करते हैं। बापू के मन में मनुष्य के प्रति प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी होती है और वे मानव का बहता हुआ रक्त नहीं देखना चाहते। इसलिए बापू दंगाइयों के बीच जो हैं और मार-काट, रक्त-पात आदि समाप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इन्हीं भावनाओं की अभिव्यक्ति एकांकीकार ने इस एकांकी में की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गाँधीवाद की प्रतिष्ठापना – इस एकांकी की मूल संवेदना के अन्तर्गत एकांकीकार गाँधीवादी विचारधारा के प्रति पाठकों को परिचित कराना चाहता है। गाँधीवाद का मुख्य दर्शन अहिंसा का सत्य है। इसी अहिंसा व सत्य का सहारा लेकर गाँधीजी नौआखाली के दंगाइयों के बीच जाते हैं। चूंकि यह एकांकी समस्या-प्रधान एकांकी है और धार्मिक उन्माद तथा हिंसा इस एकांकी की समस्या है। एकांकीकार ने इस समस्या को मानवीय संवेदना द्वारा सुलझाने की व्यंजना की है। इसीलिए इसमें गाँधीजी की ऐतिहासिक नौआखाली यात्रा को माध्यम बनाकर उनके महान् व्यक्तित्व को उभारा गया है। गाँधीजी जब नौआखाली जाते हैं तो वहाँ के लोग उन्हें महापुरुष कहकर पुकारते हैं। एकांकी में एक वृद्ध के कथन से यह पुष्टि होती है – ''मुझे पूरा विश्वास है कि आज मानवता की दृष्टि में गिने जाने वाले महापुरुष को पूर्वी बंगाल के एक जिले से निराश नहीं जाना पड़ेगा। आप के अमृत सदृश वचनों का पान कर हमारी घृणा की भावनाएँ भस्मीभूत हो रही हैं। हिन्दू-मुसलमानों के नाम पर जो पाशविक नर हत्याकाँड हो रहा है, उसकी संकुचितता सत्य के प्रकाश में मालूम पड़ रही है।'' उस वृद्ध के इन वचनों से गाँधीजी को प्रसन्न होते हुए चित्रित किया गया है। गाँधीजी इस बात पर प्रसन्न होते हैं कि इन धार्मिक कट्टरपंथी लोगों को साम्प्रदायिकता के विष में भयानकता नजर आ रही है। एकांकीकार ने इस समस्या का एकमात्र विकल्प महात्मा गाँधी को माना है। एकांकीकार का मानना है कि सिर्फ महात्मा गाँधी ही इस हिंसा को अपने सत्य और अहिंसा जैसे दृढ़ विचारों से मुक्ति दिला सकते हैं। अत: इसी उद्देश्य से इस महान् चरित्र की उपस्थापना की गई है।

प्रश्न- 2. साम्प्रदायिक संघर्ष का चित्रण करते हुए हिंसा का प्रतिकार कर 'उजड़े नोआखाली में प्रकाश' एकांकी अपनी मूल संवेदना को प्रकट करती है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – उस समय सम्पूर्ण देश साम्प्रदायिक हिंसा की आग में भभक रहा था। नौआखाली में तो साम्प्रदायिकता की आग चरम सीमा पर थी। हिन्दू-मुसलमान मुस्लिम लीग व षड्यन्त्रकारियों के बहकावे में आकर भाईचारे को छोड़कर एक-दूसरे को हानि पहुँचाने पर उतारू हो गये थे। दोनों सम्प्रदायों की कट्टरपंथी हिंसक टोलियाँ विरोधी जातियों के परिवारों पर आक्रमण कर जान-माल की हानि पहुँचा रही थी। इस तरह की यथार्थ घटनाओं का चित्रण कर एकांकीकार ने चित्रित किया है कि दंगाइयों में साम्प्रदायिकता की भावना आग में घी का काम करती है और वे मानवता से रहित हो जाते हैं। एकांकी में दर्शाया गया है कि साम्प्रदायिक दंगे का शिकार एक घायल युवक महात्मा की शरण में आता है। उसका पूरा परिवार दंगाइयों के पागलपन की भेंट चढ़ जाता है। बापू उसका चित्त शान्त करने में सफल हो जाते हैं। बापू बाद में उस हिंसक टोली को भी हिंसा त्यागकर उनमें प्रायश्चित व आत्मग्लानि उत्पन्न कराते हैं। वह टोली हिंसा को त्याग कर अहिंसा की शरण में आ जाती है। एकांकीकार की यही संवेदना है कि सम्पूर्ण देश जो कि भीषण रूप से साम्प्रदायिक दंगों में झुलस रहा था, उसका समाधान बापू की सत्य व अहिंसक वाणी से ही हो सका था।

हिंसा का प्रतिकार – एकांकीकार ने हिंसा का प्रतिकार और अहिंसा का प्रतिपादन तर्कों के माध्यम से किया है। बापू को उस समय पीड़ित लोग आकर अपनी पीड़ा की मुक्ति का उपाय हिंसा का जवाब हिंसा बताते हैं और बापू की सलाह माँगते हैं। तब बापू उन्हें हिंसा त्यागने को कहते हैं तो वे ''हिंसा ही हिंसा को नष्ट करने का एकमात्र उपाय है'' इस बात की पुष्टि उदाहरणों व तर्कों के माध्यम से करते हैं। लेकिन बापू हिंसा को क्षणिक व क्षणभंगुर बताते हैं और बलहीन हिंसा के असफल परिणाम बताते हुए उसका खण्डन करते हैं। एकांकीकार यहाँ अपनी मूल संवेदना चित्रण करने में सफल तब होता है, जब सब पीड़ित लोग बापू के विचारों से सहमत होकर हिंसा त्यागकर अहिंसा की शरण में जाते हैं।

11.2.3 निबन्धात्मक प्रश्नोत्तर

प्रश्न- 1. ''उजड़े नौआखाली में प्रकाश'' नामक एकांकी के आधार पर साम्प्रदायिक सद्भावना एवं एकता के लिए महात्मा गाँधी के विचारों को प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर – डॉ. रामचरण महेन्द्र गाँधीवादी विचारधारा के एकांकीकार हैं। आप गाँधीजी के अहिंसा-दर्शन से अत्यधिक प्रभावित हैं। आपके एकांकियों में देशभक्ति, सामाजिक जागरण और राष्ट्रीय चेतना के स्वर स्पष्ट रूप से मुखरित हुए हैं। 'उजड़े नौआखाली में प्रकाश' नामक अपने एकांकी में साम्प्रदायिकता और धर्मान्धता की राष्ट्रीय समस्या पर अपनी लेखनी चलायी है। स्वाधीनता से पूर्व देश में जगह-जगह हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक संघर्ष प्रारम्भ हुआ और सम्पूर्ण देश धार्मिक विद्वेष की दुर्भावना से जलने लगा। ऐसे समय में महात्मा गाँधी अत्यधिक क्षुब्ध हुए। बापू को सर्वाधिक मर्मान्तिक पीड़ा तब हुई, जब बंगाल में नौआखाली जिले में सर्वाधिक हिंसा, मारकाट तथा साम्प्रदायिकता का नग्न तांडव होने लगा। गाँधीजी भी इस रक्तपात से विचलित हो गये और नौआखाली गये। वहाँ साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने के लिए गाँधीजी ने सद्प्रयास किये। उजड़े नौआखाली में साम्प्रदायिक सद्भावना एवं एकता लाने के लिए गांधीजी ने जो विचार प्रस्तुत किये, प्रस्तुत एकांकी में उन्हें निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. नौआखाली की सद्भावना यात्रा – बापू द्वारा नौआखाली की यात्रा पर जाना उनकी डाण्डी यात्रा से कई गुना अधिक महत्त्व रखता है। जब नौआखाली जल रहा था, जब वहाँ हिन्दू व मुसलमान खून की होली खेल रहे थे और लोग एक-दूसरे के रक्त-पिपासु बन गये थे ऐसे समय में बापू अपने प्राणों को हथेली पर रखकर निकले। वे उन क्रूर धर्मान्ध लोगों के बीच गये, जिन्होंने कुछ ही समय पूर्व भीषण नर-संहार किया था और एक-दूसरे का रक्त बहाकर पाशविक आचरण किया था। बापू का उद्देश्य प्रत्येक हिन्दू व मुसलमान के घर पर एकता का संदेश पहुँचाना था। हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक विद्वेष के कारण भाईचारे की जो सद्भावना नष्ट हो गयी थी, उसे पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिए ही बापू ने यह यात्रा प्रारम्भ की थी। नौआखाली में समूचे देश की तरह हिन्दू और मुसलमानों में सर्वाधिक वैमनस्यता थी। हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे का खून बहा रहे थे। बापू का रोम-रोम हिन्दुस्तानियों के इन कुकृत्यों से पीड़ित होकर रोता है और वे विक्षुब्ध और व्याकुल हो जाते हैं। वे साम्प्रदायिक घृणा की इस भावना को परमाणु बम से भी अधिक भयानक मानते हैं। इस सद्भावना यात्रा का उद्देश्य वहाँ के लोगों में भाईचारे की भावना और साम्प्रदायिक सद्भावना की स्थापना करना है। बापू घर-घर जाकर लोगों से मिलते हैं, उनके दुःख-दर्द और तर्कों को सुनकर उन्होंने अपनी अहिंसक विचारधारा से लोगों को प्रभावित किया। यही उनकी यात्रा का उद्देश्य बताया गया है।

2. धार्मिक भेदभाव मिटाना – नौआखाली में उत्पीड़ित जनता से जब बापू ने सम्पर्क किया तो उन्हें लगा कि हिन्दू और मुसलमान दोनों आपस में कट रहे हैं। बापू ने वहाँ के हिन्दुओं और मुसलमानों को एकत्र किया और उनसे हिन्दू तथा मुसलमान के भेदभाव को मिटाने के लिए कहा। बापू ने कहा कि- ''गाँव में हिन्दू-मुस्लिम सवाल सबसे कम महत्त्व रखना चाहिए। आप लोग सोचकर देखिये, हिन्दू-मुस्लिम अपने-अपने धर्म में कितने ही कड़े क्यों न हों, लेकिन उनके भाईचारे में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।'' वास्तव में बापू के महान आदर्श थे और उनकी कथनी और करनी में कहीं कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता था। वे वहाँ के लोगों को उन दिनों की याद दिलाते हैं, जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे से पूर्व लोगों में मेलजोल और भाईचारा था। वे कहते भी हैं – ''क्या आप वे दिन भूल गये जब दोनों खेतों में अगल-बगल काम करते थे, बाजार में साथ-साथ लेन-देन करते थे, आग के पास बैठकर चौपाल में गाँव और देश की चर्चा करते थे।'' बापू की दृष्टि में हिन्दू और मुस्लिम का भेद महत्त्व नहीं रखता था। वे दोनों के धर्म के लोगों में धार्मिक भेद-भावना मिटाने की दृष्टि से कहते हैं – ''जीने-मरने में, शादी-ब्याह में सबका साथ होता था और आपस में व्यवहार चलता था। एक-दूसरे को भाई और चचा, माँ और बहन कहता था। छोटा बच्चा हिन्दू-मुसलमान को और मुसलमान का हिन्दू को वैसे ही चचा और भाई मानता था, जैसे अपनों को।'' इतना ही नहीं, बापू को हिन्दू और मुस्लिम की भेद-भावना पर अत्यधिक दुःख होता है। बापू की दृष्टि में दोनों का धर्म एक ही है। अपने इस दुःख को बापू इस पंक्ति में व्यक्त करते हैं – ''जीवन के ढंग में गैरपन अनुभव ही नहीं होता था, लेकिन दुःख है कि आज गाँवों में भी हिन्दू-मुस्लिम मत भेद की बात है।'' इस प्रकार बापू ने धार्मिक सद्भावना पर जोर दिया।

3. साम्प्रदायिक हिंसा को रोकना – नौआखाली में साम्प्रदायिक हिंसा हो रही थी। अतः उस हिंसा को रोकने के लिए बापू वहाँ के लोगों के बीच अपने अहिंसा के एक-दूसरे का रक्त बहाते हैं। गाँधीजी साम्प्रदायिक द्वेष से जल रहे लोगों को धर्मदंश से जल रहे नौआखाली में हो रहे नरसंहार और हिंसा को रोकने का प्रयास करते हैं, वे हिन्दुओं व मुसलमानों को हिंसा का मार्ग छोड़ने और अहिंसा का मार्ग अंगीकार करने की शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं कि अहिंसा का मार्ग सीधा और सरल है और हिंसा का मार्ग विनाशकारी है। बापू कहते हैं – ''हिंसा का स्वभाव है कि दौड़-दौड़कर जो जहाँ मिले, उसे खा जायें। हिंसा के स्थान पर बापू अहिंसा की वकालत करे हुए कहते हैं – ''यह समझना एक बड़ी भूल है कि अहिंसा केवल व्यक्तियों के लिए ही लाभदायक है, जन-समूह के लिए नहीं। जितना वह व्यक्ति के लिए धर्म है, उतना ही वह राष्ट्रों के लिए भी धर्म है।'' साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने का एकमात्र उपाय अहिंसा ही है। गाँधीजी अहिंसा को सर्वोपरि मानते हैं और उसे व्यक्ति तथा समाज का परम धर्म मानते हैं।

4. अहिंसा से जन-चेतना – बापू हिन्दू और मुसलमानों को भाई-चारे से रहने की सलाह देते हैं। वे दंगाग्रस्त क्षेत्रों में भयाक्रान्त जनता के बीच जाते हैं और हिंसा के प्रति घृणा की भावना जागृत करते हैं। वे कहते हैं कि अहिंसा से व्यक्ति और समाज में नयी चेतना का संचार होता है। जहाँ अहिंसा होगी, वहाँ मनुष्य का सुखमय जीवन होगा और जहाँ सुखमय जीवन होगा वहाँ समृद्धि होगी। जब अहिंसा की भावना व्यक्ति में उत्पन्न होगी तो व्यक्ति समाज को अहिंसा की भावना से जागृत करेगा, यदि मानव हिंसक होगा तो उसके हिंसक कृत्य मानव जीवन को हिंसा की ओर ले जायेंगे। ऐसी स्थिति में मानव अपने समाज में घृणा का पात्र बन जायेगा। अतः बापू की यह धारणा है कि साम्प्रदायिक सद्भावना बनाये रखने के लिए अहिंसा का मार्ग अपनाओ और व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को जागृत करो। जिससे कि मानव व सभ्यता, व्यक्ति और समष्टि दोनों ही विकसित हो सकें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. देश-प्रेम जगाना – 'उजड़े नौआखाली में प्रकाश' नामक एकांकी में डॉ. रामचरण महेन्द्र ने नौआखाली में रक्त बहाने वाले हिन्दू और मुसलमानों में देश-प्रेम की भावना पर बल दिया है। लेखक ने बापू के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए साम्प्रदायिक सद्भावना बनाये रखने पर जोर दिया। बापू का यह कथन कि – ''सभी की मातृभूमि भारत है। सभी यहाँ पैदा हुए हैं और आखिरी समय सभी को इसी मिट्टी में मिल जाना है।'' बापू इस विचार से हिन्दू और मुसलमानों में देश-प्रेम की भावना जागृत करना चाहते हैं। बापू आगे बोलते हैं – ''इस देश में साम्प्रदायिक राग-द्वेष व्यापक रूप से घर करता जा रहा है। आखिर क्यों ? हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिख सभी भारतीय हैं और भारत के निवासी हैं। सभी की मातृभूमि भारत है। सभी यहाँ पैदा हुए हैं।'' इस प्रकार बापू साम्प्रदायिक सद्भावना बनाने के लिए हिन्दू और मुसलमानों के एकता के उदाहरण देते हुए चित्रित किये गये हैं।

6. विदेशी षड्यन्त्रों का प्रतिरोध – प्रस्तुत एकांकी में महात्मा गाँधी कहते हैं कि हमारे देश में विदेशी शक्तियों ने अपना जाल फैलाया हुआ है। ये विदेशी इस देश को खोखला करने पर लगे हुए हैं। इन्होंने ही इस देश में धार्मिक उन्माद फैलाया है। जातिवाद और वर्गवाद के जन्मदाता भी ये विदेशी ही हैं। इन भावों की पुष्टि बापू के इस कथन से होती है, यथा – ''यह भारतीयों का कुसूर नहीं है। यह कुसूर उस विदेशी शासन का है जिसने वर्गवाद तथा राष्ट्रीयता की जगह पर जातीयता का बीज बोया है। हम हिन्दुस्तानी आज उसी विदेशी हुकूमत की कूटनीति के शिकार बन बैठे हैं।'' अतः लेखक का विचार है कि हम सबकी जिम्मेदारी यही है कि हम इन विदेशी शक्तियों का डटकर मुकाबला करें ताकि इनके शिकंजे से देश को बचाया जा सके। बापू भी नौआखाली के लोगों को साम्प्रदायिक सद्भावना बनाये रखने के लिए यही नेक सलाह देते हैं कि नौआखाली के लोग भी धार्मिक भेदभाव छोड़कर राष्ट्रीय धारा में बहें और विदेशी हुकूमत और उसके षड्यन्त्रों को एकजुट होकर विफल करे हैं। तभी यह देश एक महान् देश बन सकता है।

7. संगठन पर बल – इस एकांकी में बापू नौआखाली के लोगों को जहाँ भाई-चारे की भावना से रहने की सलाह देते हैं, जहाँ साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने का पाठ पढ़ाते हैं, वहीं बापू साम्प्रदायिक सद्भावना बनाये रखने के लिए संगठन बनाने पर भी जोर देते हैं। बापू का विचार है – ''हमारी अब जिम्मेदारी बहुत बढ़ गई है........हमें अपने मुहल्लों और गाँवों में इस तरह का संगठन करना चाहिए कि सब धर्मों के आदमी प्रेम-मोहब्बत से रहें। ऐसी जमात और आदमियों को वहाँ न घुसने देना जो आपसी फूट और जातीय विद्वेष पैदा कर भेदभाव भड़काते फिरते हैं। हिन्दू-मुसलमान, ईसाई-सिख कोई भी क्यों न हो, उसका फर्ज है कि साम्प्रदायिक सद्भावना व एकता कायम करें। इसी में राष्ट्र का उत्थान और कल्याण है।''

8. सत्याचरण पर बल – उजड़े नौआखाली में अपनी सद्भावना यात्रा के दौरान महात्मा गाँधी नौआखाली की जनता से असत् का मार्ग छोड़ने और सत् कार्य करने की विचारधारा प्रस्तुत करते हैं। गाँधीजी कहते हैं – ''मेरा विचार तो यह है कि सत्कार्य के लिए भी असत् मार्ग का अवलम्बन नहीं करना चाहिए। अधर्म से बढ़ने वाला मानव उच्च पद को प्राप्त करता है, शत्रुओं को जीतता है, पर अन्त में समूल नष्ट हो जाता है। सत्य की जय होती है। जहाँ धर्म है, वहीं जय है'' बापू का यह कथन साम्प्रदायिक सद्भावना व एकता के लिए एक अमर संदेश है। बापू ''सत्यमेव जयते'' इस सूक्त-कथन के आधार पर कहते हैं – ''कल्याणकारी की दुर्गति नहीं होती, सत्य सब अश्वमेधों से बढ़कर है। सब वेदों का ज्ञान, सब तीर्थों का अवगाहन सत्य की एक भी कला के समान नहीं।'' बापू के विचारों का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हिंसक प्रवृत्ति अहिंसा के अस्तित्व के समक्ष झुक जाती है। गाँधीजी सत्याचरण पर बल देते हुए नौआखाली के लोगों को समझाते हुए आगे कहते हैं – ''अक्रोध से क्रोध को जीतिए। असाधु को साधुता से जीतिए। कंजूस को दान से जीतिए, यही सनातन धर्म है।'' बापू ने इस कथन में साम्प्रदायिक सद्भावना व एकता बनाए रखने के लिए क्रोध को अक्रोध अथवा शान्ति से जीतने का उपाय बताया है। उन्होंने दुष्टता को सज्जनता से जीतने की बात कही है और कंजूस व्यक्ति के हृदय को दान-पुण्य के सत्कर्म से जीतने की शिक्षा दी है। इन सब के लिए सत्य-आचरण का होना नितान्त आवश्यक है। यही सत्याचरण अहिंसा का पर्याय है।

11.3 सारांश

अन्त में निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि उजड़े नौआखाली में अपनी साम्प्रदायिक सद्भावना यात्रा करते हुए महात्मा गाँधी ने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोगों को एकताबद्ध होने का संदेश दिया। इस एकांकी में गाँधीजी की सद्भावना यात्रा का उद्देश्य स्पष्ट किया गया है। हिन्दू-मुस्लिम एकता का संदेश दिया गया है। साथ ही तत्कालीन समाज और देश की धार्मिक भावनाओं की स्थिति का अच्छा चित्रण किया गया है।

11.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. नौआखाली एकांकी की साम्प्रदायिक सद्भावना पर प्रकाश डालिए।
2. सिद्ध कीजिए कि यह एकांकी गाँधीवाद की प्रतिष्ठापना में सहयोगी होगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-12 : हरित गन्धा

(हमीदुल्ला)

संरचना

12.0 लेखक परिचय

12.1 हरित गन्धा

12.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

12.3 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

12.3.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

12.3.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

12.3.3 निबंधात्मक प्रश्न

12.4 सारांश

12.5 अभ्यास प्रश्नावली

12.0 लेखक परिचय

राजस्थान के आधुनिक नाट्यकारों में सर्वाधिक सफल नाटककार एवं रंगकर्मी श्री हमीदुल्ला हैं। आपके नाटक राजस्थान साहित्य अकादमी के सर्वोच्च मीरा पुरस्कार से सम्मानित हुए हैं। आपने राजस्थान के ईर्द-गिर्द फैली हुई समस्याओं को अपना विषय बनाया है।

12.1 हरित गन्धा

प्रस्तुत एकांकी 'हरित गन्धा' पर्यावरण संरक्षण के आधुनिक आन्दोलन को स्पष्ट करता है तथा यह एक सामाजिक समस्या प्रधान एकांकी है। इस एकांकी में खलनायक ठेकेदार है जो आज के शोषण करने वाले लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। सरपंच अपनी सारगर्भित दलीलों से कारखानों द्वारा फैलते हुए प्रदूषण की बात उसे समझाता है, किन्तु वह वनों से पेड़ों की कटाई के लिये अड़ा हुआ है। जब ठेकेदार गाँव वालों से कहता है कि वनों के कटने के बाद यहाँ पर कारखाने लगेंगे और तुम सबको पर्याप्त रूप से रोजगार प्राप्त होंगे तो सरपंच बहुत ही युक्तिपूर्ण उत्तर देते हुए कहता है कि, ''ये पेड़ प्रकृति के धनुष की लकड़ी हैं और हम सब इसकी डोर हैं तथा हमारा जीवन इस कमान का तीर है। ये वन होंगे तो हमारा जीवन चलेगा।'' इस प्रकार नाट्यकार ने बड़े ही नाटकीय ढंग से पर्यावरण रक्षा का महत्त्व स्पष्ट किया है। रचनाकार हमीदुल्ला ने वर्तमान समस्या को प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से स्पष्ट किया है। प्रो. मदन मोहन माथुर ने इस संदर्भ में लिखा है कि, ''यह चिपको आन्दोलन की भावना को स्पष्ट करता है। ठेकेदार बूढ़े बरगद को काटने की नीयत से आया है, किन्तु सारी प्रकृति ही मानो इसके प्रतिकार के लिये उठ खड़ी होती है। चोर को देखकर मोर बोल उठता है, पाँव के नीचे चूहा आकर चौंका देता है। सरपंच बताता है कि ढाणी का सन्नाटा हर पल उनसे बातें करता है, उन्हें संगीत सुनाता है। पेड़ों से चिपककर उन्हें काटने से बचाने की खेजड़ली की अमर कथा की पुनरावृत्ति के साथ प्रस्तुत नाटक अपनी चरम सीमा तक पहुँचता है।'' नाटककार हमीदुल्ला देश की मौजूदा समस्याओं के प्रति जागरूक हैं।

12.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''इस दुनिया में दो और दो चार ही होते हैं। दो और दो को नौ और नौ को सौ करने वाली एक ही चीज है।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के हमीदुल्ला द्वारा विरचित 'हरित गन्धा' एकांकी से उद्धृत है। यह संवाद इस एकांकी के एक प्रमुख पात्र ठेकेदार का है। एक ग्राम की ढाणी में वनों की कटाई के उद्देश्य से एक ठेकेदार और उसका नौकर स्वामीदास पेड़ों की कटाई की योजना बना रहे हैं। ठेकेदार लाखों कमाने के स्वप्न देखता है और अपने सेवक से कहता है कि –

व्याख्या – स्वामीदास ! यह संसार पुरानी परिपाटी में ही चल रहा है। परम्परा से जो कुछ मनुष्य देखता व सुनता आया है उसी के अनुसार चल रहा है। दुनिया ने जो मूल्य स्थापित किये हैं जो गणित स्थापित व निर्धारित की है, उसके अनुसार तो दो और दो तो मात्र चार ही होते हैं। गणित का भी यही सिद्धान्त है। मनुष्य इसमें कोई भी परिवर्तन इस संसार में नहीं कर सकता। लेकिन दो और दो को चार के स्थान पर नौ किया जा सकता है और नौ की गणित को गलत सिद्ध किया जा सकता है। वह यह कि नौ को सौ किया जा सकता है। इसके लिए गणित की निर्धारित रीति नहीं है बल्कि यह फेरबदल करने के लिए एक ही चीज है जो हर किसी में विद्यमान नहीं है। वह है मस्तिष्क, जिससे मनुष्य हर क्षेत्र में लाभान्वित होता है।

विशेष – 1. इस अंश में ठेकेदार की महत्त्वाकांक्षा एवं धनार्जन के प्रति उसकी लालसा को इंगित किया गया है। साथ ही ठेकेदार के काइयांपन का भी रहस्य खोला गया है। अपनी बुद्धि, अपने चातुर्य और मस्तिष्क पर ठेकेदार को विश्वास व गर्व करते बताने की चेष्टा की गई है।

2. सरल भाषा का प्रयोग किया गया है।

(2)

''तुम दोस्त नहीं हो सकते। यह नदी देख रहे हो। उसके घड़ियाल हमारे दोस्त हैं। वे घड़ियाली आँसू नहीं बहाते। नदी जल की मछलियों के साथ हम तैरते हैं। यह जंगल, पहाड़, दरखत ये दोस्त हैं हमारे।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के हमीदुल्ला द्वारा विरचित 'हरित गन्धा' एकांकी से उद्धृत है। इस एकांकी में पेड़ों को काटने के उद्देश्य से आया हुआ ठेकेदार गाँव वालों को उनका हितैषी बताता है। तभी गाँव का सरपंच उसे टोकते हुए कहता है –

व्याख्या – तुम हमारे दोस्त कैसे हो सकते हो ? तुम तो हमारे गाँव की हरीतिमा के प्रतीक इन हरे-भरे वृक्षों को काटने के उद्देश्य से अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये आये हो। तुम हमारे और हमारे गाँववासियों के मित्र कदापि नहीं हो सकते। देखो ठेकेदार, इस गाँव की बगल में जो यह नदी बह रही है, क्या तुम उस नदी को देख रहे हो ? देखो, इस नदी को देखो, इस नदी के गहरे प्रवाह में जो घड़ियाल तैर रहे हैं वे सब हमारे मित्र हैं। तुम हमारे मित्र नहीं हो सकते, क्योंकि ये घडियाल इस गाँव की नदी में बहने वाले मैल आदि को मिटाने में और नदी के जल को स्वच्छ रखने में हमें सहयोग कर रहे हैं। अत: ये ही सच्चे अर्थों में हमारे मित्र हैं। ये कभी भी हमें धोखा देने के लिए और हमारा अहित करने के लिए हमें मूर्ख नहीं बनाते और कभी दिखावे के लिए घड़ियाली आँसू नहीं बहाते। जबकि तुम हमें धोखा देने के लिए आये हो और घड़ियाली आँसू बहाकर हमें मूर्ख बना रहे हो कि हम तुम्हें इसी गाँव का रहने वाला समझें। हम इस नदी के जल की मछलियों के साथ इसके स्वच्छ जल में तैरते हैं। यह देखो सामने जो जंगल दिखायी दे रहा है जो हरा-भरा पहाड़ दिखायी दे रहा है और ऊँचे ऊँचे घने वृक्ष दिखायी दे रहे हैं। ये ही सच्चे अर्थों में हमारे मित्र और हितैषी हैं।

विशेष – 1. एकांकीकार ने स्वार्थी मनुष्य को पर्यावरण का शत्रु बताया है और जल में विचरण करने वाले हिंसक घड़ियालों को मानवों की तुलना में पर्यावरण शुद्धि में सहायक बताया है।

2. भाषा सरस और शैली व्यंग्यात्मक है।

(3)

''ये पेड़ प्रकृति के धनुष की लकड़ी हैं। हम सब इसकी डोर हैं। हमारा जीवन इस कमान का तीर है। ये वन होंगे तो जीवन चलेगा।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के हमीदुल्ला द्वारा विरचित 'हरित गन्धा' एकांकी से उद्धृत है। ठेकेदार ग्रामीणों के समक्ष वहाँ वन के पुराने पेड़ काटने की योजना प्रस्तुत करता है और ग्रामीणों से इस कार्य में सहयोग की अपेक्षा करता है। इस पर ग्राम का सरपंच ठेकेदार को सम्बोधित करते हुए कहता है कि –

व्याख्या – हमारे इस घने जंगल में जो हरे-भरे वृक्ष हैं ये वृक्ष प्रकृति की धरोहर हैं। ये वृक्ष प्रकृति के धनुष हैं। क्योंकि प्रकृति का सर्वाधिक सुन्दर रूप इन्द्रधनुष है और इन्द्रधनुष के आधार उसके सात रंग हैं, उसी प्रकार ये पेड़ प्रकृति के धनुष की लकड़ी है और इनकी हरीतिमा इस धनुष का आधार है। हमारा सम्बन्ध चूँकि इन वृक्षों से है, अत: हम इसकी डोर हैं। धनुष का और डोर का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जो शाश्वत सम्बन्ध है वही सम्बन्ध इन वृक्षों का और हमारा है। इस धनुष का बाण हम सबका जीवन है। जिस प्रकार बाण के लिए धनुष और डोर का महत्व है, उसी प्रकार हमारे जीवन के लिये प्रकृति के इन घनुष रूपी वृक्षों और जन-जीवन रूपी डोर और बाण का सम्बन्ध है। जिस प्रकार डोर के बिना धनुष से बाण नहीं चलता, उसी प्रकार इन बनों के बिना हमारा जीवन नहीं चलता। इस प्रकार ये बन और वृक्ष हमारे जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

विशेष – 1. मनुष्य का सम्बन्ध वृक्षों व वनों से तथा वनों व वृक्षों का सम्बन्ध प्रकृति से जोड़ा है। एकांकीकार ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि हमारे वन हमारे जीवन प्राण हैं।

2. भाषा सरस और शैली प्रतीकात्मक है।

12.3 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

12.3.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. 'हरितगन्धा' एकांकी का सम्बन्ध किससे है ?

उत्तर – 'हरितगन्धा' एकांकी का सम्बन्ध पर्यायवरण से है।

प्रश्न-2. हरितगन्धा एकांकी का कथानक किस भावना पर आधारित है ?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी 'हरितगन्धा' का कथानक सामयिक चेतना पर आधारित है।

प्रश्न-3. एकांकीकार हमीदुल्ला का 'हरितगन्धा' एकांकी से कौन-से लक्ष्य की पूर्ति होती है ?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी 'हरितगन्धा' से रचनाकार का लक्ष्य वातावरण एवं भाव व्यंजना द्वारा एक स्थायी प्रभाव की व्यंजना करना रहता है।

प्रश्न-4. हरितगन्धा एकांकी का मूल उद्देश्य क्या रहा है ?

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी हरितगन्धा का मूल उद्देश्य पर्यावरण के प्रति लोगों को सचेत तथा सावधान करना है तथा संगठित संघर्ष का महत्त्व देना है।

प्रश्न-5. पर्यावरण जैसी राष्ट्रव्यापी समस्या के निराकरण का क्या उपाय हो सकता है ? हरिगन्धा एकांकी के माध्यम से बताइये।

उत्तर – पर्यावरण जैसी राष्ट्रव्यापी समस्या का निराकरण पर्यावरण शत्रुओं का विरोध करके ही संभव है।

प्रश्न-6. ''ये पेड़ प्रकृति के धनुष की लकड़ी हैं, हम सब इसकी डोर हैं। हमारा जीवन इसकी कमान के तीर हैं। ये वन होंगे तो जीवन चलेगा।'' इस कथन में कौन-सी भावना की अभिव्यक्ति हुई है ?

उत्तर – प्रस्तुत कथन सरपंच का है, जिसमें पर्यावरण के प्रति प्रेम और प्रकृति के प्रति अपनत्व की भावना व्यक्त हुई है।

प्रश्न-7. पर्यावरण प्रदूषण के मुख्य कारण 'हरितगंधा' एकांकी के आधार पर बताइये।

उत्तर – एक ओर प्राकृतिक पदार्थों का अनुचित विदोहन किया जा रहा है और दूसरी ओर नवीनतम आविष्कारों एवं साधनों की वृद्धि हो रही है, जिससे वायु-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण, जल-प्रदूषण में वृद्धि हुई है।

प्रश्न-8. प्रस्तुत एकांकी हरितगन्धा किस आन्दोलन का स्मरण कराने में सहायक है ?

उत्तर – हरितगन्धा एकांकी के द्वारा राजस्थान में विश्नोई परिवार के द्वारा चलाये गये आन्दोलन तथा सुप्रसिद्ध पर्यावरणविद् सुन्दरलाल बहुगुणा के चिपको आन्दोलन का स्मरण होता है।

प्रश्न-9. सरकार एवं विभिन्न संगठन पर्यावरण संगठन के प्रति सचेष्ट हैं, किन्तु उनके प्रयासों का संतोषजनक परिणाम नहीं मिल रहा है। प्रस्तुत एकांकी के आधार पर कारण स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – पर्याप्त जन-चेतना जाग्रत करने के बावजूद भी उपाय कारगर सिद्ध नहीं हो रहे हैं जिसमें सबसे बड़ी बाधा जन-चेतना की कमी और रोजगार की स्वार्थी प्रवृत्ति है।

प्रश्न-10. एकांकीकार श्री हमीदुल्ला के नाटकों को कौन-सा सम्मान पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हुआ है ?

उत्तर – श्री हमीदुल्ला के नाटक राजस्थान साहित्य अकादमी के सर्वोच्च मीरा सम्मान से सम्मानित किये गये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.3.2 लघूत्तरात्मकप्रश्न

प्रश्न-1. प्रस्तुत एकांकी ''हरितगन्धा'' की पात्र-योजना पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

उत्तर – पात्र या चरित्र-चित्रण एकांकी का प्रमुख तत्त्व माना जाता है। एकांकी का कथानक अत्यन्त लघु होता है। इसलिए इसमें किसी पात्र का विस्तृत चरित्र-चित्रण करना सम्भव नहीं रहता है। एकांकी में प्राय: सांकेतिक रूप में चरित्र-चित्रण किया जाता है। इसके लिए पात्रों के संवादों के द्वारा अथवा घटनाओं के माध्यम से उनके स्वभाव और आचरण का उद्घाटन किया जाता है। एकांकी की पात्र-योजना में यह ध्यान देने योग्य बात है कि इसमें पात्र अधिक नहीं होने चाहिए। कम पात्रों के द्वारा कथानक का विकास दिखाते हुए उनके अन्तर्द्वन्द्ध की व्यंजना होनी चाहिए तथा उन सभी स्थितियों का संयोजन कर उन्हें उद्देश्य की ओर उन्मुख करना चाहिए।

हमीदुल्ला के 'हरित गन्धा' एकांकी में पाँच-छ: पात्र ही प्रमुख रूप से सामने आते हैं। इसमें गाँव का सरपंच, उसका भतीजा, उसकी पुत्री और कुछ ग्रामीण, ये सभी पर्यावरण के रक्षक और सरल स्वभाव के ग्रामीण पात्र हैं। ठेकेदार और उसका नौकर अन्य पात्र हैं, जो कि पर्यावरण के शत्रु हैं। सरपंच तथा अन्य ग्रामीण पात्र ठेकेदार की काली करतूतों से पूर्णतया परिचित नहीं रहते हैं। ठेकेदार गाँव वालों को लोभ-लालच देकर और डरा-धमका कर अवैध रूप से वृक्षों को काटने की योजना बनाता है। उसका नौकर स्वामीदास उसका सहायक बना रहता है। एकांकी के अन्त में क्षण भर के लिए पुलिस को भी पात्र रूप में दिखाया गया है। अत: प्रस्तुत एकांकी की पात्र योजना इसके कथानक के अनुरूप है। इसमें सभी पात्र उचित और विश्वस्त प्रतीत होते हैं। इसमें यदि ठेकेदार प्रतिनायक पात्र है तो सरपंच नायक पात्र है। एकांकीकार ने सरपंच के चरित्र में अनेक विशेषताओं का समावेश किया है।

प्रश्न-2. ''पर्यावरण रक्षा की भावना जागृत करना तथा संगठित संघर्ष का महत्त्व बताना हरितगंधा एकांकी का मूल उद्देश्य रहा है।'' इस कथन का संक्षिप्त में विवेचन कीजिए।

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी के कथानक में ठेकेदार और उसके नौकर को पर्यावरण का विरोधी बतलाया गया है। वे अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए हरे-भरे पेड़ों को काटने की योजना बनाते हैं। इसके लिए वे गाँव के सरपंच को धन का लालच देते हैं। धन का लालच अस्वीकार करने पर उसकी लड़की का अपहरण भी करते हैं तथा ग्रामीणों को जान से मार डालने की धमकी देकर भयभीत करते हैं। इस प्रकार ठेकेदार पर्यावरण का शत्रु है। सरपंच और गाँव के अन्य लोग पर्यावरण के उस शत्रु का विरोध करते हैं। समय के रहते उन्हें पुलिस की सहायता भी मिल जाती है। इस तरह प्रस्तुत एकांकी का उद्देश्य पर्यावरण के शत्रुओं के विरुद्ध जन-चेतना जागृत करना और पर्यावरण की रक्षा के लिए सावधान रहने का सन्देश देना है। लेखक इस उद्देश्य को सशक्त रूप में व्यक्त करने में सफल रहा है।

हमारे समाज में आज अनेक समस्याएँ निरन्तर बढ़ती ही जा रही हैं। इन समस्याओं का समाधान कई कारणों से नहीं हो पाता है। कुछ लोग स्वार्थ की खातिर इन समस्याओं से मुँह मोड़ लेते हैं, कुछ लोग लालच में आकर विरोधियों का साथ देते हैं और कुछ आतंक अथवा भय के कारण दूर रहना चाहते हैं। इस प्रकार संघर्ष की भावना न होने से हमारी सामाजिक अथवा सामयिक विभिन्न समस्याओं का निदान नहीं हो पाता है। हमारे देश में पर्यावरण की समस्या का समाधान न हो पाने का यही कारण है। प्रस्तुत एकांकी में बताया गया है कि जब ठेकेदार अपने आदमियों को पेड़ काटने का आदेश देता है तो गाँव के लोग अपने प्राणों की परवाह किये बिना पेड़ों से लिपट जाते हैं। वे ठेकेदार की धमकियों से नहीं डरते हैं। इस तरह अन्त में उन्हें पर्यावरण की रक्षा करने में सफलता मिल जाती है। इस कार्य में सरपंच की चतुरता और निष्ठा का भी विशेष योगदान रहता है। अत: प्रस्तुत एकांकी का उद्देश्य यह बतलाना है कि ग्रामीणों में संघर्ष की भावना जागृत होने पर पर्यावरण की सुरक्षा आसानी से हो सकती है। हम 'हरितगन्धा' को सुखी और स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक मानते हैं। इसकी रक्षा संगठित संघर्ष से ही संभव है। प्रस्तुत एकांकी का उद्देश्य इसी बात का महत्त्व बतलाना और प्रेरणा देना है।

12.3.3 निबन्धात्मकप्रश्न

प्रश्न-1. ''हरितगन्धा पर्यावरण संरक्षण के आधुनिक आन्दोलन को स्पष्ट करती हुई एकांकी है।'' इस कथन के सन्दर्भ में अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर – 'हरितगन्धा' एकांकी सामाजिक समस्या पर आधारित एकांकी है। इसमें एकांकीकार हमीदुल्ला ने आधुनिक काल में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को कारण सहित उपस्थित कर उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। वर्तमान में पर्यावरण संरक्षण एक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रमुख समस्या बन गयी है। यह समस्या न केवल एक गाँव, एक जिला या प्रान्त की है, अपितु यह सारे राष्ट्र और समग्र विश्व की समस्या है। आज निरन्तर वैज्ञानिक प्रगति एवं भौतिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त हो रहा है, व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक ओर प्राकृतिक पदार्थों का विदोहन कर रहा है तथा दूसरी ओर नवीनतम आविष्कारों एवं साधनों से पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है। फलस्वरूप आज पर्यावरण प्रदूषण विविध रूपों में बढ़ता जा रहा है, ध्वनि-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण आदि अनेक तरह के प्रदूषण उत्तरोत्तर फैल रहे हैं, जिनसे मानव सभ्यता की जीवन-शक्ति पर प्रश्नचिह्न लगता जा रहा है।

पर्यावरण संरक्षण आन्दोलन

आधुनिक काल में पर्यावरण संरक्षण को लेकर सारे विश्व में चिन्तन-मनन हो रहा है तथा विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में इसके लिए जन-चेतना भी जागृत की जा रही है, परन्तु जिस तीव्र गति से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, उस दृष्टि से इसके संरक्षण के उपाय कारगर सिद्ध नहीं हो रहे हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि जनता में पर्यावरण संरक्षण की व्यापक चेतना का अभाव है। प्रस्तुत एकांकी में इसी दृष्टि से ग्रामीण परिवेश का चित्रण कर ग्रामीणों में पर्यावरण संरक्षण के लिए सचेष्ट रहने की भावना का प्रेरणादायी निरूपण किया गया है। इसी विशेषता के कारण 'हरितगन्धा' एकांकी को पर्यावरण संरक्षण के आधुनिक आन्दोलन को स्पष्ट करने वाला बताया गया है। उक्त कथन के सन्दर्भ में निम्न विचार व्यक्त किये जा सकते हैं —

1. पर्यावरण संरक्षण की सामयिक चेतना — प्रस्तुत एकांकी का कथानक सामयिक चेतना से युक्त है। वर्तमान में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या विकराल रूप धारण कर रही है। सरकार एवं विभिन्न संगठन पर्यावरण संरक्षण के प्रति सचेष्ट हैं, परन्तु उनके प्रयासों के सन्तोषजनक परिणाम नहीं मिल रहे हैं। इसमें सबसे बड़ी बाधा जन-चेतना की कमी और बढ़ती हुई आबादी के कारण रोजगार की स्वार्थी प्रवृत्ति है। इस कारण कृषि-भूमि की हरियाली नष्ट की जा रही है। इमारती सामान के लिए तथा ईन्धन की आवश्यकता के लिए वन काटे जा रहे हैं। भूमिगत खानों-खदानों, नयी-नयी सड़कों एवं औद्योगिक परियोजनाओं के कारण भी विशाल वन-क्षेत्र उजाड़े जा रहे हैं। इस तरह आज हरितगन्धा अर्थात् वन-भाग की हरियाली घटती जा रही है। प्रस्तुत एकांकी में यही दर्शाया गया है। एक ठेकेदार स्वार्थ की पूर्ति के लिए गाँव के पर्यावरण को नष्ट करना चाहता है। वह गाँव के समीपस्थ वन से पेड़ों को काटने की योजना बनाता है। इस काम में कोई रूकावट न डाले इसके लिए वह ग्रामीणों को लोभ-लालच देता है, उन्हें डराता-धमकाता है, सरपंच को वश में करने के लिए उसकी पुत्री का अपहरण तक करता है। इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी में यह बताया गया है कि हमारे ही समाज के लोग पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। गाँव के सरपंच तथा अन्य ग्रामीणों की तरह सभी में पर्यावरण सरंक्षण की चेतना होनी चाहिए, तभी पर्यावरण की रक्षा की जा सकती है।

2. चिपको आन्दोलन का चित्रण — प्रस्तुत एकांकी में ठेकेदार को पर्यावरण का शत्रु तथा सरपंच आदि को पर्यावरण का संरक्षक दर्शाया गया है। वस्तुतः एकांकीकार ने इसके कथानक को राजस्थान के विश्नोई समाज द्वारा चलाये गये आन्दोलन अथवा प्रसिद्ध पर्यावरणविद् सुन्दरलाल बहुगुणा के 'चिपको आन्दोलन' के आधार पर गूँथा है। इस सम्बन्ध में प्रो. मदनमोहन माथुर का यह कथन द्रष्टव्य है — ''यह चिपको आन्दोलन की भावना स्पष्ट करता है। ठेकेदार बूढ़े बरगद के पेड़ को काटने की नीयत से आया है, पर सारी प्रकृति ही मानो प्रतिकार के लिए उठ खड़ी होती है। चोर को देखकर मोर बोल उठता है, पाँव के नीचे चूहा आकर चौंका देता है। सरपंच बताता है कि ढाणी का सन्नाटा हर पल उनसे बातें करता है। उन्हें संगीत सुनाता है। पेड़ों से चिपककर उन्हें काटने से बचाने की खेजड़ली की अमर कथा की पुनरावृत्ति के साथ नाटक चरम पर पहुँचता है।''

चिपको आन्दोलन का यही तरीका है कि पेड़ से लिपटकर उसे नहीं काटने दिया जावे। इससे वृक्षों अर्थात् वनों की रक्षा हो सकेगी तथा पर्यावरण सुरिक्षत रहेगा। पेड़ प्राण-वायु का संचार करते हैं, पर्यावरण को स्वच्छ रखते हैं और हरीतिमा के प्रसार में सहयोगी होते हैं। इस तरह वनों या वृक्षों की रक्षा के लिए, उनकी अवैध कटाई रोकने के लिए, पर्यावरण को हरा-भरा रखने के लिए आधुनिक समय में चिपको आन्दोलन कई क्षेत्रों में चल रहा है। प्रस्तुत एकांकी में गाँव का सरपंच तथा अन्य ग्रामीण प्रातःकाल ही पेड़ों से चिपक जाते हैं। जब ठेकेदार अपने आदमियों के साथ पेड़ों को कटाने आता है, तो उन्हें देखकर वह गोली चलाने की धमकी देता है। वह ग्रामीणों को डराता-धमकाता है। अन्ततः ग्रामीण अपने लक्ष्य में सफल रहते हैं। उचित समय पर पुलिस आकर ठेकेदार को गिरफ्तार कर लेती है। तब सभी ग्रामीण अपने गाँव की सुख-शान्ति, अपने वन की हरीतिमा और प्राकृतिक गन्ध की सुरक्षा कर पाने से प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी में पर्यावरण संरक्षण के आधुनिक आन्दोलन की सफल प्रस्तुति दिखाई देती है।

एकांकी की मूल संवेदना – प्रस्तुत एकांकी में जो कथानक अपनाया गया है, उसकी मूल संवदेना पर्यावरण संरक्षण के समस्यात्मक रूप का समाधान प्रस्तुत करता है। पर्यावरण की सुरक्षा अपने ही बल पर और अपनी ही चेतना से हो सकती है। यदि व्यक्ति असावधानी से, व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति की भावना से अथवा धन कमाने की लालसा से प्राकृतिक वातावरण की हरित गन्ध को नष्ट करना चाहता है, तो वह परोक्ष रूप में सामाजिक जीवन के सुख-चैन, स्वस्थ वातावरण तथा आनन्द उल्लास को, प्राणियों के आयुष्य को नष्ट करने का काम करता है। क्योंकि स्वच्छ पर्यावरण ही प्राणियों को जीवनी-शक्ति प्रदान करता है। वर्तमान में विश्व के प्रायः सभी देशों में वनों की अन्धाधुन्ध कटाई हो रही है, हरीतिमा उजाड़ी जा रही है और प्रकृति की स्वच्छ गन्धनष्ट की जा रही है, इससे पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। इस दृष्टि से भी प्रस्तुत एकांकी में सरपंच और अन्य ग्रामीणों के वार्तालाप से यह भावना व्यक्त की गई है कि यदि हमारा पर्यावरण सुरक्षित रहेगा, प्रकृति की हरित गन्ध उपलब्ध रहेगी, तो हमारा जीवन सुखी एवं स्वस्थ रहेगा। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का यही उचित समाधान भी है तथा प्रस्तुत एकांकी में यही सामाजिक चेतना मूल संवेदना के रूप में व्यक्त हुई है।

निष्कर्ष – इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत एकांकी में पर्यावरण संरक्षण के आधुनिक आन्दोलन (चिपको आन्दोलन) का सुस्पष्ट अंकन किया गया है। इसमें एकांकीकार ने पर्यावरण संरक्षण के लिए सामाजिक चेतना के प्रसार की व्यंजना की है। कुछ स्वार्थी प्रवृत्ति के धूर्त एवं नादान लोग वनों की हरीतिमा नष्ट करना चाहते हैं। अब यह सर्वत्र एक विकट समस्या बन गई है। इसका समाधान इस तरह के आन्दोलनों से ही हो सकता है। इस तरह का सन्देश देना ही प्रस्तुत एकांकी का प्रतिपाद्य एवं मूल संवेदना है।

प्रश्न- 2. 'हरितगन्धा' एकांकी के मुख्य पात्र सरपंच की चारित्रिक विशेषताओं पर एक निबन्ध लिखिए।

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी में सरपंच की जो चारित्रिक विशेषताएँ दिखाई देती हैं, उन्हें निम्नलिखित शीर्षकों में स्पष्ट किया जा सकता है –

1. ईमानदार – गाँव का सरपंच अत्यधिक ईमानदार दिखाया गया है। ठेकेदार अपने नौकर से कहता है कि गाँव के सरपंच बड़े काम की चीज होते हैं। उन्हें वश में करके अपना काम साधा जा सकता है। इसी आशा से वह गाँव के सरपंच के पास जाता है और उसे अपनी तरफ करना चाहता है। परन्तु सरपंच ईमानदारी का परिचय देता है और किसी भी तरह ठेकेदार बहकावे में नहीं आता है। गाँव के अन्य लोग भी सरपंच की ईमानदारी पर पूरा विश्वास करते हैं। इसी कारण जब पुलिस को गुप्त रूप से सूचना भेजी जाती है, तो वह सरपंच की ईमानदारी पर विश्वास करके शीघ्र ही घटना-स्थल पर आ जाती है और ठेकेदार को गिरफ्तार करके ले जाती है।

2. आस्थावादी – प्रस्तुत एकांकी में सरपंच को ईश्वर पर आस्था रखने वाला बतलाया गया है। वह ग्रामीणों के साथ भजन-कीर्तन में भाग लेता है। ग्रामीण लोग इसलिए भगवान की पूजा करते हैं ताकि समय पर अच्छी वर्षा हो और खूब फसल उत्पन्न हो। सरपंच ग्रामीणों के इस विश्वास को अवश्य ही पूरा होने के लिए कहता है। वह वृक्षों में ईश्वर का निवास मानता है और उन्हें अपने जीवन का आधार बतलाता है। वह अपने गाँव के पास बहने वाली नदी को साक्षात् गंगा मैया का अवतार मानता है। इस प्रकार एकांकीकार ने सरपंच को आस्थावादी और आस्तिक भावना वाला व्यक्ति चित्रित किया है।

3. सभ्य आचरण वाला – गाँव का सरपंच यद्यपि अधिक पढ़ा-लिखा नहीं है, तथापि वह सभ्य आचरण वाला है। जब एक अपरिचित के रूप में ठेकेदार और उसका नौकर उसके गाँव में आते हैं तो वह उनका सच्चे दिल से स्वागत करता है। प्रस्तुत एकांकी में इस विशेषता का उद्घाटन करने के लिए यह संवाद योजना द्रष्टव्य है –

"ठेकेदार : तुम हो यहाँ के सरपंच ?

सरपंच : हाँ, मैं हूँ। कहो।

ठेकेदार : पहले अपना परिचय दे दूँ। मैं हूँ, ठेकेदार। यह मेरा नौकर है, स्वामीदास।

सरपंच : शहर से आये हो ?

ठेकेदार : हाँ।

सरपंच : कीकर पधारिया ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ठेकेदार : तुम्हारी बोली फलीभूत करने।

सरपंच : मेरी ? बिराजो।''

इस प्रकार सरपंच पर्यावरण के विरोधी और भ्रष्ट आचरण वाले ठेकेदार के साथ सभ्य आचरण का परिचय देता है।

4. पवित्र भावना वाला – गाँव का सरपंच सत्य का पक्षधर और पवित्र भावना वाला व्यक्ति है। ठेकेदार उसे अपनी स्वार्थी बातों से उलझाना चाहता है, तब सरपंच स्पष्ट कहता है कि गाँव के इस बरगद में नगर की सारी बेचैनी समा सकती है। अर्थात् गाँव के लोगों के हृदय अत्यधिक उदार होते हैं, इसका कारण उनके मन की पवित्र भावना है। सरपंच इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहता है कि – ''वह है भावना, जो यहाँ के रहने वालों के मन में है।''

ठेकेदार स्वार्थ-सिद्धि के लिए सरपंच को फुसलाने की चेष्ट करते हुए कहता है कि – ''हमें भी यहीं का रहने वाला समझो। वह पहाड़ी चट्टान देख रहे हो। वह तम्बू। वहीं डेरा जमाया है। आना, सारी व्यवस्था है। अब हम दोस्त हैं।'' लेकिन सरपंच ठेकेदार की इन बातों में नहीं आता है, क्योंकि उसे ठेकेदार के आचरण में दोष प्रतीत होता है। इसीलिए वह ठेकेदार से स्पष्ट कहता है – ''तुम दोस्त नहीं हो सकते। वह नदी देख रहे हो। उसके घड़ियाल हमारे दोस्त हैं।'' इस तरह के संवादों से एकांकीकार ने सरपंच के चरित्र का सुन्दर उत्कर्ष दिखाया है और उसे पवित्र भावना वाला बताया है।

5. चतुर-समझदार – प्रस्तुत एकांकी का पात्र सरपंच यद्यपि कम पढ़ा-लिखा और ग्रामीण परिवेश में रहने वाला सरल स्वभाव का व्यक्ति है, परन्तु वह चतुर स्वभाव का है। वह ठेकेदार की लोभ-लालच भरी बातों को सुनकर तुरन्त समझ लेता है कि यह स्वार्थ के खातिर हमारे साथ नकली सहानुभूति प्रकट कर रहा है। इसीलिए वह ठेकेदार से कहता है कि जो सच्चे दोस्त होते हैं, वे घड़ियाल की तरह नकली आँसू नहीं बहाते हैं। इतना ही नहीं, वह बड़ी चतुरता से ठेकेदार को फटकारते हुए कहता है कि – ''यहाँ की डाकिन भी एक घर छोड़ती है।''

सरपंच ठेकेदार का विरोध करता है, तब ठेकेदार रात में उसके घर आता है और उसकी जवान लड़की सुन्दरी का अपहरण करने लगता है। सरपंच उससे सुन्दरी को छोड़ देने की प्रार्थना करता है। सरपंच समझ जाता है कि यह व्यक्ति इस तरह नहीं मानेगा। इसलिए वह उस समय सुन्दरी की रक्षा के लिए ठेकेदार की शर्त मान लेता है, परन्तु बाद में वह बड़ी चतुरता से अपने ग्रामीण साथियों को अपनी योजना समझाता है और गुप्त रूप से पुलिस को भी सूचित करता है। प्रातःकाल होते ही सरपंच और उसके साथी उन पेड़ों से लिपट जाते हैं, जिन्हें काटने के लिए ठेकेदार के आदमी जाते हैं। उसी अवसर पर पुलिस आकर ठेकेदार को गिरफ्तार कर लेती है। इस प्रकार सरपंच की चतुरता और समझदारी से खून-खराबा भी नहीं होता है, सुन्दरी की इज्जत भी बच जाती है और पर्यावरण का शत्रु ठेकेदार भी गिरफ्तार हो जाता है।

6. पर्याबरण प्रेमी – प्रस्तुत एकांकी में सरपंच को ग्रामीण बातावरण से प्रेम करने वाला और प्रकृति के प्रति अपनत्व रखने वाला बतलाया गया है। वह ठेकेदार से बरगद के पेड़ के बारे में बोलता है कि इसने जीवन के कई उतार-चढ़ाव देखे हैं। यह हमारे गाँव वालों की पवित्र भावना का परिचायक है। इसमें एक पूरा संसार समाया हुआ है। ठेकेदार डाकिन की बात सुनकर कहता है कि यहाँ चारो ओर बहुत सन्नाटा है। तब सरपंच अपना प्रकृति-प्रेम प्रकट करते हुए कहता है कि – ''यह सन्नाटा हर पल हमसे बातें करता है। हमें संगीत सुनाता है।'' ठेकेदार पुराने पेड़ों को काटने की बात करता है, तब सरपंच एक भी पेड़ नहीं कटने देने की प्रतिज्ञा करता है। उस अवसर पर सरपंच का पर्यावरण प्रेम इस संवाद में व्यक्त हुआ है –

''ठेकेदार : हाँ ! तुम्हें रोजगार मिलेगा।

सरपंच : ये पेड़ प्रकृति के धनुष की लकड़ी हैं। हम सब इसकी डोर हैं। हमारा जीवन इस कमान का तीर है। वे वन होंगे, तो जीवन चलेगा।

ठेकेदार : यहाँ कारखाने होंगे।

सरपंच : धुँआ उड़ेगा।

ठेकेदार : ये सब तो होगा।

सरपंच : फेफड़ों में फफूंद जमेगी। तुम धुएँ के आतंक से अपने घरों की खिड़कियाँ खोलकर आराम से सो भी नहीं सकोगे।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इसी प्रकार अपनी पुत्री और ग्रामीणों से वार्तालाप करते समय सरपंच अपने पर्यावरण प्रेम को प्रकट करते हुए ठेकेदार को जंगल की हरी गन्ध लूटने वाला और हरियाली को छीनने वाला बतलाया है। वह वार्तालाप करते हुए कहता है –

''सरपंच : एक गिद्ध ढाणी का सुख-चैन लूटने आया है।

सुन्दरी : उसकी दृष्टि ढाणी की चिड़ियों पर है।

सरंपच : उन पेड़ों पर जिन पर वे चहकती हैं, जो उनके मित्र हैं।

सुन्दरी : जंगल नहीं बचे, तो हरियाली नहीं रहेगी।

सरपंच : हरियाली नहीं रही, तो जीवन हरा-भरा नहीं रहेगा।''

इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी में सरपंच को प्रकृति और पर्यावरण से अत्यधिक प्रेम रखने वाला बतलाया गया है। यह उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है।

7. साहसी और निर्भय – ठेकेदार सरपंच को अपने वश में करने के लिए पहले तो लोभ-लालच देता है, फिर उसे डराता-धमकाता है, परन्तु सरपंच उससे नहीं डरता है। वह अपने गाँव के लोगों को रात में बरगद के पेड़ के नीचे एकत्र कर ठेकेदार का विरोध करने की योजना बनाता है और प्रातःकाल होते ही उसके नेतृत्व में सभी ग्रामीण पेड़ों से चिपक कर खड़े हो जाते हैं। ठेकेदार अपनी बन्दूक निकालकर गोली चलाने की तैयारी करता है, फिर भी सरपंच निर्भय बना रहता है। वह पर्यावरण की खातिर अपने प्राणों की बाजी लगाने का साहस दिखाता हुआ ठेकेदार से कहता है –

''सरपंच : हम तुम्हें जानते हैं। तुम इस जंगल की हरी गन्ध के लुटेरे हो। तुम वे हो, जो हरियाली छीनकर हमें अकाल देते हैं।

ठेकेदार : तुम मेरा शिकार हो जाओगे।

सरपंच : हमें मालूम है, हर हाल में शिकार हमें ही होना है। पर हम डरेंगे नहीं।''

इस प्रकार सरपंच पुलिस के आने तक ठेकेदार का विरोध करता रहता है और उसे गिरफ्तार करवाने में सफल हो जाता है।

इस प्रकार सरपंच पुलिस के आने पर ठेकेदार का विरोध करता रहता है और उसे गिरफ्तार करवाने में सफल हो जाता है।

निष्कर्ष – संक्षेप में, स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत एकांकी में सरपंच एक आदर्श पात्र है। एकांकीकार ने उसे अपनी भावनाओं का प्रतिनिधि बनाया है। वह पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति पूर्णतया सचेत रहता है। ठेकेदार हरित गन्धा अर्थात् हरे-भरे पेड़ों को और स्वच्छ हवा देने वाली वनों की हरियाली को नष्ट करना चाहता है, परन्तु ठेकेदार इसमें सफल नहीं होता है। क्योंकि गाँव का सरपंच अपनी चतुरता, पर्यावरण प्रेम तथा ईमानदारी से ठेकेदार द्वारा पेड़ों की कटाई नहीं होने देता है। इस तरह एकांकी में सरपंच के चरित्र की विशेषताओं का प्रभावशाली रूप में चित्रण किया गया है।

प्रश्न- 3. 'हरित गन्धा' एकांकी के कथानक की विशेषताएँ बतलाते हुए इसके उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – राजस्थान के आधुनिक नाटककारों में श्री हमीदुल्ला सर्वाधिक सफल सर्जक एवं रंगकर्मी माने जाते हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में सामयिक समस्याओं और यथार्थ परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण किया है। 'हरित गन्धा' हमीदुल्ला द्वारा रचा गया ऐसा एकांकी है, जिसमें हमारे समकालीन जीवन की एक समस्या का चित्रण किया गया है। आपने दूरदर्शन और रेडियो के लिए भी अनेक सफल नाटक लिखे हैं। राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा इन्हें नाटक-विधा पर उच्च साहित्यिक पुरस्कार प्रदान किया गया है।

'हरित गन्धा' एकांकी का कथानक

प्रस्तुत एकांकी पर्यावरण से संबंधित है। इसमें ग्रामीण जीवन का दृश्य उपस्थित किया गया है। घने जंगल के पास में एक छोटा-सा गाँव जिसे ढाणी भी कह सकते हैं, उसके किसान पेड़-पौधों से अत्यधिक प्रेम करते हैं। वहाँ के घने जंगल को देखकर कोई ठेकेदार अपने नौकर के साथ वहाँ आता है और जंगल के पेड़ों को काटने की योजना बनाता है। परन्तु गाँव का सरपंच और अन्य ग्रामीण ठेकेदार का विरोध करते हैं। ठेकेदार उन्हें धन का लालच देता है, फिर उन्हें भयभीत कर पेड़ों को काटने की योजना बनाता है। गाँव का सरपंच तथा अन्य लोग पेड़ों की रक्षा के लिए उनसे लिपट जाते हैं। ठेकेदार स्वार्थ से अन्धा होकर उन पर गोली चलाना चाहता है। तभी पुलिस आ जाती है और ठेकेदार को पकड़कर ले जाती है। इससे ग्रामीण प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी का कथानक सामयिक चेतना पर आधारित और अतीव संक्षिप्त है। इस कथानक की विशेषताओं का उल्लेख निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. रोचक एवं जिज्ञासायुक्त—प्रस्तुत एकांकी का कथानक अत्यन्त रोचक है। कोई ठेकेदार घने जंगल को काटने के लिए अपने नौकर के साथ किसी छोटे से गाँव में जाता है। उसे देखकर सरपंच और गाँव के लोग एकत्र होकर अपना विरोध प्रकट करते हैं, परन्तु ठेकेदार उन्हें लोभ-लालच देकर शांत करना चाहता है। इस प्रसंग में एकांकी का कथानक अत्यन्त रोचक लगता है। ठेकेदार का विरोध करने पर वह सरपंच से बदला लेने की कोशिश करता है और उसकी पुत्री सुन्दरी का रात में अपहरण करने की चेष्टा करता है। तब वह पेड़ों को काटने में रुकावट न डालने की शर्त पर सुन्दरी को छोड़ देता है। इससे ऐसा लगता है कि ठेकेदार की विजय हो गई है, परन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल सरपंच और उसके साथी पेड़ों से लिपट कर पर्यावरण की रक्षा करने के लिए तैयार होता है, तभी पुलिस आ जाती है। इस प्रकार एकांकी के कथानक में कौतूहल और जिज्ञासा पर्याप्त मात्रा में है। इस दृष्टि से यह सफल एकांकी है।

2. कथानक का उचित विकास—प्रस्तुत एकांकी का आरम्भ ठेकेदार और उसके नौकर के वार्तालाप से होता है। इसके बाद वे सरपंच को अपनी ओर करने के लिये लालच देते हैं। यह एकांकी का सुन्दर नाटकीय स्थल है। ठेकेदार द्वारा सुन्दरी का अपहरण करने पर सरपंच के मन में द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार ग्रामीणों के मन में भी आतंक की स्थिति रहती है, लेकिन दूसरे दिन सुबह से सब पेड़ों से लिपट जाते हैं और ठेकेदार की धमकियों के सामने अडिग रहते हैं। यह एकांकी के कथानक की चरम सीमा है। उसी समय पुलिस आकर ठेकेदार को गिरफ्तार कर लेती है। इस प्रकार हरे-भरे पेड़ों की कटाई नहीं होती है। इसमें कथानक का आरम्भ जितना रोचक दिखाई देता है, उतनी ही रोचक इसकी परिणति भी दिखाई देती है। इसमें आरम्भ, विस्तार और अन्त इन तीनों अवस्थाओं का स्वाभाविक विकास हुआ है। इस आधार पर यह श्रेष्ठ एकांकी है।

3. प्रभावोत्पादकता—प्रत्येक एकांकी में स्थान और काल की एकता आवश्यक है। क्योंकि एकांकी का कथानक अत्यन्त संक्षिप्त होता है, इसलिए उसमें दिखाई जाने वाली सभी घटनाएँ एक ही स्थान पर और एक ही काल में घटित होनी चाहिए। प्रस्तुत एकांकी में सारा कथानक एक छोटी-सी ग्रामीण ढाणी में घटित दिखाया गया है। इसमें समय भले ही अधिक रखा गया है, परन्तु कार्य की एकता का पूरा ध्यान रखा गया है। एकांकीकार हरे-भरे पेड़ों की रक्षा के लिए ग्रामीणों में संघर्ष की भावना जगाना चाहता है। इस कार्य को इसमें प्रभावी ढंग से उपस्थित किया गया है।

4. सामयिक चेतना का वाहक—एकांकी का कथानक जितना यथार्थ और रोचक होता है, उतना ही वह सामयिकता से युक्त भी होना चाहिए। प्रस्तुत एकांकी का कथानक वर्तमान काल में पर्यावरण से संबंधित समस्या पर आधारित है। आज कुछ स्वार्थी लोग हरे-भरे वनों को काट रहे हैं। वे पर्यावरण को हानि पहुँचाकर सारे वातावरण को दूषित कर रहे हैं। प्रस्तुत एकांकी में ठेकेदार को ऐसे ही पात्र के रूप में दर्शाया गया है। गाँव का सरपंच तथा अन्य ग्रामीण लोग पर्यावरण की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। इसके लिए वे संघर्ष का रास्ता अपनाते हैं और अन्त में विजय उन्हीं की होती है। इस तरह इस एकांकी के कथानक में पर्यावरण की सुरक्षा के संबंध में सामयिक चेतना का समावेश किया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी का कथानक रोचक, संक्षिप्त, प्रभावोत्पादक तथा सामयिक चेतना का वाहक है। इसमें संवादों के माध्यम से कथानक का विकास तीव्र गति से हुआ है।

'हरित गन्धा' एकांकी का उद्देश्य

सामान्यतया एकांकी का उद्देश्य नाटक की तरह ही मनोरंजन माना जाता है, किन्तु यह उद्देश्य स्वयं में कोई महान् उद्देश्य नहीं है। एकांकी अपनी रचना में कोई सूक्ष्म संकेत सम्हाले रहता है। यह संकेत ही नाटक की मूल संवेदना होता है। मूल संवेदना अपनी परिणति पर पहुँचा कर दर्शक के मन को किसी भावना, किसी परिस्थिति अथवा किसी सन्देश से आन्दोलित कर जाती है। एकांकी समग्र-साहित्य के समान एक जीवनदृष्टि और चिन्तन का क्षेत्र प्रदान करता है। वस्तुतः एकांकीकार का लक्ष्य वातावरण और भाव-व्यंजन द्वारा एक स्थायी प्रभाव की व्यंजना करता रहता है। जिस समस्या का विवेचन या समाधान एकांकी का अभीष्ट होता है, उसकी सफलतापूर्वक उद्दिष्ट परिणति ही एकांकी का उद्देश्य और सन्देश होता है।

उक्त बिन्दुओं के आधार पर 'हरित गन्धा' एकांकी का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि इसकी मूल संवेदना सामयिक समस्या के प्रति नवीन चिन्तन को व्यक्त करने वाली है। मनोरंजन करना इसका सामान्य उद्देश्य है, परन्तु पर्यावरण के प्रति लोगों को सावधान रहने का संदेश देना इसका मुख्य उद्देश्य है। इस मूल संवेदना और एकांकीकार के दृष्टिकोण के अनुसार प्रस्तुत एकांकी के उद्देश्य को इस प्रकार समझा जा सकता है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. पर्यावरण रक्षा की भावना जागृत करना – प्रस्तुत एकांकी के कथानक में ठेकेदार और उसके नौकर को पर्यावरण का विरोधी बतलाया गया है। वे अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए हरे-भरे पेड़ों को काटने की योजना बनाते हैं। इसके लिए वे गाँव के सरपंच को धन का लालच देते हैं। धन का लालच अस्वीकार करने पर उसकी लड़की का अपहरण भी करते हैं तथा ग्रामीणों को जाने से मार डालने की धमकी देकर भयभीत करते हैं। इस प्रकार ठेकेदार पर्यावरण का शत्रु है। सरपंच और गाँव के अन्य लोग पर्यावरण के उस शत्रु का विरोध करते हैं। समय के रहते उन्हें पुलिस की सहायता भी मिल जाती है। इस तरह प्रस्तुत एकांकी का उद्देश्य पर्यावरण के शत्रुओं के विरुद्ध जन-चेतना जागृत करना और पर्यावरण की रक्षा के लिए सावधान रहने का सन्देश देना है। लेखक इस उद्देश्य को सशक्त रूप में व्यक्त करने में सफल रहा है।

2. संगठित संघर्ष का महत्त्व बतलाना – हमारे समाज में आज अनेक समस्याएँ निरन्तर बढ़ती ही जा रही हैं। इन समस्याओं का समाधान कई कारणों से नहीं हो पाता है। कुछ लोग स्वार्थ की खातिर इन समस्याओं से मुँह मोड़ लेते हैं, कुछ लोग लालच में आकर विरोधियों का साथ देते हैं और कुछ आतंक अथवा भय के कारण दूर रहना चाहते हैं। इस प्रकार संघर्ष की भावना न होने से हमारी सामाजिक अथवा सामयिक विभिन्न समस्याओं का निदान नहीं हो पाता है। हमारे देश में पर्यावरण की समस्या का समाधान न हो पाने का यही कारण है। प्रस्तुत एकांकी में बताया गया है कि जब ठेकेदार अपने आदमियों को पेड़ काटने का आदेश देता है तो गाँव के लोग अपने प्राणों की परवाह किये बिना पेड़ों से लिपट जाते हैं। वे ठेकेदार की धमकियों से नहीं डरते हैं। इस तरह अन्त में उन्हें पर्यावरण की रक्षा करने में सफलता मिल जाती है। इस कार्य में सरपंच की चतुरता और निष्ठा का भी विशेष योगदान रहता है। अतः प्रस्तुत एकांकी का उद्देश्य यह बतलाना है कि ग्रामीणों में संघर्ष की भावना जागृत होने पर पर्यावरण की सुरक्षा आसानी से हो जाती है। हम 'हरित-गन्धा' को सुखी और स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक मानते हैं। इसकी रक्षा संगठित संघर्ष से ही संभव है। प्रस्तुत एकांकी का उद्देश्य इसी बात का महत्त्व बतलाना और प्रेरणा देना है।

12.4 सारांश

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत एकांकी में पर्यावरण के सम्बन्ध में जन-जागरण की भावना व्यक्त की गई है। पर्यावरण की सुरक्षा आज सारे राष्ट्र की समस्या बन गई है। इसका समाधान तभी हो सकता है जब हम पर्यावरण के शत्रुओं का विरोध करें। इस लघु एकांकी में इसी तथ्य को मूल संवेदना के रूप में बड़ी रोचकता के साथ अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया गया है।

12.5 अभ्यास प्रश्नावली

1. सरपंच की चारित्रिक विशेषताएँ लिखिए।
2. एकांकी की मूल संवेदना लिखिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 13 : सूर्य बीज

(संकलनकर्त्ता – डॉ. रामचरण महेन्द्र)

संरचना

13.0 लेखक परिचय

13.1 हरित गन्धा

13.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

13.3 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

13.3.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

13.3.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

13.3.3 निबंधात्मक प्रश्न

13.4 सारांश

13.0 रेडियो रूपक का परिचय

रेडियो रूपक हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत विकसित होता जा रहा है और यह एक नवीनतम विधा है जिसके लेखकों ने नाटकीय सौन्दर्य के साथ काव्य-मधुरिमा को मिश्रित कर नवीन कल्पकृतियों को जन्म दिया है। आजकल हिन्दी के श्रेष्ठतम नाटककार रेडियो रूपक लिख रहे हैं जो अपने काव्य सौष्ठव के कारण न केवल लोकप्रियता प्राप्त कर चुके हैं, अपितु श्रेष्ठतम कलाकृतियों की कोटि में रखे जा सकते हैं। प्रस्तुत रेडियो रूपक सूर्यबीज पाँच बार रेडियो पर प्रसारित हो चुका है और पूरे राजस्थान में अपने काव्यग्रंथों, शब्दशिल्प तथा सशक्त कथोपकथन के कारण लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है।

राजस्थान के कवि-शिरोमणि सूर्यमल्ल मिश्रण को अतीत के गर्त से निकाल कर पुन: उन्हें कथा जगत में उनके वास्तविक स्थान पर आसीन किया गया है। भारत सरकार ने उनकी सांस्कृतिक महत्ता को दृष्टिगत कर डाक-टिकिट तक जारी किया है। राजस्थान के उस गौरवशाली स्तम्भ पर गत वर्षों से समग्र भारत में विशद् चर्चा रही है।

प्रस्तुत रेडियो रूपक अपने कुशल शिल्पविधान तथा काव्य सौष्ठव के कारण स्थायी साहित्य की कोटि में आता है। इसमें राजस्थान की अतीत कल्पित स्वर्णिम संस्कृति की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की गई है। कवि के जीवन, विचारधारा और महत्त्व पर प्रकाश डालती हुई यह रचना नवीन पीढ़ी के लिये एक प्रेरणा स्त्रोत है। नाटककार का प्रत्येक शब्द मन पर स्थायी प्रभाव अंकित करता है। यह नाटकीय सौन्दर्य का एक उदाहरण है। श्रोताओं के आग्रह पर इसे संकलित किया गया है।

13.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''आज तो देश भैरव राग गा रहा है, रणचण्डी, कराल काली खप्पर लेकर आसमान से उतर रही है, उसका स्वागत करो। चामुण्डा के लिए नरमुण्डों की माला तैयार करो। एक स्वप्न साकार होने जा रहा है – देश की आजादी का।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के डॉ. रामचरण महेन्द्र द्वारा विरचित 'सूर्य बीज' एकांकी से उद्धृत है। यह कथन महाकवि सूर्यमल्ल का है। समाचार मिलता है कि तांत्या ने बागी सैनिकों को साथ लेकर टोंक को घेर लिया है। फौजी छावनियों में बगावत हो गई है। बागी दिल्ली की ओर कूच कर गए हैं। बहादुरशाह जफ़र नेतृत्व कर रहे हैं। इसी बीच एक स्वर सूर्यमल्ल को 'वंश भास्कर' की कड़ियाँ जोड़ने को कहता है। सूर्यमल्ल कहते हैं कि –

व्याख्या – आज 'वंश भास्कर' की कड़ियाँ रचने व जोड़ने का समय नहीं है। आज वंश प्रकाशक सूर्योदय भी नहीं होगा। काव्य कला व काव्य रचना का आज समय भी नहीं है और औचित्य भी नहीं है। इस समय तो देश में एक ज्वाला फैली हुई है। आज सर्वत्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रलय के गीत गाए जा रहे हैं। आज तो सारा देश भैरव राग गा-गाकर अपने वीर सपूतों को सुना रहा है, जिससे कि देश के वीरों में उत्साह, जोश तथा वीरता का संचार हो जाए।

आज सारा देश फिरंगियों के कुशासन को उखाड़ फेंकने के लिए एकजुट हुआ है। अब फिरंगियों के रक्त की धाराएँ बहेंगी। फिरंगियों के रक्तपान के लिए रणचण्डी दुर्गा तथा महाकाली अपना खप्पर लेकर आकाश मार्ग से इस भारत भूमि में उतर रही है। उस महाकाली का स्वागत करो अर्थात् देशवासी मरने मारने के लिए आतुर हैं। रक्त बहाने के लिए तैयार हो रहे हैं। एक नयी रक्तिम क्रान्ति का जन्म हो रहा है। उस क्रान्ति का स्वागत करो। फिरंगियों का नामोनिशान मिटा दो। महाकाली, दुर्गा, रणचण्डी चामुण्डा मुण्डों की माला पहनना चाहती है। महाकाली के लिए नर मुण्डों की माला तैयार करो। भारत माता स्वयं को फिरंगियों से मुक्त कराने के लिए बलिदान माँग रही है। जब तक मातृभूमि के लिये देश के वीर अपना सिर कटवा कर बलिदान नहीं देंगे तब तक माँ भारती मुक्त नहीं हो सकती है। अत: हे देश के जवानों ! अपने सिर काट-काट कर माँ के श्रीचरणों में समर्पित कर दो।

आज सम्पूर्ण देश स्वाधीनता के समर की प्रचण्ड ज्वाला में तप्त है। देश की जवानी जाग गयी है। रणबांकुरों ने शहीदी बाना पहन लिया है। अब अवश्य देश स्वाधीन होगा। देश की स्व धीनता का जो स्वप्न हम देखते आ रहे थे, वह स्वप्न साकार होने जा रहा है।

विशेष – 1. देश की आजादी के लिए संघर्ष में कूदने वालों को मातृभूमि की रक्षा के लिए शीश अर्पित कर देने का आह्वान किया गया है। इस अवतरण में एकांकीकार ने क्रांतिकारियों एवं विप्लवकारियों के उत्साह की ओर ध्यानाकृष्ट किया है और स्वाधीनता का स्वप्न पूर्ण होने की भावना की ओर संकेत दिया है।

2. भाषा ओजपूर्ण तथा शैली संवादात्मक है।

(2)

''अरे मैंने तो जीवन भर, मातृभूमि के सम्मान की रक्षा के लिये खड्गधारी दिव्य आत्माओं को इतिहास के पृष्ठों पर सिर कटाते हुए देखा है। आज इन चर्म-चक्षुओं से रक्तस्नात उन दिव्य मूर्तियों को देखूँगा जो देश की स्वतंत्रता के लिए जीवन-पुष्प अर्पित करने को मचल रहे हैं।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के डॉ. रामचरण महेन्द्र द्वारा विरचित 'सूर्य बीज' एकांकी से उद्धृत है। मेजर फालन अजमेर से पत्र भेजता है कि 'वंश भास्कर' में महाकवि सूर्यमल्ल ने क्या लिखा है ? सूर्यमल्ल कविता कहते हैं, दायमाजी लिखते हैं। तब दायमाजी सूर्यमल्ल से कहते हैं कि कविराज, आप धन्य हैं, आपने राष्ट्र के दर्द को पहचाना है, उसकी अस्मिता और गौरव को परखा है। इस पर सूर्यमल्ल कहते हैं –

व्याख्या – अरे दायमा जी ! मैं राष्ट्र की पीड़ा को भली-भाँति पहचानता हूँ। देश की इस पीड़ा को यदि मैं नहीं पहचानूँगा तो कौन पहचानेगा ? मैंने राजमहल और राजदरबार में बैठकर इतने वर्षों से मात्र कला और काव्य साधना ही नहीं की, बल्कि मातृभूमि की रक्षा के लिए अनेकानेक शौर्यवान्, पराक्रमी वीर योद्धाओं को अपने सिर कटाते हुए भी देखा है। प्राचीन काल से अब तक के सम्पूर्ण इतिहास का भी मैंने अध्ययन किया है। इस वृहत् इतिहास में प्रत्येक पृष्ठ पर ऐसे-ऐसे वीर-हुतात्माओं की वीर गाथाओं के प्रसंग पढ़े हैं जिन्होंने राष्ट्र की वेदी पर अपने सिरों को पुष्प की भाँति समर्पित कर दिया। इस देश में ऐसे महान् वीरों की कमी नहीं रही। यह वीर प्रसूता धरती समय-समय पर ऐसे शूर-वीरों को जन्म देती रही है जिन्होंने देश, जाति और धर्म के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर इतिहास में अपने लिए एक पृष्ठ सुरक्षित करा दिया है। मैंने इन शस्त्रधारी दिव्य अमर हुतात्माओं के बलिदानों के इतिहास के पृष्ठ के पृष्ठ भरे देखे हैं।

सूर्यमल्ल दायमा जी से आगे कहते हैं कि आज पुन: ऐसा समय आ गया है कि इस देश की वीरता रक्त से स्नान करने वाली है। मैं आज अपने इन नेत्रों से रक्त से सने हुए उन दिव्य महावीरों को देखूँगा जो इस देश की फिरंगियों से मुक्त कराने के लिए रक्त में स्नान करेंगे, स्वयं का लहू मातृभूमि के लिए समर्पित कर देंगे। जो इस देश की स्वाधीनता के लिए फिरंगियों से जूझ पड़ेंगे, जिनका हृदय स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपना सिर पुष्प के समान समर्पित करने के लिए मचल रहा है, उन दिव्य मूर्तियों अर्थात् भारत माता के सपूतों को मैं आज रक्तिम आभा में देखूँगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष – 1. एकांकीकार ने मातृभूमि की वेदी पर बलिदान होने वाले अमर सपूतों का स्मरण कराया है। स्वाधीनता के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले तथा पुष्प की भाँति अपना शीश माँ-भारती के चरणों में समर्पित करने की भावना प्रदर्शित की गई है।

2. भाषा वीर रस पूर्ण तथा ओजमयी है। शैली में प्रवाह है।

(3)

''सब के सब हिमालय के गड़े ही निकले। वक्त आने पर सब मुँह छिपा गये। अरे कहाँ गए वो वप्पारावल, राणा सांगा, प्रताप के उत्तराधिकारी। कहाँ गए वो सुरजन, भोज, भावसिंह के बेटे – जो मुगलिया सल्तनत के परचम को कन्धों पर ढोने वाले वे वीर राजपूत किस मांद में जाकर छिप गये ? तुम्हारे ही देश में, तुम्हारी धरती पर मुट्ठी भर फिरंगियों को नहीं उखाड़ सके ? धिक्कार है तुम्हें, तुम्हारी शूरता को जिन्होंने कम्पनी सरकार की चौखट पर राजमुकुट को गिरवी रख दिया और तलवारों को रेत में गाड़ दिया। हे भगवती ! वीरत्व का कैसा परिहास है यह ?

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के डॉ. रामचरण महेन्द्र द्वारा विरचित 'सूर्य बीज' एकांकी से उद्धृत है। सन् 1857 के स्वातंत्र्य समर की विफलता से सूर्यमल्ल क्षुब्ध हैं। उन पर कम्पनी सरकार ने जुर्माना कर दिया है। हवेली से किले के अन्दर कवि को बुला लिया गया है। कभी-कभी हवेली जाने की उन्हें छूट दी गई है। स्वयं पर प्रतिबन्ध उन्हें सालने लगा। क्षुब्ध होकर एक दिन वे मन में आत्मालाप करते हुए कहने लगते हैं –

व्याख्या – इस स्वाधीनता समर में जितने भी सैनिकों, राजा, महाराजाओं तथा योद्धाओं ने भाग लिया और विफल रहे, वे सब के सब हिमालय के गड़े ही निकले। उनमें से किसी में भी वीरत्व की ज्वाला नहीं थी, किसी का रक्त तप्त नहीं था, सब का रक्त शीतल था। मानो हिमालय में वे गड़े हुए थे, इसलिए उनका रक्त शीतल था। पहले तो वे बड़ी-बड़ी डींगें हाँककर कम्पनी सरकार के विरुद्ध लड़ने निकले थे, परन्तु जब समय आया, जब वीरता दिखाने का अवसर आया, तो मुँह छिपा गए। कोई पराजित हो गया, कोई मारा गया, कोई बन्दी बना लिया गया, कोई रणभूमि से पीठ दिखाकर भाग निकला और किसी ने देशद्रोह कर दिया।

सूर्यमल्ल कहते हैं कि आज के वीर तो मात्र दिखाने के वीर निकले। वीर तो वप्पारावल, राणा सांगा और महाराणा प्रताप जैसे महापुरुष थे। आज हमें उन वीरों की आवश्यकता है। कहाँ होंगे वे वीर ? कहाँ होंगे महान् शक्तिशाली महाराणा प्रताप के वंशज अमरसिंह ? बूंदी का वह महान् पराक्रमी सुरजन सिंह हाड़ा आज होता तो हमें यह दिन देखने को नहीं मिलते। भोज जैसे शूरवीर आज कहाँ चले गए ? देश को आज उस वीर की आवश्यकता थी। वीर भावसिंह के वे दोनों शूरवीर पुत्र आज होते तो फिरंगियों को बता देते कि भारत में वीरता अभी समाप्त नहीं हुयी। वे समस्त राजपूत वीर आज कहाँ अदृश्य हो गए हैं। जिन राजपूत वीरों ने मुगलिया सल्तनत अर्थात् मुगल साम्राज्य के ध्वज को अपने कन्धों पर ढोया था, वे राजपूत वीर आज सिंह की किस माँद में जाकर छिप गए हैं ? कोई जाकर उन्हें इन माँदों से बाहर निकाल कर ले आए और बताये कि आज देश किस संकट की घड़ी से गुजर रहा है ? कोई जाकर उन्हें बताए तो सही कि हे वीर राजपूतों, तुम्हारे इस देश भारत में, जहाँ तुमने जन्म लिया था, जहाँ तुम्हारे महान् वीर योद्धा पूर्वजों ने जन्म लिया था, तुम्हारी ही इस पुण्य-पावन धरती पर मुट्ठी भर (संख्या बल मे थोड़े से) फिरंगियों ने अधिकार जमा लिया है और आज उन्हें उखाड़ फेंकने के लिए धरती वीरों से विहीन हो गई है। आज इस देश से कम्पनी सरकार को कोई उखाड़ नहीं सका है। देश के लिए कितने दुर्भाग्य की बात है ?

महाकवि आत्मालाप करते हुए कहने लगता है कि धिक्कार है तुम तथाकथित शूरवीरों को। तुम्हारी शूरवीरता के लिए भी बारम्बार धिक्कार है, जिन्होंने फिरंगियों के आगे स्वयं आत्म-समर्पण कर लिया। अपने राजमुकुट अर्थात् अपने आत्मसम्मान को कम्पनी सरकार के सामने अपमानित कर दिया। तुम्हारी जिन तलवारों पर तुम्हारे पूर्वजों के शौर्य की गाथाएँ लिखी हुयी थीं, तुमने उनका मान धूल-धूसरित कर दिया, उनकी चमक मिटा दी, उन्हें रेत में हमेशा-हमेशा के लिए गाड़ दिया। अर्थात् तलवार राजपूतों की आन-बान और शान की प्रतीक होती है, तुमने उस आन-बान-शान को मिट्टी में मिला दिया है। हे भगवती ! वीरता का यह कैसा उपहास किया गया है ? इससे पहले वीरता का इतना अपमान नहीं हुआ था जितना उपहास आज हुआ है।

विशेष – 1. महाकवि सूर्यमल्ल की मानसिकता का उल्लेख किया गया है। कवि की आत्मग्लानि के सम्बोधन में उन सैनिकों तथा राजाओं को कोसा गया है, जिन्होंने स्वाधीनता समर में देश के साथ द्रोह किया था। एकांकीकार ने वप्पारावल, राणा सांगा, राणा

प्रताप, सुरजनसिंह हाड़ा आदि का प्रसंग लाकर राजपूतों के पूर्वजों के शौर्य का उल्लेख किया है तथा स्वातंत्र्य समर के सेनानियों से उनकी तुलना कर उनके पुनः जन्म लेने की कामना की है। **2.** भाषा सरल, ओजपूर्ण तथा प्रवाहमय है।

(4)

''यह अपूर्णता ही, पूर्णता का परिचायक होगा। तुमने जिस मयूख पर अपने इतिहास को छोड़ा है, शायद उसके बाद का इतिहास लिखा जाने वाला ही नहीं था। तुम बिल्कुल सही थे सूर्यमल्ल, सौ प्रतिशत सत्य थे। तुम्हारी सत्यनिष्ठा को प्रणाम करता हूँ। तुम राजकवि नहीं, महाकवि वीर रसावतार हो। आने वाली पीढ़ियाँ इसी रूप में तुम्हें स्मरण बड़े फक्र से करेंगी।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''धरोहर'' के डॉ. रामचरण महेन्द्र द्वारा विरचित 'सूर्य बीज' एकांकी से उद्धृत है। सूर्यमल्ल रुग्णावस्था में पड़े हैं, उनका उपचार चल रहा है। उनकी रचना 'वंश भास्कर' अपूर्ण रह जाती है, इसका उन्हें क्षोभ है। रामसिंह उनकी रचना की प्रशंसा करते हैं कि उन्होंने इस रचना में वो सत्य इतिहास लिख डाला जो कर्नल टॉड भी नहीं लिख पाये। सूर्यमल्ल इसे अपूर्ण कृति और खण्डित प्रतिमा मानते हैं। इस पर राव राजा रामसिंह सूर्यमल्ल को समझाते हुए कहते हैं –

व्याख्या – यदि 'वंश भास्कर' अपूर्ण है तो पूर्ण क्या है ? वंश-भास्कर की यह अपूर्णता ही आपकी रचना की पूर्णता का सर्वोत्तम परिचय होगा। जब लोग इसे पढ़ेंगे, तो इसमें सम्पूर्ण इतिहास की जानकारी प्राप्त होगी। अतः यह अपूर्ण रचना नहीं बल्कि सम्पूर्ण रचना है। महाकवि तुमने ऐसे संक्रमण काल में जिस मयूख पर इतिहास को छोड़ दिया है, उस मयूख या घटनाक्रम के बाद का इतिहास लिखा जाने वाला भी नहीं था। अर्थात् तुम्हारे जीवन काल में स्वतन्त्रता के लिए सम्पूर्ण देश में जो रक्तिम क्रान्ति हुयी वह विफल हो गयी और देश का इतिहास अधूरा रह गया क्योंकि इसके पश्चात् नये इतिहास के निर्माण व उसके लेखन का कोई भी औचित्य नहीं रहता था। महाकवि तुम अपनी जगह नितान्त सही थे, शत-प्रतिशत सच्चाई पर थे। क्रांतिकारियों में वीरता का जो संचार कूट-कूट कर तुमने भरना चाहा वह तुम्हारे कवि स्वभाव और राष्ट्रप्रेम के अनुकूल था। तुमने सत्यनिष्ठा से राष्ट्र की सेवा की है, एक कवि होने के नाते अपनी कलम और कविता से लाखों निर्जीव भारत-वासियों को सजीव और सबल बनाकर उनमें देश-भक्ति की चेतना जगायी। तुम्हारी इस सत्यनिष्ठा को मैं भी प्रणाम करता हूँ। हे महाकवि, तुम मात्र राजकवि नहीं बल्कि एक महाकवि हो और वीर रस के अवतार सिद्ध हुये हो। राजकवि का क्षेत्र मात्र उसका राज्य और उसका आश्रयदाता होता है। जिसे वह अपने छंद सुना-सुनाकर प्रसन्न करता है और अपना जीवन यापन करता है। किन्तु तुम तो सही मायने में एक महाकवि हो। महाकवि का काव्यक्षेत्र व्यापक होता है।

महाकवि का महद् उद्देश्य होता है। तुमने महाकवि होकर अपनी काव्य साधना से पूरे राष्ट्र में राष्ट्रीयता का महाशंख बजाया है। अपनी वीर रसपूर्ण कविताओं से सम्पूर्ण राष्ट्र को वीरत्व की गरिमा दी है। इसलिए तुम महाकवि के साथ-साथ वीर रस के अवतार भी हो। तुम्हारी इस राष्ट्रभक्ति को इतिहास सदैव याद रखेगा। इस देश की भावी पीढ़ियाँ बड़ी गौरव-गरिमा के साथ तुम्हें सदैव याद करती रहेंगी।

2. भाषा सरस है, शब्द कहीं-कहीं क्लिष्ट हैं तथा शैल संदेशात्मक है।

13.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

13.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. प्रस्तुत रेडियो रूपक 'सूर्यबीज' में किसके विचारों का परिचय व्यक्त किया गया है ?

उत्तर – प्रस्तुत रेडियो रूपक में बूँदी राज्य के राजकवि सूर्यमल्ल मिश्रण के जीवन और विचारों का संक्षिप्त परिचय है।

प्रश्न-2. प्रस्तुत रूपक में कौन-सी घटना का वर्णन किया गया है ?

उत्तर – प्रस्तुत रूपक में 1857 के स्वतन्त्र्य समर का वृतान्त, उसमें देशी शासकों का योगदान, राजपूत शासकों की निष्क्रियता तथा स्वतंत्रता संग्राम की विफलता का वर्णन किया गया है।

प्रश्न-3. सूर्यबीज रेडियो रूपक के माध्यम से कौन-से संदेश की अभिव्यक्ति होती है ?

उत्तर – बताया है कि यदि स्वतंत्रता संग्राम में समस्त भारतीय संगठित रहकर योजनाबद्ध ढंग से फिरंगियों के विरुद्ध संघर्ष करते तो उसी समय देश आजाद हो जाता। आने वाली पीढ़ी को इस रचना से देशभक्ति की प्रेरणा दी है तथा इसका उद्देश्य अतीत की घटनाओं के माध्यम से भावी पीढ़ी को सत्प्रेरणा प्रदान करना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-4. ''माँ भगवती की इच्छा है कि अन्याय का शासन समाप्त हो, स्वदेश, स्वधर्म, स्व-संस्कृति और स्वाभिमान की रक्षा हो। काल भैरव ही रक्षा करेंगे सबकी।'' प्रस्तुत कथन में कौन-सी भावना की पुष्टि होती है।

उत्तर – प्रस्तुत कथन में देशभक्ति की भावना पुष्ट हुई है।

प्रश्न-5. आज तो देश भैरव राग गा रहा है, रणचण्डी कराल काली खप्पर लेकर आसमान से उतरी है, उसका स्वागत करो। एक स्वप्न साकार होने जा रहा है देश की आजादी का।'' प्रस्तुत कथन किसका है और इसमें कौन-सा गुण समाहित है ?

उत्तर – प्रस्तुत कथन सूर्यमल्ल का है जिसमें ओजगुण अथवा वीरता का गुण समाहित है।

प्रश्न-6. 'सूर्यबीज' का कथोपकथन किस भाव से मण्डित है ?

उत्तर – 'सूर्यबीज' रेडियो रूपक के कथोपकथन में क्रान्तिकारी भाव है।

प्रश्न-7. 'सूर्यबीज' रेडियो रूपक के कथोपकथन में क्या-क्या विशेषताएँ विद्यमान हैं ?

उत्तर – प्रस्तुत रूपक में काव्यात्मक प्रवाह, शब्द शिल्प की रोचकता, शब्दों का आरोहावरोह, भावों की प्रखर अभिव्यक्ति के गुण विद्यमान हैं।

प्रश्न-8. 'सूर्यबीज' रूपक अब तक कितनी बार रेडियो पर प्रसारित हो चुका है ?

उत्तर – पाँच बार।

प्रश्न-9. प्रस्तुत रूपक 'सूर्यबीज' की लोकप्रियता से सूर्यमल्ल के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

उत्तर – राजस्थान के कवि शिरोमणि सूर्यमल्ल मिश्रण को अतीत के गर्त से निकाल कर पुन: काव्य जगत में वास्तविक स्थान पर आसीन किया गया है।

प्रश्न-10. ''जहाँगीर के इलाज के समय टानस-रो ने जो बीज बोया था, उसके सूखने का समय आ गया है। अब तो राजपूतों की तलवारें म्यान से बाहर आ गई है।'' सूर्यमल्ल का कौन-सा भाव व्यक्त हुआ है ?

उत्तर – प्रसन्नता व विद्रोह का भाव।

13.2.2 लघूत्तरात्मकप्रश्न

प्रश्न-1. 'सूर्यबीज' रेडियो रूपक के आधार पर कवि सूर्यमल्ल मिश्रण की भूमिका का संक्षिप्त परिचय देते हुए रूपक के प्रारम्भ पर टीप्पणी लिखिए।

उत्तर – 'सूर्यबीज' रेडियो रूपक डॉ. रामचरण महेन्द्र द्वारा संकलित रचना है। यह एक ऐतिहासिक एकांकी है, जिसके द्वारा प्रस्तुत आदर्श आज भी प्रेरणादायक और महत्त्वपूर्ण है। बूँदी राज्य के राजकवि सूर्यमल्ल मिश्रण के जीवन और विचारों का संक्षिप्त परिचय देने वाला यह रूपक अत्यंत हृदयस्पर्शी है। सूर्यमल्ल 'वंश भास्कर', 'वंश प्रकाशक' और 'बलवद्विलास' के रचनाकार भी हैं। प्रस्तुत रूपक में सन् 1857 के स्वातन्त्र्य समर का वृत्तान्त, उसमें देशी शासकों का योगदान, राजूपत शासकों की निष्क्रियता और स्वतन्त्रता संग्राम की विफलता का वर्णन किया गया है। कवि सूर्यमल्ल इस विफलता के कारण अत्यधिक व्यग्र हो उठते हैं और सार्वजनिक जीवन से स्वयं को पृथक् कर देते हैं।

रूपक में सर्वप्रथम एक वाचक राजस्थान की वीर प्रसूता धरती के लौहपुरुष कविवर सूर्यमल्ल मिश्रण का परिचय 'वीर सतसई', 'वंश भास्कर', 'राम-रंजाट', 'वंशप्रकाशक' और 'बलवद्विलास' के रचयिता के रूप में देता है। स्वर कहता है कि सन् 1857 की उत्सर्गमयी वेला में कवि 'वंश भास्कर' के लेखन से विरत हो 'वीर सतसई' के लेखन में लग गया। कवि बूँदी रियासत के राजमहलों से अलग एकाकी जीवन जीते हुए राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए 'जन-गण-मन का आह्वान करने में जुट गया।

रूपक का प्रारम्भ हवेली में कुछ लोगों की पदचापों की ध्वनि तथा सूर्यमल्ल के इस कथन से प्रारम्भ होता है, जिसमें वह कहते हैं कि ''अरे तुम, सप्तऋषि तो आ गये लेकिन हमारे गणेश चौबे अम्बालाल जी कहाँ रह गये ? उनमें से एक स्वर जब यह कहता है कि वे मंदिर में भोजन-प्रसादी पा रहे होंगे या दरबार को पिछली रात की लिखावट सुनाने गये होंगे, तो इतने में पंडित जी आ ही जाते हैं और 'जय श्री रंगनाथ जी' का स्वर सुनाई देता है। इसके पश्चात् कवि सूर्यमल्ल सरस्वती वंदना और फिर वीर रस की कविता कहकर वाह-वाही पाते हैं।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-2. 'सूर्यबीज' रेडियो रूपक के उद्देश्य पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर – प्रस्तुत एकांकी एक रेडियो रूपक है। इसमें इतिहास को आधार बनाकर यहाँ की वीरता और शौर्य का मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया गया है। आने वाली पीढ़ियों को इस रूपक के माध्यम से देशभक्ति की प्रेरणा दी गई है। इस रूपक के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि स्वतन्त्रता संग्राम में यदि समस्त भारतीय एकताबद्ध और योजनाबद्ध ढंग से फिरंगियों के विरुद्ध संघर्ष करते, तो नि:संदेह फिरंगियों को उसी समय इस देश से निकाल बाहर किया गया होता। परन्तु हमारे देश के तत्कालीन लोग एकताबद्ध होकर नहीं लड़े। एक-दूसरे की सहायता उन्होंने नहीं की। यदि राजपूताने के समस्त राजा, महाराजा और सामन्त एक साथ मिलकर अंग्रेजों पर आक्रमण करते, तो अवश्य उनकी विजय होती। परन्तु प्रत्येक राजा और शासक अपने पारस्परिक वैर-भाव के कारण एक-दूसरे की सहायता करने नहीं गया। यही कारण है कि भारत में वीरता होते हुए भी यहाँ के योद्धा अंग्रेजों से डरते रहे और भारतीय शेर पालतू जानवरों के समान उनके सामने अपनी दुम हिलाते रहे। इतना ही नहीं, इस देश के लोगों में एकता की कमी तो थी ही, आपसी वैमनस्य भी इतना था कि एक साथ मिलकर फिरंगियों का मुकाबला करना तो दूर रहा, वे इस आन्दोलन के दौरान आपस में ही लड़ मरे। यहाँ तक कि बागी सैनिकों ने झालावाड़ की पाटन नामक सैनिक छावनी को ही लूट डाला। कोटा की क्रांति को करौली की सेना ने ही कुचल डाला। करौली का राजा मदनपाल अपने भाइयों के साथ ही गद्दारी कर बैठा। इस प्रकार रूपक का उद्देश्य भावी पीढ़ी को यह बताना है कि वे इतिहास की इस घटना से प्रेरणा लें और आने वाली परिस्थितियों में इस इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं होने दें अन्यथा इतिहास उनको भी कभी क्षमा नहीं करेगा।

13.2.3 निबन्धात्मकप्रश्न

प्रश्न-1. 'सूर्यबीज' रेडियो रूपक सशक्त कथोपकथनों के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है।'' इस कथन की सोदाहरण पुष्टि कीजिए।

उत्तर – 'सूर्यबीज' रेडियो रूपक ऐतिहासिक कथानक पर आधारित एकांकी है। इसमें बूँदी राज्य के राजकवि महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण के जीवन तथा उनके विचारों का चित्रण किया गया है। चूँकि इस रूपक का कथानक ऐतिहासिक है और वह भी सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम की घटनाओं पर आधारित है। इसलिए इस रूपक में वीरता और युद्ध सम्बन्धी प्रसंगों और कथोपकथनों का बाहुल्य है। इसके कथोपकथनों में वीरता तथा ओजगुण का प्राधान्य है। इस रूपक के विषय में आलोचकों की यह उक्ति तर्क की कसौटी पर खरी उतरती है कि अपने सशक्त कथापेकथनों के कारण यह अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। वास्तव में जब हम इसके कथोपकथनों की समीक्षा करते हैं तो पाते हैं कि इसके प्राय: सभी कथोपकथनों में भाषा का पैनापन तथा भावों की गरिमा भरी पड़ी है। ऐतिहासिक रूपक होने के कारण वीररसपूर्ण भाषा ने कथोपकथनों के सौन्दर्य में चार चाँद लगा दिये हैं। सामान्यत: इस रूपक के कथोपकथनों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

1. देशभक्तिपूर्ण कथन – 'सूर्यबीज' रूपक में देशभक्तिपूर्ण कथन प्रचुर मात्रा में पाये गये हैं। इसका कथानक स्वतन्त्रता संग्राम से सम्बन्धित होने के कारण इसके कथोपकथन देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत हैं। जब कवि सूर्यमल्ल मिश्रण का सहयोगी दायमा उनकी वीररसपूर्ण कविता सुनकर प्रसन्न होता है और कविराज से राष्ट्र के दर्द, उसके गौरव व अस्मिता की पहचान कर लेने की प्रशंसा करता है, तो सूर्यमल्ल का यह कथन देशभक्ति की भावना से व्याप्त दिखाई देता है – ''अरे मैंने तो जीवन भर, मातृभूमि के सम्मान की रक्षा के लिए खड्गधारी दिव्यात्माओं को इतिहास के पृष्ठों पर सिर कटाते हुए देखा है। आज इन चर्म चक्षुओं से रक्तस्नात उन दिव्य मूर्तियों को देखूँगा जो देश की स्वतन्तत्रा के लिए जीवन पुष्प अर्पित करने को मचल रहे हैं।'' इसके अतिरिक्त दूसरे दृश्य में जब प्रथम स्वर सूर्यमल्ल से कहता है कि जो सैनिक दिल्ली की तरफ बढ़ रहे हैं, वे बागी हैं, बगावत उनका धर्म है और बहादुरशाह जफर उनकी प्रेरणा है, तो सूर्यमल्ल पुन: देशभक्ति पूर्ण कथन कहते हैं – ''तो बढ़ने दो। सबको बढ़ने दो। माँ भगवती की इच्छा है कि अन्याय का शासन समाप्त हो, स्वदेश, स्वधर्म, स्व-संस्कृति और स्वाभिमान की रक्षा हो। काल भैरव ही रक्षा करेंगे सबकी।'' इस प्रकार इस एकांकी में देशभक्तिपूर्ण कथनों का कई स्थलों में व्यापक प्रयोग हुआ है।

2. प्रेरणादायी कथोपकथन – 'सूर्यबीज' रूपक में देशभक्तिपूर्ण कथनों के अतिरिक्त प्रेरणादायी कथोपकथनों की भी कमी नहीं है। बूँदी के दीवान जब सूर्यमल्ल के अगाध ज्ञान व पाण्डित्य की प्रशंसा के साथ-साथ उनके महान् कवि होने की बात कहते हैं और 'वंश भास्कर' को पूर्ण करने का निवेदन करते हैं तो सूर्यमल्ल कहते हैं – ''दीवान जी! मैंने 'वंश भास्कर' लिखने से पूर्व एक प्रमुख शर्त रखी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

थी कि मैं सत्य ही लिखूँगा। मुझे चापलूसी और ठाकुरसुहाती के लिए मजबूर नहीं किया जावेगा। इस पर भी आप सन् 1857 की क्रान्ति के कड़वे सच को सुनना चाहें तो मैं प्रस्तुत हूँ। लेकिन उम्मेदसिंह और बुद्ध सिंह चरित्र लिखने के बाद कायरों का उपसंहार लिखने में मन नहीं लगेगा।'' यद्यपि इस कथन में कवि की स्पष्टवादिता का बोध है। तथापि कवि लेखन-कर्म के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठा तथा प्रतिबद्धता के भाव स्पष्ट करता है।

3. अतीत की स्मृति के कथन – सन् 1857 का स्वाधीनता संग्राम भारतवासियों के लिए सफल सिद्ध नहीं हुआ। इस सैनिक-विद्रोह के असफल हो जाने से सूर्यमल्ल मन, कर्म और वचन से व्यथित और व्यग्र हो जाते हैं। वे स्वगत आत्मालाप में अतीत की गहराइयों में गोते लगाने लगते हैं और कहते हैं – ''सबके सब हिमालय के गड़े ही निकले। वक्त आने पर सब मुँह छिपा गये। अरे कहाँ गये वो बप्पारावल, राणा सांगा, प्रताप के उत्तराधिकारी। कहाँ गये वो सुरजन, भोज, भावसिंह के बेटे, जो मुगलिया सल्तनत के परचम को कंधों पर ढोने वाले वीर राजपूत किस मांद में जाकर छिप गये ? तुम्हरे ही देश में, तुम्हारी ही धरती पर मुट्ठी भर फिरंगियों को नहीं उखाड़ सके ? धिक्कार है तुम्हें, तुम्हारी शूरता को, जिन्होंने कम्पनी सरकार की चौखट पर राजमुकुट को गिरवी रख दिया और तलवारों को गिरवी रख दिया। हे भगवती ! वीरत्व का कैसा परिहास है यह ?'' यद्यपि इस कथन में अतीत की स्मृतियाँ संजोयी हुयी हैं, तथापि इसके भाव वीरतापूर्ण हैं। जिनमें पश्चाताप की अग्नि भी जल रही है।

4. वीरतापूर्ण कथन – प्रस्तुत रेडियो रूपक के दूसरे दृश्य में दूसरा स्वर जब कहता है कि ''कविराज आज 'वंशभास्कर' की कड़ियाँ नहीं जुड़ेंगी ? क्या आज वंशप्रकाशक सूर्योदय नहीं होगा ?'' तो सूर्यमल्ल वीरतपूर्ण कथन कहते हैं – ''आज तो देश भैरव राग गा रहा है, रणचंडी, कराल काली खप्पर लेकर आसमान से उतर रही है, उसका स्वागत करो। चामुण्डा के लिए नर मुण्डों की माला तैयार करो। एक स्वप्न साकार होने जा रहा है-देश की आजादी का।'' जब सूर्यमल्ल राघोबा से कहते हैं कि यदि अवसर पड़ने पर राजपूताने के राजा लोग आजादी की लड़ाई में कूद पड़ेंगे तो वे नेतृत्वविहीन होंगे। ऐसे में नेतृत्वविहीनों की कहीं पराजय तो नहीं होगी ? तो राघोबा कहते हैं – ''यह भय निर्मल है। आज सारा राष्ट्र संगठित है। अटक से कटक तक, कर्नाटक से कानपुर तक सारा देश फिरंगियों के चंगुल से देश को मुक्त कराने के लिए प्राणों की बाजी लगाने को व्याकुल है।'' सूर्यमल्ल भी इसी प्रकार वीरतापूर्ण भाव व्यक्त करते हैं – ''ऐसे हजारों वीर हमने भी तैयार किये हैं, जो देश के लिए मर मिटने को तैयार हैं, राजपूत अपनी गरिमा की रक्षा करना जानता है।'' इस प्रकार वीरतापूर्ण भावों से भरे कथोपकथन इस रूपक में प्रचुर मात्रा में मिल जाते हैं।

5. क्रान्तिकारी कथोपकथन – यह रूपक सन् 1857 की सैनिक क्रान्ति की घटनाओं पर आधारित है, इसलिए इसमें क्रान्तिकारी कथनों का पाया जाना स्वाभाविक ही है। सूर्यमल्ल और दायमा आपस में बातचीत करते हैं। उनसे दायमा कहते हैं कि आपका 'वंश भास्कर' तो हाड़ा वंश के साथ स्वर्णिम अतीत का गाथागायन हो गया, तो 'वीर सतसई' को हम क्या कहेंगे ? सूर्यमल्ल क्रान्तिकारी विचारों से भरपूर उत्तर देते हुए कहते हैं – ''यह तो देश के वीर सपूतों के मस्तक पर रक्त तिलक है। तुम देख नहीं रहे, समय शीर्षासन लगा रहा है। राजमुकुट चरणों में लोट-पोट हो रहे हैं। झोंपड़ियाँ जाग रही हैं। यह संघर्ष सत्ता और राजमुकुट का नहीं, राष्ट्र के जीवन-मरण का प्रश्न है, स्वदेश, स्वराज्य, स्वशासन का है। लगता है वह भोर सन्निकट है, अब फिरंगी शासन समाप्त हो जायेगा।'' इस प्रकार के क्रान्तिकारी कथोपकथनों का बीच-बीच में पुट देकर संकलनकर्त्ता ने रूपक की छवि को सजा-संवार कर रख दिया है।

6. व्यंग्यात्मक कथन – उपर्युक्त सभी कथनों के परिप्रेक्ष्य में यदि हम देखें तो व्यंग्य का भी कथोपकथन में अपना पृथक् अस्तित्व और विशिष्ट महत्त्व होता है। प्रस्तुत रूपक में व्यंग्यात्मक कथन का भी सहारा लिया गया है। बागड़ी जब यह समाचार देता है कि झाँसी में विद्रोह हो गया है, झालावाड़ के राजा अज्ञातवास को चले गये हैं और सारे अंग्रेज प्राणरक्षा हेतु मेवाड़ की ओर भाग रहे हैं, तो सूर्यमल्ल व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि ''मेवाड़ की ओर क्यों ? क्या मेवाड़ बन्दरगाह है ? अरे इन्हें तो इंग्लैण्ड की ओर लौटना ही पड़ेगा। जहाँगीर का अंग्रेजी इलाज इस देश के लिए कितना महँगा पड़ा है। टामस रो ने जो विष बीज बोया था, उसके सूखने के दिन आ गये हैं। अब तो राजपूतों की तलवारें म्यान से बाहर आ गई हैं। कर्जा उतार कर ही लौटेंगी। इस देश का बहुत बड़ा कर्ज है, सभी के माथे पर।''

7. पश्चात्तापपूर्ण कथोपकथन – प्रस्तुत रूपक में आत्मग्लानि की भाँति पश्चात्ताप का भावबोध उत्पन्न करने वाले कथोपकथन भी मिलते हैं। कोटा के महाराव रामसिंह सूर्यमल्ल को शांत रहने एवं औषधि लेने के लिए कहते हैं, तो वे कहते हैं कि ''हम तो भावी पीढ़ी के अपराधी हैं। तुच्छ, क्षुद्र, स्वार्थों ने हमें बौना कर दिया। देश खण्ड-खण्ड हो गया। इतिहास हमें भीरू, डरपोक के रूप में याद करेगा। धिक्कार है, हमें धिक्कार है।'' रामसिंह उन्हें धीरज रखने को कहते हैं, परन्तु सूर्यमल्ल को धीरज कहाँ है, वे तो पश्चात्ताप करते

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हुए कहते हैं कि ''वक्त आने पर हम सब कायर निकले। देश के प्रति अपना फर्ज पूरा नहीं कर सके।'' इस प्रकार अनेक कथोपकथन पश्चात्ताप प्रकट करने वाले रखे गये हैं।

8. निराशाजनक कथन – कवि स्वातन्त्र्य समर की असफलता से और अपने ही राजाओं और सामन्तों के असहयोग के कारण अत्यन्त निराश हो बैठता है। कवि को अनिद्रा का विकार हो गया। महाराव रामसिंह जब कवि के स्वास्थ्य के विषय में पूछते हैं तो निराशापूर्ण भावों को प्रकट करते हुए कवि कहता है – ''मन में संशय तो सब समाप्त हो गये हैं। यह आखिरी समय होता ही ऐसा है, आँखें खुली रह जाती हैं। गये-बीते दिन सभी तो खड़े रहते हैं, यादों की तिजोरी का कर्ज चुकाने के लिए। रात-दिन बाँटता रहता हूँ। फिर भी............भीड़ खड़ी रह जाती है। मैं अपलक सबको देखता रहता हूँ। लो बारात आ गई, वे मुझे बाराती बनाकर ले जाना चाहते हैं।'' इस प्रकार कवि निराश होकर उपर्युक्त कथन कहता है।

9. विचारात्मक कथन – प्रस्तुत एकांकी में विचारात्मक कथोपकथन भी हैं। सूर्यमल्ल फिरंगियों का शासन समाप्त होने के सपने देखते हैं। परन्तु दायमा इस बात पर संदेह प्रकट करता है कि क्या राजपूताने के सारे राजा-महाराजा एक-सूत्र में बंध सकेंगे ? इस पर विचार करते हुए सूर्यमल्ल का यह सार्थक कथन देखिये – ''यह समय की आवश्यकता है। अवसर की उपेक्षा करने वाले को इतिहास कचरे-दान में फेंक देता है। यदि राष्ट्रीय संकट की घड़ी में भी ये सब श्रीमंत संगठित नहीं हुये तो राजमुकुट इस विद्रोह के अंधड़ में मस्तक से उड़ जायेंगे।'' इस प्रकार प्रस्तुत रूपक में विचारात्मक कथनों की सृष्टि सफल रूप से की गयी है।

निष्कर्ष – इस विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि 'सूर्यबीज' रूपक में प्रभावशाली भाषा तथा सशक्त कथोपकथन स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। यह रूपक वास्तव में अपने काव्यात्मक प्रवाह, शब्द-शिल्प, स्वरों के आरोहावरोह, भावों की प्रखर अभिव्यक्ति तथा सशक्त कथोपकथनों के कारण अतीव प्रशस्य माना जाता है।

प्रश्न- 2. 'सूर्यबीज' रेडियो रूपक के कथानक का सार लिखते हुए इसके उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – 'सूर्यबीज' रेडियो रूपक डॉ. रामचरण महेन्द्र द्वारा संकलित रचना है। यह एक ऐतिहासिक एकांकी है, जिसके द्वारा प्रस्तुत आदर्श आज भी प्रेरणादायक और महत्त्वपूर्ण है। बूँदी राज्य के राजकवि सूर्यमल्ल मिश्रण के जीवन और विचारों का संक्षिप्त परिचय देने वाला यह रूपक अत्यंत हृदयस्पर्शी है। सूर्यमल्ल 'वंश भास्कर', 'वंश प्रकाशक' और 'बलवद्विलास' के रचनाकार भी हैं। प्रस्तुत रूपक में सन् 1857 के स्वातन्त्र्य समर का वृत्तान्त, उसमें देशी शासकों का योगदान, राजपूत शासकों की निष्क्रियता और स्वतन्त्रता संग्राम की विफलता का वर्णन किया गया है। कवि सूर्यमल्ल इस विफलता के कारण अत्यधिक व्यग्र हो उठते हैं और सार्वजनिक जीवन से स्वयं को पृथक कर देते हैं। इस रूपक के कथानक का सारा निम्नलिखित शीर्षकों में प्रस्तुत किया जा रहा है –

1. कवि परिचय – रूपक में सर्वप्रथम एक वाचक स्वर राजस्थान की वीर प्रसूता धरती के लौहपुरुष कविवर सूर्यमल्ल मिश्रण का परिचय 'वीर सतसई', 'वंश भास्कर', 'राम-रंजाट', 'वंशप्रकाशक' और 'बलवद्विलास' के रचयिता के रूप में देता है। स्वर कहता है कि सन् 1857 की उत्सर्गमयी बेला में कवि 'वंश भास्कर' के लेखन से विरत हो 'वीर सतसई' के लेखन में लग गया। कवि बूँदी रियासत के राजमहलों से अलग एकाकी जीवन जीते हुए राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए 'जन-गण-मन' का आह्वान करने में जुट गया।

2. रूपक का प्रारम्भ – रूपक का प्रारम्भ हवेली में कुछ लोगों की पदचापों की ध्वनि तथा सूर्यमल्ल के इस कथन से प्रारम्भ होता है, जिसमें वह कहते हैं कि – ''अरे तुम, सप्तऋषि तो आ गये लेकिन हमारे गणेश चौबे अम्बालाल जी कहाँ रह गये ? उनमें से एक स्वर जब यह कहता है कि वे मंदिर में भोजन-प्रसादी पा रहे होंगे या दरबार को पिछली रात की लिखावट सुनाने गये होंगे, तो इतने में पंडित जी आ ही जाते हैं और 'जय श्री रंगनाथ जी' का स्वर सुनाई देता है। इसके पश्चात् कवि सूर्यमल्ल सरस्वती वंदना और फिर वीर रस की कविता कहकर वाह-वाही पाते हैं।''

3. राघोबा का आगमन – इसी बीच द्वारपाल सूर्यमल्ल को सूचना देता है कि ग्वालियर से मराठा सरदार राघोबा जी आवश्यक संदेश देने के लिए आपको मिलने आये हैं, तो सूर्यमल्ल उन्हें अन्दर लाने की आज्ञा लेकर शेष लोगों को विश्राम करने के लिए कहते हैं। राघोबा से जब सूर्यमल्ल उनके आने का प्रयोजन पूछते हैं तो वे बताते हैं कि ग्वालियर से तात्या टोपे का संदेश लेकर आया हूँ। तात्या टोपे हिण्डौन, भरतपुर होकर राजपूताने की ओर बढ़ रहे हैं, नाना फड़नवीस दो लाख सैनिकों के साथ आगरा की ओर कूच कर गये हैं। अब राजपूताने की वीर तलवारों की सहायता की आवश्यकता है। सूर्यमल्ल कहते हैं कि सब अवसर पड़ने पर अवश्य सहायता करेंगे। राघोबा और सूर्यमल्ल में स्वाधीनता संघर्ष, उसकी स्थित तथा तैयारी आदि के विषय में बातचीत होती है। राघोबा कहते हैं कि एरिनपुरा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

और नीमच की फौजी छावनियों में बगावत हो चुकी है और सैनिक दिल्ली की ओर बढ़ रहे हैं। सूर्यमल्ल प्रयोजन पूछते हैं तो राघोबा कहते हैं मैं तात्या टोपे का निमन्त्रण लाया हूँ। क्योंकि आपकी आवाज राजघरानों में गूंजती है, इसलिए ''इतिहास राजपूतों एवं मराठों की सम्मिलित शक्ति का चमत्कार देखना चाहता है।'' सूर्यमल्ल कहते हैं कि मैं बूँदी राजघराने, रतलाम, कोटा, इन्द्रगढ़ आदि के सामन्तों के लिए आश्वासन दे सकता हूँ। मैंने कई जगह संदेश भेज दिये हैं। तात्या जी को जगह-जगह सैनिक, शस्त्र, तोपें और रसद मिल जायेगी, आप निश्चिन्त रहें।

4. सूर्यमल्ल और सूचनाएँ मिलना – रतलाम के ठाकुर बख्तावरसिंह ने घोड़ों का रिसाला भिजवाया तथा पीपल्या के ठाकुर फूलसिंह मिणाय ने ठाकुर बलवंत सिंह ने रसद, नई तोपें और तलवारें भेजी हैं। यह भी सूचना मिलती है कि तांत्या टोपे बयाना, भरतपुर, जयपुर से टोंक आ गए हैं और बागियों की फौज ने उनके साथ टोंक को घेर लिया है। अब वे दिल्ली की तरफ कूच कर रहे हैं। सूर्यमल्ल प्रसन्न होकर कहते हैं कि ''बढ़ने दो, भगवती की यही इच्छा है, काल भैरव सबकी रक्षा करेंगे।'' जब एक स्वर कवि से पूछता है कि क्या आज 'वंश भास्कर' की कड़ियाँ नहीं जुड़ेंगी तो सूर्यमल्ल कहते हैं कि ''आज तो देश भैरवी राग गा रहा है, आज तो चामुण्डा के लिए नरमुण्डों की माला तैयार करनी चाहिए देश की आजादी का स्वागत करो।''

5. बागड़ी और सूर्यमल्ल की बातचीत – बागड़ी आकर सूर्यमल्ल को समाचार देता है कि आउवा के ठाकुर खुशहालसिंह ने फिरंगियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया है, नीमच और कोटा में विद्रोह हो गया है। बागी दिल्ली की ओर नहीं गये हैं। नीमच से बर्टन लौट रहा था, उसे कोटा के महाराव ने कोटा से बाहर रखने की सलाह दी है। महाराव किले में बंद हैं। आपजी पलायथा और शिवनाथ सिंह को महाराव खाँ ने दरबार की जमानत पर जीवित छोड़ दिया है और तोपखाना व शस्त्रागार पर कब्जा कर लिया है। रेजीडेंसी को लूटकर नष्ट कर दिया है। बागड़ी आगे कहता है कि सतारा, नागपुर, पूना और झांसी में विद्रोह हो गया है। तात्याजी की सेना को बूँदी से पर्याप्त शस्त्र, तोपें और रसद तो मिल गई थी, लेकिन झालावाड़ की छावनी को लूट लिया है। अंग्रेज मेवाड़ की तरफ प्राणरक्षा के लिए भाग रहे हैं। सूर्यमल्ल कहते हैं कि अंग्रेज मेवाड़ की ओर क्यों भाग रहे हैं ? उन्हें तो इंग्लैण्ड भागना चाहिए था। मेवाड़ कोई बंदरगाह नहीं है। सूर्यमल्ल प्रसन्न होते हैं, वे कहते हैं कि ''जहाँगीर के इलाज के समय टॉयस रो ने जो विष-बीज बोया था, उसके सूखने का समय आ गया है। अब तो राजपूतों की तलवारें म्यान से बाहर आ गई हैं, कर्जा उतारकर ही लौटेंगी।''

6. क्रांति की असफलता का समाचार – वाचक का स्वर कहता है कि 10 मई, सन् 1857 की शुभ घड़ी में मेरठ की फौजी छावनी में जिस क्रांति का सूत्रपात हुआ था, उसका अन्त निराशाजनक रहा। असंगठित, नेतृत्वविहीन यह जनाक्रोश हजारों निरपराध लोगों की आमानुषिक हत्याओं के काले साये में सिमट गया। अंग्रेजों ने प्रतिशोध लिया, बहादुरशाह जफर को उनके बेटों के कटे सिर थाली में भेंट किये गये, उसे माँडले जेल भेजा गया, नाना फड़नवीस की विशाल फौज के पांव उखड़ गये, झाँसी की रानी को ग्वालियर से सहायता नहीं मिली तो कालपी के पास आजादी की दीपशिखा बुझ गई, तात्या टोपे को शाहबाद के जंगलों में नाहरगढ़ के पास अकेला सोता हुआ पकड़ लिया गया। कोटा में अंग्रेजों ने बर्टन और उसके पुत्रों की हत्या का भयंकर प्रतिशोध लिया। बहुत से लोगों को फांसी हुई, स्त्रियों की इज्जत के साथ खिलवाड़ हुआ, तोपें नष्ट कर दी गई और ढेर सारा रुपया हरजाने में वसूल कर लिया गया। निरन्तर करुण स्वर कहता है – ''देश की आजादी के लिए लड़े गये विशाल संग्राम की असफलता ने कवि को निराश कर दिया। सूर्यमल्ल ने स्वयं को हवेली के एकांत में कैद कर लिया।''

7. एकांत हवेली में दीवान और सूर्यमल्ल की वार्ता – सूर्यमल्ल इस पराजय से क्षुब्ध होकर हवेली के एक कक्ष में बैठे हैं। इसी बीच बूँदी के दीवान श्रवण लाल आते हैं और कहते हैं कि दो वर्ष से आपके दर्शन नहीं हुए, इसलिए आया हूँ। सूर्यमल्ल कहते हैं कि अब सब कुछ समाप्त हो गया है, अपने आने का प्रयोजन बतायें। दीवान जी कहते हैं कि महाराव जी चिन्तित हैं कि पिछले कुछ दिनों से उनके पास 'वंश भास्कर' की लिखावट न हीं पहुँच रही है। सूर्यमल्ल कहते हैं कि मैं 'वंश भास्कर' देश की आजादी के रूप में स्वतन्त्र भारत का प्रथम इतिहास बनाकर लिख रहा था, परन्तु वह तो भूमिका मात्र रह गया, तब उसे लिखकर क्या करूँगा ? चाहो तो उसे नष्ट कर देना। दीवान जी सूर्यमल्ल को समझाते हैं कि 'वंश भास्कर' तो आपकी प्रतिभा की अक्षय कीर्ति है, उसे पूर्ण कीजिये, किन्तु सूर्यमल्ल को स्वतन्त्र संग्राम की असफलता पर दुःख होता है। दीवान सूर्यमल्ल को कुछ दिन वातावरण बदलवाने के लिए हवेली छोड़कर किले में निवास करने की सलाह देते हैं।

8. वाचक के स्वर – वाचक स्वर कहता है – सूर्यमल्ल पर तात्या की मदद के अपराध में तीन सौ रुपये प्रतिवर्ष के हिसाब से जुर्माना किया गया। बूँदी के राव राजा को आदेश दिया गया कि वे बागियों को तोप से उड़ा दें, उनकी सम्पत्ति जब्त कर लें और उन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पर कर लगा दें। राव राजा को आदेश दिये गये कि वे सूर्यमल्ल को भेंट करना बंद कर दें। कवि को किले में बुलवाकर लेखन की सुविधाएँ दे दी गई, लेकिन कवि का मन लिखने में नहीं रमा। सरकार ने एक वर्ष के भीतर 'वंश भास्कर' पूर्ण करने का आदेश दिया है। कवि की चौकसी के लिए राम-गोपाल पुरोहित और अम्बालाल मिश्र को लगाया गया। कवि को किले में ही रखा गया और कभी-कभी हवेली में जाने की इजाजत दी गई। सूर्यमल्ल अपने व्यक्तित्व पर इस नियन्त्रण से क्षुब्ध हैं और बप्परावल, राणा सांगा, राणा प्रताप, सुरजन हाड़ा, भोज और भावसिंह आदि राजपूतों को याद करते हुए आज के सूरमाओं को धिक्कारते हैं।

9. महाराव रामसिंह और सूर्यमल्ल की बातचीत – चौकीदार सूर्यमल्ल को बताता है कि ढेर सारी मशालें लेकर राजवैद्य मनसाराम जी के साथ बूँदी दरबार महाराव रामसिंह पधार रहे हैं। रामसिंह कविराज सूर्यमल्ल से उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछते हैं। सूर्यमल्ल अपनी पराजय की पीड़ा दोहराते हैं और अतीत की यादें महाराव के सामने दोहराते हैं। राजवैद्य कविराज को विश्राम की सलाह देते हैं। सूर्यमल्ल कहते हैं कि मेरे लिए अल्प विश्राम की घड़ी बीत गई है, अब तो पूर्ण विश्राम की घड़ी नजदीक आ गई है। महाराव उन्हें शांत होने के लिए कहते हैं और आत्मग्लानि दूर करने के लिए कहते हैं, लेकिन सूर्यमल्ल अपने मन की पीड़ा कहते जाते हैं। बीच में वैद्य जब सूर्यमल्ल से कहते हैं कि बूँदी में तात्या टोपे को सहायता दे तो दी थी, तो महाराव बीच में ही कहते हैं कि कविराज को विश्राम करने दीजिए और औषधि लेने दीजिए। सूर्यमल्ल इस पर कहते हैं कि मेरी औषधि तो महाराज आप ही हैं। आपने मुझे निभाया है। इस पर महाराव कविराज को अपना गुरुभाई और सहयोग मित्र बताते हुए उनकी प्रशंसा करते हैं। सूर्यमल्ल इसे अपना सौभाग्य मानते हैं, परन्तु महाराव रामसिंह इसे अपना, इस शताब्दी का और इस भूमि का सौभाग्य मानते हैं, जिसने सरस्वती के वरद-पुत्र महाकवि वीर रसावतार सूर्यमल्ल मिश्रण को जन्म दिया। महाराव कहते हैं – '' हम तुम्हारे गरिमामय व्यक्तित्व की पहचान नहीं कर पाये, हमें क्षमा करना, तुम आने वाले युगों की प्रेरणा हो।'' इस प्रकार संगीत ध्वनि क्रमशः क्षीण हो जाती है। कथानक समाप्त हो जाता है।

रेडियो रूपक का उद्देश्य

प्रस्तुत एकांकी एक रेडियो रूपक है। इसमें ऐतिहासिकता को आधार बनाकर यहाँ की वीरता और शौर्य का मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया गया है। आने वाली पीढ़ियों को इस रूपक के माध्यम से देशभक्ति की प्रेरणा दी गई है। इस रूपक के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि स्वतन्त्रता संग्राम में यदि समस्त भारतीय एकताबद्ध और योजनाबद्ध ढंग से फिरंगियों के विरुद्ध संघर्ष करते, तो निःसंदेह फिरंगियों को उसी समय इस देश से निकाल बाहर किया गया होता। परन्तु हमारे देश के तत्कालीन लोग एकताबद्ध होकर नहीं लड़े। एक-दूसरे की सहायता उन्होंने नहीं की। यदि राजूपताने के समस्त राजा, महाराजा और सामन्त एक साथ मिलकर अंग्रेजों पर आक्रमण करते, तो अवश्य उनकी विजय होती। परन्तु प्रत्येक राजा और शासक अपने पारस्परिक वैर-भाव के कारण एक-दूसरे की सहायता करने नहीं गया। यही कारण है कि भारत में वीरता होते हुए भी यहाँ के योद्धा अंग्रेजों से डरते रहे और भारतीय शेर पालतू जानवरों के समान उनके सामने अपनी दुम हिलाते रहे। इतना ही नहीं, इस देश के लोगों में एकता की कमी तो थी ही, आपसी वैमनस्य भी इतना था कि एक साथ मिलकर फिरंगियों का मुकाबला करना तो दूर रहा, वे इस आन्दोलन के दौरान आपस में ही लड़ मरे। कोटा की क्रांति को करौली की सेना ने ही कुचल डाला। करौली का राजा मदनपाल अपने भाइयों के साथ ही गद्दारी कर बैठा। इस प्रकार रूपक का उद्देश्य भावी पीढ़ी को यह बताना है कि वे इतिहास की इस घटना से प्रेरणा लें और आने वाली परिस्थितियों में इस इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं होने दें अन्यथा इतिहास उनको भी कभी क्षमा नहीं करेगा।

13.3 सारांश

इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी का कथानक भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और देशी रियासतों-राजाओं के आचरण पर आधारित है। इसमें विशेष रूप से कवि सूर्यमल्ल मिश्रण की भावनाओं एवं व्यक्तित्व का चित्रण किया गया है। इस एकांकी का उद्देश्य अतीत की घटनाओं से भावी पीढ़ी को सत्प्रेरणा प्रदान करना है। इस दृष्टि से यह श्रेष्ठ रेडियो रूपक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई- 14 : भूमिका

हिन्दी निबन्ध : विकास और प्रवृत्तियाँ

संरचना

14.0 हिन्दी निबन्ध

14.1 परिभाषा और स्वरूप

14.2 हिन्दी निबन्ध : विकास के सोपान

14.2.1 भारतेन्दु युग

14.2.2 द्विवेदी युग

14.2.3 नवीन युग : शुक्ल युग

14.2.4 शुक्लोत्तर निबन्ध साहित्य

14.3 हिन्दी आलोचना का विकास

14.3.1 संस्कृत आलोचना

14.3.2 हिन्दी आलोचना

14.3.3 आधुनिक हिन्दी आलोचना

14.3.4 आलोचना में आचार्य शुक्ल का अवतरण

14.3.5 शुक्लोत्तर आलोचना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.0 हिन्दी निबन्ध

निबन्ध शब्द की परम्परा प्राचीन है, किन्तु तब के और अब के अर्थ में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। यूरोपीय साहित्य के प्रभाव और संपर्क ने इसके अर्थ को परिवर्तित कर और संशोधित करने में विशेष सहायता दी है। एक विद्वान् का यह कथन ठीक प्रतीत होता है– निबन्ध व्यक्ति की मानसिक चेतना और भावात्मक अनुभूति का गद्यत्मक लिखित रूप है जो जन विकास का यथार्थमूलक भी है। निबन्ध किसी देश की जन सत्तात्मकता, विचार स्वातन्त्र्य और उदार सामाजिकता का लेखा है। जिस समाज में कम बंधन होंगे उसमें व्यक्ति अधिक से अधिक स्वाभाविकता और स्वाधीनता का उपयोग करेगा। स्वाधीन सामाजिक वातावरण में व्यक्ति की महत्ता पनपेगी। वह बंधनहीन मानसिक क्षेत्र में विचरण कर सकेगा और परम्परागत दासपूर्ण आस्थाओं से मुक्त हो, निर्भयता से अपना दृष्टिकोण उपस्थित कर पायेगा। लेखक और पाठक के बीच निबन्ध एक सरल सेतु है जिस पर दोनों एक-दूसरे तक आ जा सकते हैं। 'निबन्ध' अपने अंदर कुछ भी नहीं छिपाता है। यदि उसका लेखक सही और स्पष्ट है तो निबन्ध अपने पाठक बंधु के सामने एक सच्चे मित्र की तरह अपने विचारों को स्पष्ट कर देता है। निबन्ध एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा लेखक पाठक के सामने बिना किसी आवरण से आता है। साधारण अर्थ में निबन्ध का अर्थ है– बंधन में बँधी हुई कोई वस्तु। इस आधार पर निबन्ध साहित्य की वह विधा है जिसमें प्रयत्नपूर्वक एक-एक वाक्य को जमा-जमाकर रखा जाता है। निबन्ध निगूढ़ बंध का होता है।

14.1 परिभाषा और स्वरूप

आचार्यों ने निबन्ध की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। पहले जो अर्थ निबन्ध का था, आज वह नहीं है। इसी कारण जॉनसन और 'क्रेवेल' ने जो परिभाषाएँ दीं, वे आज के युग में मजाक समझकर एक तरफ रख दी जाती हैं। 'जॉनसन' ने निबन्ध को ''मन की आकस्मिक भटकन और सम्बद्ध व चिन्तनहीन बुद्धि विलास'' बताया। 'क्रेवेल' ने इसका उपहास किया और कहा, ''निबन्ध लेखन कला का प्रिय साधन है। जिस लेखक में न तो प्रतिभा है और न ज्ञान बुद्धि की जिज्ञासा, निबन्ध लेखन उसी के अनुकूल पड़ता है।'' आगे चलकर 'प्रीस्टलेय ने कहा कि, ''निबन्ध मौलिक व्यक्तित्व की निश्छल अभिव्यक्ति और संक्षिप्त कलात्मक वार्ता है।'' 'हडसन' ने 'निबन्ध' को अनिवार्यत: व्यक्ति रचना माना है।

हिन्दी के विद्वानों ने भी निबन्ध के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए इसे परिभाषाबद्ध किया है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में, ''आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के आधार पर निबन्ध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषता हो।'' डॉ. गुलाबराय के मत से निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगीत और सम्बद्धता के साथ किया गया हो। बाबू श्यामसुंदरदास के विचारानुसार निबन्ध उस लेख को कहना चाहिए जिसमें किसी गहन विषय पर विस्तारपूर्वक और पाण्डित्यपूर्ण विचार किया गया हो। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में, ''प्रमाणों का निबन्धन ही निबन्ध है।'' डॉ. विजयेन्द्र स्नातक विचारों को विश्रृंखलता के भीतर सन्निहित एकसूत्रता लेखक के व्यक्तित्व और वार्तालाप के ढंग की शैली के समन्वित रूप को निबन्ध की संज्ञा प्रदान करते हैं।

इन सम्पूर्ण मतों के अवलोकन के पश्चात् यह बात कही जा सकती है कि निबन्ध विषय का व्यक्तिनिष्ठ प्रतिपादन है जिसमें निबन्धकार का कोई-न-कोई प्रबोधन भी निहित रहता है। दूसरे शब्दों में चाहे तो यह मान लें कि किसी विषय पर स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन निबन्ध है।

14.2 हिन्दी निबन्ध : विकास के सोपान

हिन्दी निबन्ध के विकास की अवगति के लिए आवश्यक है कि उसके विकास को कालों में बाँट लिया जाए। भारतेन्दुकाल में निबन्ध साहित्य ने लड़खड़ाते कदमों से चलना सीखा था। अंग्रेजी के निबन्ध साहित्य की भाँति हिन्दी का निबन्ध साहित्य भी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्य जगत् में अवतरित हुआ। विद्वानों ने निबन्ध साहित्य को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है–

14.2.1 भारतेन्दुयुग

भारतेन्दु युग में गद्य साहित्य का श्रीगणेश हुआ था। अंग्रेजी निबन्ध साहित्य का प्रभाव भारतीय भाषाओं पर पड़ना स्वाभाविक था। अंग्रेजी के भावात्मक और हल्के निबन्धों के समान ही उस समय भी अत्यन्त मनोरंजक, व्यंग्यात्मक और हल्के निबन्ध ही लिखे गये। निबन्धों में विचार गाँभीर्य का कोई स्थान न था, परन्तु जो भी निबन्ध इस युग में लिखे गये वे अत्यन्त सजीव हैं। यद्यपि उस समय गद्य की कोई निश्चित पद्धति नहीं बन पाई थी और न भाषा में ही अधिक परिमार्जन था तथापि उस युग के निबन्धों में स्फूर्ति मिलती है वह कालांतर में बहुत कम निबन्धों पर खरे उतरते हैं। राजनैतिक और सामाजिक जागृति के इस युग में निबन्धों के विषय में भी प्रायः ये ही रहे। भारतेन्दु युग के निबन्धों में वैयक्तिक तत्त्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। धार्मिक पर्व और रूढ़ियों पर भी कई निबन्ध उस काल में लिखे गये। इस समय के प्रमुख निबन्धकारों में भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, श्रीनिवास दास और राधाचरण गोस्वामी के नाम लिए जा सकते हैं। इनके निबन्धों में वैयक्तिक उल्लास के दर्शन प्रभूत मात्रा में होते हैं। बालकृष्ण भट्ट और मिश्र जी के निबन्धों का महत्त्व उनकी भाषा और ग्रामीण मुहावरों से युक्त शैली के कारण हैं। इनके निबन्धों में हास्य व्यंग्य का पुट है। इनकी शैली की तुलना 'एडीसन' और 'स्टी' से की जा सकती है।

आलोच्य युग के निबन्धों की प्रवृत्तियाँ–भारतेन्दु युगीन निबन्ध भले ही प्रारम्भिक युग से निबन्ध रहे हों, किन्तु उनकी अपनी अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। डॉ. विश्वनाथप्रसाद तिवारी ने लिखा है कि, ''भारतेन्दु युगीन निबन्धों में देशभक्ति की भावना का सबसे अधिक प्रकाशन हुआ है। इन निबन्धों में समाज-सुधार, धार्मिक रूढ़ियों का खंडन, भारत के प्राचीन गौरव, देश की वर्तमान हीनावस्था और हिन्दी भाषा का समर्थन आदि विषयों की चर्चा हुई। इस युग के प्रायः सभी निबन्धकार पत्रकार थे। यही कारण है कि इस युग के निबन्ध जन-जीवन के अधिक समीप हैं। इस युग के निबन्धों में व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस युग के निबन्धों में व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस युग के न्बिन्धों में एक अजीब मस्ती, सजीवता, जिन्दादिली और उल्लास, मनोरंजन और व्यंग्य तथा चमत्कार के दर्शन होते हैं।'' आलोच्य युग के निबन्ध लेखन की उल्लेखनीय विशेषताएँ निम्नांकित रही हैं–

1. भारतेन्दु युगीन निबन्धों की प्रथम भावगत विशेषता विषय-विविधता है। इस युग में लिखे गये निबन्ध विषयगत विविधता से सम्पन्न हैं। विषय की दृष्टि से इस युग के निबन्धों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है– 1. देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक अवस्था को विषय बनाकर लिखे गये निबन्ध, 2. इतिहास, विज्ञान, साहित्य और मनोभाव आदि पर लिखे गये निबन्ध। पहले प्रकार के निबन्धों में देश-भक्ति का स्वर प्रधान है और दूसरे प्रकार के निबन्धों में साहित्यिकता के कारण विचारात्मकता अधिक है। प्रायः सभी प्रमुख निबन्धकारों ने इस प्रकार के निबन्धों का प्रणयन किया है। विविध सामाजिक विषयों से सम्बद्ध होने के कारण इस युग के निबन्धों में जागृति और सुधारवादी प्रवृत्तियाँ प्रमुख रही हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. इस युग के निबन्धों की दूसरी विशेषता है विषयगत सामान्यता—इस युग के अधिकांश लेखकों ने सामान्य विषयों पर अच्छे निबन्ध लिखे हैं। दाँत, भौंह, वृद्ध, बात, क्रोध, आशीर्वाद और धोखा आदि ऐसे विषय हैं। प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों के प्राय: ऐसे ही विषय रहे हैं। खुशामद, मुच्छ, परीक्षा, हृदय, नारी और समझदार की मौत है जैसे विषयों पर मिश्र जी ने मौज-मस्ती में आकर लिखा है और अनेक सार्थक निष्कर्ष दिये हैं।

3. सुधार, नव-निर्माण, जागृति और नवचेतना की प्रवृत्ति भी इस युग के निबन्धों में मिलती है। प्राय: सभी निबन्धकारों ने इस प्रवृत्ति को अपनाया है। इस दृष्टि से भट्ट जी, मिश्र जी और स्वयं भारतेन्दु जी के निबन्धों को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है।

4. आलोच्य युग के निबन्धों की चौथी प्रवृत्ति उन निबन्धों में मिलती है जिनमें इन निबन्धकारों ने विषय की उपेक्षा करके अपने को प्रकट किया है। उदाहरण के लिए ''ईश्वर भी क्या ठठोल है, चली सो चली'', ''देवताओं से हमारी बातचीत'', ''खटका और नये तरह का जुनून'' आदि निबन्धों को लिया जा सकता है। ये निबन्ध आत्म-व्यंजना की प्रधानता के कारण पर्याप्त प्रशंसनीय और उल्लेखनीय बन पड़े हैं।

5. व्यंग्य-हास्य और विनोद वृत्ति इस युग के निबन्धों में पाँचवीं विशेषता है। इन निबन्धकारों ने अनेक सामाजिक समस्याओं और अंधरूढ़ियों पर व्यंग्य किया है। व्यंग्य, विनोद और हास्य की प्रवृत्ति भारतेन्दु युगीन निबन्धकारों में जिस गहराई से आई है, उससे यह भी लगता है कि ये सभी निबन्ध लेखक नव-जागरण के लिए चिन्तित और मौज-मस्ती के लिए लालायित रहते थे।

6. सामाजिक मंगल का विधान प्राय: सभी निबन्धकारों में मिलता है। इसी हितैषणा से प्रेरित होकर इस युग के लेखकों ने समाज के मंगल के लिए निश्छल प्रयास किये।

7. भारतेन्दु युगीन निबन्धों में प्रयुक्त शैलियाँ भी अनेक रही हैं। भाषा-शैली की दृष्टि से इस युग के निबन्ध पर्याप्त प्रभाव डालते हैं। शैली के आधार पर देखें तो इस युग में जो निबन्ध लिखे गये उनमें विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, कथात्मक और व्यंग्यात्मक शैलियों का विशेष प्रयोग किया गया है। डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य के इतिहास में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है कि शैली की दृष्टि से देखा जाए तो यों तो प्रत्येक निबन्धकार शैली व्यक्तित्व-भेद से अलग-अलग हैं, किन्तु सामान्यत: सुविधा की दृष्टि से विचारात्मक, वर्णनात्मक, कथात्मक, इतिवृत्तात्मक, अनुसंधानात्मक और भाषण आदि सभी शैलियों के निबन्ध भारतेन्दु युग में लिखे गये हैं। वस्तुत: अभिव्यक्ति की कोई ऐसी भंगिमा नहीं जिसका आरम्भ इस युग में न हुआ हो।''

14.2.2 द्विवेदी युग

भारतेन्दु के स्वर्गवास के पश्चात् उनका मित्रमण्डल साहित्य साधना में तल्लीन रहा। भारतेन्दु और उनके मित्रमण्डल ने राष्ट्रप्रेम से युक्त साहित्य का निर्माण कर हिन्दी साहित्य के पाठकों की संख्या पर्याप्त मात्रा में बढ़ा दी। द्विवेदी युग में सरस्वती का प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। भाषा की दृष्टि से खड़ी बोली को व्याकरण सम्मत बनाने के लिए द्विवेदी जी सदा प्रयत्नशील रहे। भाषा के परिमार्जन और साहित्य के संस्कार की ओर विशेष ध्यान दिये जाने के कारण भाषा और भाव दोनों की स्वच्छंदता पर एक रोक सी लग गई। द्विवेदी जी ने नये लेखकों को प्रोत्साहन देना प्रारम्भ किया और सरस्वती में मूल लेखों के कटे-छटे और शुद्ध रूप छपने लगे। परिणामस्वरूप भाषा और व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने पर भी निबन्धों में भारतेन्दु युग की सी जिंदादिली न आ सकी। सुधारपूर्ण भाषा के साथ-साथ निबन्ध भी कला के क्षेत्र को छोड़कर सुधारवाद के क्षेत्र में बढ़ चले।

द्विवेदी युग के प्रसिद्ध निबन्ध लेखकों में सरदार पूर्णसिंह, माधव प्रसाद मिश्र, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', बालमुकुन्द गुप्त और महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम लिए जा सकते हैं। सरदार पूरणसिंह ने संख्या में कम निबन्ध लिखे किन्तु उन्हीं के बल पर वे युग के प्रतिष्ठित निबन्धकार मान लिये गये। वास्तव में इन्होंने कम लिखा है, किन्तु जो भी लिखा है वह अत्यन्त सरल और सशक्त है। इनके प्रसिद्ध निबन्ध 'मजदूरी और प्रेम' तथा 'आचरण की सभ्यता' हैं। माधव प्रसाद मिश्र ने अपने निबन्धों में पुरातन संस्कृति और सनातन विचारधारा का परिपोषण किया है। गाँभीर्य और पाण्डित्य मिश्र जी के निबन्धों की विशेषताएँ हैं। स्वदेश प्रेम, धर्म प्रेम और संस्कृति प्रेम मिश्र जी के निबन्धों में प्रमुख विषय रहे हैं। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' भी आलोच्य के प्रसिद्ध निबन्धकार हैं। इनके निबन्ध व्यंग्यात्मक अधिक हैं। 'कछुआ धर्म' और 'मारेसि कोहि कुठाव' जैसे निबन्धों में व्यंग्यात्मकता का गहरा पुट है। वास्तव में गुलेरी जी के निबन्धों में प्राचीनता के साथ नवीनता का मिश्रण हुआ है, मनोरंजन और विद्वता का समावेश है तथा विचारात्मकता और भावात्मकता का अद्भुत योग है। इनके निबन्धों की भाषा सरल और चटपटी रही है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस युग में जो निबन्ध लिखे उनमें विचारों को प्रमुखता दी गई है। उन्होंने कवि और कविता, प्रतिभा, साहित्य की महत्ता, कविता और आक्रोश आदि निबन्धों का सृजन करके अपनी

चिन्तनगत मौलिकता का परिचय दिया है। द्विवेदी जी के निबन्धों की भाषा में शुद्धता, एकरूपता, शब्द प्रयोग की कुशलता, विश्लेषण की गंभीरता और पर्यविषण की सूक्ष्मता को आसानी से देखा जा सकता है। इनका एक निबन्ध 'म्युनिसिपैलिटी के कारनामेय भी है, जिसमें इनकी व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं। अन्य निबन्धकारों में जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, श्यामसुंदरदास, श्यामबिहारी मिश्र, गोविन्द नारायण मिश्र और पदमसिंह शर्मा के नाम लिए जा सकते हैं। यही वह युग है जिसके अन्तर्गत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपना निबन्ध लेखन प्रारम्भ किया था। आचार्य शुक्ल ने गंभीर विषयों पर मनोवैज्ञानिक और समीक्षात्मक निबन्ध लिखे। उनके द्वारा लिखित निबन्धों को इसी कारण एक नया युग स्वीकार किया गया है।

प्रमुख प्रवृत्तियाँ— द्विवेदी युग में लिखित निबन्ध जिन विशेषताओं से युक्त हैं, उन्हें संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. आलोच्य युग के निबन्धों में भावना और चिन्तन का योग है तथा विषयगत विविधता भी है। विषय वैविध्य की प्रवृत्ति भारतेन्दु युगीन निबन्धों में भी थी। उसी प्रवृत्ति को यहाँ भी सुरक्षित रखा गया है। वास्तव में इस युग में साहित्य, भाषा, व्याकरण, इतिहास, पुरातत्त्व, विज्ञान, भूगोल और दर्शन से सम्बन्धित विषयों पर निबन्ध रचना हुई है।

2. द्विवेदी युग में आत्माभिव्यंजक निबन्ध नहीं लिखे गये। इसी प्रकार सामाजिक कुरीतियों और सरकार के अत्याचारों को भी निबन्धों का विषय नहीं बनाया गया है।

3. आलोच्य युग के निबन्धों में स्वतंत्र चिन्तन, भाव प्रवणता और मधुरता को विशेष स्थान मिला है। सरदार पूरणसिंह के निबन्धों में करुणापूरित भावुकता भी है और स्वतंत्र चिन्तन की प्रवृत्ति भी दिखलाई देती है। गुलेरी जी के निबन्ध कचोटने वाले हैं तथा मन को गहराई तक छूने वाले हैं।

4. वैचारिक और गंभीरता द्विवेदी युग के निबन्धों में दिखलाई देती है। वास्तव में इस युग के निबन्धों में चिन्तन भावना चिन्तन से पुष्ट, प्रेरित और प्रभावित दिखलाई देती है।

5. आलोच्य युग में व्यापक राष्ट्रीय समस्याओं की प्रस्तुति निबन्धों के माध्यम से हुई है। इतने पर भी ये सच है कि इस युग के निबन्ध विषय प्रधानता के कारण सफल और सच्चे निबन्ध प्रतीत नहीं होते।

विषय की दृष्टि से भारतेन्दु युग में समाज और राजनीति सम्बन्धी तथा हास्य व्यंग्यात्मक निबन्ध थे तो द्विवेदी युग में उपयोगितावादी और ज्ञान सम्बन्धी निबन्धों की प्रचुरता रही। परिणामस्वरूप निबन्धों ने मान्टेन के आदर्श से भिन्न एक-दूसरे ही संयत और गंभीर मार्ग को ग्रहण कर लिया। द्विवेदी युग के अधिकांश निबन्धों में वैयक्तिक अनुभूति का भी अभाव ही है। इसका कारण यह है कि अधिकतर निबन्धकार स्वतंत्र रूप से निबन्ध न लिखकर द्विवेदी जी की माँग पर निबन्धों की रचना करने लगे।

14.2.3 नवीन युग : शुक्ल युग

द्विवेदी युग के पश्चात् निबन्ध के क्षेत्र में जो युग सामने आया उसे शुक्ल युग की अभिधा भी दी गई है। इसका प्रारम्भ उसी समय से मानना चाहिए जिस समय से शुक्ल जी ने निबन्ध लिखना प्रारम्भ किया था। भारतेन्दु युगीन निबन्धों में हलकापन था तो द्विवेदीयुगीन निबन्धों में बावजूद वैचारिकता के गहराई नहीं आ सकती थी। आचार्य शुक्ल ने निबन्ध लेखन के क्षेत्र में पदार्पण करके निबन्ध को सच्चा स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने अपने विचार प्रधान निबन्धों में अपने पूर्ववर्ती निबन्धकारों की कमियों को पूरा किया और हिन्दी निबन्ध साहित्य के लिए नया मार्ग प्रशस्त किया। आचार्य शुक्ल के निबन्ध चिन्तामणि में संग्रहित हैं।

शुक्ल जी ने एक ओर तो भाव और मनोविकारों से सम्बन्धित निबन्ध लिखे हैं, दूसरी ओर आलोचनात्मक निबन्धों का प्रणयन किया है। इससे यह निबन्ध अत्यन्त सरल और स्पष्ट हैं जो भाव या मनोविकारों से सम्बन्धित हैं। इनके निबन्ध में विषय गाम्भीर्य, शैलीगत उत्कृष्टता और वैयक्तिक स्पर्श के साथ-साथ व्यंग्य विनोद के सन्दर्भ भी मिलते हैं। प्रकृति प्रेमी होने के कारण शुक्ल जी के निबन्धों में मुग्धकारी प्रकृति वर्णन भी मिलता है। आचार्य शुक्ल के निबन्धों में श्रद्धा और भक्ति, लोभ और प्रीति, करुणा, क्रोध, कविता क्या है, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था, साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद, मानव की धर्मभूमि और काव्य का रूप विधान और कल्पना आदि प्रमुख हैं। आचार्य शुक्ल ने व्यावहारिक आलोचना के लिए तुलसी, सूर और जायसी पर गंभीर अध्ययन युक्त आलोचनाएँ लिखी हैं। शुक्ल जी के आलोचनात्मक निबन्धों का व्यावहारिक पक्ष बहुत प्रबल रहा; किन्तु साथ ही सिद्धान्त पक्ष को विविध निबन्धों में समेटकर आलोचनात्मक निबन्धों की विधाओं को भी इन्होंने विशेष पुष्ट किया।

इनके निबन्ध पर्यवेक्षण, विश्लेषण और निष्कर्ष की सुसम्बद्ध श्रृंखला से बँधे हुए हैं। इस पर भी ये दर्शनशास्त्र अथवा मनोविज्ञान की थाती न होकर हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। आपके निबन्धों में मौलिक चिन्तन की झलक स्पष्ट है। आपने इनमें प्रांजल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है। आपकी भाषा में सभी शक्तियाँ निहित हैं। आपके शब्द चयन, वाक्य चयन, सादृश्य विधान और व्यंजना शक्ति में काव्यात्मक रुचि के दर्शन होते हैं। 'कविता क्या है', 'साधारणीकरण', 'व्यक्ति वैचित्र्यवाद', 'रसात्मक बोध के विविध रूपय, 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' आदि साहित्य सम्बन्धी निबन्धों में आपके दर्शन होते हैं। आपके काव्य में 'प्राकृतिक दृश्य', 'काव्य में रहस्यवाद' और 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' आदि लेख 'चिन्तामणि द्वितीय भाग' में संकलित हैं। आपके निबन्धों में समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और रसशास्त्रीय दृष्टियों का अपूर्व समन्वय घटित हुआ है। चिन्तन एवं भाषा की उत्कृष्टता ने आपके निबन्धों को विशेष सफलता प्रदान की है।

इसी युग में बाबू गुलाबराय ने गंभीर आलोचनात्मक निबन्ध के साथ-साथ हास्य-व्यंग्य प्रधान निबन्ध भी लिखे हैं। 'मेरी असफलताएँ' संकलन में बाबूजी के निजी जीवन से सम्बन्धित निबन्ध संकलित हैं। इसमें हास्य, यंग्य और शब्द-क्रीड़ा की प्रधानता है। शिवपूजन सहाय भी इस समय के अच्छे निबन्ध लेखक थे। इन्होंने सामान्य विषयों पर रोचक निबन्धों की रचना की है। उनकी शैली दो प्रकार की है—दीर्घ समासान्त वाली शैली और साधारण व व्यावहारिक शैली। शुक्ल जी के बाद के निबन्धकारों में तो अनेक निबन्धकार ऐसे हुए जिन्होंने उनका अनुकरण भी किया और कुछ प्रमुख मुद्दों पर विरोध करके अपनी स्वतंत्र मान्यताएँ भी प्रस्तुत की हैं।

14.2.4 शुक्लोत्तर निबन्ध साहित्य

शुक्लोत्तर निबन्ध साहित्य भी पर्याप्त विकसित हुआ है। विचारात्मक निबन्धों को पर्याप्त प्रोत्साहन इसी समय दिया गया। नवीन लेखकों ने भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से निबन्ध साहित्य की श्रीवृद्धि की। विषय की दृष्टि से तो आधुनिक युग के निबन्धों की कोई सीमा ही नहीं बाँधी जा सकती है। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और कलात्मक निबन्धों का प्रणयन पर्याप्त मात्रा में हुआ है और हो रहा है। निबन्ध में नई तकनीक का आगमन हुआ है। आज के प्रसिद्ध निबन्धकारों में हजारीप्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, बनारसीदास चतुर्वेदी, जैनेन्द्र, महादेवी वर्मा, वासुदेवशरण अग्रवाल, नन्ददुलारे वाजपेयी, सद्गुरुशरण अवस्थी, नगेन्द्र, सत्येन्द्र, प्रभाकर माचवे, डॉ. सरनाम सिंह शर्मा 'अरुणा', डॉ. कन्हैयालाल सहल, शांतिप्रिय द्विवेदी, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, डॉ. रामविलास शर्मा आदि के नाम विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में निबन्ध का विकास हुआ है और हो रहा है। हमें पूर्ण आशा ही नहीं विश्वास भी है कि भविष्य के गर्भ से और अधिक लेखक सामने आएँगे।

डॉ. रामविलास शर्मा के निबन्ध शिल्प की दृष्टि से दो प्रकार के हैं—एक तो वे जो गंभीर विचारात्मक हैं जिनमें शुष्क तथ्यों को भी सरल और आत्मीयतापूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है। दूसरे वे जिनमें व्यावहारिक विषयों पर निबन्ध लिखे गये हैं। इनमें वक्रतापूर्ण, व्यंजनाप्रधान और कलात्मक सौष्ठव के साथ शैली को निखारा गया है। दूसरे शब्दों में डॉ. शर्मा के विचारों व शैली में उनकी प्रगतिशील दृष्टि का ही प्राधान्य है। विद्यानिवास मिश्र भी नये निबन्धकारों में अपना सानी नहीं रखते हैं। यों तो इनके अधिकांश निबन्ध ललित निबन्धों की श्रेणी में आते हैं, फिर भी अनेक समीक्षात्मक निबन्ध भी मिश्र जी की लेखनी से लिखे गये हैं। इनके निबन्धों में अतीत की आस्था और सामयिकता की छाप है, संस्कृति और पाश्चात्य वाङ्मय का चिन्तन है, लोक जीवन के दृश्य है, इतिहास के आँकड़े और साहित्य का सन्दर्भ है।'' इनके निबन्धों में व्यंग्य और विनोद का भी पर्याप्त पुट है। रचना प्रक्रिया की दृष्टि से मिश्र जी के निबन्ध सरस चिन्तन क्रम प्रस्तुत करते हैं। 'मैंने सिल पहुँचाई' और 'कंटीलें तारों के आरपार' संग्रह इसका प्रमाण है। कुबेरनाथ राय के निबन्ध ललित निबन्ध तो हैं ही, उनमें साहित्यिक भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। 'अत्यन्त सशक्त और चुम्बकीय' शैली के लिखे गये श्री राय के निबन्ध बड़े गंभीर, व्यंग्य विनोद और आत्मीयता को लिए हुए हैं। निबन्ध संग्रह 'गंधमादन' इसका उदाहरण है।

हरिशंकर परसाई व्यंग्य लेखक है। परसाई जी के निबन्धों में ''जीवन के विविध अंतर्विरोध, असमानता, मिथ्याचार और पाखंड को पैनी कलम से उजागर किया गया है।'' ये निबन्ध चेतना को झकझोरने वाले हैं, इनकी शैली निःसंग और व्यंग्य प्रधान है। इस युग के विचारात्मक निबन्धकारों में डॉ. वासुदेव अग्रवाल, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, डॉ. नामवरसिंह तथा डॉ. रघुवंश का नाम भी उल्लेख्य है।

शुक्लोत्तर युग में साहित्य, संस्कृति तथा वस्तु व्यक्ति के विशद् परिप्रेक्ष्य को आधार बनाकर व्यक्ति, व्यंजक, आत्मपरक अथवा ललित निबन्ध लिखने वालों ने निबन्ध साहित्य की विशेष श्रीवृद्धि की है। निबन्ध साहित्य की इस विधा के उन्नयन में हजारीप्रसाद द्विवेदी का नाम अग्रणी है। उनके निबन्ध शोधवृत्ति पांडित्य तथा बहुज्ञता के सूचक हैं। उनके निबन्धों में उनके मानवतावादी कवि हृदय तथा मनमौजी व्यक्तित्व की छाप है। 'अंशों के फूल', 'कुटज', 'कल्पलता', 'विचार और वितर्क' तथा 'विचार और प्रवाह' उनके श्रेष्ठ निबन्ध संग्रह हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आचार्य द्विवेदी के समानधर्मा व्यक्तिपरक निबन्ध लेखकों में जैनेन्द्र कुमार का नाम भी उल्लेखनीय है। उनकी भाषा शैली तथा विषय में मौलिकता है। विषय की दृष्टि से उनके निबन्ध परम्परा से हटकर हैं। भाषा बोलचाल की होने के कारण कहीं-कहीं अस्पष्ट तथा अटपटी है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद व्यक्तिव्यंजक निबन्धकारों में विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, शिवप्रसाद सिंह, अज्ञेय तथा प्रभाकर माचवे का विशिष्ट स्थान है। हजारी प्रसाद द्विवेदी की इस निबन्ध परम्परा में विद्यानिवास मिश्र तथा कुबेरनाथ राय अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं। इनके निबन्धों में सांस्कृतिक परिवेश की व्यापकता है। ऐसे निबन्ध लेखकों में धर्मवीर भारती, भगवतशरण उपाध्याय तथा ठाकुरप्रसाद सिंह का नाम भी उल्लेखनीय है।

भारतीय संस्कृति, इतिहास कला तथा पुरातत्त्व आदि विषयों पर निबन्ध लेखन की जो परम्परा गुलेरी जी ने प्रारम्भ की थी उसे डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने बखूबी निभाया है। अग्रवाल जी के 'पृथ्वीपुत्र', 'माताभूमि' तथा 'कला और संस्कृति' आदि निबन्ध संग्रह बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इन्होंने अपने निबन्धों में भारतीय संस्कृति के रहस्यमय तथ्यों तथा अनेक उलझनों को स्पष्ट करने के लिए शोधपूर्ण व्याख्या प्रधान निबन्ध लिखे हैं। प्रकृति तथा यात्रा विवरण-विषयक निबन्ध-लेखन में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, राहुल सांस्कृत्यायन, श्रीराम शर्मा तथा देवेन्द्र सत्यार्थी और साम्यवादी तथा प्रगतिवादी विचारधारा के निबन्ध लेखकों में राहुल, रामविलास शर्मा, यशपाल, शिवदान सिंह चौहान, अमृतराय, प्रकाशचन्द्र गुप्त के नाम अग्रणी हैं।

शुक्लोत्तर युग में संस्मरणात्मक निबन्धों का भी विकास हुआ है। इस क्षेत्र में रामवृक्ष बेनीपुरी (गेहूँ और गुलाब, माटी की मूरतें, वन्दे वाणी विनयिका), महादेवी वर्मा (अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (धरती के फूल, आकाश के तारे, जिन्दगी मुस्कराई, जितना जिन पाया), परिपूर्णानन्द वर्मा (बीती यादें) तथा भदंत आनन्द कौत्स्यायन (रेल का टिकट, स्वतंत्र चिन्तन, जो मैं भूल न सका) का विशेष महत्त्व है। संस्मरणात्मक पद्धति के निबन्ध लेखकों में बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रभाकर माचवे तथा जगदीशचन्द्र माथुर ने भी अच्छा काम किया है।

शुक्लोत्तर युग में हास्य निबन्धों का प्रचुर विकास हुआ है। बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जी.पी. श्रीवास्तव तथा गुलाबराय आदि ने जिन हास्य व्यंग्य प्रधान शैली का सूत्रपात किया था उसे प्रौढ़ता प्रदान करने वाले व्यंग्य लेखकों में श्रीनारायण चतुर्वेदी (राजभवन की सिगरेटदानी), श्रीलाल शुक्ल (अंगद का पाँव) तथा हरिशंकर परसाई ('मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', 'विकलांग', 'श्रद्धा का दौर', 'पगडंडियों का जमाना', 'भूत के पाँव पीछेय, 'बेईमानी की परत') और शरद जोशी (किसी बहाने), भारतभूषण अग्रवाल (कागज के फूल) तथा प्रभाकर माचवे (खरगोश के सींग, तेल की पकौड़ियाँ) के नाम अग्रणी हैं। इस क्षेत्र में कृष्णदेव प्रसाद गौड़ (बेढ़ब, कुट्टिचातन), केशवचन्द्र वर्मा, विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकांत वैष्णव, गोपालप्रसाद व्यास, बरसाने लाल चतुर्वेदी, मुद्राराक्षस, रवीन्द्र कालिया तथा नरेन्द्र कोहली के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी निबन्ध साहित्य के इस संक्षिप्त वर्णन से सहज स्पष्ट है कि विषय तथा शैली दोनों ही दृष्टियों से निबन्ध का क्षेत्र विस्तृत हुआ है। निबन्ध साहित्य में विचारों की प्रौढ़ता, भाषा में प्रांजलता तथा शैली में नवीनता आई है। फिर भी निबन्ध रचना के क्षेत्र में कहानी उपन्यास अथवा नाटक का सा विस्तार नहीं है।

14.3 हिन्दी आलोचना का विकास

आलोचना निष्पक्ष दृष्टि से की गयी किसी कृति की वह परख है जो कृति के गुणों और दोषों का सही दिग्दर्शन कराकर, उसके महत्त्व एवं मूल्य का आँकलन करती है। समाज को कृति और कवि के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान कराती है, संस्कृतियों के पठन-पाठन की प्रेरणा जाग्रत करती है तथा कवियों और लेखकों के प्रति सम्मान-भाव जाग्रत करना अपना धर्म समझती है। प्रत्येक दृष्टि से परिपूर्ण साहित्य ही उच्चकोटि की श्रेणी प्राप्त करे, यही देखना आलोचक का अभीष्ट होता है। हिन्दी में आचार्य श्यामसुंदर दास ने आलोचना की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि 'साहित्य के क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुण और दोषों का विवेचन करना और उसके सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करना ही आलोचना कहलाती है। यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।'

डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार आलोचना की आत्मा कलामय है, किन्तु उसकी शरीर रचना वैज्ञानिक है। डॉ. सुरेशचंद्र गुप्त के मतानुसार 'किसी कृति की विशेषताओं पर विचार करना उसकी उपलब्धियों एवं प्रभावों का मूल्यांकन करना, सहृदय के हृदयों पर उसकी प्रतिक्रिया का विश्लेषण करना, उसकी श्रेष्ठता अथवा अभावों के विषय में निर्णय देना, उसे श्रेणीबद्ध करना आदि अनेक कार्य आलोचना के अंतर्गत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आते हैं।' डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने अपनी कृति में समस्त मतों का समाहार करते हुए यह मत प्रतिपादित किया है—''सच्ची समालोचना वह है जिसमें आलोचक इतिहास एवं तुलना का आधार लेकर वस्तु के बाह्य और आन्तरिक दोनों पक्षों की व्याख्या करता है। यह व्याख्या वैज्ञानिक शैली में की जाती है। आलोचना में आलोचना सिद्धान्त का निर्माण और आलोच्य वस्तु का मूल्यांकन करता है।

साहित्य में आलोचना उतनी ही आवश्यक है जितनी कि मौलिक कृतियों का सर्जन। वस्तुत: आलोचना भी एक साहित्य-सृजन का ही कर्म है जिसे आलोचक पूरी गम्भीरता से लेता है। आलोचक इस कार्य को तभी गम्भीरता और सफलता के साथ कर सकता है जब उसमें निम्नलिखित गुण विद्यमान हों—1. सहृदयता एवं भावुकता की वृत्ति। 2. निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण का ग्रहण तथा पूर्वाग्रहों का त्याग। 3. मौलिक सृजनशील प्रतिभा का धनी। 4. पूर्ववर्ती समीक्षा मानों का ज्ञाता या ध्याता। 5. विविध विषयों का ज्ञान तथा अध्यन में रुचि रखने वाला। 6. कृति एवं कृतिकार के साथ तादात्म्य स्थापित करने की क्षमता से युक्त। 7. भाषा पर पूर्ण अधिकार रखने वाला। 8. बेलाग तथा दो टूक बात करने की शक्ति और प्रवृत्ति।

आलोचना की प्रक्रिया के प्रमुख कार्य होते हैं—सिद्धान्त निरुपण तथा व्याख्या। इस दृष्टि से आलोचना के दो भेद किये जाते हैं—1. सैद्धान्तिक आलोचना और 2. व्यावहारिक आलोचना। वस्तुत: आलोचना की विभिन्न प्रवृत्तियों को इन्हीं दो भेदों के अन्तर्गत देखा जा सकता है। इसमें भी व्यावहारिक समीक्षा अथवा समालोचना के अग्रांकित प्रभेद हैं—1. प्रभावात्मक आलोचना, 2. व्याख्यात्मक आलोचना, 3. निर्णयात्मक आलोचना। व्याख्यात्मक आलोचना के पुन: उपभेद किये जाते हैं—1. शास्त्रीय आलोचना, 2. मनोविश्लेषणात्मक आलोचना, 3. ऐतिहासिक आलोचना, 4. मार्क्सवादी आलोचना, 5. तुलनात्मक आलोचना और 6. चरितमूल आलोचना।

हिन्दी आलोचना के विविध रूपात्मक विकास को निम्नांकित शीर्षकों के सहारे समझा जा सकता है।

14.3.1 संस्कृत आलोचना

भारतीय साहित्य में सर्वप्रथम सैद्धान्तिक समीक्षा का विकास हुआ जिसे काव्यशास्त्र या अलंकारशास्त्र के नाम से अभिहित किया जाता है। भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र काव्यशास्त्र की उपलब्ध प्राचीन ग्रंथ है जिसमें काव्य के

मानदण्ड के रूप में रस सिद्धान्त की स्थापना की गयी है। बाद में भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों ने रस सिद्धान्त की अपने-अपने ढंग से व्याख्या की तथा अपने-अपने मत की पुष्टि की, किन्तु ये सभी रस की महत्ता स्वीकार करते हैं। भामह, दण्डी, उद्भट आदि आचार्यों ने काव्य की आत्मा के रूप में रस के स्थान पर अलंकार की प्रतिष्ठा की तथा अलंकार को सौन्दर्य का पर्याय माना। परवर्ती युग में वामन ने 'रीतिसंप्रदाय' की, कुन्तक ने 'वक्रोक्ति संप्रदाय' की तथा आनन्दवर्धन ने 'ध्वनि संप्रदाय' की स्थापना की तथा वामन, कुन्तक तथा आनन्दवर्धन ने काव्य की आत्मा क्रमश: रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि को माना। आचार्य क्षेमेन्द्र ने इन सभी तत्त्वों को आवश्यक मानते हुए औचित्य संप्रदाय की स्थापना की। मम्मट, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य आदि सभी का विवेचन किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत में आलोचना की परम्परा काफी प्राचीन है, किन्तु यह देखने की बात है कि संस्कृत में केवल सैद्धान्तिक समीक्षा का ही विकास हुआ। व्यावहारिक आलोचना एक प्रकार से उपेक्षित सी रही।

14.3.2 हिन्दी आलोचना

संस्कृत का काव्यशास्त्र हिन्दी के आचार्यों को परम्परा के रूप में मिला तथा हिन्दी में आलोचना का जन्म मध्यकाल में हुआ मगर यह आश्चर्य की बात है कि हिन्दी के प्रारम्भिक आलोचना ग्रंथ भक्ति एवं श्रृंगार तथा काव्य रचना की प्रेरणा से रचे हुए हैं, काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के विवेचन की दृष्टि से नहीं। सूरदास की साहित्य लहरी तथा नन्ददास की रसमंजरी रचनाएँ यद्यपि काव्यशास्त्र की कोटि में आ सकती हैं तथा उनका लक्ष्य नायिका-भेद समझना न होकर आराध्य कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का वर्णन करना है। करणेष, रहीम, गोपा, भूपति आदि अकबर के कुछ दरबारी कवियों ने काव्य का जो विवेचन किया है, उसका लक्ष्य रसिकता का पोषण ही है। बीच-बीच में कविता के सम्बन्ध में कुछ नियमों की चर्चा करते हुए भी तुलसी का लक्ष्य काव्यशास्त्र की विवेचना प्रस्तुत करना नहीं था।

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में ऐसे ग्रंथों की रचना अधिक हुई जिनका उद्देश्य काव्यशास्त्र के नियमों और सिद्धान्तों का परिचय प्रस्तुत करना था। रीतिकाल में जो काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखे गये, उनमें आलोचना का हल्का स्वरूप देखने को मिलता है। हाँ, इतना अवश्य कह सकते हैं कि इन ग्रंथों में आलोचना का बीज निहित है। जो बीज यहाँ हैं, वही आगे पल्लवित और पुष्पित होकर आधुनिक काल की हिन्दी आलोचना के लिए मार्ग खोलता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.3.3 आधुनिक हिन्दी आलोचना

हिन्दी समीक्षा के विकास का प्रारम्भ सही अर्थ में आधुनिक काल से ही होता है। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और शुक्ल युग में हिन्दी आलोचना का पर्याप्त विकास हुआ। भारतेन्दुयुगीन आलोचना की विशेषता यह रही कि इस काल के लेखकों ने कुछ ग्रंथों, कुछ पत्रिकाओं की आलोचना प्रस्तुत की। स्वयं भारतेन्दु ने हिन्दी आलोचना का प्रवर्तन किया। प्रेमघन और बालकृष्ण भट्ट ने भारतेन्दु के कार्य को आगे बढ़ाया। भारतेन्दु यदि सैद्धान्तिक समीक्षा के प्रारम्भकर्त्ता कहे जा सकते हैं तो प्रेमघन और बालकृष्ण भट्ट को व्यावहारिक समीक्षा की आधारशिला रखने वाले विद्वानों के रूप में मान्यता दी जा सकती है। थोड़ी-बहुत आलोचना पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी सामने आयी, किन्तु फिर भी यह सत्य है कि भारतेन्दु युग में जो समीक्षा उपलब्ध होती है, वह लेख, पुस्तक-परिचय, टिप्पणी और सम्पादकीय आदि के रूप में ही देखने को मिलती है।

द्विवेदी युग में आलोचना का और अधिक विकास हुआ। सरस्वती पत्रिका के माध्यम से हिन्दी समीक्षा का नया युग प्रारम्भ होता है। आचार्य द्विवेदी ने कालिदास की निरंकुशता, नैशद चरित्र-चर्चा आदि विक्रमांकदेवचरित आदि ग्रंथों का प्रणयन किया। इन ग्रंथों में द्विवेदी जी की समीक्षा-पद्धति को देखा जा सकता है। उन्होंने अपनी समीक्षाओं में हिन्दी कविता में उपलब्ध शृंगारिकता का प्रबल विरोध किया तथा कविता में देश-प्रेम और समाज-सुधार की भावनाओं को प्रस्तुत करने का पक्ष लिया। इसी युग में हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में मिश्रबंधुओं का पदार्पण हुआ। इन्होंने हिन्दी नवरत्न और मिश्रबंधु विनोद जैसे ग्रंथों की रचना की। हिन्दी नवरत्न में हिन्दी कवियों का श्रेणियों में विभाजन किया गया। देव और बिहारी की समीक्षा का दौर चला। पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी सतसई की भूमिका लिखी, जिसमें अपनी आलोचनात्मक प्रतिभा का सहारा लेकर शर्माजी ने बिहारी की श्रेष्ठता को प्रमाणित किया। इसी युग में पंडित कृष्णबिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' पुस्तक लिखी जिसमें बिहारी पर आक्षेप किये गये हैं तथा बिहारी और देव की तुलना भी की गई है। यही वह बिन्दु है जहाँ से हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना और प्रभावात्मक आलोचना का सूत्रपात हुआ। द्विवेदी युग में ही पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और बाबू श्यामसुंदर दास ने भी हिन्दी आलोचना के विकास में अपना योगदान दिया। श्यामसुंदर दास ने 'साहित्यालोचन' और 'रूपक रहस्य' जैसे सैद्धान्तिक समीक्षा के प्रौढ़ ग्रंथ की रचना की।

14.3.4 आलोचना में आचार्य शुक्ल का अवतरण

हिन्दी आलोचना में आचार्य शुक्ल का अवतरण एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में याद किया जाता है। आचार्य शुक्ल से पहले हिन्दी समीक्षकों के सामने न तो कोई आदर्श था और न कोई सिद्धान्त था। सभी अपने-अपने ढंग से आलोचनाएँ लिखा करते थे, किन्तु शुक्ल ने हिन्दी आलोचना को निश्चित मानदण्ड प्रदान किये। उन्होंने साहित्य की सूक्ष्म शक्ति भावों के उद्रेलन की शक्ति को समीक्षा की कसौटी के रूप में स्वीकार किया। शुक्लजी ने ही अपनी आलोचना से रस सिद्धान्त को नया स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने सामाजिकता और लोकमंगल की भावना को महत्त्व दिया तथा इसी आधार पर हिन्दी आलोचना के मानदण्ड निश्चित किये। काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष दोनों को समान महत्त्व देते हुए शुक्लजी ने कला, कला के लिए तथा कला जीवन के लिए जैसे सिद्धान्तों में सामंजस्य स्थापित किया। आचार्य शुक्ल की आलोचना पद्धति लोकमंगलवादी रही। उन्होंने हिन्दी साहित्य का इतिहास, जायसी ग्रंथावली की भूमिका, गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास और मलिक मुहम्मद जायसी पर विस्तृत समीक्षाएँ लिखीं। शुक्लजी की समीक्षा-पद्धति आगे के आलोचकों के लिए प्रेरणा बनी। वास्तव में हिन्दी आलोचना के इतिहास में शुक्लजी का योगदान आज भी महत्त्व रखता है। इसी कारण डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि 'आचार्य शुक्ल के सम्बन्ध में यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि उनके समान मेधावी आलोचक किसी भी भारतीय भाषा में नहीं हैं।'

14.3.5 शुक्लोत्तर आलोचना

शुक्लजी के पश्चात् हिन्दी आलोचना का विकास बहुत तीव्र गति से हुआ है। शुक्लोत्तर युग में आलोचना के प्रतिमान निश्चित किये गये हैं, आलोचना की पद्धति और उसके प्रकारों को स्पष्टता प्रदान की गयी है। इसलिए शुक्लोत्तर युग में जो समीक्षा-प्रवृत्तियाँ और पद्धतियाँ विकसित हुईं, उनमें ऐतिहासिक समीक्षा, सैद्धान्तिक समीक्षा, व्यावहारिक समीक्षा, मनोविश्लेषणवादी समीक्षा, मार्क्सवादी समीक्षा, वैज्ञानिक समीक्षा, लोक-साहित्य सम्बन्धी समीक्षा और तुलनात्मक समीक्षा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ऐतिहासिक समीक्षा का श्रेय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. भागीरथ मिश्र जैसे विद्वानों को प्राप्त है। आचार्य हजारीप्रसाद जी द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' और 'हिन्दी स हित्य : उद्भव और विकास' जैसे ग्रंथ ऐतिहासिक आलोचना के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। अपनी ऐतिहासिक समीक्षा में आचार्य द्विवेदी जी ने नवीन दृष्टि से नवीन स्थापनाएँ प्रस्तुत की हैं। इसी क्रम में डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. श्री कृष्णलाल और डॉ. केसरीनारायण शुक्ल ने भी ऐतिहासिक समीक्षा को समृद्ध किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सैद्धान्तिक समीक्षा को बढ़ावा देने वालों में डॉ. गुलाबराय, डॉ. नगेन्द्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, बलदेव उपाध्याय और डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी आदि के नाम प्रमुख हैं। डॉ. गुलाबराय ने सिद्धान्त और अध्ययन तथा 'काव्य के रूपय जैसी कृतियाँ लिखकर सैद्धान्तिक समीक्षा को प्रस्तुत किया है। डॉ. नगेन्द्र ने 'रीति काव्य की भूमिका', 'रस सिद्धान्त', 'काव्य बिम्ब' और 'अरस्तू का काव्यशास्त्र' आदि ग्रंथ लिखकर हिन्दी की सैद्धान्तिक समीक्षा को विकसित किया है। बलदेव उपाध्याय ने भारतीय साहित्य शास्त्र और डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी ने भारतीय साहित्य दर्शन व 'रस-विमर्श' जैसे समीक्षा-ग्रंथ प्रस्तुत किये हैं। डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित का 'रस सिद्धान्त : स्वरूप और विश्लेषण' जैसा ग्रंथ भी इसी प्रकार की समीक्षा का उदाहरण है।

व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने इस प्रकार की आलोचना अपने ग्रंथों 'हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी', 'आधुनिक हिन्दी साहित्य', 'नया साहित्य : नये प्रश्न', 'जयशंकर प्रसाद और सूरदास' के द्वारा प्रस्तुत की है। आचार्य वाजपेयी जी की व्यावहारिक समीक्षा में मौलिकता और विशिष्टता सर्वत्र देखने को मिलती है। इनके अतिरिक्त आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ. विनयमोहन शर्मा, डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. पद्मसिंह, डॉ. सरनामसिंह समीक्षा के क्षेत्र में डॉ. देवराज का नाम सर्वोपरि है। अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी और प्रकाशचन्द्र गुप्त आदि ने भी मनोविश्लेषणवादी समीक्षा प्रस्तुत करके इस आलोचना पद्धति को बढ़ावा दिया है। मार्क्सवादी समीक्षा के विकास में जिन समीक्षकों का योगदान विशिष्ट है, उनमें डॉ. रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय और डॉ. नवल किशोर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

वैज्ञानिक समीक्षा के क्षेत्र में डॉ. माताप्रसाद गुप्त का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उनके अलावा डॉ. दीनदयाल गुप्त, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक और डॉ. विजयपाल सिंह आदि के नाम भी महत्त्व रखते हैं। इन्होंने हिन्दी की वैज्ञानिक समीक्षा को विकसित करने में उल्लेखनीय योगदान दिया है। लोक साहित्य सम्बन्धी समीक्षा के क्षेत्र में सर्वोपरि नाम डॉ. सत्येन्द्र का है। उनके अतिरिक्त डॉ. कन्हैयालाल सहल, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय और डॉ. रवीन्द्र भ्रमर आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। हिन्दी में तुलनात्मक समीक्षा का सूत्रपात यद्यपि द्विवेदी युग में हो गया था, किन्तु इसका पूर्ण विकास शुक्लोत्तर युग में ही हुआ। डॉ. नगेन्द्र ने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जो आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'प्रसाद और निराला' का तुलनात्मक आँकलन बड़ी सूक्ष्मता से किया है। तुलनात्मक समीक्षा के अंतर्गत ही बहुत से शोध-प्रबंध भी आते हैं जो इस आलोचना को बढ़ावा देते हैं।

हिन्दी में पाठ शोध एवं टीका कार्य भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो और जायसी ग्रंथावली का पाठ-सम्पादन इसके उदाहरण हैं। पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रामचरित मानस का पाठ प्रस्तुत किया है तो डॉ. पारसनाथ तिवारी ने कबीर की रचनाओं का सम्पादन किया है। टीका और व्याख्या लेखन की समीक्षा भी महत्त्वपूर्ण है। ब्रज भाषा काव्य पर गद्य में लिखी गयी बहुत-सी टीकाएँ उपलब्ध हैं। आधुनिक युग में भी यह आलोचना पद्धति प्रचलित है। बिहारी सतसई, उद्धव शतक, कामायनी आदि ग्रंथों की टीकाएँ इसी आलोचना का उदाहरण हैं। रत्नाकर की 'बिहारी रत्नाकर की टीका', 'वियोगी हरि की विनय पत्रिका की टीका', 'वासुदेवशरण अग्रवाल की 'पद्मावत की टीका' और डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना द्वारा लिखित 'कामायनी का भाष्य' इसी आलोचना-पद्धति के उदाहरण हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 15 : हिन्दी आलोचना : स्वरूप एवं विकास

संरचना

15.0 आलोचना : अर्थ एवं परिभाषा

15.1 व्यावहारिक आलोचना

15.2 सारांश

15.0 आलोचना : अर्थ एवं परिभाषा

आलोचना शब्द 'लोचन धातु से निष्पन्न हुआ है। लोचन का अर्थ है 'देखना'। किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है।

समालोचना शब्द सम + आङ् + लोचन + आ में विग्रहांश हैं। इनमें प्रथम दो सम + आङ् उपसर्ग है। उपसर्गों का प्रयोग-धातु से पूर्व धातु द्वारा निष्पन्न सुबन्त शब्द में विशेषार्थ द्योतन के लिए किया जाता है। सम का अर्थ है भलीभाँति और आङ् का अर्थ है 'मर्यादा'। तदनन्तर व्याकरणीय प्रक्रिया के उपरान्त (लोचन + अ) शब्द निष्पन्न होता है। पुन: स्त्रित्व विवक्षा में 'टापय प्रत' होने से लोचना शब्द बनता है। पुन: सम + अ + लोचना = समालोचना शब्द की सिद्धि होती है जिसका अर्थ है—समुचित रूपेण दर्शन करना अर्थात् किसी भी वस्तु व्यक्ति या विषय के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना और दूसरों को उसका ज्ञान प्राप्त करना। ळीळींळलळीा-पीळींळर धातु से बना है जिसका अर्थ निर्णय करना, विश्लेषण, सौन्दर्य का मूल्यांकन।

साहित्य जब अपने स्वरूप का विश्लेषण स्वयं करने लगता है तब समालोचना का जन्म होता है।

डॉ. श्यामसुन्दरदास के शब्दों में 'साहित्य क्षेत्र में ग्रंथ' को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना, उसके सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है। यदि हम साहित्य के जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।

आलोचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए **डॉ. गुलाबराय जी** लिखते हैं कि, ''आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वादन कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वादन में सहायता देना तथा उनकी रुचि को परमार्जित करना एवं साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है।''

साहित्य के यथार्थ दर्शन का नाम समालोचना है। वह स्वयं साहित्य है जो आलोचक की अध्ययन सीमा (बुद्धि), संस्कृति और हृदयवृत्ति से निर्मित होता है। बुद्धि में आलोचक की अध्ययन सीमा, संस्कृति में उसका विषयग्राही दृष्टिकोण और हृदयवृत्ति में विषय के साथ समरस होने की ललक झलकती है।

डॉ. एस.पी. खत्री के कथनानुसार आलोचना का प्रधान लक्षण साहित्यिक कृति के रूप, रंग, आकार, प्रकार तथा उसकी वास्तविक आत्मा का प्रदर्शन है।

पाश्चात्य साहित्य शास्त्रियों ने भी समालोचना की गम्भीर विवेचना की है—

हैरिस का कथन है कि आलोचना साहित्य क्षेत्र का श्रेष्ठ प्रबन्ध कर्त्ता है।

मैथ्यू आर्नल्ड के अनुसार किसी वस्तु का यथावत परिशीलन आलोचना का प्रमुख ध्येय रहेगा। उसे सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वोन्नत विचारों की खोज करनी पड़ेगी और उनके प्रसार में दत्तचित्त रहना पड़ेगा।

फ्रांस का मत है कि 'आलोचना का ध्येय अर्थ का स्पष्टीकरण नहीं और न वह वस्तुओं को यथावत् देखेगी वरन् वह वस्तुओं के संबंध को परखेगी और उन्हीं संबंधों के विश्लेषण में अपनी शक्ति प्रयुक्त करेगी।

आइ.ए. रिचर्डस की मान्यता है कि आलोचना साहित्यिक अनुभूति के विचारपूर्ण विवेचनोपरान्त उनका मूल्यांकन करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

टी.एस. इलियट की धारणा है कि 'आलोचक' का तात्पर्य किसी वस्तु के मूल्यों का निर्णय करना है। समीक्षा तो सज्ञानता का विकास है।

जे.इ. स्पिन्गार्न ने आलोचना का मुख्य कार्य निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर देना माना है—

1. कलाकार ने क्या अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया।

2. उस अभिव्यक्ति में कितना सफल रहा।

3. जो कुछ अभिव्यक्त किया क्या वह वास्तव में अभिव्यक्त होने योग्य था।

साधारणत: आलोचना की परिभाषा देते हुए यह कहा गया है कि आलोचना का प्रधान कार्य साहित्यिक कृतियों के गुण-दोष का उदाहरण सहित विवेचन और तर्कपूर्ण तथा सूक्ष्म विश्लेषण है।

आलोचनाएँ भिन्न 2 प्रकार की होती हैं किन्तु उनका मूलोद्देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों की इस प्रकार के आस्वादन में सहायता देना तथा उनकी रुचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गतिविधि निर्धारित करने में योग देना है। साहित्य में प्रथमत: लक्ष्यग्रंथ निर्मित होते तत्पश्चात् लक्षणग्रंथ। लक्ष्यग्रंथों की विशेषताओं के आधार पर कुछ सिद्धान्त निर्मित किये जाते हैं और फिर साहित्य की किसी वृत्ति को उस कसौटी पर कसकर उसका मूल्यांकन किया जाता है।

राजशेखर ने कवि कर्म को प्रकाश में लाना ही भावयित्री प्रतिभा अथवा आलोचक की प्रतिभा कहा। आलोचना का उद्देश्य है कि कवि या लेखक की कृति में मानव हृदय कितना और किस सुन्दरता के साथ चित्रित हुआ है, इस तथ्य का उद्‌घाटन करना। समालोचना उस प्रकाशवान सूर्य के समान है जो साहित्य में बिखरी हुई अनन्त विभूतियों को आलोकित कर उन्हें सौन्दर्य प्रदान कर मानव जीवन के लिए उपयोगी बनाता है, जिसके अभाव में समाज इन अनन्त विभूतियों से वंचित रह जाता है।

आलोचना का अंकुश लोगों को मनमाने रास्ते पर चलने से रोकता है और उन्हें उचित मार्ग पर चलने के लिए बाध्य करता है। आलोचना साहित्य की धारा को ऐसा कल्याणकारी मोड़ देती है, जिससे भविष्य की काव्यधारा भी उसके निर्देशित मार्ग पर चल सके। यह सभी स्वीकार करते हैं कि 'समीक्षा का प्रयोजन है लेखकों का मार्गदर्शन करना और जनता की रुचि के परिष्कार के लिए विधान बनाना।' होरेश भी इस तथ्य का समर्थन करता है। स्कालिगर की तो गर्वोक्ति है कि 'इसीलिए हम कवि निर्माण करने का दायित्व लेते हैं।'

समालोचना साहित्य के अध्ययन में सहायक होती, साहित्य के प्रभाव को तीव्र करती है तथा पाठकों को साहित्य मन्दिर में प्रवेश करने की शक्ति-क्षमता तथा श्रद्धा प्रदान करती है।

होरेस, वीदा, कालों और पोप आदि का विचार है कि 'लेखकों को अच्छे समालोचक से निरंतर परामर्श लेते रहना चाहिए।'

आलोचना समाज की साहित्यिक रुचि का संशोधन परिमार्जन कर लेखक के लिए पाठक वर्ग निर्मित करती है। कभी कभी

लेखक तथा पाठक दोनों में ही मानसिक रुग्णता आ जाती है। स्वस्थ साहित्य की अपेक्षा न होकर उपेक्षा होने लगती है। फलस्वरूप आलोचना कुरुचि की वृद्धि को रोककर स्वस्थ भावना का प्रसार करती है। इस प्रकार इस रुग्णता का शमन हो जाता है।

आलोचना से अल्प समय में ही नवीन प्रकाशनों तथा प्राचीन मूलग्रंथों का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं। लोक सामान्य संस्कृति और प्रतिभा के विकास के लिए जो उर्वर क्षेत्र आवश्यक है उसे उच्च स्तर में भी समीक्षा सहायक हो सकती है।' सामान्यत: आलोचना के दो भेद कर सकते हैं— 1. सैद्धान्तिक, 2. व्यावहारिक।

सैद्धांतिक आलोचना में साहित्य रचना के सामान्य नियमों का विवेचन होता है। परन्तु जब नियमों के आधार पर किसी कृति या रचना की समीक्षा करनी होती है तो उसे व्यावहारिक आलोचना कहते हैं। जब लोक रुचि सूत्रबद्ध हो जाती है और युग प्रवर्त्तक कवियों की और रचनाओं का विश्लेषण कर उनके नमूने के आधार पर सिद्धान्त और नियम निर्धारित किए जाते हैं तब सैद्धान्तिक समालोचना का जन्म होता है। लक्ष्य ग्रंथों के पश्चात् ही लक्षण ग्रंथों का प्रणयन होता है। पाश्चात्य देशों में अरस्तु के काव्य सिद्धान्तों से लेकर कालरिज, एडीसन, वाल्टर पेटर, रिचर्डस, क्रोचे, स्पन्गार्न आदि के सैद्धान्तिक ग्रंथ और भारत में भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, दण्डी का काव्यादर्श, मम्मट का काव्यप्रकाश, विश्वनाथ का साहित्य दर्पण, पंडितराज जगन्नाथ का 'रसगंगाधर' आदि इसी प्रकार के आलोचना ग्रंथ हैं। हिन्दी के रीतिकालीन लक्षण ग्रंथ, डॉ. दास का साहित्यालोचन, सूर्यकांत शास्त्री की साहित्य मीमांसा, आचार्य शुक्ल की चिंतामणि, सुधांशु जी का 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' पुरुषोत्तम जी का आदर्श व यथार्थ, सेठ कन्हैयालाल का काव्यकल्पद्रुम' रामदहिन का काव्यालोक।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.1 व्यावहारिकआलोचना

व्यावहारिक आलोचना के तीन भाग हैं—निर्णयात्मक, व्याख्यात्मक, प्रभावात्मक, विश्लेषणात्मक। फिर व्याख्यात्मक के हुए चार भेद—तुलनात्मक, ऐतिहासिक, जीवन, चरितात्मक, मनोविश्लेषणात्मक। निर्णयात्मक समीक्षान्तर्गत सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर निर्णयात्मक सम्मति दे देते हैं, जैसे—रचना दोष पूर्ण, उत्तम कोटि की आदि।

व्याख्यात्मक समीक्षा में आलोच्य वस्तु क दुरूह, अस्पष्ट एवं जटिल अंशों की या उसमें निहित सिद्धान्तों आदि की व्याख्या करता हुआ उसके सूक्ष्म सौन्दर्य का उद्घाटन करता है। यथा—देव-विहारी पर मिश्रबंधु व लाला भगवानदीन की आलोचना।

आत्माभिव्यंजक या प्रभावात्मक समीक्षा में आलोचक के मानस पर पड़े प्रभाव की अभिव्यक्ति भावात्मक शैली में होती है। यथा—छायावादी समालोचना।

वस्तुत: आलोचकों के दृष्टिकोण भेद से आलोचना के भी अनेक रूप और भेद उपलब्ध होते हैं, जिनकी कोई संख्या निर्धारित करना संभव नहीं। भारतीय साहित्य में समालोचना का विकास सर्वप्रथम सैद्धांतिक आलोचना का विकास काव्य शास्त्र ग्रंथों से हुआ। संस्कृत में आलोचना शास्त्र के पांच सम्प्रदाय थे—1. रससम्प्रदाय, जिसमें नाट्यशास्त्र का आधार ग्रहण किया गया। तत्पश्चात् अलंकार सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय प्रवर्तित हुए। हिन्दी में उपर्युक्त सम्प्रदायों में से रस एवं अलंकार सम्प्रदाय को ही अपनाया या ग्रहीत् किया गया।

सैद्धांतिक आलोचना का विकास हुआ, संस्कृत के काव्य-शास्त्र की परम्परानुसार हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में। सैद्धान्तिक आलोचना के ग्रंथ सिद्धान्त विवेचन के उद्देश्य से न लिखे जाकर भक्ति, श्रृंगार अथवा काव्य रचना की प्रेरणा से रचित हुए। सूरदास की साहित्य लहरी व नंददास की रसमंजरी में नायिका भेद का प्रतिपादन संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर हुआ परन्तु उनका लक्ष्य नायिका भेद को न समझा कर आराध्य की प्रेमलीलाओं में योग देना है।

अकबर के दरबारी कवियों—करणेश, रहीम, गोपा प्रभृति ने भी काव्य विवेचन कर रसिकता का पोषण किया।

17वीं शताब्दी के मध्य में केशवदास ने कविप्रिया और 'रसिकप्रिया' की रचना की जिनका उद्देश्य काव्यशास्त्र के सामान्य नियमों एवं सिद्धान्तों का परिचय कराना था। शायद इनकी रचना पातुर प्रवीणराय को शिक्षा प्रदानार्थ ही हुई थी। हाँ विवेचन में प्रौढ़ता भले ही न हो परन्तु इनकी रचना विशुद्धत: काव्यशास्त्र में आचार्यत्व की दृष्टि से की गई।

परवर्ती युग में केशव की परम्परा का पुनश्च विकास चिंतामणि द्वारा किया गया। इस युग में चार वर्ग प्राय: पाये जाते—प्रथमत: काव्य शास्त्रीय ग्रंथ रचयिता जो आचार्यत्व की लालसा में थे।

द्वितीयत: नायक नायिका भेद सम्बन्धी ग्रंथ रचयिता आचार्यत्व कम, मनोरंजन अधिक अस्तु काव्यशास्त्र की ओट में कामुकता व रसिकता को प्रवाहित किया।

तृतीयत: अलंकार शास्त्रीय ग्रंथों के रचयिताओं ने केवल अलंकारों का प्रतिपादन किया।

चतुर्थत: कुछ ने नखशिख वर्णन व षड् ऋतु वर्णन कर काव्यग्रंथ रचे। इनमें भी विशुद्ध रसिकता का उद्रेक मिलता है। इस प्रकार मध्यकाल में काव्य शास्त्रीय एवं अलंकार सम्बन्धी ग्रंथां में ही समीक्षा के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया किन्तु इनका विशेष महत्त्व नहीं। एक तो इनका आधार संस्कृत काव्य शास्त्र, मौलिकता शून्य तथा गद्य प्रयोग न होने के कारण ये समीक्षा के सच्चे स्वरूप को प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं। इनका महत्व केवल इतना है कि इनके द्वारा समाज संस्कृत काव्यशास्त्र से परिचित रह सका।

महाकवि टेनीसन का कथन है कि, 'The old order changeth yielding place to new'$। पंत भी इसी स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं कि 'पग-पग परिवर्तन विश्वनियम।'

परिवर्तन की इसी गति में रूढ़ियाँ विनष्ट होती तथा नवीनता की लता अंकुरित, पल्लवित तथा पुष्पित होती है। ठीक इसी प्रकार की उक्ति हमारे नवयुग के साहित्य के विषय में चरितार्थ होती है। उत्तर रीतिकालीन काव्यालोचन का विकास स्फुट श्लोकों, सूक्तियों तथा तुलनात्मक समालोचना के रूप में होता है।

यथा—

उपका कालिदासस्य भारवेर्थ गौरवम्।
दंडिन: पद लालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आगे चलकर हिन्दी में विकसित होने वाली तुलनात्मक समालोचना के लिए प्रदर्शक का कार्य इसी ने किया।

सूत्ररूप में समालोचना भी मिलती है–

सूर सूर तुलसी शशी उडगन केशवदास
अब के कवि खद्योत सम जंह तंह करत प्रकाश

इसमें अप्रत्यक्ष रूप से केशव, सूर, तुलसी के अतिरिक्त अन्य कवियों की आलोचना हो गई। इसी प्रकार और कवि गढ़िया नंददास जड़िया में जहाँ नंददास की कलापक्ष विषयक प्रशस्ति की गई वहीं दूसरे पद में 'तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार में तुलसी व गंग की कवित्व शक्ति आलोच्य है। सारांशत: आलोचना प्रकृति मानव की अत्यन्त प्रमुख एवं स्वाभाविक प्रकृति है। हिन्दी में आधुनिक समालोचना का सूत्रपात पं. बालकृष्ण भट्ट तथा पं. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' द्वारा भारतेन्दु जी की संरक्षकता में हुआ। पत्र, पत्रिकाओं के माध्यम से समालोचनात्मक लेख सामने आए। इसीलिए डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन है कि–''हम इन्हें आनेवाली समालोचना का प्रारम्भिक रूप मान लें तो कोई अनुचित न होगा।'

यदि संस्कृत के प्रथम आचार्य भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' लिखा तो आधुनिक हिन्दी के जनक बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'नाटक' की रचना की। इस ग्रंथ में सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादन के अनन्तर संस्कृत हिन्दी और यूरोप के नाटक साहित्य के विकास पर प्रकाश डाला गया। साथ ही समकालीन नाटकों की यत्र-तत्र समीक्षा। समीक्षा के व्यावहारिक रूप में कहीं-कहीं तीखा व्यंग्य भी है। एक स्थान पार पारसी नाटकों की प्रत्यालोचना देखिए–

''काशी में पारसी नाटक वालों ने नाचघर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उसमें धीरोदात्त नायक दुष्यंत खेमटेवालियों की तरह कमर पर हाथ रखकर मटक-मटक कर नाचने और पतरी कमर बल खाय–यह गाने लगा तो डॉ. थिबो, बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान् यह कहकर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता। ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं। यही दशा बुरे अनुवादों की होती है। बिना पूर्व-कवि के हृदय से हृदय मिलाय अनुवाद करना शुद्ध झख मारना ही नहीं कवि की लोकान्तर स्थित आत्मा को नरक कष्ट देना है।''

भारतेन्दु की नाटक रचना के उपरांत चौधरी बद्रीनारायण प्रेमघन ने अपनी 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका में 'संयोगिता स्वयंवर' और 'बंग विजेता' पुस्तकों कीसमालोचना विस्तृत रूप में की तथा पं- बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप में सच्ची समालोचना शीर्षक से संयोगिता स्वयंवर की आलोचना की। भट्ट जी व प्रेमघन की आलोचना में तीखापन रहता है, जैसे ''नाटक में पाण्डित्य नहीं वरन् मनुष्य से आपको कितना गाढ़ा परिचय है, यह दर्शाना चाहिए।''

भातरेन्दु काल में व्यावहारिक समीक्षा का विकास हुआ। सन् 1900 में आचार्य द्विवेदी का अवतरण हुआ समीक्षा क्षेत्र में तथा पुस्तक रूप में समालोचना का विकास हुआ किन्तु उनके आगमन के पूर्व दो-तीन समलोचना की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। गंगाप्रसाद अग्निहोत्री की 'समालोचना' तथा अंविकादत्त व्यास की गद्यकाव्य मीमांसा।

द्विवेदी जी ने कालिदास की निरंकुशता, नैषध चरित्र चर्चा, विक्रमांक देव चरित चर्चा आदि ग्रंथों की रचना की। गुण-दोषों का सम्यक् विवेचन व्यंग्यात्मक शैली में किया। वह मूलत: एक शिक्षक संशोधक, सुधारक थे। आपने हिन्दी समीक्षा को पंक से निर्गत कर पंकज का स्वरूप प्रदान किया तथा काव्य को अबीर गुलाल व केशर की कीच से निर्गमित कर देश-प्रेम और समाज-सुधार की भावनाओं से अनुप्राणित कर दिया। भाषा में व्याप्त उच्छृंखलता का प्रचण्डता द्वारा नियमन व संयमन किया तथा सत्साहित्य व व्याकरण सम्मत् भाषा प्रचारार्थ उन्मुख व अग्रसर हुए तथा प्रोत्साहन दिया।

द्विवेदी के अनन्तर मिश्रबंधु आलोचना क्षेत्र में प्रादुर्भूत हुए। हिन्दी नवरत्न तथा विनोद द्वारा समालोचना का क्षेत्र विस्तृत हुआ। देव बिहारी विवाद ऐसी वृद्धि पाता गया कि वह द्रोपदी के चीर सदृश हो गया। पं. पद्मसिंह शर्मा, भगवान दीन आदि इस वाद-विवाद के विस्तारक रहे।

हिन्दी साहित्य में 'समय पलट, पलटै प्रकृति' के अनुरूप ही आचार्य प्रवर पं. रामचन्द्र शुक्ल द्वारा पूर्ण उत्कर्षता आधानित हुई। आपने पाश्चात्य समालोचना शैली का अध्ययन कर हिन्दी साहित्य में मनोवैज्ञानिक समालोचना का सूत्रपात सर्वप्रथम किया। इस युग में समालोचना का स्वरूप गुण-दोषात्मक तथा निर्णयात्मक ही नहीं रहा अपितु व्याख्यात्मक तथा सैद्धान्तिक समालोचना का रूप भी हमारे सम्मुख आया। इस प्रकार हमारे साहित्य में वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करके आलोचना होना आरम्भ हुई। ऐसी आलोचना वस्तु को स्पष्ट कर सम्मुख रख देती है ऐतिहासिक समीक्षा भी इस युग की देन है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आचार्य शुक्ल ने तुलसी ग्रंथावली की भूमिका में तुलसीदास की, भ्रमरगीतसार में सूर की, जायसी ग्रंथावली की भूमिका में जायसी की आलोचना कर हिन्दी में व्याख्यात्मक आलोचना का यथार्थ रूप से पथ-प्रदर्शन किया। अपनी आलोचना के बल पर ही जायसी को उज्ज्वल नक्षत्रवत् हिन्दी साहित्यकाश में चमका दिया।

शुक्लजी ने आलोचना क्षेत्र में नवीन मान्यताएँ स्थापित कीं। हाँ व्यक्तिगत धारणा व मान्यता के माध्यम से भी साहित्य को परखा। वह पाश्चात्य से प्रभावित थे पर ग्रस्त नहीं थे इसीलिए भारतीय पद्धति का भी आश्रय लिया और भाव-विभाव दोनों पक्षों को मुख्यता दी। कोरे अभिव्यंजनावाद के विरोधी थे। इस प्रकार व्यावहारिक समालोचना के साथ सैद्धान्तिक समालोचना का भी कार्य किया। हिन्दी साहित्य का इतिहास व चिन्तामणि इसके लिए चिरस्मरणीय है। आप में विषय की पैठ और उसका विश्लेषण असाधारण था।

तत्पश्चात् डॉ. श्यामसुन्दरदास का प्रवेश हो चुका था। आपने सैद्धांतिक आलोचना की पुस्तक 'साहित्यालोचन' द्वारा हिन्दी साहित्य में अविस्मरणीय योग दिया। हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास में बाह्य परिस्थितियों को दिखाकर व्याख्यात्मक समालोचना के क्षेत्र में अच्छा कार्य किया। आपकी विवेचन पद्धति सरल, स्पष्ट तथा सुबोध होती है। आपने आचार्य शुक्ल के चश्में से न देखकर निजत्व बुद्धि का प्रयोग स्वानुभूति व स्वसंधान को परिपाक करते हुए किया। हाँ भारतीय भावों के समर्थक अवश्य हैं।

श्री विश्वनाथ प्रसादजी ने ''बिहारी की वाग्वभूति'' नामक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी, जिसमें भाषा व भाव पर अधिकृत विवेचन सुन्दर व 'अवसि देखिए देखन जोगू' के अनुरूप है।

पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय ने कबीर पर विस्तृत आलोचना समीक्षा लिखी। आपके उपरांत पं. कृष्णशंकर शुक्ल, प्रो. सत्येन्द्र, पं. जनार्दन प्रसाद, श्री रामनाथ सुमन आदि की केशव गुप्त, प्रेमचन्द्र तथा प्रसाद पर क्रमशः लिखी गयी आलोचनाएँ स्तुत्य हैं।

छायावादी युग के साथ-साथ आलोचना में प्रगति हुई; मानदण्ड परिवर्तित हुए। इस काल में तीन प्रकार के समालोचक प्रायः दृष्टिगत होते हैं–

1. प्रथम हैं प्राचीनतावादी जो आलोचना में प्राचीन भारतीय भावों के समर्थक हैं किन्तु कुछ आधुनिक तत्त्वों का भी सम्मिश्रण कर लेते हैं। इनमें श्री गुलबराय जी और रामदहिन मुख्य हैं।

पं. रामदहिन ने 'काव्यदर्पण' प्रणयन किया तथा प्राचीन भारतीय सिद्धान्त का औचित्य प्रमाणित किया। ये लोग छायावादी शिल्प विधान के समर्थक नहीं थे। कारण है कि उसे जीवन से दूर मानते हैं।

2. दूसरे वर्ग में छायावाद के पृष्ठपोषक श्री नंददुलारे वाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, शान्तिप्रिय, डॉ. नगेन्द्र, गंगा प्रसाद पाण्डेय, विश्वम्भर मानव।

3. तीसरे वर्ग में मार्क्सवादी सिद्धांत से प्रभावित डॉ. रामविलास, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदानसिंह चौहान।

अंग्रेजी समीक्षा पद्धति के प्रौढ़ ज्ञान को लेकर हिन्दी में अवतरित होने वाले आलोचकों में डॉ. इन्द्रनाथ मदान का विशिष्ट स्थान माना जाता है। आधुनिक साहित्य का सूक्ष्म विश्लेषण 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' में सफलता पूर्वक हुआ। उपन्यास साहित्य की परख में आपका विशेष महत्त्व है। हिन्दी में गवेषणात्मक आलोचना पद्धति का विकास करने का श्रेय डॉ. दीनदयाल गुप्त, डॉ. भागीरथ मिश्र, डॉ. सत्येन्द्र, प्रभुदयाल मीतल, परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. रामकुमार, डॉ. माताप्रसाद, डॉ. मुंशीराम शर्मा, श्री भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र, डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, डॉ. सरनामसिंह–आप लोगों ने शोध-प्रबंधों द्वारा साहित्य के विभिन्न पक्षों पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला है। इनके अतिरिक्त शताधिक विद्वानों ने शोध किया है, जिसका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं।

फ्रायड, एडलर, युंग आदि के विचारों से प्रभावित मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा में कलाकाव्य के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ही कला मानी जाती है। इसलिए कलाकृति की परख हेतु कलाकार के व्यक्तित्व को समझना प्राथमिक आवश्यकता माना जाता है।

साहित्य को दमित कुंठाओं तथा मानसिक विकृतियों के उन्नयन के प्रयत्न का परिणाम मानते हैं। प्रारम्भ में डॉ. नगेन्द्र भी फ्रायड समीक्षावादी थे परन्तु कालान्तर में संभल गए। इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय प्रमुख हैं जो सम्पूर्ण साहित्य को कुंठाजात मानते हैं।

जहाँ तक साहित्य के सम्यक् अध्ययन की बात है वह तो ठीक है पर आधुनिक मनोविज्ञान के प्रतिमानों को जो स्वयं प्रयोग की संदिग्धावस्था में है, हिन्दी साहित्य पर थोपना अनुचित है। प्रत्येक कलाकार में दमित वासनाओं का अन्वेषण करना दुराग्रह मात्र है। फिर कलाकार ने उपचेतनमन का अध्ययन उसके व्यक्तित्व के स्पष्टीकरण में सहायक है, उसके काव्य के कुछ स्थल अवश्य स्पष्ट हो सकते हैं पर काव्य के रसास्वाद में ये सिद्धान्त बहुत दूर तक सहायक नहीं हो सकते। इस समीक्षा पद्धति की उपयोगिता यही है कि कवि के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्यक्तित्व के अध्ययन पर बल देती है। काव्य को स्वस्थ मार्ग पर अवलम्बन करने की प्रेरणा देती है। साहित्य की श्रेष्ठता का माप मानव कल्याण तथा उसके सांस्कृतिक विकास में सहयोग की क्षमता मानती है।

मार्क्सवादी आलोचना साहित्य की वह समाज शास्त्रीय आलोचना है जो साहित्य के ऐतिहासिक तथा गतिशील सम्बन्ध का उद्घाटन करती है और सचेतन रूप में समाज को बदलने वाले साहित्य की दृष्टि की ओर लेखक का ध्यान आकर्षित करती है।

परन्तु मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रचारक, प्रशंसक, पूँजीवाद को गालियाँ देनेवाला साहित्य ही श्रेष्ठ मानना इनकी दृष्टि है। दूसरा वर्ग एक और हो गया जो उदार मार्क्सवादी आलोचकों पर कीचड़ उछालता तथा दलबंदी को प्रश्रय देता है। समीक्षा की अन्य शैलियों में प्रभाववादी, अभिव्यंजनावादी और सौन्दर्यान्वेषी शैलियाँ उल्लेखनीय हैं। प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा में समीक्षक समीक्षा के विधान को नहीं देखता, उसके लिए अपनी रूचि ही पर्याप्त है। अपनी प्रतिक्रिया ही उसकी आलोचना है।

सौन्दर्यान्वेषी आलोचक (Aesthetic critic) कलाकृति के सौन्दर्य से आह्लादित होना तथा उसके सौन्दर्य तत्वों का उद्घाटन करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। नीति व काव्य शास्त्र की अपेक्षा सहृदयता या सौन्दर्य शास्त्र के नियमों पर कृति का अंकन करते है। अभिव्यक्ति मुग्ध (Expressionist) कहलाने में गौरव समझते है।

हिन्दी साहित्य में अभी भी प्राचीन विचारधारा बनी है। उत्तर-पश्चिम के प्रभाव जहाँ ज्यों के त्यों ग्रहण नहीं किए गए उनका प्रभाव तो पड़ा। उदाहरणार्थ इलाचन्द्र जोशी पर पश्चिम के मनोविश्लेषण के साथ-साथ आनन्दमयी दृष्टिकोण भी है। पं. भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र को हम प्रभाववादी आलोचक कह सकते हैं और प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा-शैली को भगवतशरण उपाध्याय ने नूरजहाँ में अपनाया। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में सर्वसमन्वय व सर्वदर्शन का पालन-पोषण हुआ। सभी वाद, सभी प्रभाव साहित्य के मखमली धरातल पर नक्काशी किए गए मिलते हैं।

15.2 सारांश

आज का हिन्दी साहित्य अब कुछ और तथा समालोचना कुछ और, दोनों दूर-दूर हो रहे हैं। सर्व-सम्मत मानदण्ड नहीं। कुछ आलोचक तथाकथित नवीनता व मौलिकता की सनक में अस्पष्ट व भ्रामकता फैला रहे हैं। अस्तु आवश्यकता है कि आलोचक उत्तरदायित्व को समझें, दिग्भ्रमित न हों, विरोधी सिद्धान्तों एवं वाद-विवादों की बाह्य विषमता के अन्तरतम में ऐक्य की एकनिष्ठ साधना के बल पर साहित्य के स्वीकृत सौन्दर्यात्मक स्वस्थ तत्त्वों को आत्मसात् करें। सेंतक्यूबे के मतानुसार साहित्य श्लाघ्य परिपाटियाँ स्थापित करके ही आलोचना को ऊँचा उठाया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 16 : लोक जागरण और भक्ति काव्य

(रामचन्द्र शुक्ल)

संरचना

16.0 परिचय

16.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

16.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

16.3 सारांश

16.0 परिचय

हिन्दी साहित्यकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का नाम सर्वोपरि मूर्धन्य साहित्यकारों में लिया जाता है। क्या साहित्य का इतिहास, क्या आलोचना, क्या निबन्ध सभी गद्य-विधाओं में उनके सृजन ने केवल कीर्तिमान ही स्थापित नहीं किया अपितु परवर्ती साहित्यकारों के लिए आदर्श उपस्थित करके नये सृजन का मार्ग भी प्रशस्त किया है। हिन्दी साहित्य में उनका योगदान अति स्मरणीय और स्तुत्य है।

निबन्ध के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल युग-प्रवर्तक कलाकार के रूप में वन्दनीय हैं। हिन्दी निबन्ध विधा को उन्होंने नये आयाम दिये, नयी ओजस्विता प्रदान की, नयी शैली से सुशोभित किया और नया वर्चस्व प्रदान किया। यद्यपि वह हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल गें द्विवेदी युग या गद्य-विधा के तृतीय उत्थान काल गें आते हैं तथापि अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा रो हिन्दी निबन्ध को उन्होंने जो उत्कर्ष प्रदान किया उसके कारण निबन्ध यात्रा में नया युग उनके नाम शुक्ल युग के ही रूप से प्रवर्तित हुआ। शुक्लजी जैसे निबन्धकार के बारे में यदि ''न भूतो न भविष्यति'' न तो ऐसा निबन्धकार हुआ और न होगा कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं है। जिस तरह विचारात्मक, मनोवैज्ञानिक और आलोचनात्मक गूढ़ निबन्ध आचार्य शुक्लजी ने लिखे हैं वैसे न तो निबन्ध साहित्य में लिखे गये और न ही उनकी जैसी सतत् प्रासंगिकता बनाये रखने वाली शाश्वत समीक्षाएँ लिखी गयीं। शुक्लजी की रचनाओं में बुद्ध-चरित, अभिमन्यु वध, हिन्दी साहित्य का इतिहास, तुलसीदास, सूरदास, जायसी ग्रन्थावली भूमिका, भ्रमरगीतसार, रस मीमांसा चिन्तामणि (3 खण्ड) विश्व प्रपंच, शशांक आदि कृतियाँ सर्वप्रसिद्ध हैं। उनका निबन्ध-संग्रह चिन्तामणि हिन्दी निबन्ध साहित्य की अनन्य रचना है।

शुक्ल जी रसवादी आलोचक थे और रस साहित्य का मूलाधार है। स्थायी भाव वे मनोविकार हैं जो मन में स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं। इन्हीं मनोविकारों पर शुक्लजी द्वारा लिखे गये निबन्ध अप्रतिम हैं मनोवेगों पर शुक्ल जी ने जो निबन्ध लिखे उनकी कोई पूर्व परम्परा नहीं मिलती फिर भी इन मनोविकारों की जितनी गहन, मनोविश्लेषण परक व्याख्या शुक्ल जी ने की है वह किसी मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषक तक के बस की बात नहीं। 'उत्साह', 'करूणा', 'ईर्ष्या', 'भय', 'क्रोध', 'श्रद्धा-भक्ति', 'लज्जा और ग्लानि', 'लोभ और प्रीति' शीर्षक निबन्धों में उन्होंने इन्हीं मनोविकारों की गूढ़, सूक्ष्म, सरस और भव्य व्याख्या प्रस्तुत की है। इनमें कुछ मनोविकारों जैसे उत्साह, करुणा,ईर्ष्या आदि एकांकी शीर्षक वाले निबन्धों में एक ही मनोविकार के अध्ययन को उन्होंने अपना प्रतिपाद्य बनाया है। परन्तु जहाँ लोभ और प्रीति, श्रद्धा-भक्ति जैसे दो मनोविकारों का संयुक्त शीर्षक दिया गया है। वहाँ दो मनोभावों का तुलनात्मक विशेषण उनका उद्देश्य रहा है। इन निबन्धों की एक शैलीगत विशेषता रेखांकित की जा सकती है कि वे बौद्धिक विवेचन की नीरसता के कारण गरिष्ठ नहीं हैं। अपितु इनकी सरसता और मार्मिकता सुबोधगम्य है, सम्प्रेषणीय है। एक मनोवैज्ञानिक चिन्तक द्वारा न लिखे जाकर ये निबन्ध एक सहृदय रसवादी आलोचक विद्वान द्वारा लिखे गये हैं। रागात्मकता का तत्त्व इनमें अक्षुण्ण है। आचार्यजी के स्वयं के शब्दों में, 'इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा में पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को साथ लेकर। इस उक्ति को पूर्णतया चरितार्थ करती हुई उनकी बुद्धि इन मनोविकारों का वैज्ञानिक विश्लेषण करती है। उनके स्वरूप और प्रक्रियाओं को निर्धारित करती हुई तर्क सम्मत व्याख्या प्रस्तुत करती हैं, सिद्धान्तों की स्थापना करती है और सूक्ष्म दृष्टि से उनका विश्लेषण करती है, जबकि इस बुद्धि के साथ लगा रचयिता का हृदय इस विश्लेषण को सरसता, सुबोधता और रागात्मकता प्रदान करता चलता है। शुक्लजी का अध्यापक व्यक्तित्व इस शैली में बोलता दिखायी पड़ता है। पहले वह सूत्र शैली में एक सूक्ति सी कह जाते हैं जैसे वैर, क्रोध का अचार या मुरब्बा है। फिर उसकी सोदाहरण व्याख्या करते हुए उसे सरस ढंग से सामान्य दिनचर्या के उदाहरण देकर समझाते चलते हैं। मनोविकार की सर्व विशुद्ध ठोस परिभाषा, उसका सुनिश्चित स्वरूप दूसरे मनोभावों से उसकी मैत्री या विरोध, एक जैसे प्रतीत होने वाले मनोविकारों का अन्तर, समाज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के लिए उसकी या उनकी अनुपयोगिता या उपयोगिता सभी कुछ सरस ढंग से व्याख्यायित होता चलता है। ''शुक्लजी मर्यादाशील और लोकमंगल के हिमायती व्यक्ति थे। इन निबन्धों के सन्दर्भ में उन्होंने इस सबका ही पूरा-पूरा ध्यान रखा है। चूंकि वे काव्य समीक्षक थे और काव्यशास्त्रीय ज्ञान से समृद्ध भी थे इसलिए मनोभावों के विवेचन में उनका काव्यशास्त्रीय चिन्तन भी सदैव साथ-साथ चलता रहता है।''

16.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''भक्ति आन्दोलन की जो लहर दक्षिण से आई उसी ने उत्तर भारत की परिस्थितियों के अनुरूप हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की भावना कुछ लोगों में जगाई। हृदय पक्ष शून्य सामान्य अन्तसाधना का मार्ग निकालने का प्रयत्न नाथ पंथी कर चुके थे, पर रागात्मक तत्त्व से रहित साधना से ही मनुष्य की आत्मा तृप्त नहीं हो सकती।''

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण 'लोक-जागरण' और भक्ति काव्य' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत है जिसके लेखक आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल हैं। इसमें उन्होंने स्पष्ट किया है कि दक्षिणी भारत से उत्तरी भारत में जो भक्ति की लहर आई, उसने हिन्दू व मुसलमान दोनों को ही प्रभावित किया और भक्ति आन्दोलन ने बहुत जोर पकड़ा।

व्याख्या – दक्षिण भारत में रामानन्द आदि सन्तों के प्रयास से लोगों में ईश्वर भक्ति विषयक भावों का जागरण हुआ। भक्ति की यह लहर उत्तरी भारत में दक्षिण भारत से आई। इस भक्ति की लहर ने उत्तरी भारत की परिस्थितियों के अनुरूप वहाँ के हिन्दुओं व मुसलमानों में भक्ति भाव का जागरण किया और एक सामान्य भक्ति का मार्ग खुल गया। आशय यह है कि हिन्दू व मुसलमान दोनों ही परस्पर विरोधी जातियों के लिए इस भक्ति मार्ग ने एकता का रास्ता प्रशस्त किया है। इस भक्ति के द्वारा एकता स्थापित करने के प्रयास हिन्दुओं व मुसलमानों दोनों ने ही किये।

उस समय उत्तरी भारत में नाथ पंथी सिद्धों और योगियों का बोलबाला था। वे अपनी विचित्र मुद्राओं व आसन, प्राणायाम आदि की हठयोगी क्रियाओं से जनता को आश्चर्यचकित किये हुए थे। परन्तु नाथ पंथियों का यह मार्ग साधना का एक ऐसा मार्ग था, जिसमें हृदय-पक्ष की संवेदना व रागात्मकता का अभाव था। इसमें जनता को आश्चर्यचकित कर देने की सामर्थ्य तो थी, जिसे अपना कर यहाँ के हिन्दू व मुसलमानों के हृदय में एक होने या सामान्य मानव होने के भावों की जागृति होती है। किन्तु ऐसी ही परिस्थितियों के चक्र में मुसलमान बादशाहों के अत्याचार हिन्दू जनता पर बहुत अधिक बढ़ रहे थे। और उनके देखते-देखते हजारों मन्दिर तोड़े जाकर मस्जिदों में परिवर्तित किये जा रहे थे। इतना ही नहीं, बल्कि हिन्दू व मुसलमानों के बीच की खाई पाटने के स्थान पर और अधिक बढ़ रही थी। अत: एक ऐसे सामान्य मार्ग की आवश्यकता थी जो इस खाई को पाट सके।

इस आवश्यकता की पूर्ति दक्षिणी भारत से आने वाली भक्ति की लहर ने की। इस भक्ति लहर में रागात्मकता अर्थात् संवेदना और प्रेम की भावनाएँ थीं जिनसे हिन्दू व मुसलमानों दोनों की ही आत्माएँ तृप्त हो सकती थीं। महाराष्ट्र में नामदेव ने एक सामान्य भक्ति मार्ग का आभास दिया और उत्तरी भारत में कबीर ने हिन्दू-मुसलमान का भेदभाव मिटा कर उपासना के बाहरी आडम्बरों का खण्डन करके अन्त:साधना पर बल देकर हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग प्रस्तुत किया। इस प्रकार नाथ पंथियों की शुष्क व हृदयहीन क्रियाओं ने अब प्रेम परक अन्त:साधना का रूप ग्रहण कर लिया जो हिन्दू व मुसलमान दोनों को ही मान्य हुई।

विशेष – 1. भारत की तात्कालीन परिस्थितियों में सामान्य भक्ति मार्ग की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है और नाथ पंथी व हठयोगियों की क्रियाओं की सामाजिक दृष्टि से निस्सारता सिद्ध की गई है।, 2. भाषा सरल व सुबोध है।, 3. शैली में विषय प्रतिपादन व स्पष्टीकरण की अद्भुत क्षमता है।

(2)

''कबीर ने जिस प्रकार एक निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदान्त का पल्ला पकड़ा उसी प्रकार उस निराकार ईश्वर की भक्ति के लिए सूफियों का प्रेम तत्त्व लिया और अपना 'निर्गुण पंथ' बड़ी धूमधाम से निकाला। मनुष्य की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिये बढ़ावा दिया।''

प्रसंग – आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित निबन्ध 'लोक जागरण और भक्ति काव्य' से यह गद्यांश उद्धृत है। इसमें लेखक ने कबीर द्वारा चलाये गये 'निर्गुण पंथ' के आधारों का स्पष्टीकरण करते हुए उसके महत्त्व पर प्रकाश डाला है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्याख्या— आचार्य शुक्ल कहते हैं कि कबीर ने जिस निर्गुण पंथ को चलाया, उसमें उन्होंने एक निराकार ईश्वर की उपासना पर बल दिया। भारतीय भक्ति मार्ग साकार और सगुण रूप लेकर चला था और निर्गुण तथा निराकार ब्रह्मभक्ति या प्रेम का विषय नहीं माना जाता था। परन्तु कबीर ने सगुण के स्थान पर निर्गुण, निराकार ब्रह्म को ग्रहण करते हुए भी भारतीय वेदांत का आश्रय लिया, जिसमें आत्मा व परमात्मा की एकता तथा उनमें भेद उत्पन्न करने वाली माया का चित्रण है और 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' का प्रतिपादन किया गया है।

दूसरी ओर कबीर ने ईश्वर की भक्ति के लिए सूफी सन्तों के प्रेम तत्त्व को ग्रहण किया और उनके समान ही प्रेम की पीर का वर्णन कर अपने आप को परमात्मा के विरह में तड़पती हुई नायिका के रूप में चित्रित किया। जिसमें रागात्मक या प्रेमतत्त्व की प्रधानता होने से मनुष्य की आत्मा को तृप्त करने की शक्ति विद्यमान थी।

इस प्रकार भारतीय चिन्तन धारा वेदान्त से अद्वैत और सूफियों से प्रेमतत्त्व लेकर कबीर ने अपने निर्गुण पंथ का प्रारम्भ किया और वह निर्गुण पंथ जनता के हृदय के समीप व भावात्मक होने से बड़ी धूमधाम से चल पड़ा। उसने नाथ पंथियों के प्रभाव से भक्ति रस से शून्य व शुष्क पड़ते हुए प्रेम भाव को ठीक मौके पर संभाल लिया जिससे निर्गुण पंथ ने जनता की एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की और बहुत शीघ्र ही कबीर का यह निर्गुण पंथ सर्वत्र प्रचलित हो गया और लोकप्रिय बन गया, क्योंकि इसमें हिन्दुओं व मुसलमानों दोनों को ही प्रभावित करने वाले सामान्य भक्ति मार्ग का चित्रण था।

इसके साथ ही कबीर के निर्गुण पंथ ने मनुष्यत्व की सामान्य भावनाओं अर्थात् प्रेम, दया, सहानुभूति, संवेदना, अहिंसा व भ्रातृत्व व मानव मात्र की एकता को आगे करके अर्थात् उनका चित्रण करके भारत की निम्न श्रेणी की जनता में आत्म-गौरव की भावना का जागरण किया और मानव मात्र की समानता का प्रतिपादन कर ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, हिन्दू-मुसलमान के भेद-भाव को समाप्त किया तथा प्राणी मात्र को यह अधिकार दिया कि वह अपनी साधना भक्ति और सदाचार के माध्यम से भक्ति के क्षेत्र में ऊँचे से ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकता है। इस उच्च स्थल की प्राप्ति में उसकी जाति या वर्ण किसी भी प्रकार बाधक नहीं है क्योंकि 'हरि को भजै सो हरि का होई' अर्थात् ईश्वर का भजन उपासना करने वाला व्यक्ति ही ईश्वर का होकर उसके समीप पहुँचता है। इन उदार भावनाओं और व्यक्ति-व्यक्ति की समानता के बल पर कबीर का निर्गुण पंथ चल पड़ा।

विशेष— 1. कबीर द्वारा चलाये गये पंथ की लोकप्रियता के कारणों का तत्कालीन परिस्थितियों के माध्यम से लेखक ने स्पष्टीकरण किया है तथा उसे सामान्य भक्ति मार्ग बतलाकर लोक-जागरण में सहायक सिद्ध किया है।

2. भाषा में सरलता व सुबोधता है, शब्दों में तत्सम प्रधानता है।

3. शैली में गाम्भीर्य व विवेचनात्मक व मणिकांचन-संयोग हुआ है।

(3)

''कबीर तथा अन्य निर्गुणपंथी सन्तों के द्वारा अन्तःसाधना में रागात्मक 'भक्ति' और 'ज्ञान' का योग तो हुआ पर 'कर्म' की दशा वही रही जो नाथ पंथियों के यहाँ थी। इन सन्तों के ईश्वर ज्ञान स्वरूप और प्रेम स्वरूप ही रहे, धर्मस्वरूप न हो पाये। ईश्वर के धर्म स्वरूप को लेकर, जिसकी रमणीय अभिव्यक्ति लोक की रक्षा और रंजना में होती है, प्राचीन वैष्णव भक्ति मार्ग की राम भक्ति शाखा उठी। कृष्ण भक्ति शाखा केवल प्रेमस्वरूप ही लेकर नई उमंग से फैली।''

प्रसंग— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा विरचित 'लोक जागरण और भक्ति-काव्य' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत इस गद्यांश में लेखक ने निर्गुण ज्ञानमार्गी व प्रेममार्गी शाखाओं के अभाव की ओर इंगित करते हुए राम-भक्ति शाखा के काव्य के महत्त्व का प्रतिपादन किया है।

व्याख्या— कबीर ने अपने द्वारा प्रचलित निर्गुण पंथ के काव्य में ज्ञान को ही आधार बनाया और नानक, दादू व मलूकदास आदि सन्त कवियों ने भी उस ज्ञान मार्ग का ही आश्रय लिया। दूसरी ओर निर्गुण धारा के उपासक सूफी संतों ने प्रेम मार्ग का आश्रय ग्रहण किया और अपने काव्यों की कथाओं में हिन्दू घरों की कथाओं को लेकर अद्वैत का चित्रण किया जिसमें सूफी भक्ति भावना के आधार पर ईश्वर को पत्नी तथा आत्मा को पति रूप में चित्रित किया। इन ज्ञानमार्गी व प्रेम मार्गी धाराओं की अन्तर्साधना में रागात्मक भक्ति और ज्ञान का समन्वय या योग तो हुआ परन्तु कर्म की वही दशा रही जो नाथ पंथियों के यहाँ थी। आशय यह है कि नाथ पंथी हठयोगी क्रियाओं अर्थात् ईडा, पिंगला, सुषुम्ना व कुण्डिली और ब्रह्म रंध्र व सहस्त्र दल कमल, खेचरी व काक मुद्राएँ आदि ही रह गई थी जो हृदय पक्ष से शून्य तथा शुष्क थीं।

ज्ञान मार्गी व प्रेम मार्गी शाखा के कवि-सन्तों के काव्य में लोक रक्षा व लोक रंजन करने वाली शक्तियों का अभाव था और उस समय निराश व हताश तथा परतंत्र जनता को एक ऐसे आदर्श की आवश्यकता थी जो उनकी निराशा में आशा व उत्साह का संचार करने में समर्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हो सके। ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी कवियों के काव्यों में लोक जागरण की दृष्टि से जो अभाव रह गया था उसकी पूर्ति भक्ति काव्य की राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों ने की।

वास्तव में, ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी निर्गुण सन्तों के काव्य में ईश्वर का स्वरूप ज्ञानस्वरूप और प्रेमस्वरूप ही रहा तथा नाथ पंथी हठयोगी क्रियाएँ समाज की साधारण जनता से दूर की थी और उनका ईश्वर धर्म स्वरूप न हो पाया था। ईश्वर के इसी धर्म स्वरूप को लेकर साकार व सगुण ईश्वर के उपासक कवियों ने ईश्वर के धर्म स्वरूप की रमणीय व भव्य अभिव्यक्ति की जिसमें ईश्वर की लोक रक्षा व लोक रंजन दोनों ही शक्तियों की अभिव्यंजना की। ईश्वर को धर्म स्वरूप मानकर अर्थात् उसे साकार मानकर प्राचीन वैष्णव धर्म की भक्ति के आधार पर अर्थात् अवतारवादी विचारधारा के आधार पर हिन्दी के इस भक्तिकाल में राम भक्ति शाखा उठी जिनके नायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र शक्ति, शील व सौन्दर्य की महिमा से मंडित होकर लोक रक्षा तथा जनता के सम्मुख उच्च आदर्श व सदाचारपूर्ण व्यवहार एवं त्याग के मार्ग पर चलकर रावण जैसे पराक्रमशील शत्रु का भी नाश करने में समर्थ हुए। लोक रक्षा की यह रमणीय अभिव्यक्ति निराश हिन्दू जनता में नये सिरे से आशा का संचार करने में तो समर्थ हुई ही साथ ही कर्म का एक सरल और प्रशस्त व आदर्श मार्ग भी उसने जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। आशय यह है कि राम भक्ति शाखा के काव्य ने ईश्वर को साकार मानकर लोक रक्षा में समर्थ सिद्ध करते हुए भक्ति का एक मार्ग प्रस्तुत किया।

दूसरी ओर लोक के रंजन की आवश्यकता भी शेष थी। यह कार्य कृष्ण भक्ति शाखा के काव्यों ने किया। उन्होंने श्रीकृष्ण को अपना इष्ट बनाकर उनकी बाल-लीला का चित्रण किया, जिसमें भक्ति व श्रृंगार का समन्वय होने से, वह लोक का रंजन करने में समर्थ हुई और प्रेम स्वरूप साकार ईश्वर-कृष्ण की भक्ति की यह काव्य-धारा जनता में एक नई उमंग उत्पन्न करने में समर्थ हुई, जिससे यह नई उमंग जनता में खूब फैल गई।

इस प्रकार भक्ति-काव्य के निराकार व साकार भक्त कवियों की ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, राम-भक्ति व कृष्ण-भक्ति शाखाओं के कवियों ने निराश हिन्दू जाति में नवीन आशा का संचार किया और एक सामान्य भक्ति मार्ग को प्रस्तुत कर हिन्दू व मुसलमानों की एकता में प्रशंसनीय सहयोग दिया।

विशेष—श्री शुक्ल की विवेचनात्मक व निर्णयात्मक शैली तथ्यों व सत्यों के साथ ही देश की तत्कालीन परिस्थितियों पर आधारित है। भाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता है और शैली में विषय प्रतिपादन क्षमता है। इस गद्यांश को सम्पूर्ण पाठ का सार या निचोड़ भी कहा जा सकता है क्योंकि इसमें नाथ पंथी ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी निर्गुण सन्तों तथा राम-भक्ति व कृष्ण-भक्ति शाखा के साकार उपासक भक्ति कवियों के काव्य का प्रभाव संक्षिप्त, स्पष्ट व सरल रूप में अंकित है।

(4)

''कबीर का 'ज्ञान पक्ष' तो रहस्य और गुह्य की भावना से विकृत मिलेगा पर सूफियों से जो प्रेम तत्त्व उन्होंने लिया वह सूफियों के यहाँ चाहे काम-वासना ग्रस्त हुआ हो, पर 'निर्गुण पंथ' में अविकृत रहा। यह निःसंदेह प्रशंसा की बात है। वैष्णवों की कृष्ण भक्ति शाखा ने केवल प्रेम लक्षणा भक्ति ली, फल यह हुआ कि उसने अश्लील विलासिता की प्रवृत्ति जगाई। राम-भक्ति शाखा में भक्ति सर्वांगपूर्ण रही, इससे वह विकृत न हो पाई। तुलसी की भक्ति पद्धति में कर्म (धर्म) और ज्ञान का पूरा सामंजस्य और समन्वय रहा।''

प्रसंग—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध 'लोक जागरण और भक्ति-काव्य' से उद्धृत इस गद्यांश में उन्होंने भक्ति काल की ज्ञान मार्गी, प्रेम मार्गी, राम-भक्ति व कृष्ण-भक्ति शाखाओं में भक्ति के स्वरूप का विवेचन करते हुए राम भक्ति को ही अविकृत और सर्वांगपूर्ण बतलाया है।

व्याख्या—कबीर ने निराकार व निर्गुण ब्रह्म की उपासना के लिए जिस ज्ञान पक्ष को ग्रहण किया उसमें हठयोगी नाम पंथियों की रहस्य और गुह्य की भावनाएँ आ जाने से वह विकृत हो गया। अर्थात् सुरति, निति, कुण्डलिनी जागरण आदि ऐसी क्रियाएँ उसमें वर्णित हुई जो जन समाज के स्वाभाविक जीवन से बहुत दूर की थीं अतः समाज के ग्रहण योग्य नहीं थीं यही उनमें विकृति थी। परन्तु कबीर ने अपने ज्ञान पक्ष में सूफियों से जो प्रेम तत्त्व लिया, वह यद्यपि सूफियों के यहाँ काम-वासना से ग्रस्त अर्थात् आशिक माशूक की लौकिक भावनाओं व काम वासनाओं से युक्त था। परन्तु कबीर ने अपने ज्ञान मार्ग में उसे विकृत नहीं होने दिया और उसके लौकिक आधार को अलौकिक बनाकर उसे विकृति से दूर रखा। सूफियों के यहाँ कथा का लौकिक आधार होने से प्रेम तत्त्व में कामवासना की गंध थी। परन्तु कबीर ने इस लौकिक आधार को छोड़कर केवल उसके भावात्मक स्वरूप को ही ग्रहण किया और आत्मा को पत्नी रूप में परमात्मा रूपी पति के विरह में व्याकुल दिखाने से वह अलौकिक और ग्राह्य बना रहा। अर्थात् सूफियों का प्रेम तत्त्व कबीर के ज्ञान मार्ग में आकर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सामाजिक उपयोग का बना रहा और उसमें काम-वासना की गंध नहीं आ सकी। यह इस ज्ञानमार्गी धारा की प्रशंसा करने योग्य बात है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

साकार व सगुण ईश्वर की उपासना करने वाली भक्ति धाराओं में से कृष्ण को अपना उपास्य व इष्ट मानने वाले कवियों ने केवल प्रेम-लक्षणा भक्ति को ही स्वीकार कर उसका ही चित्रण किया अर्थात् उनके कृष्ण केवल प्रेम स्वरूप ही बने रहे। परिणाम यह हुआ कि भक्ति के इस प्रेम-रहस्य ने लौकिक जगत में अश्लील वासना की प्रवृत्ति ही लोगों में जगाई और कवि अपनी वासना तृप्ति के लिए ही राधा व कृष्ण के बहाने से उनके प्रेम का निरूपण करने लगे अर्थात् इस प्रेमस्वरूप कृष्ण भक्ति में जो प्रेम कृष्ण के प्रति चित्रित हुआ था—वह लौकिक बन गया और ब्रज की गली-गली में कृष्ण मनचले नायक बन गये और परिणामस्वरूप अश्लील कामवासना की जागृति हुई।

राम-भक्ति शाखा में भी ईश्वर प्रेम का चित्रण हुआ। परन्तु इसके इष्ट मर्यादा पुरुषोत्तम थे और एक पत्नी धर्म के पालक थे। अतः इस प्रेम या भक्ति ने समाज पर कोई बुरा प्रभाव नहीं डाला अर्थात् अश्लील कामवासना व विलासिता की जागृति राम भक्ति धारा के कवियों के काव्य द्वारा नहीं हुई। अतः राम भक्ति शाखा में भक्ति सर्वांगपूर्ण रही और उसका समाज पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा जैसा कि कृष्ण भक्ति काव्य का पड़ा था। राम भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास की भक्ति पद्धति में धर्म सम्मान, कर्म और ज्ञान का पूरा सामंजस्य और समन्वय बना रहा। इसी कारण इस भक्ति पद्धति को ही सर्वांगपूर्ण व समाजोपयोगी कहा जा सकता है। जिसने निराश व हताश जनता में आशा व उत्साह का संचार कर दृढ़ आत्मबल व सच्चरित्र की प्रेरणा दी और राम के रूप में एक आदर्श चरित्र की सृष्टि से यह काव्य अनुकरणनीया, धर्म सम्मत कर्मों को ही शुभ कर्म मानता रहा, जिससे समाज में किसी भक्ति पद्धति के परिणाम स्वरूप कोई विकृति न आने पाई।

विशेष—भक्ति-काल की समस्त भक्ति पद्धतियों का सुन्दर विवेचन व उनमें श्रेष्ठ भक्ति पद्धति का एक निश्चित आधार पर मण्डन किया गया है। शैली प्रभावपूर्ण व प्रवाहमय है और विचारों के प्रतिपादन की अद्भुत क्षमता है।

(5)

''यह सामान्य भक्ति मार्ग एकेश्वर का एक अनिश्चित स्वरूप लेकर खड़ा हुआ, जो कभी ब्रह्मवाद की ओर ढलता था और कभी पैगम्बरी खुदावाद की ओर। यह 'निर्गुण पंथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी ओर ले जाने वाली सबसे पहली प्रवृत्ति जो लक्षित हुई वह ऊँच-नीच और जाति-पाँति के भाव का त्याग और ईश्वर की भक्ति के लिए मनुष्य मात्र के समान अधिकार का स्वीकार था।''

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित 'लोक जागरण और भक्ति काव्य' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत है। इसमें लेखक ने भक्तिकाल के काव्य में निर्गुण पंथ के काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उसके प्रति जनता के आकर्षण के कारण का विवेचन किया है।

व्याख्या—निर्गुण पंथ एक ऐसा सामान्य भक्ति मार्ग था जिसमें एकेश्वरवाद का कोई स्वरूप नहीं था, क्योंकि वे निर्गुण, निराकार ब्रह्म के प्रति ही विश्वास करते थे तथा उसे ही सर्वशक्तिमान मानकर पूज्य मानते थे, तथापि निर्गुण, निराकार ब्रह्म का कोई स्वरूप निश्चित नहीं था। निर्गुण पंथियों ने इसी स्वरूप की अनिश्चितता के कारण उस निराकार ब्रह्म से अपनी आत्मा से अनेक प्रकार के सम्बन्ध स्थापित किए। यदि उस एक निराकार ब्रह्म का एक निश्चित स्वरूप होता तो उससे ये निर्गुण पंथी संत एक ही प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करके उसके रूप को निश्चित कर देते।

निर्गुण पंथ में निराकार ब्रह्म के स्वरूप की अनिश्चित्तता के और भी कारण थे। वह कभी भारतीय वेदान्त की अद्वैतवादी विचारधारा के अनुसार ब्रह्मवाद का पर्याय बन जाता था और निर्गुण पंथी कवि 'एकोऽहं द्वितीयोनास्ति' तथा 'सोऽहं, अहं सर्वमय' का राग अलापते थे तो कभी वे अपने इस ब्रह्म को मुसलमानों के यहाँ स्वीकृत पैगम्बरी खुदावाद की तरफ ले जाते थे। इस प्रकार निर्गुण पंथ में एक निराकार ब्रह्म को तो स्वीकार किया गया परन्तु उसके कभी ब्रह्मवाद और कभी पैगम्बरी खुदावाद की ओर रुझान से उसमें ब्रह्म का कोई स्वरूप निश्चित नहीं हो पाया था। निश्चित अगर कुछ हुआ तो इतना ही कि ब्रह्म एक है और वह निराकार है। इस प्रकार ब्रह्म के इस अनिश्चित स्वरूप अथवा मिले-जुले स्वरूप को लेकर ही जो पंथ प्रसिद्ध हुआ वही 'निर्गुण पंथ' के नाम से भक्तिकाल में भारत में प्रसिद्ध हुआ था।

इस निर्गुण पंथ की ओर जनता को आकर्षित करने व उसे लोकप्रिय बनाने में कुछ प्रवृत्तियों ने योगदान दिया। अप्रवृत्तियों में पहली प्रवृत्ति तो यह नजर आती है कि उसमें मनुष्य मात्र की समानता को स्वीकार किया गया था और ऊँच-नीच तथा जाति-पाँति के बंधनों को छोड़कर सब मनुष्यों को समान रूप से ईश्वर की भक्ति करने का अधिकार था। यह तथ्य परस्पर लड़ते हुए हिन्दू-मुसलमानों के द्वेष तथा इनमें विद्यमान ऊँच-नीच की भावना की कलुषता को समाप्त करने वाला था और उन्हें तत्कालीन परिस्थितियों में सुख व शांति प्रदान करने वाला था। इसी कारण यह निर्गुण पंथ भारतीय जनता को प्रिय होकर शीघ्र ही प्रसारित होकर प्रसिद्ध हो गया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष—निर्गुण पंथ में ब्रह्म के अनिश्चित स्वरूप तथा उसके प्रसिद्ध होने के कारण का विवेचन निर्गुण पंथ में स्वीकृत सामाजिक, धार्मिक व दार्शनिक विचारधारा के आधार पर बड़ा सुन्दर व प्रवाहपूर्ण शैली में किया गया है। जो तत्कालीन परिस्थिति सापेक्ष भी है, भाषा की सरलता व उसमें प्रयुक्त उर्दू के शब्द 'पैगम्बरी खुदावाद' दर्शनीय हैं। 'जाति पाँति पूछै नहीं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।' यह सूक्ति ही इस गद्यांश का सार व्यक्त करती है।

(6)

''सगुणोपासक भक्त भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप मानता है। पर भक्ति के लिए सगुण रूप ही स्वीकार करता है निर्गुण रूप ज्ञान मार्गियों के लिए छोड़ देता है। सब सगुणधर्मी भक्त भगवान के व्यक्त रूप के साथ-साथ उनके अव्यक्त और निर्विशेष रूप का निर्देश करते आए हैं, जो बोधगम्य नहीं। वे अव्यक्त की ओर संकेत भर करते हैं, उसके विवरण में प्रवृत्त नहीं होते।''

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित निबन्ध 'लोक जागरण और भक्ति काव्य' से उद्धृत है।

इसमें भगवान के दो रूपों अर्थात् सगुण व निर्गुण की चर्चा करते हुए सगुणोपासक भक्तों की उपासना पद्धति पर प्रकाश डाला गया है और स्पष्ट किया है कि उन्होंने भगवान में इन दोनों रूपों को स्वीकार करते हुए व्यक्त व सगुण भगवान का ही विवरण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—भक्ति काव्य में निर्गुणोपासक संतों ने भगवान के केवल निर्गुण रूप का ही विवरण प्रस्तुत कर सगुण का खण्डन किया है। परन्तु सगुणोपासक भक्तों ने तत्त्वत: भगवान के दोनों रूपों अर्थात् सगुण व निर्गुण दोनों को स्वीकार किया है। उन्होंने निर्गुण, निराकार भगवान का विवरण निर्गुणोपासक ज्ञान मार्गियों के लिए छोड़ दिया था, जिसका विस्तृत विवरण कबीर, दादू, नानक आदि संतों ने विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया और स्वयं ने भक्ति के लिए सगुण रूप को ही स्वीकार किया। इस प्रकार सगुणोपासक भक्त कवियों ने ईश्वर के सगुण रूप या साकार रूप को अपनी भक्ति का विषय बनाया और अनेक अवसरों की कल्पना कर राम व कृष्ण को अपना इष्टदेव स्वीकार किया, जिन्होंने इस पृथ्वी का भार उतारने या कष्टों को दूर करने के लिए अवतार लिया और रावण व कंस जैसे आततायी व अत्याचारियों का नाश कर धर्म की स्थापना की। अवतार की इस व्यक्त लीला का ही विवरण 'सगुणोपासक भक्तों ने प्रस्तुत किया है'। परन्तु इसके साथ ही उन्होंने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर भगवान के निर्गुण रूप का अस्तित्व स्वीकार करते हुए उसका निर्देश भी किया है। निर्गुण क्योंकि बोधगम्य नहीं, वह मन, वचन आदि से शीघ्र प्राप्त नहीं किया जा सकता और सब प्रकार से अगोचर है अत: सामान्य जनता द्वारा सहज ग्राह्य नहीं है। इसी कारण जनता द्वारा सहज ग्राह्य व उसके सम्मुख अपने चरित्र व कार्य व्यापारों से कुछ सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक आदर्श प्रस्तुत करने वाले भक्त भगवान की लीलाओं का ही सगुणोपासक कवियों ने चित्रण किया है।

सगुणोपासक भक्तों ने राम में शक्ति, शील व सौन्दर्य का समन्वय कर समाज के सम्मुख अनेक आदर्श प्रस्तुत किये, जो अनुकरणनीय होने के साथ ही साथ उस समय की निराश जनता के मन में आशा व उत्साह का संचार करने में समर्थ था। तुलसी दास ऐसे ही सगुणोपासक भक्त थे जिन्होंने भगवान के निर्गुण रूप को स्वीकार करते हुए भी जनहिताय सगुण स्वरूप व उसकी लीलाओं को ही अपने काव्य का विषय बनाया और रामचरितमानस, गीतावली, दोहावली, कवितावली, विनयपत्रिका जैसे सगुणभक्ति के श्रेष्ठ काव्यों की रचना की। वे वास्तव में यह मानते थे कि निराकार या निर्गुण भगवान ही धर्म की रक्षा के लिए व अभिमानी राक्षसों के नाश के लिए अवतार लेते हैं। इस प्रकार उन्होंने अपने काव्य में निर्गुण व सगुण का समन्वय किया परन्तु विस्तृत विवरण सगुण भगवान या अवतार की लीलाओं का ही प्रस्तुत किया जिसके प्रत्यक्ष दर्शन हम कर सकते हैं।

निर्गुण या निराकार भगवान का कोई आकार व रूप नहीं और न कोई वह लीला करके अपने कार्य व्यापारों द्वारा हमारे सम्मुख व्यावहारिक आदर्श प्रस्तुत कर सकता है। इसलिए सगुणोपासक भक्त कवियों ने उसे व्यावहारिक व समाज की आवश्यकता की पूर्ति के अनुरूप न समझ कर उसका विवरण देने का कार्य निर्गुणोपासक ज्ञानमार्गी संतों के लिए छोड़ दिया था।

विशेष—सगुणोपासक भक्त कवियों के समन्वयवाद और निर्गुणोपासक संतों के निराकार, अव्यक्त भगवान के विवरण को स्पष्ट किया गया है और सगुणोपासक की विशिष्टता का अंकन सरल भाषा व प्रवाहपूर्ण शैली में किया गया है।

(7)

''निर्गुण मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानन्दजी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों से संस्कार प्राप्त किये। वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिए। इसी से उनके तथा 'निर्गुणवाद' और दूसरे संतों के बचनों में कहीं, भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है, कहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

योगियों के नाड़ी चक्र की, कहीं सूफियों के प्रेमत्त्व की, कहीं पैगम्बीर कट्टर खुदावाद की और कहीं अहिंसावाद की। अत: तात्त्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी। दोनों का मिलाजुला रूप इनकी बानी में मिलता है।''

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश श्री रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित 'लोक जागरण और भक्ति काव्य' शीर्षक निबन्ध से अवतरित है। इसमें उन्होंने भक्ति धारा के निर्गुण पंथी काव्य का तात्त्विक विवेचन करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि ज्ञानाश्रयी निर्गुणपंथी काव्य में भारतीय अद्वैतवाद और एकेश्वरवाद का मिला-जुला रूप उपलब्ध होता है।

व्याख्या—''निर्गुणपंथ' के लिए मार्ग निकालने वाले नाथपंथ के योगी और भक्त नामदेव थे। इन्हीं से प्रभावित होकर निर्गुण पंथ भारत भर में प्रवर्तित हुआ। परन्तु इस निर्गुण पंथ के निश्चित प्रवर्तक हिन्दी काव्यधारा में संत कबीरदास थे। वे स्वामी रामानन्दजी के शिष्य थे अर्थात् उन्होंने 'राम' नाम स्वामी रामानन्द के गुरु उपदेश या शब्द के रूप में ग्रहण किया और उसी राम को निर्गुण ब्रह्म के पर्याय अर्थ में प्रयोग किया। कबीर के राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र लीलावतार श्री राम नहीं थे वरन् वे निर्गुण ब्रह्म थे। इस राम नाम के साथ ही कबीर ने भारतीय अद्वैतवाद की कतिपय मोटी-मोटी बातें ग्रहण कीं और उसके साथ ही योगियों अर्थात् नाथपंथी योगियों और सूफी फकीरों से भी उनके संस्कार प्रभावित हुए। इस प्रकार कबीर पर भारतीय अद्वैतवाद, नाथपंथी योगियों और सूफी फकीरों का प्रभाव पड़ा और इसी प्रभाव से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी बात का स्फुरण भी किया।

कबीरदास ने वैष्णव भक्तों की भक्ति से अहिंसा अर्थात् जीव दया व करूणा का सिद्धान्त ग्रहण किया और जीव हिंसा को उन्होंने कुकृत्य या पाप बताकर उसका विरोध किया। ईश्वर के प्रति अनन्यभक्ति का सिद्धान्त उन्होंने इन्हीं वैष्णवों के प्रपत्तिवाद से ग्रहण किया। इस प्रकार कबीर ने वैष्णवों से अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद को ग्रहण कर जीव-हिंसा का विरोध कर मांस भक्षण का खण्डन किया और ईश्वर की एक अनन्य भक्ति पर बल दिया।

इस प्रकार सन्त कबीरदास से निश्चित रूप में प्रवर्त्तन को प्राप्त कर यह निर्गुणपंथी काव्यधारा चल पड़ी और बाद में नानक, दादू, मलूक रज्जब आदि संतों ने इसमें योगदान दिया और यह निर्गुणपंथ समस्त भारत में प्रचलित हो गया। परन्तु कबीर की बानी, निर्गुणवाद और दूसरे संत कवियों के वचनों में अर्थात् सम्पूर्ण निर्गुणपंथी काव्य में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक अर्थात् 'एकोऽहं द्वितीयोनास्ति' का निरूपण है तो कहीं योगियों अर्थात् नाथ पंथी वे हठयोगियों की इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, कुण्डलिनी, सहस्त्रदल कमल आदि नाड़ी चक्र का वर्णन है तो कहीं सूफी फकीरों के प्रभाव से प्रेम की पीर की झलक मिलती है और कहीं पैगम्बरी कट्टर खुदावाद के सिद्धान्तों का अनुसरण नजर आता है तथा कहीं वैष्णवों की अहिंसावाद की छाप दिखाई देती है।

इस प्रकार यदि सम्पूर्ण निर्गुणपंथी काव्य तात्त्विक दृष्टि से अनुशीलन किया जावे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उसकी यही तात्त्विक विशेषता है कि उसमें उस समय भारत में प्रचलित लगभग सभी भक्ति पद्धतियों और विशेषत: निर्गुणभक्ति पद्धतियों से कुछ-न-कुछ मोटे रूप में ग्रहण कर अपने निर्गुण पंथ का ढाँचा तैयार किया गया था।

मूल रूप में 'निर्गुणपंथी' काव्य में भारतीय अद्वैतवाद तथा एकेश्वरवाद का मिलाजुला रूप नजर आता है। अत: तात्त्विक दृष्टि से उसे न तो शुद्ध अद्वैतवादी काव्य ही कहा जा सकता है और न शुद्ध एकेश्वरवादी ही। अद्वैत से उन्होंने माया को आत्मा परमात्मा के मिलन में बाधा रूप में लिया और एकेश्वरवाद के 'अनलहक' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। अत: तात्त्विक दृष्टि से निर्गुणपंथी काव्य में भारतीय अद्वैतवाद और एकेश्वरवाद का मिला-जुला रूप ही प्रमुख है जो तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव था।

विशेष—''निर्गुणपंथी' साहित्य की तात्त्विक विवेचना बड़े सरल शब्दों में प्रस्तुत की गई है। शैली प्रभावपूर्ण व विषय प्रतिपादन व स्पष्टीकरण में समर्थ है।

(४)

''ज्ञानाश्रयी शाखा भारतीय ब्रह्मज्ञान और योग साधना को लेकर तथा उसमें सूफियों के प्रेमतत्त्व को मिलाकर उपासना क्षेत्र में अग्रसर हुई और सगुण के खण्डन में उसी जोश के साथ तत्पर रही जिस जोश के साथ पैगम्बरी मत बहुदेवोपासना और मूर्ति पूजा के खण्डन में रहते हैं। इस शाखा की रचनायें-साहित्यिक नहीं हैं फुटकर दोहों या पदों में रूप में हैं। जिनकी भाषा और शैली अधिकतर अव्यवस्थित और ऊटपटाँग है।''

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यावतरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध 'लोकजागरण और भक्तिकाव्य' से उद्धृत है। इसमें उन्होंने साहित्यिक दृष्टि से निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के काव्य के स्वरूप पर विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है कि ज्ञानाश्रयी काव्य साहित्यिक नहीं है क्योंकि उसकी भाषा और शैली अधिकांशत: अव्यवस्थित और ऊटपटाँग है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्याख्या—हिन्दी के भक्ति काव्य की निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा भारतीय ब्रह्मवाद अर्थात् 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' तथा 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' के सिद्धान्तों को लेकर तथा योग साधना अर्थात् नाथपंथी हठयोगी साधकों के नाड़ी चक्र की साधना तथा उनमें सूफियों की प्रेम की पीर को लेकर उपासना व भक्ति के क्षेत्र में अग्रसर हुई। इस शाखा के प्रवर्तक कबीरदास थे और उन्होंने सगुण व साकार ईश्वर का खण्डन करने में वे उसी जोश के साथ पैगम्बरी खुदावाद के कट्टर समर्थक बहुदेववाद व मूर्ति पूजा के खण्डन करने में तत्पर रहते हैं अर्थात् इस शाखा के संत कवियों ने भी बहुदेववाद और मूर्तिपूजा को आडम्बरपूर्ण व समाज में भेद डालने वाला मानकर इसका खण्डन पूरे जोश के साथ किया। ''पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार। ताते ये चाकी भली, पीस खाय संसार।'' आदि सगुण विरोधी रचनाओं की और ईश्वर को एक तथा निराकार मान कर अवतारवाद व बहुदेववाद का खण्डन किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ज्ञानाश्रयी शाखा की रचनाओं का साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं कि इस शाखा की रचनायें शुद्ध साहित्यिक की श्रेणी में नहीं रखी जा सकती हैं। इसमें फुटकर दोहों व पदों की ही रचनायें हुईं और काव्य रूप की दृष्टि से वह मुक्तक की श्रेणी में ही रखा जा सकता है। परन्तु इन दोहों व पदों में रचित ज्ञानाश्रयी शाखा की रचनाओं में भाषा का कोई निश्चित रूप नहीं था और उसमें अनेक भाषाओं के शब्द-प्रयोग व मनमानी तोड़-फोड़ से वह अव्यवस्थित रही। इस शाखा की शैली में भी किसी निश्चित व व्यवस्थित रूप के दर्शन नहीं होते हैं और वह ऊटपटाँग ही रही। उलट बासियाँ तो इतनी कूट व कठिन हो गई कि उनको समझना भी कठिन परिश्रम साध्य व्यापार बन गया था। इसीलिए इस शाखा की रचनाओं का शिक्षित जगत में उतना प्रचार हो नहीं पाया जितना प्रचार उसका अशिक्षित जनता में हुआ, जो जोश की लहर में बिना सोचे समझे शीघ्र ही बह जाती है।

इस प्रकार भारतीय ब्रह्मवाद, योग साधना व सूफियों के प्रेम तत्त्व को आधार बनाकर ज्ञानाश्रयी शाखा के निर्गुण, निराकार ईश्वर के उपासक संत कवियों ने बहुदेववाद व मूर्तिपूजा का जबरदस्त खण्डन किया और ईश्वर के सगुण रूप का विरोध किया। परन्तु ये रचनायें साहित्यिक नहीं हैं। हाँ, इनमें जोश होने से इनका अशिक्षित जनता में बहुत प्रचार अवश्य हुआ। इसी कारण इन्हें 'धर्म सुधारक' भी कहा जाता है।

विशेष—ज्ञानाश्रयी शाखा की रचनाओं की विशेषता व उसके साहित्यिक रूप का विवेचन बड़े सरल शब्दों में कर दिया गया है और उसकी भाषा व शैली के अव्यवस्थित तथा ऊटपटाँग स्वरूप की ओर संकेत किया गया है। विषय को नई दिशा की ओर सहज ही मोड़ देने वाली व्यवस्थित शैली के दर्शन होते हैं। जिसमें प्रघटक के अंत में एक नई बात कहकर उसकी आगे विवेचना करने से विचार सूत्र की एकता बनी रहती है।

(९)

''दूसरी शाखा शुद्ध प्रेममार्गी सूफी कवियों की है जिनकी प्रेमगाथायें वास्तव में साहित्य कोटि के भीतर आती हैं। इन शाखाओं के सब कवियों ने कल्पित कहानियों के द्वारा प्रेम मार्ग का महत्त्व दिखाया है। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम तत्त्व का अभास दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलाने वाला है। इन प्रेम कहानियों का विषय तो वही साधारण होता है, पर 'प्रेम की पीर' की जो व्यंजना होती है, वह ऐसे विश्व व्यापक रूप में होती है, कि वह प्रेम इस लोक से परे दिखाई पड़ता है।''

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित ''लोक जागरण और भक्ति काव्य'' शीर्षक से उद्धृत है। इसमें निर्गुण प्रेम मार्गी या प्रेमाश्रयी शाखा की रचनाओं की प्रमुख विशेषता 'प्रेम की पीर' की विवेचना की गई है और यह स्पष्ट किया गया है कि उन्होंने लौकिक प्रेम में ही अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है और वह भी इस स्तर पर कि वह प्रेम लोक से परे दिखाई पड़ता है।

व्याख्या—भक्ति काव्य में निर्गुण, निराकार ईश्वर की उपासक दो शाखायें थीं। पहली ज्ञानाश्रयी शाखा और दूसरी प्रेमाश्रयी शाखा। प्रेमाश्रयी शाखा के समस्त कवि प्रेम मार्ग द्वारा ईश्वर प्राप्ति बतलाते थे और वे इस मार्ग को ही सर्वश्रेष्ठ भी कहते थे। उन्होंने जिस साहित्य की रचना की वह प्रेम-गाथाओं के नाम से प्रसिद्ध है और ये समस्त प्रेम गाथाएँ साहित्य की श्रेणी में रखी जा सकती हैं अर्थात् वे प्रेम-गाथाएँ साहित्यिक रचनाएँ हैं। इन समस्त प्रेमगाथाओं की रचना करने वाले कवि सूफी संत थे। उन्होंने भारत में प्रचलित, ऐतिहासिक व कल्पित कहानियों को अपना विषय बनाकर उनके माध्यम से प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। ये कहानियाँ अधिकांशतः कल्पित अर्थात् परम्परा द्वारा लोक में प्रचलित थीं और जिन ऐतिहासिक कहानियों या तथ्यों को उन्होंने ग्रहण किया उसमें भी कल्पना को बहुत अधिक स्थान दिया जिससे उनको भी कल्पित की ही श्रेणी में रखा जा सकता है।

इस प्रकार सूफी कवियों ने कल्पित कहानियों के माध्यम से प्रेम के महत्त्व को खूब बढ़ाया-चढ़ाया। वास्तव में इन कवियों ने लौकिक कथाओं द्वारा लौकिक प्रेम अर्थात् नायक-नायिका के प्रेम के चित्रण द्वारा उस प्रेमतत्त्व अर्थात् अलौकिक प्रेम या ईश्वरीय प्रेम का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आभास दिया जो ईश्वर से मिलाने वाला है। इन्होंने लौकिक प्रेम द्वारा 'इश्क हकीकी' का आभास अपनी रचनाओं में दिया और प्रेम को ईश्वर से मिलने का मार्ग बताकर उसके महत्त्व को प्रदर्शित किया।

सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेम-गाथाओं की कहानियों का विषय तो साधारण ही था परन्तु उसमें जिस 'प्रेम की पीर' अर्थात् ईश्वर के वियोग में आत्मा की विरह वेदना की अनेक स्थितियों व भावदशाओं का जो चित्रण या अभिव्यक्ति हुई है, वह ऐसे विश्व-व्यापक रूप में हुई है कि वह प्रेम इस लोक से परे दिखाई पड़ता है। उन्होंने परमात्मा के वियोग में आत्मा की विरह-व्याकुल स्थिति में केवल आत्मा को ही व्याकुल नहीं बतलाया वरन् सम्पूर्ण जड़-चेतन सृष्टि पर उसका प्रभाव व्यंजित किया है। आत्मा के वियोग का प्रभाव पशु-पक्षियों, वनस्पतियों और नदियों-तालाबों आदि समस्त चराचर पर पड़ता है। वियोग का ऐसा व्यापक प्रभाव संस्कृत या अन्य भाषाओं के कवियों द्वारा चित्रित उद्दीपक वर्णन या प्रकृति के उद्दीपन रूप में चित्रण से सर्वथा भिन्न व उससे बढ़कर है। भला, यह कैसे सम्भव हो सकता है कि व्यक्ति जब अपने किसी प्रिय के वियोग में व्यथित हो और उसका हृदय विरह की अग्नि में जल रहा हो तो उसके धुएँ में कौवे काले हो जावें, सरोवरों के हृदय फट कर उसमें दरारें पड़ जावें, गेहूँ का हृदय दो टुकड़े हो जावे। इस प्रकार का वियोग का जो ऊहात्मक व अतिशयोक्तिपूर्ण वियोग चित्रण जो इन सूफी कवियों ने अपनी प्रेम-गाथाओं में किया वह लोक में या लौकिक प्रेम में सम्भव नहीं हो सकता है अत: यह प्रेम लोक से परे दिखाई पड़ता है।

अलौकिक या ईश्वरीय प्रेम के क्षेत्र में तो ऐसे असम्भव रूपों की सम्भवत: कल्पना भी या अनुमान भी किया जा सकता है परन्तु लौकिक प्रेम में यह कदापि सम्भव नहीं है। अत: सूफियों द्वारा प्रतिपादित प्रेम यद्यपि विश्वव्यापक रूप में चित्रित हुआ है तो वह लोक से परे दिखाई देता है। उसमें तो 'प्रेम की पीर' की ही प्रधानता है जिस पीर में व्यक्ति अपने अस्तित्व तक का विस्मरण कर बैठता है और उसकी स्थिति इश्क के दीवानों की सी हो जाती है।

विशेष–प्रेमाश्रयी शाखा की विशेषताओं का उद्घाटन किया गया है। 'प्रेम की पीर' व उसके लौकिक तथा अलौकिक स्वरूप के साथ ही उसके विश्वव्यापी रूप की ओर संकेत किया गया है। इस धारा के प्रेम की विशिष्टता यह है कि उसमें आत्मा को पति व परमात्मा को पत्नी माना गया है। जो सूफी विचारधारा के अनुकूल है।

(10)

''सूफियों के प्रेम प्रबन्धों में खण्डन की बुद्धि को किनारे रखकर, मनुष्य के हृदय को स्पर्श करने का ही प्रयत्न किया गया है, जिससे इनका प्रभाव हिन्दुओं और मुसलमानों पर समान रूप से पड़ता है। बीच-बीच में रहस्यमय परोक्ष की ओर जो मधुर संकेत मिलते हैं वे बड़े हृदय ग्राही होते हैं। कबीर में जो रहस्यवाद मिलता है वह बहुत कुछ उन पारिभाषिक संज्ञाओं के आधार पर है जो वेदांत और हठयोग में निर्दिष्ट हैं। पर इन प्रबन्धकारों ने जिस रहस्यवाद का आभास बीच-बीच में दिया है उसके संकेत स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी हैं।''

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित 'लोक-जागरण और भक्ति काव्य' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत है। इसमें निर्गुण, निराकार की उपासक ज्ञानाश्रयी व प्रेमाश्रयी शाखा के काव्य का अन्तर स्पष्ट किया गया है और उन दोनों शाखाओं द्वारा प्रतिपादित रहस्यवाद के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या–निराकार ईश्वर के उपासक ज्ञानाश्रयी व प्रेमाश्रयी शाखाओं के सन्त व सूफी कवि थे। ज्ञानाश्रयी संतों ने सगुण ईश्वर, मूर्ति-पूजा, बहुदेववाद व अवतारवाद का जबरदस्त रूप में खण्डन किया है और एक निराकार ईश्वर की उपासना पर बल दिया है। परन्तु सूफी कवियों द्वारा प्राणी प्रेम-गाथाओं में यह खण्डन की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती है। उन्होंने ज्ञानाश्रयी शाखा की इस खण्डनात्मक पद्धति को छोड़कर शुद्ध ईश्वरीय प्रेम के माध्यम से मनुष्य के अन्तरतम का स्पर्श करके उसके हृदय पर प्रेम तत्त्व का प्रभाव ढालने का प्रयास किया है। इस प्रेम के स्पर्श व चित्रण से सूफी प्रेम गाथा में अथवा प्रेमाश्रयी प्रेम प्रबंध हिन्दुओं व मुसलमानों दोनों पर ही समान रूप से प्रभाव डालने वाले सिद्ध हो सके। क्योंकि यदि सूफी कवि भी सद्गुण ईश्वर का खण्डन करते तो उन्हें प्रभाव की दृष्टि से इतनी सफलता नहीं मिलती। बात का चमत्कार एक बात है और बात का हृदय पर प्रभाव दूसरी बात है। चमत्कारी बात थोड़े समय के लिए मस्तिष्क को प्रभावित करती है परन्तु मधुर व समन्वयपूर्ण बात हृदय को प्रभावित कर अपना स्थायी प्रभाव डालने में समर्थ होती है। इस दृष्टि से सूफी कवियों को ज्ञानाश्रयी शाखा के संत कवियों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है।

प्रेम प्रबंधों की कथाओं में अर्थात् लौकिक कथाओं में बीच-बीच में अलौकिक व आध्यात्मिक प्रेम के जो मधुर संकेत मिलते हैं। उनकी व्यंजना प्रेम के उस आध्यात्मिक स्वरूप का आभास देती है जिससे जगत के समस्त व्यापार उस ईश्वर की छाया प्रतीत होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ये संकेत बड़े हृदयग्राही तो हैं ही इन प्रबंधों की सफलता के रहस्य भी हैं। क्योंकि विद्वानों की दृष्टि में इनका एक पक्ष लौकिक है तो दूसरा अलौकिक और इसी प्रकार इनमें चित्रित प्रेम लौकिक भी है और अलौकिक भी। संयोग, वियोग, प्रकृति-वर्णन, रूप-सौन्दर्य वर्णन आदि लगभग सभी प्रसंगों में रहस्यमय परोक्ष की ओर संकेत देकर लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना करना ही इनका उद्देश्य प्रतीत होता है। उन्हें तीन लोक और चौदह भुवनों में प्रेम के अतिरिक्त और कोई वस्तु लावण्यमयी नजर नहीं आती है। लौकिक कथा में उस परोक्ष रहस्य के संकेत का एक उदाहरण—

''कँवल जो विगसा, मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिरि पलु है, जो पिय सींचें आइ॥''

यहाँ कमल का प्रसंग अप्रस्तुत है और विरहिणी की दशा प्रस्तुत है। सृष्टि के नाना पदार्थ रूप, रस-गंध आदि का जो विकास करते दिखाये गये हैं वे मानो इस अनन्त सौन्दर्य के समागम की अभिलाषा से उसके पास जाने की कामना करते हैं। पद्मावती को ब्रह्म का प्रतीक व रतनसेन को आत्मा का प्रतीक बनाकर जायसी ने जहाँ-जहाँ उसके रूप सौन्दर्य की चर्चा की है वहाँ उसके पार्थिव और लौकिक रूप में रहस्यमयी परोक्ष सत्ता के लौकिक संकेत दिये हैं जिससे लौकिकता में अलौकिकता, भौतिक कांति में अभौतिकता सांसारिक आभा में असांसारिकता, साधारण छवि में असाधारण तथा ऐहिक छवि में दिव्यता का समावेश होने से ये संकेत बड़े हृदय ग्राही बन गये हैं। ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि कबीर में जो रहस्यवाद मिलता है वह बहुत कुछ उन पारिभाषिक संज्ञाओं के आधार पर है जो वेदांत और हठ योग में निर्दिष्ट हैं। अतः उनका रहस्यवाद साधनात्मक रहस्यवाद कहलाता है। यद्यपि प्रेमाश्रयी शाखा के सूफी कवियों ने भी योगियों, रसयनियों और तान्त्रिकों की बहुत-सी बातों को अपनी कहानियों में स्थान दिया है तो भी इन परोक्ष हास्यपूर्ण संकेतों की प्रधानता से उनका रहस्यवाद भावात्मक ही बना रहा है। इसका कारण है कि ये संकेत स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी हैं और सीधे हृदय पर प्रभाव डालते हैं और पढ़ते समय पाठक को यह ध्यान नहीं रहता है कि यह सूफी विचारधारा या सिद्धान्त जिसमें आत्मा को पति व परमात्मा को पत्नी स्वीकार किया जाता है, भारतीय चिन्तन धारा के अनुकूल नहीं है। लौकिक कथाओं में परोक्ष रहस्यमय सत्ता की व्यापकता व शुद्ध प्रेम के महत्त्व के व्यंजक ये संकेत हृदय का सीधा स्पर्श करते हैं। इसी कारण हिन्दुओं व मुसलमानों दोनों पर ही इनका समान रूप से प्रभाव पड़ता है।

16.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित निबन्ध 'लोक जागरण और भक्ति काव्य' के आधार पर लोक जागरण में निर्गुणपंथी सन्तों कबीर व नामदेव का योगदान स्पष्ट कीजिए।

उत्तर— निर्गुणपंथी सन्तों ने अपने भक्ति काव्य के माध्यम से लोक जागरण में अमूल्य योगदान दिया है। इन निर्गुणपंथी सन्तों ने लोक जागरण करने हेतु अपना तन, मन, धन सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। उत्तरी भारत में कबीर ने अपने भक्तिकाव्य से और दक्षिण भारत में नामदेव ने सगुण भक्तिकाव्य से लोक जागरण किया। इसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

नाथपंथी, नामदेव व कबीर द्वारा लोक जागरण— ''भक्ति के आन्दोलन की जो लहर दक्षिण से आई उसी ने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की भावना कुछ लोगों में जगाई। हृदय पक्ष शून्य सामान्य अन्तस्साधना का मार्ग निकालने का प्रयत्न नाथ पंथी कर चुके थे पर रागात्मक तत्त्व से रहित साधना से ही मनुष्य की आत्मा तृप्त नहीं हो सकती। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध भक्त नामदेव ने हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए सामान्य भक्ति मार्ग का भी आभास दिया। उसके पीछे कबीरदास ने विशेष तत्परता के साथ एक व्यवस्थित रूप में यह मार्ग निर्गुणपंथी के नाम से चलाया। कबीर ने यद्यपि नाथपंथ की बहुत-सी बातों को अपनी बानी में जगह दी, पर प्रेम तत्त्व का अभाव उन्हें खटकता रहा। इसका संकेत उनके यह वचन देते हैं—

बहुँत दिवस ते हिंडिया सुन्नि समाधि लगाई।
करहा पडिया गाड़ में दूरि परा पछिताई।''

समन्यवादी कबीर— ''कबीर ने जिस प्रकार एक निराकारी ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा उसी प्रकार उस निराकार ईश्वर की भक्ति के लिए सूफियों का प्रेमतत्त्व लिया और अपना 'निर्गुण पंथ' बड़ी धूमधाम से निकाला। भारतीय भक्तिमार्ग साकार और सगुण रूप को लेकर चला था, निर्गुण और निराकार ब्रह्म भक्ति या प्रेम का विषय नहीं माना जाता। कबीर ने ठीक समय पर जनता के उस बड़े समुदाय को संभाला जो नाथ पंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्ति रस के शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। इसके साथ ही

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कबीर ने मनुष्यतत्त्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया। उनका 'निर्गुण पंथ' चल निकला, जिसमें नानक, दादू, मलूकदास आदि अनेक संत हुए। कबीर तथा अन्य निर्गुण पंथी संतों के द्वारा अन्तस्साधना में रागात्मिका 'भक्ति', 'ज्ञान' का योग तो हुआ पर कर्म की दशा वही रही जो नाथ पंथियों के यहाँ थी। इन सन्तों के ईश्वर ज्ञानस्वरूप और प्रेम स्वरूप ही रहे, धर्म स्वरूप न हो पाए।''

भक्ति साधना की स्थिति– ''ईश्वर के धर्मस्वरूप को लेकर उस स्वरूप को लेकर, जिसकी रमणीय अभिव्यक्ति लोक की रक्षा और रंजन में होती है, प्राचीन वैष्णव भक्ति मार्ग की राम भक्ति शाखा उठी। कृष्ण भक्ति शाखा केवल प्रेम स्वरूप ही लेकर नई उमंग से फैली। साधना के जो तीन अवयव कर्म, ज्ञान और भक्ति बतलाये गये हैं वे सब समय पाकर दोषग्रस्त हो सकते हैं। कर्म, अर्थ शून्य विधि विधानों से निकम्मा हो सकता है। 'ज्ञान' रहस्य और गुह्य भावना से पाखण्ड पूर्ण हो सकता है और 'भक्ति' इन्द्रियोग भोग की वासना से कलुषित हो सकती है। भक्ति की निष्पत्ति श्रद्धा और प्रेम के योग से होती है। जहाँ श्रद्धा या पूज्य बुद्धि का अवयव जिसका लगाव धर्म से होता है छोड़कर केवल प्रेम लक्षणा भक्ति ली जायगी वहाँ वह अवश्य विलासिता से ग्रस्त हो जायेगी।''

निर्गुण पंथ की विशेषताएँ– ''कबीर का 'ज्ञानपक्ष' तो रहस्य और गुह्य की भावना से विकृत मिलेगा पर सूफियों से जो प्रेमतत्त्व उन्होंने लिया वह सूफियों के यहाँ चाहे कामवासनाग्रस्त हुआ हो, पर 'निर्गुण पंथ' अविकृत रहा। यह निःसंदेह प्रशंसा की बात है। यह सामान्य भक्तिमार्ग एकेश्वरवाद का एक अनिश्चित स्वरूप लेकर खड़ा हुआ। जो कभी ब्रह्मवाद की ओर ढलता था और कभी पैगम्बरी खुदावाद की ओर। यह निर्गुण पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी ओर से ले जाने वाली सबसे पहली प्रवृत्ति जो लक्षित हुई वह ऊँच-नीच और जाति-पाँति के भाव का त्याग और ईश्वर की भक्ति के लिए मनुष्य मात्र के समान अधिकार का स्वीकार था।''

नामदेव की भक्ति– ''दक्षिण भारत के महाराष्ट्र प्रदेश में नामदेव का जन्म शक संवत् 1192 और मृत्यु शक संवत् 1272 प्रसिद्ध है। ये दक्षिण के नरूसी, बमनी, सतारा जिला के दरजी थे। पीछे पंढरपुर के बिठोवा (विष्णु) के मन्दिर में भगवद् भजन करते हुए अपने दिन व्यतीत करने लगे। महाराष्ट्र के भक्तों में नामदेव का नाम सबसे पहले आता है। मराठी भाषा के अभंगों के अतिरिक्त इनकी हिन्दी रचनाएँ भी प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। इन हिन्दी रचनाओं में एक विशेष बात यह पाई गई है कि कुछ तो सगुणोपासना से सम्बन्ध रखती हैं और कुछ निर्गुणोपासना से। इसका कारण यह है कि नामदवे के ही समय में प्रसिद्ध ज्ञानयोगी ज्ञानदेव हुए हैं। जिन्होंने अपने को गोरख की शिष्य परम्परा में बताया है। ज्ञानदेव का परलोक वास बहुत थोड़ी अवस्था में ही हुआ। पर नामदेव उनके उपरान्त बहुत दिनों तक जीवित रहे। नामदेव सीधे-सीधे सगुण भक्ति मार्ग पर चले जा रहे हैं। पर पीछे उस नाथ-पंथ के प्रभाव के भीतर भी ये लग गए, जो अन्तर्मुख साधना द्वारा सर्व व्यापक निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार को ही मोक्ष का मार्ग मानता था को लाने वाले थे ज्ञानदेव।''

नामदेव द्वारा शिष्यत्व ग्रहण करना– ''नामदेव किसी गुरु से दीक्षा लेकर अपनी सगुण भक्ति में प्रवृत्त नहीं हुए थे, अपने ही हृदय की स्वाभाविक प्रेरणा से हुए थे। ज्ञानदेव बराबर उन्हें बिना ''गुरु होई न ज्ञान'', समझाते आये थे। संतों के बीच निर्गुण ब्रह्म के सम्बन्ध में जो कुछ कहा सुना जाता है और ईश्वर-प्राप्ति की जो साधना बताई जाती है, वह किसी गुरु की सिखाई होती है। परमात्मा के शुद्ध निर्गुण स्वरूप के ज्ञान के लिए ज्ञानदेव का आग्रह बढ़ता गया। गुरु के अभाव के कारण किसी प्रकार नामदेव में परमात्मा की सर्वव्यापकता का उदास भाव नहीं जम पाया था और भेदभाव बना था, इस पर भी एक कथा है। एक दिन स्वयं बिठोवा (भगवान) एक मुसलमान फकीर का रूप धरकर नामदेव के सामने आए। नामदेव ने उन्हें नहीं पहचाना। तब उनसे कहा गया कि वे तो परब्रह्म भगवान ही हैं। अन्त में नामदेव ने नागनाथ नामक शिव के स्थान पर जाकर बिठोवा खेचर या खेचर नाथ नाग पंथी से दीक्षा ग्रहण की।

''मन मेरी सुई, तन मेरा धागा।
खेचरजी के चरण पर नामा सिंपी लागा॥''
''सुफल जन्म मोको गुरु कीना। दुख बिसार सुख अन्तर दीना॥
ज्ञान दान मोको गुरु दीना। राम नाम बिन जीवन हीना॥''

नामदेव की भक्ति के चमत्कार– ''नामदेव की भक्ति के अनेक चमत्कार भक्तमाल में लिखे हैं, जैसे बिठोवा (भगवान) की मूर्ति का इनके हाथ से दूध पीना, नागनाथ के शिव मन्दिर के द्वार का इसकी ओर घूम जाना इत्यादि। इनके महात्म्य ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि–

''जाति पाँति पूछै नहीं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।''

नामदेव ने शबरी, केवट आदि की सुगति तथा भगवान् की अवतार लीला का कीर्तन बड़े प्रेमभाव से किया है जो इनके सगुणोपासक होने को सिद्ध करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"अंबरीष को दिये अभय पद, राजविभीषन अधिक कर्यो।
नवनिधि ठाकुर दई सुदामहि, ध्रुव जो अटल अजहूँ न टर्यो।
भगत हेत मार्यो हरिनाकुश, नृसिंह रूप ह्वैदेह धर्यो।
नामा कहै भगति बस केशव, अजहूँ बलि के द्वार खरो॥"
"धनि-धनि मेघा रोमावली, धनि धनि कृष्ण ओढ़े काँवली।
धनि-धनि तू माता देवकी, जिहगृह रमैया कँवलापति॥"

यह तो नामदेव की व्यक्तोपासना सम्बन्धी हृदय प्रेरित रचना है।" नामदेव ने गुरु से सीखे हुए ज्ञान की उद्धरणी अर्थात् निर्गुण बानी भी व्यक्त की है जो इस प्रकार है।

"माई न होती, बाप न होते, कर्म न होता काया।
हम नहीं होते तुम नहीं होते, कौन कहाँ ते आया॥"

"हिन्दू पूजे देहरा, मुसलमान मसींद।
नामा सोई सेविया, जँह देहरा न मसींद॥"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नामदेव द्वारा प्रयुक्त भाषा—"नामदेव की रचनाओं में यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि सगुण भक्ति के पदों की भाषा तो ब्रज या परम्परागत काव्य भाषा है, पर 'निर्गुण बानी' की भाषा नाथ पंथियों द्वारा गृहीत खड़ी बोली या सधुक्कड़ी भाषा है। सभी सगुण मार्गी भक्त भगवान के व्यक्त रूप के साथ-साथ उनके अव्यक्त और निविशेष रूप का निर्देश करते आये हैं जो बोधगम्य नहीं। वे अव्यक्त की ओर संकेत भर करते हैं, उनके विवरण में प्रवृत्त नहीं होते। नामदेव के प्रवृत्त होने का कारण यही रहा है कि उन्होंने नाथ पंथी गुरु से ज्ञानोपदेश लिया तब शिष्य धर्मानुसार उसकी उद्धरणी आवश्यक हुई।

निर्गुण पंथ के प्रवर्तक कबीर—"नामदेव की रचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निर्गुण पंथ के लिए मार्ग निकालने वाले नाथ पंथ के योगी और भक्त नामदेव थे। जहाँ तक साहित्य से पता चलता है निर्गुण मार्ग से निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीर दास ही थे। जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानन्द जी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों के संस्कार प्राप्त किए। वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिए। इसी से उनके तथा 'निर्गुणवाद' और दूसरे सन्तों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है, कहीं योगियों के नाड़ी चक्र की, कहीं सूफियों के प्रेम तत्त्व की, कहीं पैगम्बरी कट्टर खुदावाद की और कहीं अहिंसावाद की। अत: तात्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी। इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति से दूर किया जा सके। कबीर बहुदेवोपासना, अवतार और मूर्तिपूजा का खण्डन मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमानों की कुर्बानी नमाज रोजा आदि की असारता दिखाते हुए ब्रह्म, माया, जीव अनहद नाद सृष्टि, प्रलय आदि की चर्चा पूरे हिन्दू ब्रह्म ज्ञानी बनकर करते थे। सारांश यह है कि ईश्वर-पूजा की उन भिन्न-भिन्न ब्रह्म विधियों पर से ध्यान हटाकर, जिनके कारण धर्म में भेदभाव हुआ था, ये शुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्विक जीवन का प्रचार चाहते थे।"

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तर भारत में निर्गुण पंथ के प्रवर्तक कबीर दास हुए जिन्होंने साहित्य में हिन्दू व मुसलमान दोनों की कुरीतियों पर कुठाराघात किया और दोनों जातियों की आपसी भ्रातृत्व का सन्देश दिया। इसी प्रकार दक्षिण में संत नामदवे ने सगुण और निर्गुण पंथों में एकता स्थापना का काम किया। उनका काव्य दोनों रूपों में हमें देखने को मिलता है।

प्रश्न-2. आचार्य शुक्ल के निबन्ध 'लोक जागरण और भक्ति काव्य' के आधार पर बताइये कि निर्गुण धारा की शाखाओं ने किस प्रकार से लोक जागरण किया।

उत्तर—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने निबन्ध 'लोक जागरण और भक्ति काव्य' में केवल निर्गुण पंथी भक्ति का ही वर्णन किया है, सगुण भक्ति का इसमें उल्लेख मात्र है, भारत देश में विक्रम की 15वीं शताब्दी के अन्तिम भाग से लेकर 17वीं शताब्दी के अन्त तक सगुण और निर्गुण भक्ति की दो धाराएँ समानान्तर चल रही थीं। निर्गुण धारा दो शाखाओं में विभक्त हुई—1. ज्ञानाश्रयी शाखा, 2. शुद्ध प्रेममार्गी शाखा (सूफी)।

1. ज्ञानाश्रयी शाखा—"ज्ञानाश्रयी शाखा भारतीय ब्रह्म ज्ञान और योग साधना को लेकर तथा उसमें सूफियों के प्रेमतत्त्व को मिलाकर उपासना क्षेत्र में अग्रसर हुई और सगुण के खण्डन में उसी जोश के साथ तत्पर रही जिस जोश के साथ पैगम्बरी मत बहुदेवोपासना

और मूर्तिपूजा के खण्डन में रहते हैं। इस शाखा की रचनाएँ साहित्यिक नहीं हैं—फुटकल दोहों या पदों के रूप में हैं, जिनकी भाषा और शैली अधिकतर अव्यवस्थित और ऊटपटाँग है। कबीर आदि दो एक प्रतिभा सम्पन्न सन्तों को छोड़ औरों में ज्ञान मार्ग की सुनी-सुनाई बातों का पिष्टपेषण तथा हठयोग की बातों के कुछ रूपक भद्दी तुक बन्दियों में हैं। भक्ति रस में मग्न करने वाली सरसता भी बहुत कम पाई जाती है। इस पंथ का प्रभाव शिष्ट और शिक्षित जनता पर नहीं पड़ा क्योंकि उसके लिए न तो इस पंथ में कोई नई बात थी, न नया आकर्षण। संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता है जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता। पर अशिक्षित और निम्न श्रेणी की जनता पर इन सन्त महात्माओं का बड़ा भारी उपकार है। उच्च विषयों का उच्च आभास देकर, आचरण की शुद्धता पर जोर देकर, आडम्बरों का तिरस्कार करके, आत्म गौरव का भाव उत्पन्न करके, इन्होंने उसे ऊपर उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया। पाश्चात्यों ने इन्हें जो 'धर्म सुधारक' की उपाधि दी है वह इसी बात को ध्यान में रखकर।''

2. प्रेममार्गी शाखा— ''शुद्ध प्रेम मार्गी शाखा सूफी कवियों की है। जिनकी प्रेम गाथाएँ वास्तव में साहित्य कोटि के भीतर आती हैं। इस शाखा के सब कवियों ने कल्पित कहानियों के द्वारा प्रेम-मार्ग क महत्त्व दिखाया है। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस 'प्रेम तत्त्व' का आभास दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलाने वाला है। इन प्रेम कहानियों का विषय तो वही साधारण होता है अर्थात् किसी राजकुमार को किसी राजकुमारी से अलौकिक सौन्दर्य की बात सुनकर उसके प्रेम में पागल होना और घर बार छोड़कर निकल पड़ना तथा अनेक कष्ट और आपत्तियाँ झेलकर अन्त में उस राजकुमारी को प्राप्त करना। पर 'प्रेम की पीर' की जो व्यंजना होती है वह ऐसे विश्व व्यापक रूप में होती है कि वह प्रेम इस लोक से परे दिखाई पड़ता है।''

सूफी साहित्य— ''सूफी कवियों ने जो कहानियाँ ली हैं वे सब हिन्दुओं के घरों में बहुत दिनों से चली आती हुई कहानियाँ हैं जिनमें आवश्यकतानुसार उन्होंने कुछ हेर-फेर किया है। कहानियों का मार्मिक आधार हिन्दू है। मनुष्य के साथ पशु-पक्षी और पेड़-पौधों को भी सहानुभुति सूत्र में बद्ध दिखाकर एक अखण्ड जीवन-समष्टि का आभास देना हिन्दू प्रेम कहानियों की विशेषता है। मनुष्य के घोर दुःख पर वन के वृक्ष भी रोते हैं, पक्षी भी संदेशे पहुँचाते हैं। यह बात इन कहानियों में मिलती है। शिक्षितों और विद्वानों की काव्य परम्परा में यद्यपि अधिकतर आश्रय दाता राजाओं के चरितों और पौराणिक या ऐतिहासिक आख्यानों की ही प्रवृत्ति थी, पर साथ ही कल्पित कहानियों का भी प्रचलन था। दिल्ली के बादशाह सिकन्दर शाह के समय में कवि ईश्वर दास ने 'सत्यवती कथा' नाम की एक कहानी दोहे चौपाइयों में लिखी थी जिसका आरम्भ तो व्यास जनमेय के संवाद से पौराणिक ढंग पर होता है पर जो अधिकतर कल्पित, स्वच्छंद और मार्मिक मार्ग पर चलने वाली है। वनवास के समय पांडवों को मार्कंडेय देव ऋषि मिले, उन्होंने जो कथा सुनाई वह भी निबन्ध में संकलित है। इस पुस्तक में पाँच-पाँच चौपाइयों (अर्धालियों) पर एक दोहा है। इस प्रकार 58 दोहे पर यह समाप्त हो गई है। भाषा अयोध्या के आस-पास की ठेठ अवधि है। यह अवधी भाषा चौपाई दोहे का क्रम और कहानी का रूप-रंग सूफी कवियों ने ग्रहण किया।''

शुद्ध प्रेम-मार्गी सूफी कवियों की शाखा में सबसे प्रसिद्ध कवि जायसी हुए जिनकी 'पद्मावत' हिन्दी काव्य-क्षेत्र में एक अद्भुत देन है। इस सम्प्रदाय के सब कवियों ने पूरबी हिन्दी अर्थात् अवधि का व्यवहार किया है, जिस भाषा में गोस्वामी तुलसीदास ने अपना जगत् विख्यात 'रामचरितमानस' लिखा है।

सूफी शाखा की विशेषताएँ— ''सूफियों के प्रेम प्रबन्धों में खण्डन की बुद्धि को किनारे रखकर, मनुष्य के हृदय को स्पर्श करने का प्रयत्न किया गया है जिससे इनका प्रभाव हिन्दुओं और मुसलमानों पर समान रूप से पड़ता है। बीच-बीच में रहस्यमय परोक्ष की ओर जो मधुर संकेत मिलते हैं वे बड़े हृदय ग्राही होते हैं। कबीर में जो रहस्यवाद मिलता है वह बहुत कुछ उन पारिभाषिक संज्ञाओं के आधार पर है जो वेदान्त और हठयोग में निर्दिष्ट है। पर इन प्रेम प्रबन्धकारों ने जिस रहस्यवाद का अभास बीच-बीच में दिया है उसके संकेत स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी हैं। अपना भावनात्मक रहस्यवाद लेकर सूफी जब भारत में आए, तब यहाँ उन्हें केवल साधनात्मक रहस्यवाद, योगियों, रसायनियों और तान्त्रिकों में मिला। जायसी आदि सूफियों ने हठयोगी और रसायन की कुछ बातों को भी कहीं-कहीं कहानियों में स्थान दिया है।''

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्त कवि, भक्तिकाल में काव्य के माध्यम से सामान्य जनता को जगाने का प्रयास तो कर ही रहे थे साथ ही समाज में एकता और समानता की भावना उत्पन्न कर लोक जागरण का प्रयास कर रहे थे। इन कवियों ने उत्तरी भारत में हिन्दू-मुसलमानों के बीच मानवीय संवेदना का सामंजस्य पैदा करने का सार्थक प्रयास भी किया। इस भक्ति काव्य का मूल उद्देश्य इस देश के साधारण जन को अज्ञान से जगाना था जिसमें भक्ति काव्य सफल रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रश्न- 3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भाषा शैली पर प्रकाश डालते हुए साहित्य में उनका स्थान निर्धारित कीजिये।

उत्तर—शुक्लजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ गम्भीर विद्वान् और विचारशील लेखक थे। इनकी रचनाओं की प्रधान विशेषता उनकी मौलिकता है। उन्होंने क्रोध, करुणा, उत्साह, घृणा, श्रद्धा आदि मनोविकारों पर बड़े सुन्दर लेख लिखे हैं। उनके प्रमुख निबन्धों का संकलन चिन्तामणि भाग 1 व 2 में हुआ है। उन्होंने आलोचना के अतिरिक्त मानव मन की विभिन्न मनोवृत्तियों पर प्रभावात्मक निबन्ध लिखे हैं। मनोविश्लेषण एवं विवेचन की दृष्टि से उनके निबन्ध हिन्दी साहित्य के गद्य के इतिहास में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। आचार्य शुक्ल निबन्ध रचना को अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम मानते थे। वे उसे ही उत्कृष्ट कोटि का निबन्ध मानते थे, जिसमें नये-नये विचारों की उद्‌भावना अथवा अभिव्यक्ति हो और विचारधारा संश्लिष्ट हो, जिससे पढ़ते समय भी पाठक की बुद्धि उत्तेजित होकर किसी नयी विचार पद्धति की ओर अग्रसर हो। इस कारण शुक्ल जी के निबन्धों में भाषा-शैली की गम्भीरता सर्वत्र दिखाई देती है।

वाक्य विन्यास—शुक्ल जी के वाक्य-विन्यास अपने प्रतिपाद्य को नितान्त सुसम्बद्ध ढंग से प्रस्तुत किये हैं। उनके वाक्य परस्पर गुँथे हुए हैं और अवतरण में से किसी भी एक वाक्य को हटाया नहीं जा सकता है। कम से कम वाक्यों में अधिक से अधिक विवेचना उपस्थित करना उनकी विशेषता है। यद्यपि उनके वाक्य भावावेश में अपेक्षाकृत बड़े हैं, परन्तु विचारात्मक स्थलों पर छोटे वाक्यों का प्रयोग मिलता है। कहीं-कहीं पर सूत्रात्मक अथवा सूक्ति रूप वाक्यों का चमत्कार भी दृष्टव्य है।

शब्द चयन—शुक्ल जी ने अपने निबन्धों में संस्कृत तत्सम शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग किया है। साथ ही अंग्रेजी की शब्दावली अपनाकर उन्होंने हिन्दी भाषा की क्षमता में वृद्धि की है। उन्होंने अपने निबन्धों में ह्वाइट, वे, मिल, कैम्प जैसे अंग्रेजी और आदमी, कबायद, मुरौवत, औसत, दावा, किताब आदि उर्दू अरबी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। साथ ही बट्टा लगाना, आँखों में समान, दुहाई देना, दखल जमाना, सेंत का सौदा करना आदि कहावतों एवं मुहावरों का भी यथा स्थान प्रयोग किया है। बीच-बीच में संस्कृत के सूक्त कथन एवं हिन्दी काव्यों के उद्धरण भी दिये हैं। इस प्रकार की शब्द योजना के कारण उनकी अभिव्यक्ति सशक्त एवं प्रवाहपूर्ण है तथा उसमें वैचारिक प्रौढ़ता दिखाई देती है। उनकी शब्दावली आदर्श खड़ी बोली हिन्दी की अलंकृत भाषा है। इन विशेषताओं के कारण उनकी भाषा में चमत्कारोत्पादन का गुण आ गया है और भाव सम्प्रेषण तथा विश्लेषण में प्रवाह पाया जाता है। शिष्ट व्यंग्य के स्थलों पर उनकी भाषा लाक्षणिकता तथा व्यंजनात्मकता से मण्डित होती है।

शैली—शुक्ल जी के निबन्धों में विविध शैलियों के दर्शन होते हैं। शुक्लजी की निबन्ध शैलियों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

1. विवेचनात्मक शैली—यह शुक्ल जी की मुख्य निबन्ध-शैली है। इस शैली में उनके विचारों की सम्बद्ध योजना एवं अभिव्यक्ति की स्वच्छता दिखाई देती है। विवेचनात्मक स्थलों में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक किया है, परन्तु उर्दू के शब्दों का बहिष्कार भी नहीं किया है। इस शैली में उनकी विचारधारा संयमित एवं अभिव्यक्ति की गम्भीरता होती है, यथा—

''किसी दुष्ट अफसर के कुवाक्य पर क्रोध तो आता है, पर मातहत लोग आवश्यकता के वश उस क्रोध के अनुसार कार्य करने की कौन कहे, उसका चिह्न तक प्रकट नहीं होने देते। स्मृति और अनुमान आदि भावों या मनोविकारों के केवल सहायक हैं अर्थात् प्रकारान्तर से वे उनके लिए विषय उपस्थित करते हैं।''

2. विश्लेषणात्मक शैली—शुक्ल जी के मनोविकारों से सम्बन्धित निबन्धों में इस शैली के दर्शन मिल जाते हैं। 'करुणा' शीर्षक निबन्ध में यही शैली अपनाई गई है। यद्यपि विश्लेषणात्मक शैली दुरूह होती है और इसमें संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक किया जाता है। इसमें सूत्रात्मक अथवा समासात्मक कथनों की न्यूनता रहती है तथा प्रत्येक बात को प्रौढ़ता के साथ स्पष्ट करने की चेष्टा रहती है। इस शैली में शुक्लजी के निबन्ध अत्यन्त सशक्त एवं भाव-सम्प्रेषण में सूक्ष्म बन पड़े हैं।

3. गवेषणात्मक शैली—शुक्लजी ने अनुसंधान परक निबन्धों में इस शैली का प्रयोग किया है। इसके कारण उनके निबन्धों में गम्भीरता व दुरूहता आ गई है। नये विषयों का प्रतिपादन करते सम्य उनके निबन्धों में वाक्य अधिक लम्बे बन गये हैं।

4. भावात्मक शैली—शुक्लजी को एक प्रखर आलोचक के साथ कवि हृदय भी मिला था। आलोचना के साथ-साथ उन्होंने प्रकृति-सम्बन्धी बहुत-सी क्रियाएँ भी लिखी। उनके निबन्धों तथा आलोचनात्मक लेखों में स्थान-स्थान पर प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर वर्णन है। ऐसे स्थलों पर गद्य काव्य का सा आनन्द मिलता है। ''सच्चा देश प्रेम' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने इस शैली का अधिक प्रयोग किया है इस शैली में वाक्य तो वैसे ही छोटे-छोटे हैं जिसमें विषय सुबोध और बोधगम्य हो जाता है, शब्द-योजना में भी विशेष अन्तर नहीं है, परन्तु विषय की स्वच्छता के कारण भाषा के जिस प्रचलित और व्यावहारिक रूप को अपनाया गया है उसमें भाव व्यंजना में विशेष प्रवाह दिखाई देता है और वही शैली की विशेषता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. लाक्षणिकता एवं व्यंग्यात्मकता—शुक्लजी ने सूत्रात्मक कथनों में लाक्षणिक एवं व्यंग्य का सहारा लिया है। ऐसे स्थलों पर उनका वर्ण-विन्यास भी प्रशस्त है। कुछ दुरूह स्थलों की विवेचना करते समय शुक्ल जी ने व्यंग्य का विशेष चमत्कार उत्पन्न किया है। उनके व्यंग्य प्रयोग कभी साहित्य से सम्बन्धित हैं तो कभी लोक-व्यवहार पर आधारित हैं, जैसे—''रसखान तो किसी को लकुटी अरु कामरिया पर तीनों पुरों का राज-सिंहासन तक त्यागने को तैयार थे, पर देश-प्रेम की दुहाई देने वालों में से कितने अपने किसी थके मांदे भाई के फटे-पुराने कपड़ों पर रीझकर या कम से कम न रीझकर बिना मन मैला किये कमरे का फर्श भी मैला होने देंगे? मोटे आदमियों! तुम जरा-सा दुबले हो जाते अपने अन्देशे से ही नहीं, तो न जाने कितनी ठठरियों पर माँस चढ़ जाता।' इस प्रकार शुक्ल जी की शैली में व्यंग्य का तीखापन दिखाई देता है।

6. अन्य शैलियाँ—शुक्ल जी की सबसे बड़ी विशेषता सम्बद्ध योजना एवं अभिव्यक्ति की स्वच्छता एवं स्पष्टता है। उन्होंने अपने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति के लिए कहीं पर सूत्रात्मक शैली अपनाई है और सूक्ति वाक्यों का चमत्कार उत्पन्न किया है, तो कहीं पर समाज शैली अपनाई है। व्याख्यात्मक शैली में उनकी भावात्मक सुषमा प्रस्फुटित हुई है। इस प्रकार उनका शैलीगत एवं प्रयोग व्यापक विषयानुकूल है। उसमें उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप है। वस्तुत: आचार्य शुक्ल में बुद्धि एवं हृदय का अच्छा समन्वय था। वे जितने गम्भीर स्वभाव के विद्वान् थे, उतने ही मनोविनोदी भी थे। अपने ललित निबन्धों में उन्होंने यदि वैयक्तिकता को प्रधानता दी है तो मनोविकारों पर आधारित निबन्धों में उनकी गम्भीरता दिखाई देती है। इस प्रकार शुक्ल जी की गद्य-शैली नवनमोन्मेष से युक्त है।

हिन्दी निबन्ध साहित्य में स्थान—हिन्दी निबन्धकारों में आचार्य शुक्ल का मूर्धन्य स्थान है। वे समालोचनात्मक निबन्धों के सृष्टा, भाषा के पण्डित और शैली के उन्नायक हैं। एक सुप्रसिद्ध जर्मन आलोचक ने एक बार कहा था—''शैली से हमें लेखक के व्यक्तित्व के विषय में बहुत कुछ मालूम हो सकता है। यह कथन हिन्दी लेखकों में शुक्लजी के लिए जितना सत्य है उतना शायद किसी अन्य लेखक के लिए नहीं।'' आचार्य शुक्ल का विचारात्मक निबन्धों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक तथा सैद्धान्तिक सभी प्रकार के निबन्ध लिखे हैं। उनके निबन्धों में मौलिकता तथा विचारात्मकता है, पर छिछलापन तथा शुष्कता नहीं है। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे जीवन के अध्यापक, मस्तिष्क से आलोचक और हृदय से कवि हैं। वस्तुत: हिन्दी निबन्ध-साहित्य में उन्हें वही महत्त्व प्राप्त है जो कि उपन्यास साहित्य में मुंशी प्रेमचन्द को है। श्री जयनाथ नलिन ने शुक्ल जी के निबन्धों के सम्बन्ध में लिखा है—''शुक्लजी का एक-एक निबन्ध हिन्दी गद्य-शैली के विकास की शानदार मंजिल है। एक-एक पैरा प्रगति और प्रौढ़ता के पथ पर बढ़ता हुआ पग, एक-एक पंक्ति गंभीर चिन्तन की साँस और एक-एक शब्द अभिव्यंजना की सार्थकता ...इनके निबन्ध हिन्दी गद्य साहित्य की समृद्धि है, शैली के विकास की भारी मंजिल हैं, विचार क्षेत्र में चिन्तन का अनुभव आदर्श है।''

16.3 सारांश

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी गद्य-साहित्य में भाषा शैली की दृष्टि से शुक्लजी नवीन प्रयोक्ता रहे हैं। उन्होंने सभी दृष्टिकोणों से गद्य-साहित्यकों को प्रौढ़ता एवं नवीन गति प्रदान की है। उनके निबन्धों में जीवन और साहित्य की संस्कृति विद्यमान है। शुक्ल जी को हिन्दी साहित्य का भगीरथ कहा जाये तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 17 : तुलसी के सामाजिक मूल्य

(डॉ. रामविलास शर्मा)

संरचना

17.0 परिचयात्मक भूमिका

17.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

17.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

17.3 सारांश

17.0 परिचयात्मक भूमिका

'देशी भाषा और अपभ्रंश शीर्षक निबन्ध डॉ. रामविलास शर्मा की सुप्रसिद्ध निबन्ध कृतियों के संकलन 'हिन्दी जाति का साहित्य' से उद्धृत है। डॉ. रामविलास शर्मा ने साहित्य को मार्क्सवादी दृष्टि से देखा परखा है। भारतीय भाषाओं के साहित्य को भी आपने नये ढंग से देखा परखा है। उनके अपने शब्दों में ''जातीय गठन के सन्दर्भ में हिन्दी साहित्य का विवेचन करते समय हमारे सामने अनेक समस्याएँ आती हैं। समस्याओं के विवेचन के लिए मैंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इतिहास लेखन को आधार बनाया है। इन्हीं दोनों आचार्यों के तुलनात्मक अध्ययन से समस्याओं के विवेचन करते हुए प्रस्तुत निबन्ध में डॉ. शर्मा ने हिन्दी भाषा के प्राचीन रूप की खोज की है। हिन्दी भाषा की उत्पत्ति अपभ्रंश से मानते हुए विद्वान अपभ्रंश के अन्तिम रूप को पुरानी हिन्दी की संज्ञा देते हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा अपभ्रंश भाषा और साहित्य को सामन्तवादी प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब मानते हुए अपभ्रंश भाषा को न तो लोक भाषा स्वीकार करते हैं और न ही अपभ्रंश साहित्य को लोक साहित्य। लोक भाषा के रूप में उस समय देशी भाषाएँ प्रचलित थीं जिनको अपभ्रंश ने दबा रखा था। उन्हीं से हिन्दी का विकास हुआ है। अपभ्रंश की सामन्तवादी प्रवृत्ति वीरगाथा काल और रीतिकाल में पुनर्जीवित हुई परन्तु भक्तिकाल में सामन्ती प्रवृत्तियों का विरोध और निषेध था। हिन्दी जाति का निर्माण सामन्ती व्यवस्था के भीतर पूँजीवादी सम्बन्धों के प्रसार के साथ होता है।'

17.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''भक्ति आन्दोलन में जो भावात्मक एकता स्थापित हुई उसमें जितना फैलाव था उतनी गहराई भी थी। यह एकता समाज के थोड़े से शिक्षित जनों तक सीमित नहीं थी। संस्कृत के द्वारा जो राष्ट्रीय एकता कायम हुई थी। उससे यह भिन्न थी, इसकी जड़ें नगरों और गाँवों की अनपढ़ जनता के बीच गहरी चली गई थी। यह एकता प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से कामय हो रही थी। भक्ति आन्दोलन एक ओर अखिल भारतीय आंदोलन था, दूसरी ओर वह प्रदेश गत, जातीय-आंदोलन भी था। देश और प्रदेश एक साथ, राष्ट्र और जाति दोनों की सांस्कृतिक धाराएँ एक साथ। भक्ति आन्दोलन की व्यापकता और सामर्थ्य का यही रहस्य है।''

प्रसंग–प्रस्तुत गद्यांश रामविलास शर्मा द्वारा रचित ''तुलसी के सामाजिक मूल्य'' निबन्ध से उद्धृत है। प्रस्तुत निबन्ध में उन्होंने तुलसी को लोकतांत्रिक दृष्टि से परखा और उजागर किया है। यहाँ लेखक ने भक्ति आन्दोलन के द्वारा भारत में जो राष्ट्रीय एकता की स्थापना की गई उसी का वर्णन किया है।

व्याख्या–डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि हमारे देश में जितने भी साहित्यिक आन्दोलन हुए उनमें भक्ति आन्दोलन सर्वाधिक प्रभावशाली रहा। आन्दोलन द्वारा हमारे देश में भावात्मक एकता की स्थापना हुई। यह आन्दोलन जितना विस्तृत था, भावात्मक दृष्टि से उतना ही गहरा भी था। इस भक्ति आन्दोलन द्वारा जो एकता की भावना विकसित हुई। वह केवल शिक्षित लोगों तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि समाज के अनपढ़ और कम पढ़े-लिखे लोग भी इससे पूर्णरूपेण प्रभावित थे। संस्कृत साहित्य द्वारा जो राष्ट्रीय एकता हमारे देश में स्थापित हुई वह, भक्ति आन्दोलन द्वारा स्थापित एकता की भावना उससे भिन्न थी। क्योंकि संस्कृत एक आम भाषा नहीं थी, अनपढ़ या कम पढ़े-लिखे लोगों पर इसका उतना प्रभाव नहीं हुआ, जितना भक्ति आंदोलन का हुआ था। भक्ति आन्दोलन का प्रभाव बड़े-बड़े नगरों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और गाँवों की अनपढ़ जनता के बीच भी बड़ी गहराई से व्याप्त हुआ था। इस एकता में प्रादेशिक भाषाओं का बहुत बड़ा योगदान था, क्योंकि सन्त-साहित्य प्रादेशिक भाषाओं में भी बहुत अधिक रचा गया था जिसका प्रभाव प्रादेशिक जनता पर बहुत अधिक पड़ा। भक्ति आन्दोलन प्रदेशगत जहाँ एक ओर अखिल भारतीय आन्दोलन था, दूसरी ओर यह आन्दोलन प्रदेशगत और जातीय आन्दोलन भी बन गया था, अर्थात् प्रत्येक प्रदेश में, प्रत्येक जाति में भक्ति आन्दोलन द्वारा राष्ट्रीय एकता का प्रचार प्रसार हो रहा था। सम्पूर्ण देश और प्रदेश एक साथ एक ही धारा में बह रहे थे तथा सम्पूर्ण राष्ट्र और जाति दोनों की सांस्कृतिक धाराएँ भी एक साथ बह रही थीं। यही कारण था कि भक्ति आन्दोलन इतना व्यापक और समर्थ बन सका।

विशेष— 1. डॉ. शर्मा ने प्रस्तुत गद्यांश में भक्ति आन्दोलन के प्रभाव उसकी व्यापकता और समर्थता के कारण एवं राष्ट्रीय भावनाओं में वृद्धि आदि पर प्रकाश डाला है।

2. भाषा में सहजता का गुण विद्यमान है तथा शैली विश्लेषणात्मक है।

3. भक्ति आन्दोलन की सफलता के रहस्य को भली-भाँति स्पष्ट किया गया है।

(2)

''निराला जी ने अपने अनेक निबन्धों में प्रतिपादित किया है कि गोस्वामी तुलसीदास मूलत: रहस्यवादी थे। उनकी इस स्थापना के पीछे यह बोध था कि कबीर, जायसी, सूर और तुलसी की चेतना का एक सामान्य स्तर है। इस रहस्यवाद का सामाजिक महत्त्व असाधारण है। यह रहस्यवाद अद्वैत ब्रह्म के साक्षात्कार का दावा करके अनेक धर्मों और मतों के परस्पर विद्वेष का खण्डन करता था। वह उच्च वर्णों के कर्मकाण्डी धर्म के स्थान पर लोक धर्म की स्थापना करता था। इस लोक धर्म का आधार था प्रेम। कबीर, तुलसी, जायसी आदि कवि रहस्यवादियों के सामने ज्ञान नेत्र खुलने, आनन्द में विह्वल होने की बातें करते हैं और इस आनन्द को वे मानव प्रेम से जोड़ देते हैं।''

प्रसंग—डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा रचित तुलसी के सामाजिक मूल्य से अवतरित इस गद्य खण्ड में लेखक ने तुलसीदास के रहस्यवाद के विषय में लिखा है। निराला जी के निबन्धों का उदाहरण देते हुए डॉ. शर्मा ने कहा है कि उनके अनेक निबन्धों में मूल रूप से तुलसीदास को रहस्यवादी कवि माना है।

व्याख्या—लेखक कहता है कि निराला जी ने अपने अनेक निबन्धों में गोस्वामी तुलसीदास के रहस्यवादी स्वरूप को स्पष्ट किया है। तुलसीदास को रहस्यवादी कवि के रूप में स्थापित करने के पीछे उनकी यह भावना थी कि कबीर, जायसी और सूरदास के समान ही तुलसीदास की चेतना का एक सामान्य स्तर है। इसका रहस्यवाद सामाजिक जीवन में अपनी असाधारण भूमिका रखता है क्योंकि इस रहस्यवाद में अद्वैत ब्रह्म के साक्षात्कार को दावे के साथ सिद्ध किया गया है। इससे समाज के विभिन्न धर्मों और विभिन्न मतों के पारस्परिक विद्वेष का खण्डन होता है। इस प्रकार समाज में व्याप्त विद्वेष की भावना को समाप्त करने में तुलसीदास के रहस्यवाद ने एक अहम भूमिका निभाई थी।

तुलसी के रहस्यवाद में उच्च वर्णों के कर्मकाण्डी धर्म के स्थान पर लोक धर्म की स्थापना की गई थी अर्थात् धर्म के क्षेत्र में समानता लाने का स्तुत्य प्रयत्न किया गया था। इस सम्पूर्ण लोक धर्म का आधार प्रेम था। कबीर, तुलसी, जायसी जैसे रहस्यवादी कवियों के सामने ज्ञान नेत्र का खुलना, ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति होना आदि सम्पूर्ण बातों में उनका मानव प्रेम ही मुख्य कारण दिखाई देता है। इस प्रकार निराला ने तुलसी के लोक-कल्याणकवादी रहस्यवाद को अपने निबन्धों में अभिव्यक्ति दी है।

विशेष— 1. निराला जी ने अपने निबन्धों में तुलसीदास के रहस्यवाद की लोकहितकारी और लोक धर्म की स्थापना करने वाला बताया है जो सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

2. भाषा में तत्सम शब्दावली का प्रयोग और शैली चिन्तनपरक है।

(3)

''भक्ति आन्दोलन अखिल भारतीय सांस्कृतिक आन्दोलन था। इस आन्दोलन की श्रेष्ठ देन थे—तुलसीदास। उन्होंने निर्गुण पंथियों और सगुण मतावलम्बियों को एक किया, उन्होंने वैष्णवों और शाक्तों को मिलाया। उन्होंने भक्ति के आधार पर जन-साधारण के लिए धर्म को सरल और सुलभ बनाकर पुरोहितों के धार्मिक एकाधिकार की जड़ें हिला दीं। तुलसीदास मानवीय करुणा के अन्यतम कवि हैं। उनके राम दीनबन्धु हैं। ''सबरी गीध सुसेवक, सुगति कीन्ह रघुनाथ।'' निषाद समाज का परित्यक्त अनत्यज, राम के लिए ''भरत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सम भ्राता'' है। वनवासी कोल-किरात राम के दर्शन से प्रसन्न होते हैं। ''आभीर जवन किरात खस स्वपचादि'' सभाराम के स्मरण से मोक्ष लाभ करते हैं।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''समीक्षात्मक निबन्ध' में संकलित पाठ 'तुलसी के सामाजिक मू ल्य' से अवतरित है, जिसमें डॉ. रामविलास शर्मा ने तुलसी के सांस्कृतिक आन्दोलन को स्पष्ट किया है। समाज के प्रति अपनी मान्यताओं को स्पष्ट किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत अवतरण तुलसी के सामाजिक मूल्य शीर्षक निबन्ध से अवतरित है। इसके लेखक डॉ. रामविलास शर्मा हैं। इस अवतरण में डॉ. शर्मा ने भक्ति-आन्दोलन को सांस्कृतिक आन्दोलन प्रमाणित करते हुए तुलसीदास को उक्त आन्दोलन की प्रमुख देन बतलाया है। उनका कहना है कि भक्ति आन्दोलन न केवल भक्ति का विकास करने वाला था और न केवल भक्ति-भावों से भारतीय जन-मानस को परिपूर्ण करने वाला था, अपितु वह एक सांस्कृतिक भावधारा थी, जिसमें भारतीय संस्कृति के मूल्यवान सन्दर्भों को तथ्य बनाकर हिन्दू जनता के सामने अभिव्यक्त किया था। इस सांस्कृतिक आन्दोलन के प्रमुख व्यक्तित्व के रूप में तुलसीदास का नाम लिया जा सकता है। वे एक समन्वयवादी सन्त, चिन्तक और कवि थे। उनके समय में निर्गुण और सगुण धाराओं का जो चक्र चल रहा था, उसे उन्होंने समास किया और दोनों के मध्य एकता स्थापित की। इसी प्रकार तुलसीदास ने सांस्कृतिक भूमिका पर वैष्णव धर्म और साक्त धर्म प्रस्तुत किया और अब तक जो पुरोहितों द्वारा धार्मिक एकाधिकार चल रहा था उसे समाप्त कर मानवतावादी, किन्तु समन्वयवादी विचारधारा को बढ़ावा दिया।

डॉ. शर्मा ने बतलाया है कि मानवीय करूणा के प्रमुख व्यक्ति के रूप में तुलसीदास का नाम सबसे ऊपर रखा जा सकता है। यही कारण है कि वे राम के सम्बन्ध से उन्हें दीनबन्धु बतलाते हैं और स्बरी, गीध, सुसेवकनि के संदर्भ से अपनी करुणा और समानता की भावना को प्रकट करते हैं। इतना ही नहीं, जो निषाद सारे समाज द्वारा ठुकराया हुआ था, वह राम के लिए भरत के समान प्रिय भाई है तथा वनवासी कोल और किरात जैसी जातियाँ भी राम को विशेष प्रिय रही हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि राम मानवीय एकता और मानवीय करूणा के प्रमुख व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। यह सब तुलसी की सांस्कृतिक दृष्टि का प्रमाण है।

विशेष—1. इस अवतरण में लेखक ने तुलसी की साँस्कृतिक आन्दोलन का प्रतीक पुरुष बतलाकर अपनी मान्यताओं को उदाहरण और उद्धरण शैली द्वारा प्रकट किया है।. 2. भाषा में सरलता और स्पष्टता के दर्शन होते हैं।

(4)

''तुलसीदास की वाणी मूलत: पीड़ित कृषक जनता की वाणी है। यह वाणी अप्रत्यक्ष रूप से विनयपत्रिका में अपनी अपार वेदना से हृदय को द्रवित कर देती है। कवितावली में प्रत्यक्ष रूप से किसानों के उत्पीड़न की चर्चा की है। ''खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।'' इस छन्द में उन्होंने दरिद्रता को रावण कहा है, जो संसार को दबाये हुए है। वे स्वयं जानते थे कि ''आगि बडवाग्नि ते बड़ी है आगि पेट की।'' काशी से महामारी का बर्णन इसी यथार्थवादी धारा के अन्तर्गत है।''

प्रसंग—प्रस्तुत अंश में डॉ. रामविलास शर्मा ने तुलसी की मानवीय भावनाओं और मानव मात्र के प्रति अपनी करूणा का परिचय प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत अवतरण के अन्तर्गत डॉ. रामविलास शर्मा ने तुलसीदास को भारतीय संस्कृति का प्रतीक पुरुष सिद्ध करने के पश्चात् यह बतलाया है कि वे कृषक जनता के प्रतिनिधि कवि थे। उन्होंने स्पष्ट किया है कि तुलसीदास ने जो कुछ कहा है वह भारतीय कृषक और उसकी पीड़ा को प्रस्तुत करने वाला है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति तुलसी के विनयपत्रिका नामक ग्रन्थ में अप्रत्यक्ष शैली में अभिव्यक्त हुई है। 'विनय पत्रिका' में तुलसी की यथार्थ भावनाएँ भारतीय कृषक की वेदना से परिपूर्ण होकर पाठकों के समक्ष आती हैं। सच बात यह है कि तुलसी के हृदय में पीड़ित कृषकों और जन-साधारण के प्रति अपूर्व सहानुभूति थी, ऐसी ही सहानुभूति एवं मानवीय भावना तुलसी के कवितावली नामक ग्रन्थ में भी दिखलाई देती है। 'विनय पत्रिका' में यह करूणा यदि अप्रत्यक्ष शैली में प्रकट हुई है तो कवितावली में यही करूणा और यही वेदना प्रत्यक्ष शैली में अभिव्यक्त होती है। लेखक ने उदाहरण दिया है और यह सिद्ध किया है कि दरिद्रता रावण की तरह है जिस प्रकार रावण ने सभी को अपने अधिकार में कर रखा था, वैसे ही दरिद्रता रूपी रावण ने भी सारे संसार को दबा रखा है। इसी दरिद्रता रूपी रावण से वे समाज को मुक्त करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि बड़वाग्नि से भी अधिक भयंकर अग्नि पेट की भूख होती है। अत: उस भूख को शान्त करना अनिवार्य है। तुलसी ने इस आधार पर काशी में फैली हुई महामारी का वर्णन भी किया है जो यथार्थवादी शैली में अभिव्यक्त होकर अधिक विश्वसनीय लगता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विशेष– 1. इस अवतरण में तुलसी की करुणा और मानवीयता को उदाहरणों द्वारा पुष्ट किया गया है।, 2. भाषा में सरलता और शैली में तुलनात्मकता और उद्धरणशीलता को देखा जा सकता है।

(5)

''तुलसी साहित्य एक ओर आत्म निवेदन और विनय का साहित्य है, दूसरी ओर वह प्रतिरोध का साहित्य भी है। हमारे समाज पर गोस्वामी तुलसीदास का इतना गहरा प्रभाव है कि आज यह कल्पना करना कठिन है कि तुलसीदास ने अनेक प्रचलित मान्यताएँ स्वीकार करके यह साहित्य रचा था। ''काहू की बेटी सौ बेटा न ब्याहव काहू की जाति बिगार ने सोऊ'' जैसी उक्तियों से यह पता चलता है कि उन्हें काशी नगर में तीव्र विरोध सहना पड़ा था। वे राम के सम्मुख ही विनम्र और करुण स्वर से बोलने वाले कवि हैं, औरों के आगे सर हमेशा ऊँचा रखते हैं जिन्हें उनकी कविता नापसंद हो, उन्हें 'काक कहहिं कालकण्ठ कठोरा।' कहकर वे चुप कर देते हैं। आत्मत्याग करने वाले को सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति मानते हैं। भक्त के पास अपना कुछ नहीं होता, इसलिए राम ते अधिक राम का दासा। जब भरत चित्रकूट जाते हैं तब बादल उनके लिए ऐसी शीतल छाया करते हैं जैसी राम के लिए भी नहीं करते हैं।''

प्रसंग–डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा लिखित निबन्ध 'तुलसी के सामाजिक मूल्य' से उद्धृत इस गद्यांश में तुलसी के साहित्य में आत्म-निवेदन और विनय की भावना को अभिव्यक्ति दी गई है। तुलसीदास की विनम्रता और करुणा अपने आराध्य राम के प्रति ही होती थी। समाज में तो वे सदा ऊँचा सर रखते थे, इन्हीं विचारों को यहाँ व्यक्त किया गया है।

व्याख्या–डॉ. शर्मा कहते हैं कि तुलसीदास का साहित्य जहाँ एक ओर आत्म निवेदन और विनय की भावनाओं से परिपूर्ण है, वहीं दूसरी ओर उसमें प्रतिरोध का भाव भी परिलक्षित होता है। तुलसीदास के साहित्य में तत्कालीन समाज में प्रचलित अनेक मान्यताओं के समन्वय भाव देखकर आज यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि समाज पर उनके साहित्य का इतना गहरा प्रभाव कैसे पड़ा। जहाँ विभिन्न विरोधी मतों, पन्थों, विचारधाराओं आदि को मिलाकर समाज के समक्ष प्रस्तुत किया गया और समाज ने उसे बड़ी गहराई से ग्रहण किया, यह एक आश्चर्य की बात थी। तुलसीदास ने कितना सामाजिक विरोध सहन किया था इस बात का अनुमान उनकी इस उक्ति से लगाया जा सकता है कि जिसमें उन्होंने काशी नगर में लोगों से कहा था–''काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहव, काहू की जाति बिगार न सोऊ।'' उनकी इस उक्ति से जहाँ एक ओर तुलसीदास के सामाजिक विरोध का पता चलता है, वहीं दूसरी ओर उनके स्वाभिमान की अभिव्यक्ति भी होती है। तुलसीदास के साहित्य में जो विनम्रता और करुणा का स्वर सुनाई देता है वह केवल आराध्य राम के प्रति ही है, लोगों के सामने तो तुलसीदास ने अपना सर सदा ऊँचा ही रखा है। जिन लोगों को उनका साहित्य अच्छा नहीं लगता था अथवा जो उनकी व्यर्थ ही आलोचना करते थे उनको वे यह कहकर चुप करा देते थे कि ''कौआ कहता है कि कोयल का मधुर कण्ठ भी कठोर लग रहा है।'' तुलसीदास की दृष्टि में वही सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति होता था जिसमें आत्म-त्याग की भावना विद्यमान हो। परहित के लिए अपने स्वार्थ अथवा सुख का त्याग करने वाला व्यक्ति ही महान् होता था। सच्चे राम भक्त के पास अपना कुछ नहीं होता इसलिए वे कहा करते थे–''राम ते अधिक राम कर दासा' अर्थात् भक्त का महत्त्व भगवान से बढ़कर होता है। इन्हीं भावों को व्यक्त करते हुए तुलसीदास ने एक अन्य प्रसंग में लिखा है कि ''जब भरत चित्रकूट जाते हैं तब बादल उनके लिए ऐसी शीतल छाया करते हैं, जैसे स्वयं राम के लिए भी नहीं करते हैं। क्योंकि राम स्वयं ईश्वर थे जबकि भरत उनका भक्त था।''

विशेष– 1. तुलसीदास की विनम्रता, करुणा, स्पष्टवादिता आदि विशेषताएँ इस गद्यांश में प्रकट हुई हैं। ''भगवान से बढ़कर भक्त होता है'' इस विचार को भी यहाँ अभिव्यक्ति मिली है।

2. भाषा में सरलता एवं भाव प्रेषणीयता का गुण विद्यमान है।

(6)

''रामचरित मानस को लोकप्रिय बनाने के लिए कोई संघबद्ध प्रयास नहीं किया गया। अपने पास मिथिला के गाँवों से लेकर मालवे की भूमि तक जनता ने इस ग्रंथ को अपनाया। करोड़ों हिन्दी भाषियों के लिए धर्म-ग्रन्थ, नीतिग्रन्थ, काव्यग्रन्थ आदि कोई है तो 'रामचरितमानस्'। इसका एक अप्रत्यक्ष सामाजिक फल यह हुआ है कि हिन्दी-भाषा जनता को संगठित करने में, उसमें जातीय एकता का भाव उत्पन्न करने में रामचरितमानस की अपूर्व भूमिका रही है। हिन्दी भाषी प्रदेश के जनपदों का अलगाव तुलसीदास के युग में ही दूर हो रहा था। इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने अवधी और ब्रजभाषा दोनों में ही कविता रची। ब्रजभाषा की रचनाएँ ब्रज तक सीमित नहीं रहीं। इन रचनाओं में सूर और मीरा के पद प्रमुख हैं। अवधी में 'रामचरितमानस' ने उसी कोटि की भूमिका पूरी की।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ डॉ. रामविलास शर्मा के निबन्ध 'तुलसी के सामाजिक मूल्य' से अवतरित हैं। 'रामचरित मानस' की लोकप्रियता के विषय में लेखक ने कहा है कि इसे लोकप्रिय बनाने के लिए किसी प्रकार से नियम बद्ध अथवा संघबद्ध प्रयत्न नहीं किये गये थे। अपनी अपूर्व भूमिका के कारण इसने समाज में अपने आप ही लोकप्रियता को प्राप्त किया है। भारत की हिन्दी भाषी जनता को संगठित करने, जातीय एकता का भाव उत्पन्न करने तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने में, 'रामचरितमानस' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति प्रस्तुत पंक्तियों में हुई है।

व्याख्या—डॉ. शर्मा कहते हैं कि 'रामचरित मानस' जो तत्कालीन समाज से लेकर अब तक इतना लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है इसके पीछे कोई संघबद्ध कार्यक्रम नहीं चलाया गया था। यह स्वत: ही मिथिला के गाँवों से लेकर मालवे की भूमि तक जनता का प्रिय ग्रन्थ बन गया। लोगों ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ उसे अपनाया। करोड़ों हिन्दी भाषी लोगों के लिए 'रामचरित मानस' एक श्रेष्ठ धर्मग्रन्थ, नीतिग्रन्थ, काव्यग्रन्थ आदि रूपों में अपनाया गया।

'रामचरित मानस' की लोकप्रियता से हमारे समाज को अनेक लाभ हुए। सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ तो यह हुआ कि हिन्दी भाषी जनता संगठित हो गई, उसमें जातीय एकता का प्रादुर्भाव हुआ। समाज पर रामचरित मानस का अप्रत्यक्ष रूप में जो प्रभाव पड़ा वह हमारी राष्ट्रीय एकता व दृढ़ता प्रदान करता गया। हिन्दी भाषी प्रदेशों में जो अलगाव का भाव विद्यमान था वह तुलसीदास के समय में ही 'रामचरित मानस' की अपूर्व भूमिका के कारण समाप्त हो गया था। इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि तुलसीदास ने अवधी और ब्रजभाषा दोनों में ही काव्य रचना की थी। ब्रजभाषा की रचनाओं का प्रचार-प्रसार केवल ब्रज प्रान्त तक ही सीमित नहीं रहा। सम्पूर्ण हिन्दी भाषी प्रदेशों में इसकी लोकप्रियता कायम हो गई थी। ब्रज भाषा की रचनाओं में सूरदास और मीरा बाई के पदों की प्रमुखता रही और अवधी भाषा में राम चरित मानस ने उसी प्रकार अपना प्रभाव सम्पूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्रों में स्थापित किया था।

विशेष— 1. तुलसीदास के काव्य में जातीय एकता और क्षेत्रीय एकता के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को दृढ़ता प्रदान की गई है।

2. गद्यांश की भाषा सरल और सुबोध तथा शैली विश्लेषणात्मक है।

(7)

''सामन्ती समाज के साहित्य की सबसे बड़ी कमजोरी होती है—निष्क्रियता। तुलसी का साहित्य निष्क्रियता का साहित्य नहीं है। धनुर्धर राम रावण का वध करने वाले पुरुषोत्तम हैं। समुद्र उनकी विनय नहीं सुनता, तब वह ''भय बिनु होय न प्रीति'' का मन्त्र सिद्ध करते हैं। तुलसी का साहित्य जीवन की अस्वीकृति का साहित्य नहीं है, वे उन लोगों का मजाक उड़ाते हैं जो काम, क्रोध के भय के मारे रात को सो नहीं पाते—''जागै जोगी जंगम जती जपाती ध्यान धरैं डरैं उन भारी लोभ मोह कोह काम के।'' केवल राम का भक्त चैन से होता है—''सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के।''

प्रसंग—प्रस्तुत अंश में डॉ. रामविलास शर्मा ने तुलसी विरोधी विचारों का खण्डन करते हुए सामाजिक सामन्ती कमजोरी का स्पष्टीकरण किया है।

व्याख्या—यह गद्यावतरण ''तुलसी के सामाजिक मूल्य' शीर्षक निबन्ध से लिया गया है। इसके लेखक डॉ. रामविलास शर्मा हैं। रामविलास शर्मा ने इस निबन्ध में अपने गहन अनुभव, चिन्तन और मनन (अनुसंधान) के द्वारा तुलसी विरोधी आलोचनाओं का स्पष्ट उत्तर दिया है। यहाँ वे सामन्ती समाज के साहित्य की कमजोरी पर प्रकाश डाल रहे हैं, उनकी धारणा यह है कि तुलसीदास का साहित्य निराशा और निष्क्रियता को बढ़ावा देने वाला साहित्य नहीं है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जो साहित्य सामन्ती समाज की नींव पर खड़ा होता है, वह कमजोर होता है। इसका कारण यह है कि ऐसे साहित्य में निष्क्रियता की भावनाओं को अधिक स्थान मिल जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि निष्क्रियता का साहित्य सच्चा, उपयोगी और आकर्षक साहित्य नहीं होता। तुलसीदास का साहित्य निष्क्रियता का साहित्य नहीं है।

लेखक की मान्यता है कि तुलसी ने अपने साहित्य में कहीं भी निराशाजनक और निष्क्रियता की स्थिति को प्रोत्साहन नहीं दिया है। कारण यह है कि उनके आराध्य राम केवल भगवान नहीं हैं अपितु धनुष बाण धारण करने वाले, राक्षसों का वध करने वाले तथा रावण की शत्रुता और अमानवीयता को नष्ट करके धर्म और मर्यादा की स्थापना करने वाले पुरुष श्रेष्ठ राम हैं। जिसके आराध्य ऐसे हों, वह निराश और निष्क्रियता के साहित्य को कैसे महत्त्व दे सकता है ? लेखक ने उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि जब राम समुद्र से मार्ग माँगते हैं और वह उनकी विनय भरी वाणी पर कोई ध्यान नहीं देता, तब वे धनुष-बाण उठा लेते हैं और समुद्र को भय दिखलाते हैं। तुलसीदास ने ऐसा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कराकर उस सिद्धान्त का पालन किया है, जिसमें भय के अभाव में प्रीति का होना या बढ़ना असम्भव माना गया है। अन्त में लेखक ने बतलाया है कि तुलसी के साहित्य में जीवन की अस्वीकृति कहीं भी नहीं है। यही कारण है कि उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से उन लोगों का मजाक उड़ाया है, जो काम, क्रोध और भय के कारण शाँतिपूर्वक सो नहीं पाते हैं। वास्तव में कामी, क्रोधी और भयग्रस्त व लोभी मनुष्य बेचैन रहता है, उसकी इच्छाएँ बढ़ी हुई होती हैं। अत: वह किसी भी स्थिति में चैन से सो नहीं पाता है। चैन से सोने वाला तो राम का भक्त ही होता है। वह भगवान पर विश्वास करता हुआ सुख और शांति का जीवन व्यतीत करता है।

विशेष—इस अवतरण में लेखक ने तुलसी के साहित्य को जीवन का साहित्य बताकर यह संदेश दिया है कि चेतनाहीन साहित्य उपयोगी नहीं रहता है। उसमें आकर्षण की मात्रा भी काफी कम रहती है।

17.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. भक्ति आन्दोलन के भारतीय समाज पर प्रभाव का वर्णन कीजिए।

उत्तर—भारतीय समाज और संस्कृति के विकास में भक्ति आन्दोलन का विशेष महत्त्व रहा है। साहित्य का जितना निर्माण इस युग में हुआ उतना अन्य युग में शायद ही हुआ हो। भक्ति आन्दोलन की सबसे पहली विशेषता तो यह थी कि यह अखिल भारतीय स्तर पर व्याप्त था। यह आन्दोलन देश और काल की दृष्टि से इतना व्याप्त था कि संसार में ऐसा सांस्कृतिक आन्दोलन दूसरा नहीं हुआ। ईसा की दूसरी शताब्दी में ही आंध्र-प्रदेश में कृष्णोपासना के चिह्न पाये जाते हैं। गुप्त सम्राटों के युग में विष्णु, नारायण, बासुदेव की उपासना ने अखिल भारतीय रूप धारण कर लिया था। पाँचवी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक तमिलनाडु भक्ति आन्दोलन का प्रमुख स्रोत रहा। आलवर सन्तों का यश सम्पूर्ण भारत में फैल चुका था। कश्मीर में लालदेव, तमिलनाडु में अंदाल, बंगाल में चण्डीदास, गुजरात में नरसी मेहता—भारत के विभिन्न प्रदेशों में भक्त-कवि लगभग डेढ़ हजार वर्ष तक जनता के हृदय को अपनी अमृतवाणी से सींचते रहे।

यह भक्ति आन्दोलन ब्रह्म देश, अफगानिस्तान और ईरान की सीमाओं तक विस्तृत था। भारतीय प्रदेशों में तो इसकी धारा पूरे वेग से बह रही थी। सन्त कवियों ने विभिन्न प्रदेशों को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधने में कितना बड़ा काम किया था, उसका मूल्यांकन करना आसान नहीं है। उन्होंने भक्ति के माध्यम से जनता में भावात्मक एकता स्थापित की थी। उस युग में आज के समान दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो, टेलिविजन आदि सुविधाएँ मौजूद नहीं थीं। फिर भी इन सन्तों ने अपने भक्ति भावों से जनता में भावात्मक एकता स्थापित करते हुए राष्ट्रीय एकता को दृढ़ता प्रदान की थी।

भक्ति-आन्दोलन के प्रभाव को अभिव्यक्त करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है—''भक्ति आन्दोलन में जो भावात्मक एकता स्थापित हुई, उसमें जितना फैलाव था, उतनी गहराई भी थी। यह एकता समाज के थोड़े से शिक्षित जनों तक ही सीमित नहीं थी। संस्कृत के द्वारा जो राष्ट्रीय एकता कायम हुई थी उससे यह भिन्न थी। इसकी जड़ें गाँवों और नगरों की अनपढ़ जनता के बीच गहरी होती चली गई थीं। यह एकता प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से कायम हो रही थी। भक्ति आन्दोलन एक ओर अखिल भारतीय आन्दोलन था, दूसरी ओर वह प्रदेशगत, जातीय आन्दोलन भी था। देश और प्रदेश एक साथ राष्ट्र और जाति दोनों की सांस्कृतिक धाराएं एक साथ थीं। भक्ति आन्दोलन की व्यापकता और सामर्थ्य का यही रहस्य है।''

भक्ति आन्दोलन ने हमें राष्ट्रीय एकता के साथ-साथ जनतंत्र अथवा समानता का पाठ भी पढ़ाया क्योंकि भक्ति आन्दोलन में जुलाहे, दर्जी, नाई, महार आदि भिन्न-भिन्न वर्णों के लोग सिमट आये थे। जाति-प्रथा और जातिगत संकीर्णता उस युग में अधिक नहीं थी। वर्णाश्रम, धर्म और जातिप्रथा की तीव्र आलोचना भक्ति साहित्य में जितनी मिलती है उतनी आधुनिक साहित्य में नहीं है। भक्त और सन्त कवियों में उतना भेद नहीं था जितना आलोचक वर्णन करते हैं—संत सभा चहुँ दिस अंबराई, ''श्रद्धा ऋतु बसन्त हित अनहित नहिं कोई।'' आदि उक्तियों में यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता था कि भक्तों और सन्तों में कोई भावात्मक अन्तर नहीं था, इनमें एकता का भाव सर्वत्र विद्यमान था। निराला जी ने गोस्वामी तुलसीदास को रहस्यवादी कवि कहकर कबीर, जायसी, सूर और तुलसी को एक ही चेतना का स्तर प्रदान किया है। इस प्रकार इस रहस्यवाद का सामाजिक महत्त्व असाधारण है। यह रहस्यवाद अद्वैत के साक्षात्कार का दावा करके अनेक धर्मों और मतों व परस्पर विद्वेष का खण्डन करता है। वह उच्च वर्णों के कर्मकाण्डी धर्म के स्थान पर लोक धर्म की स्थापना करता है और इस लोक धर्म का आधार प्रेम था तथा यही प्रेम तत्त्व मानव समाज को एक सूत्र में बाँधने वाला है। उस युग में जितने भी भक्ति के क्षेत्र में अथवा समाज के क्षेत्र में भेद विद्यमान थे उनको तुलसी तथा अन्य कवियों ने दूर करने का प्रयत्न किया था।

इस प्रकार भक्ति आन्दोलन ने भारतीय समाज को एक नई दिशा प्रदान की थी। भक्ति में सगुण-निर्गुण, द्वैत-अद्वैत, साकार-निराकार आदि परस्पर विरोधी भावों को कम करके इनमें एक ही ईश्वरीय शक्ति की स्थापना करने का प्रयत्न किया था। भक्तिकालीन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साहित्य में, समाज में व्याप्त ऊँच-नीच के भेदभाव को समाप्त करने तथा सामाजिक समानता स्थापित करने की कोशिशें स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। आलोचकों ने जायसी और तुलसी को परस्पर विरोधी विचारों वाले कवियों के रूप में प्रस्तुत किया है, परन्तु गहराई से देखने पर पता चलता है कि दोनों में एकता का भाव देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए जायसी ने लिखा था–

''परगट गुपुत सो सरब बिआपी। धरमी चीन्ह, न चीन्है पापी।''

गोस्वामी जी ने इसी के समकक्ष लिखा था–

''अगुण सगुण दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।
एक दारूगत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू।''

इस तरह कहा जा सकता है कि भक्ति आन्दोलन का भारतीय समाज पर प्रत्यक्ष और अमिट प्रभाव पड़ा था। इस सांस्कृतिक आन्दोलन ने भारतीय समाज और संस्कृति को नई दिशा प्रदान करते हुए एक सूत्र में बाँधने का स्तुत्य प्रयत्न किया था। हमारे देश की क्षमता को दृढ़ता प्रदान करने में भी भक्ति-आन्दोलन का विशेष योगदान रहा। अत: भारतीय समाज को एकता के सूत्र में बाँधकर तथा पुराने सड़े गले रीति-रिवाजों, कर्मकाण्डों आदि से मुक्ति दिलवाकर सही मार्ग पर लाने में भक्ति-आन्दोलन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

प्रश्न- 2. 'तुलसी के सामाजिक मूल्य' निबन्ध के आधार पर भारतीय समाज को तुलसीदास की देन विषय पर एक लेख लिखिए।

उत्तर–तुलसीदास एक भक्त या कवि ही नहीं, वे एक सच्चे समाज सुधारक, पथ प्रदर्शक, समन्वयकारी साहित्यकार थे। हिन्दी साहित्य के महत्त्वपूर्ण युग भक्ति काल के महान् सन्त कवि तुलसीदास ने हमारे समाज, धर्म, संस्कृति आदि को जो कुछ प्रदान किया वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य तो इनकी अनुपम देन को युगों-युगों तक नहीं भुला पायेगा। भक्ति-आन्दोलन हिन्दी साहित्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण था तथा तुलसीदास इसी आन्दोलन की देन थे। उन्होंने निर्गुण पंथियों और सगुण मतावलम्बियों को एकता के सूत्र में बाँधा तथा वैष्णवों और शाक्तों को परस्पर मिलाया। उन्होंने धर्म को जन-साधारण के लिए सरल और सुलभ बनाकर पुरोहित के धार्मिक एकाधिकार को समाप्त करने का प्रयत्न किया।

तुलसीदास मानवीय करूणा के अन्यतम कवि थे। उनके आराध्य देव राम दीन बन्धु हैं। गिद्ध, सबरी, निषाद्, कोल, किरात आदि राम के लिए 'भरत सम भ्राता थे।' राम ने इन सभी दीन हीन लोगों और तुच्छ प्राणियों को मोक्ष प्रदान की थी। तुलसीदास नारी की पराधीनता को पहचानने वाले और उसके दुःख से व्यथित होने वाले सहृदय कवि थे। उन्होंने नारी के दुःख से दुःखी होकर ही ये लिखा था
'कत विधि सृजि नारि जगमाहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।''

तुलसीदास ने भारतीय समाज तथा संस्कृति के अनुपम चित्र अपने काव्य में खींचे हैं। उदाहरण के लिए जनक वाटिका में गौरी पूजन के लिए सखियों के साथ जाती हुई सीता, वृद्ध दशरथ और युवती कैकयी का प्रेम, राम का बनवास, राम-रावण का युद्ध आदि हमारे तत्कालीन मानव समाज का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं और इन्हीं के साथ आदर्श समाज का मानचित्र भी तुलसी के काव्य में दिखाई देता है जो एक सुखी समाज अथवा रामराज्य के रूप में आज भी जाना जाता है। तुलसीदास ने पीड़ित जन-साधारण की वाणी को अपने काव्य में स्वर प्रदान किया है। उन्होंने दरिद्रता को रावण कहा है जो सारे संसार को दबाये हुए है। काशी में फैली महामारी का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने गरीबों के दु:ख-दर्द को ही अपने काव्य का विषय बनाया है।

तुलसीदास जी का काव्य निराशाजन्य काव्य नहीं है। उसमें समाज, संस्कृति और धर्म के उत्थान की भावना परिलक्षित होती है। तुलसीदास का साहित्य एक ओर आत्मनिवेदन और विनय का साहित्य है तो दूसरी ओर प्रतिरोध का साहित्य है। सबसे बड़ी विशेषता इसमें यह रही है कि समन्वय की भावना पर आधारित है। अपने समन्वयवादी दृष्टिकोण से तुलसी ने हमारे समाज के सूत्र में बाँधने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है। निर्गुण-सगुण, द्वैत-अद्वैत, वैष्णव-शैव आदि विभिन्न भक्ति धाराओं और मत-मतान्तरों को तुलसीदास ने एकरूपता प्रदान करने का प्रयत्न किया था। यह उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम है कि एक-दूसरे से विरोध रखने वाले वैष्णव-शैव आदि मिलजुल कर रहने लगे तथा एक-दूसरे के आराध्य देवों की पूजा-अर्चना करने लगे। उन्होंने भक्तों को भगवान से भी बढ़कर महत्त्व दिया है। इसलिए उन्होंने 'राम ते अधिक राम कर दासा' कहा है। इसी प्रकार जब भरत चित्रकूट आते हैं तब बादल उनके लिए ऐसी शीतल छाया करते हैं जैसी राम के लिए भी नहीं करते हैं। तुलसीदास ने समाज को धर्म और संस्कृति के साथ-साथ व्यवहारिक जीवन के प्रति भी जागरूक बनाने का प्रयत्न किया है। तुलसीदास का साहित्य सक्रियता का साहित्य है। धनुर्धर राम, दुष्ट रावण का वध करते हैं। समुद्र जब विनम्र प्रार्थना नहीं सुनता है तब वह 'भय बिनु होय न प्रीति' का मंत्र सिद्ध करते हैं। तुलसी का साहित्य जीवन की अस्वीकृति का साहित्य नहीं है। वे उन लोगों का मजाक उड़ाते हैं जो काम-क्रोध के मारे रात को सो नहीं पाते। केवल राम का भक्त चैन से सोता है। राम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ने मर्यादित जीवन यापन करते हुए समाज को भी यही प्रेरणा दी थी। रावण की काम भावना और नारद का मोह अमर्यादित है इसलिए निन्दनीय और दण्डनीय है, जबकि पुष्पवाटिका में कंग्नन किंकिन धुनि में मदन दुन्दुभि सुनने वाले राम का प्रेम मर्यादित है, परन्तु समुद्र पर, रावण पर राम का क्रोध मर्यादित है। तुलसीदास के काव्य में धरती-प्रेम अथवा मातृभूमि प्रेम का चित्रण बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। यूरोप के संतों की भाँति तुलसीदास जी को भी स्वर्ग का मोह और नरक का भय नहीं था। उनके लिए मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर थी। अपने रामचरितमानस में उन्होंने लिखा है—

जदपि सब बैकुण्ड बखाना। वेद पुरान विदित जग जाना।
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ। यह प्रसंग जाने कोउ कोऊ।

इस प्रकार राम के हृदय में जो धरती प्रेम, दीन-हीन लोगों के प्रति सहानुभूति आदि भावों का चित्रण तुलसीदास जी ने अनायास ही नहीं कर दिया है। वह उनके हृदय में उमंग हुआ प्रेम का प्रवाह था, राम के माध्यम से साकार हो उठा है। तुलसीदास ने अपने हृदय के अपार प्रेम और करुणा को राम के रूप में प्रकट किया। राम उनको प्रेम और करुणा के अथाह सागर के रूप में दिखलाई देते थे।

''जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी'', कहकर तुलसीदास ने उक्त तथ्य को स्पष्ट कर दिया है। तुलसी के 'राम' अन्य कवियों—वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि के 'रामों' से भिन्न हैं, उसमें हमें स्वयं तुलसीदास की मानवीय छवि के दर्शन होते हैं। 'विनय पत्रिका' के तुलसी की छाप भरत के चरित्र पर चित्रित हुई है। भरत ही नहीं रामचरितमानस के प्रत्येक पात्र में तुलसी की कोई-न-कोई विशेषता अवश्य विद्यमान है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत किया है तथा समाज को राम, भरत आदि श्रेष्ठ चरित्रों की भाँति अपने आपको ढालने का संदेश दिया है। तुलसी ने हमारी संस्कृति के निर्माण में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय जनता ने जिस तरह उनके काव्य को अपनाया है, इस प्रकार अन्य किसी कवि के काव्य को दुनिया में शायद ही अपनाया गया हो। अत: कहा जाता है कि भारतीय समाज पर तुलसीदास की अमिट छाप अंकित है। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' आज भी जनमानस में पूर्णतया रमा हुआ है। इनकी लोकप्रियता के लिए तुलसीदास द्वारा अथवा अन्य किसी संघ या समाज द्वारा किसी प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। अपनी विशेषताओं के कारण ही करोड़ों हिन्दी भाषियों के लिए यह धर्म ग्रन्थ, नीति-ग्रन्थ, काव्य-ग्रन्थ आदि के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। हिन्दी भाषी जनता को संगठित करके उसमें जातीय एकता का भाव उत्पन्न करने में तथा हिन्दी भाषी प्रदेशों के जनपदों में अलगाव के भावों को दूर करने में 'रामचरितमानस' की अपूर्व भूमिका रही। इस तरह तुलसीदास के काव्य का अन्यतम महत्त्व है। इसमें भारत की कोटि-कोटि जनता की व्यथा, प्रतिरोध-भावना और सुखी जीवन की आशंका व्यक्त हुई है।

प्रश्न- 3. डॉ. रामविलास शर्मा की निबन्ध शैली को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

रामविलास शर्मा की निबन्ध शैली पर एक सोदाहरण टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—रामविलास शर्मा हिन्दी में शुक्लोत्तर युग के समीक्षक तथा प्रगतिशील निबन्धकारों में अन्यतम स्थान के हकदार हैं। उनके द्वारा लिखित निबन्धों का विषय-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक रहा है। शर्मा जी ने जो निबन्ध लिखे हैं उसमें समीक्षात्मक निबन्धों की मात्रा अधिक है। उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो अंग्रेजी साहित्य से ही रहा है। इनके द्वारा रूसी साहित्य की कृतियों पर भी निबन्ध लिखे गये हैं। हिन्दी-साहित्य में शर्मा जी की विद्वत्त और लेखन कला बहुत अद्‌भुत रही है। डॉ. शर्मा ने हिन्दी जगत में आलोचना साहित्य को नया रूप प्रदान किया है। उनका प्रगतिशील दृष्टिकोण उनकी आलोचनाओं में अनुस्यूत है।

डॉ. रामविलास का हिन्दी के प्रगतिशील निबन्धकारों में महत्त्वपूर्ण स्थान है उनके चिन्तन का सुदृढ़ पक्ष सैद्धान्तिक निबन्धों में अभिव्यंजित हुआ है। शर्मा जी के निबन्धों को विचारात्मक निबन्ध की अभिधा प्राप्त है। उनके सभी निबन्ध तीन वर्ग में आते हैं। कृति सम्बन्धी, कृतिकार सम्बन्धी, साहित्यिक प्रवृत्तियों से सम्बन्धित। शिल्पकला की दृष्टि से उनके निबन्ध दो प्रकार के हैं—गम्भीर विचारात्मक और समीक्षात्मक।

भाषागत विशेषताएँ

डॉ. रामविलास शर्मा के निबन्धों की भाषा केवल संस्कृतनिष्ठ नहीं है, उनकी भाषा विषयानुकूल, व्यावहारिक, सरल और सुबोध भी है। शर्माजी के निबन्धों की विशेषताएँ इसी प्रकार हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. तत्सम शब्दावली का प्रयोग—डॉ. शर्मा ने अपने निबन्धों में तत्सम शब्दों को भी स्थान दिया है। इन तत्सम शब्दों से भाषा में प्रवाह बना रहा है। द्विजेतर, दृढ़, भिन्न, अन्तरगत, विद्वेष, विह्वल, व्यक्त, अव्यक्त, सुलभ, परित्यक्त आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग इनके प्रस्तुत निबन्ध में देखा जा सकता है।

2. संस्कृत निष्ठ शब्दावली का प्रयोग—डॉ. रामविलास शर्मा ने अपने निबन्धों में संस्कृत-शब्दों का प्रयोग भी किया है किन्तु ये शब्द बहुत कम मात्रा में हैं यथापर्यन्त, सार्वदेशिक, चिन्तन, अधिकाधिक, बोधगम्य, प्रतिद्वन्द्विता, प्रभुत्व आदि शब्दों को अपने निबन्ध साहित्य में स्थान दिया है।

3. अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग—डॉ. शर्मा ने अंग्रेजी का प्रयोग भी अपने निबन्धों में सफलतापूर्वक किया है। यथा—रोड, बायकॉट, एडीटर, सोसाइटी, ट्रेडीशन, प्रोग्रेस इत्यादि।

4. फारसी व उर्दू शब्दों का प्रयोग—डॉ. रामविलास शर्मा ने अपने निबन्धों में उर्दू, फारसी शब्दों का बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए ये शब्द देखे जा सकते हैं—हर दर्जा, खासियत, नजदीक, कौवा, कोयल, शामिल, मजदूर, फतह, कौम, बेहद, जाहिर, लफ्फाजी, नाज तमक, सबब, जिम्मेदारी, खास, जुबान, आदमियत, जल्दबाद, सवाल, लाजिमी आदि।

5. प्रेषणीयता से युक्त भाषा—डॉ. शर्मा के निबन्धों की भाषा की यह भी एक विशेषता है कि उनकी भाषा सरल, सुबोध और प्रेषणीयता के सभी गुणों से युक्त है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—''प्रेमचन्द ने राष्ट्रभाषा और हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में जो भाषण दिये थे उनमें एक तरफ तो साम्राज्यवादियों की गुलामी के हर रूप में बेहद नफरत जाहिर होती है। दूसरी तरफ हर जगह यह दृढ़ विश्वास जाहिर होता है कि हिन्दी और उर्दू एक ही कौम की जुबान हैं और उनका एक होना लाजमी है।''

लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग—निबन्धकार डॉ. शर्मा ने अपने निबन्ध साहित्य में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है। लोकोक्तियाँ और मुहावरे भाषा को अभिव्यक्ति की दृष्टि में अर्थवान और संप्रेषणीय बनाने में सफल रहे हैं, यथा—''प्रेमचन्द ने उन लोगों को कड़ी फटकार बताई जो इस गुलामी पर नाज करते थे। उन्होंने तमाम अंग्रेजी भक्तों पर घड़ों पानी उड़ेलते हुए कहा था।''

''प्रेमचन्द का स्वाभिमान यह देखकर तिलमिला उठता था कि गुलाम देश के बुद्धि जीवी अपने मालिकों की भाषा पर अभिमान करते हैं।''

डॉ. रामविलास शर्मा की भाषा स्पष्ट, सहज, सरल और ओज गुण से युक्त है। भाषा में प्रवाह और चुस्ती लाने के लिए उन्होंने व्यावहारिक शब्दावली का प्रयोग भी अपने निबन्धों में किया है।

शैलीगत विशेषताएँ

निबन्धकार डॉ. रामविलास शर्मा के निबन्धों की भाषा की तरह ही उनकी शैली भी अनेक विशेषताओं को लिये हुए हैं। शैलीगत विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं—

1. प्रवाह शैली—डॉ. शर्मा की शैलीगत विशेषताओं में प्रवाह शैली प्रमुख रूप से है। शर्मा जी जिस तरह तीव्र गति से आगे बढ़े हैं उसी क्रम और गति का निर्वाह करते हुए वे आगे की ओर बढ़ते रहे हैं। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—''हिन्दुस्तान में कौम की एकता में हिन्दी, उर्दू का विवाद एक बहुत बड़ी बाधा बना हुआ था। प्रेमचन्द इसके लिखने वालों को दो कौमों के लेखक नहीं मानते थे। वे उन्हें नजदीक लाना चाहते थे जिससे कि एक मिली-जुली साहित्यिक भाषा का चलन हो सके।''

2. व्यंग्यात्मक शैली—डॉ. शर्मा जी के निबन्धों में व्यंग्य शैली का भी गहरा पुट दिखाई देता है। यह हास्य या विनोद रूप जब व्यंग्य करने के लिए छटपटाता है तो उसकी तीक्ष्णता क्रोध की ज्वाला में बदलकर प्रकट होती है। यथा—''जैनेन्द्र जी ने 'सुनीता' में जो भाभीवाद शुरू किया था, यशपाल जी ने मानों वही सूत्र 'दादा कामरेड' उपन्यास में पकड़ लिया था।''

3. उद्धरण शैली—डॉ. रामविलास शर्मा के निबन्ध में उद्धरण शैली का प्रयोग भी हुआ है, यथा—

1. ''रामहिं केवल प्रेम पियारा, जानि लेउ जो जान निहारा।''
2. ''काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ।''
3. ''वेद पंथ जे नहिं चलहिं, ते भूलहिं वन माँझ।''
4. ''सन्त सभा चहुँ दिस अँबराई।''

ये सभी उद्धरण शर्मा जी द्वारा लिखित निबन्ध 'तुलसी के सामाजिक मूल्य' को बहुत प्रभावी एवं प्रेषणीय बनाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. लघु वाक्यावली का प्रयोग—रामविलास जी ने अपने निबन्धों में छोटे-छोटे वाक्यों और शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ ये वाक्य देखिये—"प्रेमचन्द ने साहित्यकारों के लिए लिखा था। उन्होंने कौम की तारीख बनाई है, उसकी संस्कृति बनाई है। प्रेमचन्द ने किस कौम की तारीख बनाई है? उसकी संस्कृति बनाई है। प्रेमचन्द किस कौम की तारीख बनाने वाले साहित्यकार थे? उनके साहित्य का आदर सारे हिन्दुस्तान में हुआ है। खासतौर से वे हिन्दी भाषी जाति के लेखक थे। वे हिन्दुस्तानी कौम की तारीख लिखने वाले साहित्यकार थे।"

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि डॉ. रामविलास शर्मा की निबन्ध शैली सरल, सुबोध और व्यावहारिक है। इनकी भाषा शैली में कृत्रिमता या दुरूहता का समावेश नहीं है। इन्होंने अपने निबन्धों में लोकोक्ति, मुहावरों का सफल प्रयोग किया है। इनकी भाषा में ओज गुण भी स्थान-स्थान पर प्रयुक्त हुआ है। शैली की विविधता और विषयानुकूलता ध्यान आकृष्ट करती है। अतः कहा जा सकता है कि डॉ. रामविलास शर्मा अपने युग के एक प्रसिद्ध प्रगतिशील निबन्धकार रहे।

प्रश्न-4. निबन्धकार के रूप में डॉ. रामविलास शर्मा का परिचय देते हुए तुलसी के सामाजिक मूल्यों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—सामान्य विवेचन—डॉ. शर्मा हिन्दी के मार्क्सवादी समीक्षक के रूप में विख्यात हैं। साहित्य की विविध समस्याओं पर इनके निबंध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उदाहरणार्थ—राष्ट्र भाषा की समस्या, प्रगति और परम्परा, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य आदि। निराला की साहित्य साधना नामक पुस्तक जो तीन खण्डों में प्रकाशित हुई है, इस समय जनता विशेष रूप से जनता के नेताओं में, उनकी पार्टियों में—वह भावात्मक एकता है, जो तुलसी के युग में थी? यह प्रश्न करने से ही भक्ति आन्दोलन के राष्ट्रीय महत्त्व का ज्ञान हो जायेगा।

भक्ति आन्दोलन की व्यापकता—रामविलास शर्मा ने भक्ति आन्दोलन को व्यापकता प्रदान की है। इन्होंने बतलाया है कि तुलसीदास के समय में विभिन्न क्षेत्रों के कलाकार और साहित्यकार एक-दूसरे से बहुत अधिक परिचित रहा करते थे। आज ऐसी स्थिति नहीं है यही कारण है कि तुलसी के समय में भक्ति आन्दोलन अत्यन्त व्यापक रूप लेकर सामने आया। इस सम्बन्ध में लेखक ने बतलाया है कि भक्ति आन्दोलन की व्यापकता अनेक कारणों से प्रमाणित होती है। विभिन्न भाषाओं के साहित्यिक आन्दोलन से लेकर अनेक शोध ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इनसे यह स्पष्ट होता जा रहा है कि हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के भक्ति साहित्य में जो समानताएँ दिखाई देती हैं वे आकस्मिक नहीं हैं। वे इतर प्रदेशों के साहित्य से परिचित होने का फल हैं।

भक्ति आन्दोलन में जो भावात्मक एकता स्थापित हुई, उसमें जितना फैलाव था, उतनी गहराई भी थी। वह एकता समाज के थोड़े से शिक्षित जनों तक सीमित नहीं थी। संस्कृत के द्वारा जो राष्ट्रीय एकता कायम हुई थी, उससे यह भिन्न थी। इसकी जड़ें नगरों और गाँवों की अपढ़ जनता के बीच गहरी चली गई थीं। यह एकता प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से कायम हो रही थी। भक्ति आन्दोलन एक ओर अखिल भारतीय आन्दोलन था, दूसरी ओर वह प्रदेशगत, जातीय आन्दोलन भी था। देश और प्रदेश एक साथ, राष्ट्र और जाति दोनों की सांस्कृतिक धाराएँ एक साथ। भक्ति आन्दोलन की व्यापकता और सामर्थ्य का यही रहस्य है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि लोग यह मानते हैं कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में राष्ट्रीय एकता का अभाव था, वे भ्रम के शिकार हैं। वे भक्ति-आन्दोलन के अखिल भारतीय स्वरूप को भूल जाते हैं।

जनतंत्र का पाठ और अंग्रेज—निबंधकार ने यह प्रश्न उठाया है कि राष्ट्रीय एकता और जनतंत्र का पाठ हमारा अपना पाठ है, जो लोग यह मानते हैं कि जनतंत्र का पाठ हमें अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी ने पढ़ाया, वे गलत ढंग से सोचते हैं। यह कहना भी गलत है कि यदि अंग्रेज न आते तो भारत के लोग संकुचित जातिवाद में फँस जाते। ऐसा कहते समय विद्वान् लोग यह भूल जाते हैं कि भारत में भक्ति-आन्दोलन के दौरान विभिन्न जातियों के लोग जैसे—जुलाहे, दर्जी और कहार सभी एक-दूसरे के निकट थे। आजकल जाति प्रथा जितनी दृढ़ है उतनी नामदेव-दर्जी, सेना-नाई, चोखा-कहार, रैदास-चमार और कबीर-जुलाहे के समय में नहीं थी। जातिगत संकीर्णता की भावना आज के शिक्षित लोगों में भी है, किन्तु उस समय के अनपढ़ लोगों में नहीं थी। एक प्रमाण यह भी है कि वर्णाश्रम धर्म निराला साहित्य पर सर्वाधिक चर्चित पुस्तक है। शर्मा जी का लेखन अनुभव, चिन्तन, मनन और गहन अनुसंधान का लेखन है। इसलिए उसमें बड़ा गांभीर्य और निथरापन है। वे हड़बड़ी में कुछ नहीं लिखते। इनके विचारात्मक निबन्धों में विचारों की प्रखरता है फिर भी कहीं आवेश और आवेग नहीं है बल्कि सारे तथ्य सुलझे हुए रूप में विवेचित हैं। हिन्दी कविता का प्रगतिवादी आन्दोलन प्रगतिवादी समीक्षा से काफी पुष्ट हुआ। इन्होंने हिन्दी जगत को न केवल मार्क्सवादी चिन्तन से अवगत कराया बल्कि उसके साहित्यिक प्रतिमानों को अपनी व्यावहारिक आलोचना में काफी स्थान दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

डॉ. शर्मा का दृष्टिकोण और व्यक्तित्व—साहित्य का उद्देश्य डॉ. शर्मा ने लोक कल्याण माना है और साहित्य में जनवादी मूल्यों को महत्त्व देते हैं। साहित्य के स्थिर और सार्वभौमिक मूल्यों में आस्था रखते हैं। इसी कारण वे साहित्य में रसात्मकता और कलात्मक भूमियों को स्वीकार करते हैं, यद्यपि अन्य प्रगतिवादी इन दोनों ही तथ्यों की अपेक्षा करते हैं। वस्तु और कला में शर्मा जी कला को प्रमुखता देते हैं। निराशामूलक उद्‌गारों, आस्थाहीन दृष्टिकोण, अश्लील चारित्रिक अभाव आदि वस्तुओं का भी घोर विरोध करते हैं।

डॉ. गणेश खरे का मत है कि ''शर्मा जी जैसा अक्खड़ और जुबान का फक्कड़ दो टूक बात करने वाला निबन्धकार हिन्दी में राहुल जी को छोड़कर अन्य कोई नहीं मिलता है। दोनों ही स्वभाव से तेज और तीक्ष्ण दृष्टि सम्पन्न निबन्धकार हैं। दोनों ही वैयक्तिक निबन्धकार हैं और उनके निबन्धों में उनके ही विचारों, आदर्शों और मान्यताओं का एकछत्र साम्राज्य है। अपने मत के समर्थन करने तथा विरोधों का खण्डन करने में शर्मा जी ने अपनी अक्खड़ता का परिचय दिया है। हृदय की निष्फलता, प्रशस्त व्यक्तित्व सम्पन्न, गम्भीर अध्ययन, मनन, चिंतन वाला, व्यापक दृष्टिकोण और विषय के अंतराल को अभिज्ञता के साथ छूने वाली उनकी प्रज्ञा ही उनके निबन्धों में सर्वोपरि है। हास्य-विनोद और व्यंग्य उनकी प्रकृति के सहज लक्षण हैं। इसी कारण उनके किसी भी निबन्ध को देख लीजिए व्यंग्य की तीखी मार मिल जायेगी, व्यंग्य ऐसे जो बिहारी के दोहों से अधिक गम्भीर घाव करते हैं, बिना आहत किए उनका तीर खाली नहीं जाता और बात ऐसी करेंगे कि हँसी को कितना ही रोका जाय, फूट ही निकलेगी।''

डॉ. रामविलास शर्मा ने तुलसी के सामाजिक मूल्य निबन्ध के अन्तर्गत अनेक तथ्यों पर प्रकाश डाला है। सबसे पहले उन्होंने तुलसी को भारत का श्रेष्ठ भक्त कवि सिद्ध किया है। उसके पश्चात् तुलसी के साहित्य का सामाजिक महत्त्व स्पष्ट करते हुए भक्ति आन्दोलन की विशेषताओं और विकासमान स्थितियों को प्रस्तुत किया है। भक्ति आन्दोलन में भावात्मक एकता, राष्ट्रीय एकता और सामाजिक चेतना आदि सभी का महत्त्व बतलाते हुए उसे लेखक ने सांस्कृतिक आन्दोलन बतलाया है। तुलसीदास को इसी आन्दोलन का प्रतीत पुरुष बतला कर यह प्रतिपादित किया है कि तुलसी जन-साधारण के लिए जीवन भर प्रयास करते रहे। तुलसी का समन्वयवाद विविध क्षेत्रों में दिखाई देता है। इतना ही नहीं तुलसी ने नारी की पराधीनता को पहचाना, उसे आगे उठने का अवसर प्रदान किया, भक्ति और श्रद्धा का प्रसार किया, सामन्ती समाज के प्रति विद्रोह किया, इस प्रकार तुलसीदास का काव्य सामाजिक महत्त्व से युक्त है। यही सब इस निबन्ध का विषय है और इसी विषय वस्तु को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

श्रेष्ठ भक्त कवि—डॉ. रामविलास शर्मा ने तुलसीदास को भारत का श्रेष्ठ कवि प्रामणित किया है। निबन्ध के प्रारम्भ में ही उन्होंने तुलसी को भक्ति-आन्दोलन का निर्माता और भक्ति-आन्दोलन की उपलब्धि कहा है। उनके साहित्य का सामाजिक और भक्तिपरक महत्त्व बतलाकर उनकी समाज नीति और भक्ति भावना को एक-दूसरे से सम्बन्धित बतलाया है।

भक्ति आन्दोलन और विशेषताएँ—डॉ. रामविलास शर्मा ने भक्ति आन्दोलन को अखिल भारतीय आन्दोलन बतलाया है। यही उनकी पहली विशेषता है। ईसा की दूसरी शताब्दी में ही आन्ध्र-प्रदेश में कृष्णोपासक के चिह्न पाये जाते हैं। गुप्त सम्राटों के युग में विष्णु, नारायण, वासुदेव की उपासना ने अखिल भारतीय रूप ले लिया था। पाँचवी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक तमिलनाडु भक्ति-आन्दोलन का प्रमुख स्रोत रहा है। आल्वार सन्तों की कीर्ति सारे भारत में फैल गयी। काश्मीर में बलदेव, तमिलनाडु में आन्दाल, बंगाल में चंडीदास, गुजरात में नरसी मेहता—भारत के विभिन्न प्रदेशों में भक्त कवि लगभग डेढ़ हजार वर्षों तक जनता के हृदय को अपनी अमृतवाणी से सींचते रहे।

भक्ति-आन्दोलन का विकास—लेखक ने जिस भक्ति-आन्दोलन की ऊपर चर्चा की है वह भक्ति आन्दोलन ब्रह्म देश, अफगानिस्तान और ईरान की सीमाओं पर रुक जाता है। सिन्ध, कश्मीर, पंजाब, बंगाल, महाराष्ट्र, आन्ध्र और तमिलनाडु आदि पर भक्ति आन्दोलन की धारा पूरा प्रभाव डालती हुई आगे बढ़ती दिखलाई देती है। इस विषय में डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि ''भक्त कवियों ने विभिन्न प्रदेशों में राष्ट्रीय एकता के सूत्रों को बाँधने का बहुत बड़ा काम किया था। इनके पास राजनीति शास्त्र के कोई ऐसे परिचित सूत्र नहीं थे, जिन्हें वे आये बिन दोहराते हुए जनता को एकताबद्ध करते। उन्होंने भावात्मक रूप से जनता को एक किया। इस भावात्मक एकता का मुख्य भाव था—भक्ति का। उस समय दैनिक समाचार पत्र नहीं थे। साप्ताहिक और मासिक-पत्र नहीं थे। प्रचार की सुविधा के लिए रेडियो नहीं था। आज ये सब साधन सुलभ हैं। किन्तु क्या आज भारतीय और जातिप्रथा की जितनी आलोचना भक्ति-साहित्य में दी है, उतनी आधुनिक साहित्य में नहीं है। इससे भक्ति-आन्दोलन की स्थिति स्पष्ट हो जाती है और यह भी पता लग जाता है कि जनतंत्र का पाठ हमें अंग्रेजी ने नहीं पढ़ाया, वह तो हमारी अपनी विशेषता रही है जो भक्ति-आन्दोलन से निकली है।''

भक्त और सन्त कवि—भक्त और सन्त कवियों को प्राय: लोगों ने अलग-अलग करके देखा है। इस आन्दोलन में सन्तों को शामिल करना आलोचकों ने उचित नहीं समझा है। इस स्थिति का उत्तर देते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने यह बतलाया है कि सन्त और भक्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अलग-अलग न होकर एक ही थे। वास्तव में तत्कालीन भक्त और सन्त अपने अन्दर ऐसी अलगाव की भावना रखते भी नहीं थे। यह अन्तर और भेद तो हिन्दी के आलोचकों ने किया है। तुलसीदास और कबीरदास दोनों ने सन्त और भक्त दोनों में कोई अन्तर नहीं किया है। तुलसी तो सन्त और भक्त को एक-दूसरे का पर्यायवाची मानते थे। कबीर ने भी लिखा है–

सहजै सहजै मेला होयगा, जागी भक्ति उतंगा।
कहै कबीर सुनो हो गोरख चलो गीत के संगा।

जायसी ने भी वेद, पुराण और कुरान सभी का समान आदर किया है।

उन्होंने लिखा है–''वेद-पंथ जे नहिं चलहिं, ते भूलहिं वन माँझ।'' यह भक्ति जायसी की है। पुराणों के बारे में लिखा था, ''एकहि विधि चीन्हहु करहु गियानू उस पुरान महँ लिखा बयानू।''

तुलसीदास विषयक मत–निराला ने अपने निबन्धों में तुलसीदास को रहस्यवाद कवि माना है। ऐसा इसलिए माना है कि वे मानते थे कि कबीर, जायसी, सूर और तुलसी की चेतना का एक सामान्य स्तर है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि रहस्यवाद सामान्य महत्त्व से शून्य नहीं था। इन कवियों का रहस्यवाद अद्वैत ब्रह्म के साक्षात्कार का दावा करके अनेक धर्मों और मतों के परस्पर विद्वेष का खण्डन करता था। वह उच्च वर्ण के कर्म-काण्ड धर्म के स्थान पर लोक-धर्म की स्थापना करता था। इस लोक-धर्म का आधार प्रेम था। यही कारण है कि कबीर, तुलसी, जायसी और सूर–चारों ही कवि अपने ज्ञान नेत्र खुलने के बाद आनन्दित हुए थे और मानव प्रेम को महत्त्व देने लगे थे। इस प्रकार इन कवियों के यहाँ ज्ञान, चेतना, मानव प्रेम से सम्बन्धित होकर सामने आयी है।

भक्ति-आन्दोलन की देन तुलसीदास–तुलसीदास अखिल भारतीय भक्ति आन्दोलन के प्रमुख कवि थे। उन्हें इस आन्दोलन की देन कहा जा सकता है। तुलसी ने निर्गुण और सगुण, वैष्णव और साक्त को मिलाकर एक किया तथा जन-साधारण के लिए धर्म की सरल व्याख्या की, जिससे वे मानवीय करुणा के प्रचारक और प्रसारक कवि बन गये। उन्होंने नारी की पराधीनता को पहचाना तथा उन्हें विशेष महत्त्व देकर पुरुषों के समकक्ष रखा। तुलसी के साहित्य में जनकपुर, चित्रकूट और अयोध्या सभी स्थानों पर जहाँ शूद्र और अन्त्यज हैं वहीं स्त्रियाँ भी बराबर उनके निकट रही हैं। तुलसी का महत्त्व इसलिए भी है कि उन्होंने अपने काव्य में भारतीय समाज के अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं। इन चित्रों में आदर्श समाज का सुखद मानचित्र उपलब्ध होता है।

तुलसी की वाणी कृषक जनता की वाणी–डॉ. रामविलास शर्मा ने अपने निबन्ध में यह भी प्रतिपादित किया है कि तुलसीदास की वाणी मूलतः पीड़ित कृषक जनता की वाणी है। विनयपत्रिका में ही नहीं, कवितावली में भी इस वाणी को सुना जा सकता है। कवितावली में तो तुलसीदास ने प्रत्यक्ष रूप से किसानों की पीड़ा को चित्रित किया है और दरिद्रता को रावण कहा गया है। तुलसीदास ने काशी में महामारी का वर्णन भी यथार्थवादी शैली में किया है। इससे सिद्ध होता है कि तुलसीदास का साहित्य जनता का साहित्य है। उसमें कृषक भी शामिल हैं, स्त्रियाँ भी शामिल हैं तथा शूद्र आदि निम्न वर्णों के लोग भी स्थान पाये हुए हैं।

भक्ति साहित्य, निराशाजनक नहीं–डॉ. रामविलास शर्मा ने तुलसी के सामाजिक मूल्य शीर्षक के अन्तर्गत यह भी प्रमाणित किया है कि भक्त साहित्य निराशाजनक नहीं है। यह तो उन्होंने स्वीकार किया है कि कहीं-कहीं उसमें निराशा का स्वर है। किन्तु उसे उसी के आधार पर निराशा का प्रसारक साहित्य मानना उचित नहीं है। उन्होंने इस स्थापना का भी खण्डन किया है जिसमें कहा गया है कि मुसलमानों के शासनकाल में पराधीनता के कारण लोग निराशा के गीत गाने लगे थे। उनकी स्थापना यह है कि भक्ति आन्दोलन तुर्क आक्रमण से बहुत पहले का है। गुप्त सम्राटों के जमाने में ही वैष्णव मत का प्रसार हो गया था तथा तमिलनाडु भक्ति-आन्दोलन का केन्द्र था। स्वयं अनेक मुसलमानों ने या कहें कि मुस्लिम सन्तों ने भक्ति-आन्दोलन में योगदान दिया है।

तुलसी का साहित्य : प्रतिरोध, विनय और आत्म-निवेदन का साहित्य–तुलसीदास के साहित्य को डॉ. रामविलास शर्मा ने जहाँ एक ओर आत्म निवेदन और विनय का साहित्य माना है, वहीं दूसरी ओर उसे प्रतिरोध का साहित्य भी स्वीकार किया है। वास्तव में आज भी हमारा समाज और जीवन तुलसी के प्रभाव से मुक्त नहीं हुआ है। तुलसी ने अनेक सामाजिक मान्यताओं और मूल्यों को स्वीकार करके अपने साहित्य का सृजन किया है। तुलसी राम के सामने विनम्र और करुणा है, किन्तु दूसरों के सामने उनका सर ऊँचा रहा है। आत्म-त्याग और स्वाभिमान के साथ-साथ विनयशीलता और करुणा को तुलसीदास ने बहुत बड़े सामाजिक मूल्यों के रूप में स्वीकार किया है।

सामन्ती समाज के साहित्य की सबसे बड़ी कमजोरी निष्क्रियता रही है, तुलसी के साहित्य में इस निष्क्रियता को कहीं भी नहीं देखा जा सकता है। यही कारण है कि उनके राम, रावण का वध करने वाले पुरुषोत्तम हैं, वे सामान्यतः विनय से काम लेते हैं। किन्तु जब विनय से काम नहीं चलता, तब भय भी दिखलाते हैं। रामचरितमानस में समुद्र जब राम की विनय नहीं सुनता तो वे उसे समाप्त करने के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लिए तैयार हो जाते हैं। तुलसीदास ने जीवन की स्थितियों को स्वीकार किया है। अत: उन्होंने काम, क्रोध, मद और लोभ को बुरा भी बतलाया है और कभी-कभी आवश्यक भी माना है। तुलसी के हृदय में प्रेम का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है। वहीं प्रेम प्रवाह उनकी कृतियों में देखा जा सकता है। तुलसी ने अपनी भावना के अनुसार ही राम को प्रेम और करुणा से युक्त करके देखा है। तुलसी का काव्य लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है, उनके समकक्ष संसार का कोई भी दूसरा कवि ऐसा नहीं दिखाई देता है, जिसने साधारण जनता को आत्मीयता से अपनाया हो। यही कारण है कि रामचरितमानस का प्रचार और प्रसार अपने आप हुआ है। रामचरितमानस सम्पूर्ण भारत में एक ही भावना से अपनाया गया है। यही कारण है कि भक्ति आन्दोलन और तुलसी का काव्य राष्ट्रीय महत्त्व रखता है।

17.3 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि तुलसी का साहित्य और भक्ति-आन्दोलन दोनों ही सामाजिक महत्त्व रखते हैं। इन दोनों में ही भारत की जनता की व्यथा, प्रतिरोध भावना और सुखी जीवन की आकांक्षा व्यक्त हुई है। भारत के नये जागरण का कोई महान् कवि भक्ति-आन्दोलन और तुलसीदास को विस्मृत करके अपना काम नहीं चला सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 18 : साहित्य के नये मूल्य

(डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी)

संरचना

18.0 परिचयात्मक भूमिका

18.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

18.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

18.3 सारांश

18.0 परिचयात्मक भूमिका

हिन्दी साहित्य के इतिहास का क्षेत्र हो या हिन्दी आलोचना का, निबन्ध का मैदान हो या उपन्यास का, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिन्दी गद्य के शलाका पुरुष के रूप में सबसे आगे तो दिखायी पड़ते हैं, साथ ही वे युग-प्रवर्तक गद्यकार के रूप में परवर्ती साहित्यकारों को प्रभावित करते हुए हिन्दी गद्य के नये आयाम भी प्रदान करते हैं। हिन्दी साहित्य के अमर मनीषी, भारतीय संस्कृति के अनूठे व्याख्याता, ललित निबन्ध शैली के प्रवर्तक आचार्यश्री उन बिरले हिन्दी साहित्यकारों में से हैं, जिन्होंने हिन्दी निबन्ध लेखन की अनेक स्वतंत्र परम्पराओं को जन्म दिया।

द्विवेदी जी के प्रथम श्रेणी के निबन्ध हिन्दी साहित्य के शोध-परक ग्रंथों में दिखाई पड़ते हैं। 'नाथ-सम्प्रदाय', 'कबीर', 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', 'साहित्य मर्म', 'विचार-वितर्क', 'हमारी साहित्यिक समस्याएँ', 'मध्यकालीन धर्म-साधना', 'सूर-साहित्य' आदि ग्रंथों में द्विवेदी जी का गम्भीर शोधक, व्याख्याता और आदर्श आलोचक का रूप मुखर होता है। 'इस कोटि में हमें इनके पाण्डित्य की गहरी छाप मिलती है।' इनकी शैली सुव्यवस्थित तथा चुस्त है। विचारों की सुगुम्फित परम्परा कहीं-कहीं शुक्लजी को भी मात कर गयी है। विषय और विवेचन दोनों दृष्टियों से इनके निबन्ध अतुलनीय हैं। दूसरी कोटि में आते हैं उनके 'अशोक के फूल' नामक संग्रह में संकलित 'ललित निबन्ध' जो एक नयी परम्परा का सूत्रपात करते हैं। 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता', 'विचार-प्रवाह' और 'कुटज' इसी श्रेणी के अन्य निबन्ध संकलन हैं। हमारी अतीत कालीन संस्कृति का जयघोष, संस्कृति की अमूल्य धरोहर का वर्चस्व, नवीन जीवन-बोध उत्कृष्ट जिजीविषा, नयी समस्याओं से व्यंग्यात्मक होने के कारण हँसी-हँसी में बड़ी से बड़ी बात समझा देने की चातुरी इन निबंधों की भंगिमा है और ये निबन्ध हिन्दी गद्य शैली में नया कीर्तिमान बनाते हैं।

'सभ्यता और संस्कृति' शीर्षक संग्रह में संग्रहित निबन्ध उपयोगिता की दृष्टि से अतीव महत्त्वपूर्ण हैं। सभ्यता और संस्कृति का विवेचन करने वाले ये निबन्ध भारतीय संस्कृति का सौन्दर्य दर्शन कराते हैं, सभ्यता और संस्कृति के अन्तर को स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हुए उनकी सुदीर्घ परम्पराओं का दर्शन कराते हैं और अपनी सहज अभिव्यक्ति द्वारा जन-मानस के हृदय को अभिभूत कर गौरवमय अतीत की नींव पर भविष्य का भव्य भवन निर्मित करने की वर्तमान पीढ़ी को दिशा देते हैं।

संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी और न जाने कितनी विविध प्रान्तीय भाषाओं के जानकार आचार्य द्विवेदी जी इतिहास, दर्शन, संस्कृति, धर्मशास्त्र, साहित्य, ज्योतिष आदि विषयों में पारंगत पण्डितों तथा अधिकारिक विद्वानों की श्रेणी में अग्रगण्य हैं। ''गद्यं कवीनां निकष वदन्ति', को पूर्ण रूप में सार्थक और चरितार्थ करते दिखाई देते हैं। आचार्य जी के निबन्ध, उपर्युक्त सांकेतिक सभी शैलियों के प्रवर्तक हैं। द्विवेदी जी, जिनका अनुकरण करते हुए हिन्दी के परवर्ती गद्यकारों ने निबन्ध-विधा को नये-नये आयाम दिये हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की परम्परा में ठीक उन्हीं के बाद गिने जाने वाले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का योगदान हिन्दी साहित्य में अविस्मरणीय है। बाबू गुलाबराय जी के शब्दों में 'द्विवेदी जी बालू में से तेल निकालने की कला को भली-भाँति जानते हैं। शुष्क से शुष्क विषय को वे अपनी शैली के चमत्कार से स्निग्ध और सरस बना देते हैं और क्षुद्र से क्षुद्र विषय को वे अपने पाण्डित्य के बल पर महान् बना देते हैं। यही निबन्धकार की सबसे बड़ी कला है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी साहित्य में अद्भुत जीवनी-शक्ति उद्वेलित हो रही थी—एक अपूर्व उन्मुक्त भावधारा। इसमें परिपाटी-विहीत और परम्परायुक्त रस सृष्टि के स्थान पर आत्मानुभूति आवेगधारा और कल्पना का प्राधान्य था। इस विशिष्ट दृष्टि भंगी को अपने ध्यान में रखकर कुछ विद्वानों ने उस युग के साहित्य को स्वच्छन्दतावाद नाम दे दिया है। पर यह शब्द उस साहित्य की आत्मा को सम्पूर्ण रूप से प्रकट करने में समर्थ नहीं है।''

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यावतरण हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक व निबन्धकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'साहित्य के नये मूल्य' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत है, जिसका संकलन हमारी पाठ्य-पुस्तक समीक्षात्मक निबन्ध में किया गया है। श्री द्विवेदी जी ने इसमें अंग्रेजी साहित्य में प्रवर्तित तथा कथित स्वच्छन्दवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए उसके इस नामकरण को अपूर्ण बतलाया है।

व्याख्या—आचार्य द्विवेदी जी का कथन है कि जीवन्त साहित्य के सम्पर्क में आने से जीवन्त मनुष्य प्रभावित होता है अर्थात् साहित्य समाज का दर्पण होता है और समाज भी साहित्य से प्रभावित होता है। इसका उदाहरण उन्होंने अंग्रेजी साहित्य के रूप में प्रस्तुत किया है, जो उन्नीसवीं शताब्दी में रचा गया। वैसे तो किसी भी शताब्दी में रचा गया साहित्य समाज को प्रभावित करता है, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी में जो साहित्य रचा गया उसमें समाज को प्रभावित करने की अद्भुत जीवन्तशक्ति उद्वेलित हो रही थी क्योंकि यह एक अपूर्व उन्मुक्त भावधारा से परिपूर्ण साहित्य था। इस साहित्य में अपनी कतिपय विशिष्ट विशेषताएँ थीं जो उसके पूर्व रचित साहित्य में नहीं थीं। ये विशेषताएँ ही उस साहित्य को अद्भुत जीवनी शक्ति प्रदान करती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में रचित अंग्रेजी साहित्य में अब तक की प्रचलित परिपाटियों और परम्पराओं से युक्त रस दृष्टि के स्थान पर आत्मानुभूति आवेगों के चित्रण की एक विशिष्ट धारा तथा अद्भुत कल्पनाओं का मिश्रण व समन्वय था। इस साहित्य को इन विशेषताओं से पूर्ण दृष्टिकोण के आधार पर कुछ विद्वानों ने उस युग के साहित्य को स्वच्छन्दतावाद की संज्ञा से अभिहित किया। परन्तु यह अभिधान अर्थात् स्वच्छन्दतावाद उस साहित्य की आत्मा को सम्पूर्ण रूप से प्रकट करने में समर्थ नहीं है अर्थात् स्वच्छन्दतावाद से भी बहुत आगे बढ़कर स्वच्छन्देतर अनेक आत्मानुभूतियों की इसमें सम्यक् अभिव्यक्ति हुई थी। इसी आधार पर स्वयं जीवन के आवेगमय पहलू पर विशिष्ट बल दिया गया था। इस प्रकार इन दोनों नामों अर्थात् स्वच्छन्दतावाद व रोमांटिक साहित्य से यह प्रकट होता है कि उसे केवल स्वच्छन्दतावाद नाम से अभिहित करना समीचीन नहीं है।

विशेष—लेखक की साहित्यिक दृष्टि का पैनापन व अंग्रेजी साहित्य का गम्भीर अध्ययन व मनन इस अवतरण से स्पष्ट होता है। उसने साहित्य के नये मूल्य की प्राणप्रतिष्ठा की है।

(2)

''कवि-चित्त जब बाह्य परिस्थितियों के साथ समझौता नहीं कर पाता, तब छन्दों की भाषा अत्यंत प्रभावशाली होकर प्रकट होती है। आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति और बाहरी असुन्दर-सी लगने वाली परिस्थिति की टकराहट से जो विक्षोभ पैदा होता है वह सभी देशों में काव्य की भाषा को मुखर बना देता है, उसमें मूर्त का रूप और आवेग के पंख लगा देता है।''

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध 'साहित्य के नये मूल्य' शीर्षक निबन्ध से अवतरित है। इसमें लेखक ने कवि के चित्त की आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति और बाहरी असुन्दर-सी प्रतीत होने वाली परिस्थिति की टकराहट के परिणामों का विवेचन किया है।

व्याख्या—कवि का चित्त भावुक व सहृदय होता है। वह जब सामाजिक और व्यक्तिगत बाहरी परिस्थितियों के साथ समझौता नहीं कर पाता है तब छन्दों का सहारा लेता है और उसकी रचना में छन्दों की भाषा अत्यंत प्रभावशाली होकर अभिव्यक्त होती है अर्थात् कवि अपनी सौन्दर्यानुभूति को छन्दों के माध्यम से प्रकट करता है। छन्दों के इस अवतरण व कौशल से कवि चित्त की संघर्षपूर्ण स्थितियों का अंकन होता है। कवि के चित्त में आन्तरिक सौन्दर्य और बाहर की असुन्दर-सी लगने वाली परिस्थितियों की टकराहट से विक्षोभ उत्पन्न होता है और उस समय कवि अपने इस चित्त विक्षोभ को ही प्रकट करता है, यह प्रकटीकरण छन्दों की भाषा में होता है। आशय यह है कि कवि चित्त के विक्षोभ से ही छन्दों की रचना होती है। संसार के साहित्य में सर्वत्र यह देखा गया है कि आन्तरिक अनुभूति और बाहरी परिस्थितियों की अनुकूलता से जागृत विक्षोभ काव्य की भाषा को मुखर बना देता है और ऐसी रचनाओं से जब मूर्त की अभिव्यक्ति होती है तथा आवेग का प्रकटीकरण होता है, तब कवि की भाषा में पंख लग जाते हैं। आशय यह है कि काव्य में मूर्त का रूप तथा आवेग कवि के विक्षोभ को प्रकट करने में विशेष रूप से सहायता प्रदान करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कवि के चित्त में इस विक्षोभ अर्थात् उसकी आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति और बाहरी असुन्दर-सी लगने वाली परिस्थिति की टकराहट को आदि कवि वाल्मीकि के उपाख्यान के उदाहरण से स्पष्ट किया है कि जब ऋषि वाल्मीकि का मनुष्योचित्त रूप अपने आन्तरिक आदेशों या आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति के सर्वथा विरुद्ध होने वाले कार्य क्रौञ्च मिथुन में से एक का वध व्याध द्वारा किये गये कार्य को असुन्दर मानता है तो अन्तर और बाह्य में टकराहट हुई और उससे ऋषि के चित्त में क्षोभ जागृत हुआ और उनके चित्त का यह क्षोभ नवीन छन्दों युक्त अशरीरिणी वाणी के माध्यम से मुखर हो उठा और उन्होंने 'रामायण' जैसी कृति की सर्जना की।

विशेष– विद्वान् लेखक ने काव्य रचना-व्यापार का स्पष्टीकरण किया है और कवि के चित्त के विक्षोभ को ही काव्य-रचना का मूल कारण स्वीकार किया है। जब चित्त में आन्तरिक-बाह्य सौन्दर्य की टकराहट से क्षोभ जागृत हो जाता है तो यही क्षोभ वाणी का विशेषत: छन्द युक्त वाणी का आश्रय लेकर काव्य रूप में अभिव्यक्त होता है।

18.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध 'साहित्य के नये मूल्य' के विचारों का सारांश लिखिये।

अथवा

'साहित्य के नये मूल्य' शीर्षक निबन्ध के माध्यम से सिद्ध कीजिए कि व्यक्ति के स्वतंत्र अनुभूति की अभिव्यक्ति में विद्रोह का स्वर होता है।

उत्तर– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'साहित्य के नये मूल्य' शीर्षक निबन्ध में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि व्यक्ति की स्वतंत्र अनुभूति की अभिव्यक्ति में विद्रोह का स्वर होता है, परन्तु इस विद्रोह के स्वर में एक नयापन होता है, जो अनेक सम्भावनाओं से भरा होता है और स्वागत योग्य होता है। लेखक ने इसी नयेपन को ''नये मूल्य'' कहा है, जिनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, चाहे उस नयेपन को हम कोई भी नाम क्यों न दे दें। केवल किसी भी नाम से साहित्य की नयी भाव-विचार धारा विरोध करने योग्य नहीं होती है वरन् उसमें भविष्य की अनेक संभावनाएँ विद्यमान होती हैं। अपने इस केन्द्रीय विचार के प्रतिपादन में उन्होंने अंग्रेजी साहित्य व हिन्दी साहित्य को आधार बनाया है और अलग-अलग समय में रचित साहित्य के अध्ययन की नवीन दृष्टि पर बल दिया है।

उन्नीसवीं शताब्दी का अंग्रेजी साहित्य– 'साहित्य के नये मूल्य' शीर्षक निबन्ध का प्रारम्भ आचार्य द्विवेदी ने उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी साहित्य से किया है, क्योंकि साहित्य के मूल्यों की चर्चा लगभग इसी समय से प्रारम्भ हुई थी। उनका कथन है कि जीवन्त साहित्य के सम्पर्क में आने से जीवन्त मनुष्य प्रभावित होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी साहित्य में अद्भुत जीवनी शक्ति उद्वेलित हो रही थी। एक अपूर्व उन्मुक्त भावधारा अपूर्व अर्थात् नई थी और इसमें परम्परायुक्त रस दृष्टि के स्थान पर आत्मानुभूति आवेग और कल्पना का प्राधान्य था। लोगों ने इसे स्वच्छन्दतावाद का नाम दिया परन्तु यह नाम इसकी आत्मा को सम्पूर्ण रूप से प्रकट नहीं करता है। स्वयं इंग्लैण्ड में ही इस युग साहित्य को रोमांटिक साहित्य कहा गया। इससे यह सिद्ध होता है कि एक ही प्रकार के साहित्य को लोगों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से अलग-अलग नाम दिये।

रोमांटिक साहित्य व रसदृष्टि– रोमांटिक साहित्य में व्यक्ति की स्वतंत्र अनुभूति कल्पना और आवेग के माध्यम से प्रकट हुई थी और उसमें परिपाटी-विहित मूल्यों से सामंजस्य नहीं हुआ था और उसने परम्परागत रस दृष्टि समान्यतया को स्वीकार न करके उसे विशेष कहकर स्वीकार किया था। अत: इस साहित्य में आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति व बाह्य असुन्दर-सी लगने वाली परिस्थिति के संघर्ष से उत्पन्न विक्षोभ का स्वर ही प्रधान था और कई बार उसे ऊपरी सतह के सदाचार के विरुद्ध विद्रोह करना पड़ा।

साहित्य में विक्षोभ व विद्रोह का मूल्य– हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यता है कि साहित्य में विशेषकर रोमांटिक तथा स्वच्छंदतावादी साहित्य में विद्रोह की जो प्रधानता थी वह परिपाटीगत दृष्टि से सामंजस्य न होने का बाहरी रूप मात्र था। यदि विद्रोह व विक्षोभ अन्त तक बना रहता है तो वह कवि सफल नहीं होता है और जिस कवि में इस विद्रोह व विक्षोभ का वास्तविक मूल्य समझने की क्षमता होती है वह अमर तथा स्थायी साहित्य की रचना करता है। अंग्रेजी साहित्य की उन्नीसवीं शताब्दी की उन्मुक्त व नवीन भावधारा भी बाहरी विद्रोह का रूप थी और उसकी रचना केवल परिपाटी व रसदृष्टि का विरोध करने के लिए ही नहीं की गई थी। अत: उसे स्वच्छन्दतावाद का नाम देना उसके एक ही पहलू को बढ़ा-चढ़ाकर बताना ही है। भारत में भी अंग्रेजी साहित्य की भावधारा से सहृदयों के चित्त में कम्पन्न उत्पन्न किया, परन्तु इसे पाश्चात्य प्रभाव नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यद्यपि यह बात पाश्चात्य देश के साहित्य के सम्पर्क से ही आई तथापि वह वहाँ भी नवीन नहीं थी। कल्पना व आवेग की घनीभूत वृत्तियाँ या मानसिक गठन ही व्यक्तित्व प्रधान साहित्य रूप की प्रधान जननी है और एक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साथ रहकर कार्य करती है, अलग-अलग रहकर नहीं। उन्मुक्तता केवल काव्य के क्षेत्र में ही प्रकाशित नहीं होती है वरन् जीवन के विविध क्षेत्रों में भी होती है।

आदिकवि का उपाख्यान—विद्वान लेखक ने उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी साहित्य—स्वच्छन्दतावादी व रोमांटिक साहित्य में विद्यमान विक्षोभ के दर्शन आदि कवि वाल्मीकि के उपाख्यान में किये और कहा है कि आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति और बाहरी असुन्दर-सी लगने वाली परिस्थितियों की टकराहट से उत्पन्न क्षोभ की ओर आदि कवि के उपाख्यान में भी इशारा किया गया है। ऋषि का मनुष्योचित रूप अपने आन्तरिक आदेशों के एकदम विरुद्ध पड़ने वाले क्रौंच वध रूपी असुन्दर व्यापार से जब विचलित हुआ था, तभी अशरीरिणी वाणी नवीन छन्दों में मुखर हो उठी थी। अत: व्यक्तिगत स्वच्छन्दता की धारा भारत में बहुत पहले ही विद्यमान थी। यह पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से यहाँ नहीं आई।

कवि का रचनात्मक स्वर—द्विवेदी ने साहित्य में इस विद्रोही स्वर को उसका बाहरी स्वरूप बताया है और उसका असली व प्रधान स्वरूप रचनात्मकता को कहा है। रचनात्मकता कुछ नया करने का प्रयत्न है, जो कुछ नया देखने की तीव्र आकांक्षा से उत्प्रेरित होता है और बाह्य असुन्दरता को बदले के उद्देश्य से परिचालित होता है और इस भावधारा में स्नान करके पुरातन भी नवीन रूप में प्रकट होता है। कविवर रविन्द्र नाथ टैगोर में पुरातन के नवीन सौन्दर्य को ग्रहण किया है तथा वर्डसवर्थ, शैली, कोट्स आदि कवियों ने भी यही कार्य किया है। परन्तु हमें इस नवीन भावधारा को केवल विदेशी कहकर इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं, क्योंकि इसने हिन्दी में कई प्रतिभाशाली कवियों को प्रेरणा दी है। इस भावधारा के इतिहास से अपरिचित लोग ही इसे त्याज्य बताते हैं, परन्तु यह विवेक दृष्टि से उचित नहीं है।

नवीन भावधारा का इतिहास—इंग्लैण्ड में उन दिनों व्यावसायिक क्रांति के कारण राजनीतिक और आर्थिक शक्ति सामन्त वर्ग के हाथ से निकल रही थी और व्यावसायिक वर्ग के हाथों में आ रही थी, सामन्तशाही के स्थान पर नये पूँजीवाद का जन्म हो रहा था और वैज्ञानिक साधनों के उपयोग से नई नागरिक सभ्यता उत्पन्न हो रही थी, सदाचार के नियम शिथिल हो रहे थे और वंशगत प्रतिष्ठा तथा धार्मिक शासन के साथ शिक्षा व्यवसाय ने विद्रोह कर दिया था, छापे की मशीन ने साहित्य के क्षेत्र में जनतंत्र को प्रतिष्ठित किया और समाज के निचले स्तर के अनेक उर्वर मस्तिष्क वाले लेखक इस क्षेत्र में आये जिन्हें शास्त्रीय अध्ययन और परिपाटी-विहित शिष्टाचार की शिक्षा एकदम नहीं मिली थी। इस नई जाति की मेधा ने साहित्य में एक तरफ नया प्राण संचार किया, दूसरी तरफ विचारगत हल्केपन को भी प्रवेश कराया। ये सब बातें थोड़े समय बाद रूप बदल कर हमारे देश के साहित्य में भी आई।

बौद्धिक घपला—आचार्य द्विवेदी ने लिखा है कि 'साहित्य विचार में बौद्धिक घपला किया जाता है कि एक युग के विचार को दूसरे युग के विचार के समान माना जाता है। वस्तुत: साधनों के साथ मनोभाव बदलते हैं। इसलिए यह समझना कि मनोभाव और संस्कार के एक से बने रहते हैं, बिल्कुल गलत बात है। एक-सी बनी रहती हैं आदिम शक्तियाँ जिसका कालरूप बदलता रहता है। पर जीवन की विविध क्रियाओं के मूल्य निरन्तर बदलते रहते हैं और इस प्रकार साहित्य को समझने का ढंग भी बदल रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐतिहासिक दृष्टि प्रतिष्ठित हुई है। उसे अस्वीकार कर नये साहित्य को ठीक-ठाक नहीं समझा जा सकता। यह बिल्कुल गलत बात है कि इस काल में बिहारी सतसई लिखकर कोई उतना ही सफल हो जायेगा जितना बिहारी हुए। वस्तुत: 'बिहारी सतसई' इस युग में नहीं लिखी जा सकती। वह जब लिखी गई थी, तभी लिखी जा सकती थी।'

शिक्षित भारतवासी—भारत अंग्रेजों का अधिकृत देश था और अंग्रेजों ने अपने राष्ट्रीय स्वार्थ की पूर्ति के लिए इसका खूब शोषण किया। अंग्रेजी साहित्य के महान् आदर्शों और इन शोषण मूलक प्रयत्नों में अन्तर देखकर शिक्षित भारतवासी के चित्त में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। इसी प्रतिक्रिया ने भारतीय राष्ट्रीयता के रक्षात्मक रूप में आत्म प्रकाश किया। परन्तु भारतीय चित्त आज जैसी स्थिति में हमेशा नहीं रहा है और आगे चलकर साधारण भारतीय चित्त में हमारे यहाँ की बोली ने अपूर्व भाव-कम्पन्न और गुदगुदी पैदा की। परन्तु सब मिलाकर इसने स्वस्थ साहित्य चिंतन के विकास में बाधा पहुँचाई और आगे चलकर तो हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव एक आरोप मात्र रह गया और किसी विरोधी को हराने का अमोघ अस्त्र बन गया।

निष्कर्ष—अपने निबन्ध के अंतिम घटक में आचार्य द्विवेदीजी ने निष्कर्ष रूप में कहा है कि ''मैं यहाँ यह नहीं कह रहा हूँ कि अपने यहाँ शास्त्रों का जो विचार किया गया और उसका सहारा लिया गया वह गलत था, बल्कि उनका जैसा उपयोग किया, वह गलत था। यह नहीं समझा गया कि चित्तगत उन्मुक्तता बड़ी चीज है क्योंकि वह बड़ी सम्भावना से भरी है। उसका स्वागत होना चाहिए। उसका स्वरूप विकास हुआ तो भारतीय साहित्य का अच्छा अध्ययन होगा और उसके मर्म को हम अच्छी तरह समझ सकेंगे।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रश्न- 2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की गद्य-शैली की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिये।

उत्तर–भारतीय संस्कृति और समाज की पृष्ठभूमि में प्रत्येक विषयों को देखकर तदनुसार आलोचना करने वाले हिन्दी समीक्षकों के अतिरिक्त द्विवेदी जी एक सामयिक युग के शीर्षस्थ निबन्धकार भी हैं। इन्होंने अपने निबन्धों में साहित्य और जीवन अन्वेषण की जिज्ञासा व्यक्त की है। उनमें मानवता, संस्कृति और सौन्दर्य का अद्भुत सामंजस्य द्विवेदी जी के निबन्धों की प्रमुख विशेषता है। उनकी निबन्धकला उसके ज्ञानात्मक और मानवीय संवेदन की त्रिवेणी में नहाकर पाठकों के सामने प्रस्तुत हुई है।

आचार्य द्विवेदी के निबन्ध शैली के प्रमुखत: दो अभिन्न अंग हैं–भाषा और शैली।

भाषागत विशेषताएँ

आचार्य जी के निबन्धों में शास्त्रकार और बुद्धिवादी विवेकशीलता सभी का उचित सामंजस्य हुआ है। यही सामंजस्य उनके निबन्धों की भाषा में भी मिलता है। उनके निबन्धों की प्रमुख विशेषताओं को हम निम्नलिखित प्रकार से समझ सकते हैं–

1. संस्कृत शब्दावली का प्रयोग–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबन्ध साहित्य में संस्कृत शब्दावली का प्रयोग भी बहुतायत में किया है। उदाहरण के लिए ये शब्द देखिये–कौलीन्य, तत्क्रिन, पदे-पदे अहमहमिका, गगनोपमावस्था, आवर्त, नृत्य, येन-केन-प्रकारेण, प्रारम्भ, क्रियमाण, ऊर्ध्वगमन, स्वल्प, स्वर्गारोहण, भस्मसात, युक्तिवादी, दग्धबीज, कर्मबन्धन, अलिश्वर, समर्शित, नियोजित, प्राच्य विद्या विशारद, विच्छेद-प्रवण, पुत्रोत्पादक धर्मानुमोदित और एतत विषयक आदि ही ऐसे शब्द हैं जिन्हें द्विवेदी ने अपने निबन्धों में स्थान दिया है।

2. पाण्डित्यपूर्ण प्रदर्शन–द्विवेदी जी का झुकाव पाण्डित्यपूर्ण भाषा की तरफ रहा है। फिर भी उनकी भाषा कठिनता व बोझिलता के दोष से दूर है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ देखिये–''विराट ब्रह्माण्ड निकाय का दुरुत्व और परिणाम उनके कोटि-कोटि नक्षत्रों का अग्निमय आवर्त नृत्य बहुत विस्मयकारी बाते हैं, सन्देह नहीं, परन्तु मनुष्य की बुद्धि और भी विस्मयजनक है।'' 'धर्म के द्वारा उर्ध्वगमन अधर्म के द्वारा अधोगमन होता है। ज्ञान से मोक्ष और अज्ञान से बन्धन होता है।'

3. तत्सम शब्दावली का प्रयोग–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबन्धों में तत्सम शब्दावली का प्रयोग भी बहुत अधिक मात्रा में किया है। यथा–उत्कर्ष, व्यवहृत, नैरात्म, कैवल्य, निकृष्ट, उच्चरित, घृणा, जुगुप्सा आदि। इस प्रकार कहा जा सकता है कि द्विवेदी ने अपने गद्य-साहित्य में तत्सम शब्दावली का पर्याप्त प्रयोग किया है।

4. अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग–आचार्य जी ने अपने निबन्धों में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग बहुत कम किया है। उदाहरण के लिए ये शब्द देखिये जो आचार्य जी के निबन्धों में मिलते हैं। ''रिमार्क, मैटर ऑफ फैक्ट, सब्जेक्टिविटी, रिपोर्ट, ओपरेटर, पिकनिक, इण्डिपैण्डेन्स, डिस्काइज, अब्जेक्टिविटी, सीरियस, यूरोपीय, ग्रीक, ट्रेजडी, पैरासाइड, एरिस्टोक्रेसी, सिविलिवेशन, कल्चर आदि।''

5. उर्दू शब्दावली का प्रयोग–द्विवेदी जी ने अपने निबन्ध-साहित्य में उर्दू शब्दावली का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए ये शब्द लिये जा सकते हैं–''बगावत, सल्तनत, खुदगर्जी, हिदायत, ईमानदार, दिमाक़, मनहूस, पसन्द, जान, दर्ज़ा, हिस्सा, ज़रूर, ऊलज़ुलूल, राहत, क़दर, बयान, ज़ालिम, नफ़ासत, हज़रत, आदमी नुमा, घासलेटी, सपासन आदि।'' यह भाषा में स्थानीय रंग भरने से नजर आते हैं।

6. देशज शब्दावली का प्रयोग–आचार्य जी ने अपने निबन्धों में देशज शब्दावली को स्थान दिया है। इस शब्दावली से भाषा में मिठास तो आ ही गया है, साथ ही साथ ममत्व का भी आभास जान पड़ता है। ये शब्द इस प्रकार से हैं–तथा-सुर, बटोर, टिमटिमाना, पारसाल, अटकलपच्चू, सिगर-पत्तर, अधकचरा, ठूँठे, झवेरा आदि शब्दों को प्रयोग में लिया जाता है।

7. सहज भाषा का प्रयोग–आचार्य जी की भाषा में सरलता, सुबोधता, सहजता और प्रेषणीयता का गुण भी विद्यमान है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–ऐसी बातें केवल एक पण्डित ने ही नहीं लिखी हैं। आये दिन यूरोपीय समालोचक बहुत से ऊलज़ुलूल बातें कहते ही रहते हैं, इसी प्रकार स्वच्छन्द भाषा का यह रूप भी दृष्टव्य है। ''बसंत पंचमी में अभी देर है पर आम अभी से बौरा गये हैं। हर साल ही मेरी आँखें उन्हें खोजती रहती हैं। बचपन में सुना था कि बसन्त पंचमी के पहले अगर आम्र मंजरी दिख जाय तो उसे हथेली पर रगड़ लेना चाहिए, क्योंकि ऐसी हथेली साल भर तक बिच्छू से जहर को आसानी से उतार देती है। बचपन में ही कई बार आम्र मंजरी हथेली पर रगड़ी है। अब नहीं रगड़ी, पर बसन्त पंचमी के पहले जब कभी आम्र मंजरी दिख जाती है तो बिच्छू की याद अवश्य आ जाती है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. लघुवाक्यावली का प्रयोग—आचार्य जी ने अपनी भाषा में प्रवाहशील मार्मिकता, स्पष्टता आदि का प्रयोग किया है। छोटे-छोटे शब्द और स्पष्ट व स्वतंत्र व्यक्तित्व की छाप है। इनके प्रयोग से भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि तो हुई है, साथ ही साथ प्रभाव भी सौ गुना अधिक बढ़ गया है। उदाहरण के लिए—भारतीय मनीषियों ने इस गुणमय जगत पर विचार करके यह निष्कर्ष निकाला है कि इसमें दो स्पष्ट तत्त्व हैं। एक शाश्वत है, दूसरा परिवर्तनशील। एक सदा एक रस है, दूसरा नाशवान। एक चेतन है दूसरा जड़।

शैलीगत विशेषताएँ

शैलीगत दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्धों में प्रयुक्त हुए समास, धार-प्रलाप, अलंकृत शैली-उद्धरण आदि को बड़ी स्वच्छता के साथ दिखाया गया है। सूत्रात्मक शैली, व्यंग्य-शैली आवेग शैली भी आचार्य जी के निबन्धों में सरलता से मिल जाती है। द्विवेदी की शैलीगत विशेषताएँ निम्नलिखित रूप से दर्शाई जा सकती हैं—

1. प्रसाद शैली—आचार्य द्विवेदी जी के निबन्धों की प्रमुख विशेषता यह है कि भाषा सरल, सुबोध, स्पष्ट, अभिधात्मक है। इनकी शैली में हित, चिन्तक, सहानुभूति और हृदयता के भाव सहज ही मिल जाते हैं, उदाहरणार्थ—''मैं यहाँ यह नहीं कह रहा कि अपने यहाँ के शास्त्रों का जो विचार किया और उनका सहारा लिया गया वह गलत था, बल्कि उनका जैसा उपयोग किया गया वह गलत था। यह नहीं समझा गया कि चित्त उन्मुक्ता बड़ी चीज है क्योंकि वह बड़ी सम्भावनाओं से भरी है, उसका स्वागत होना चाहिए।''

2. भावात्मक शैली—आचार्य जी की शैली में भावात्मक शैली का प्रयोग भी बड़ी सफाई के साथ दृष्टव्य होता है। इस शैली से निबन्ध मधुर और सरल बन जाता है। इस शैली का उपयोग आचार्य जी ने बहुत से निबन्धों में किया है। वे निबन्ध इस प्रकार हैं—''आचार्य के फूल, शिरीष के फूल और आम फिर बौरा गये' आदि निबन्धों में भावात्मक शैली पर्याप्त परिलक्षित होती है।

3. प्रलाप शैली—इस शैली का प्रयोग आचार्य द्विवेदी जी ने प्रशंसा और संवेदना प्रकट करने के लिए किया है। इस शैली का प्रयोग द्विवेदी जी के निबन्धों में बहुतायत में मिलता है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—''हाय ! जो महापुरुष चला गया, उसने इस रहस्य को समझा था। हतभाग्य भारत वर्ष ! तू आज सोच्य है।''

4. समास शैली—इस शैली के प्रयोग से आचार्य जी ने कम शब्दों में अधिक से अधिक भाव या विचार को अभिव्यक्त किया है। उदहारण के लिए—''सांख्यशास्त्रियों के मत से पुरुष अनेक हैं और प्रकृति उन्हें अपने मायाजाल में बाँधती है। पुरुष विशुद्ध चेतना स्वरूप उदासीन और ज्ञात हैं। यह दृश्यमान जगत वस्तुतः प्रकृति का ही विकास है।'' ''हिन्दूशास्त्र मनुष्यों के लिए केवल कर्मफल, योग और ऋण चुकाने की व्यवस्था ही नहीं करते। वे कुछ धनात्मक कार्य करने का विधान भी करते हैं। ये धनात्मक कार्य ही पुरुष हैं।''

5. व्यास शैली—इस शैली के प्रयोग से आचार्य जी ने अपने निबन्धों को पर्याप्त विस्तार दिया है और पाठकों को सभी पहलुओं से अवगत कराया है। इस शैली में एक ही बात को, विचार को, भावों को घुमा-फिरा कर रखा जाता है। द्विवेदी जी के लिए ज्ञानेन्द्र जी ने ठीक ही कहा है, ''कि उनके विचारात्मक निबन्धों में हजारों लाखों वर्षों के प्राचीरों को भेदकर संदर्भ प्रस्तुत करने और अवान्तर कथाओं के विन्यास के लिए ही व्यास शैली उपयुक्त है। उदाहरण के लिए—''लोग जब हिन्दी की सेवा करने की बात करते हैं तो प्रायः भूल जाते हैं कि यह लाक्षणिक प्रयोग है। हिन्दी की सेवा का अर्थ है, उस मानव समाज की सेवा, जिसका माध्यम हिन्दी है। मनुष्य बड़ी चीज है। भाषा उसकी सेवा के लिए है। साहित्य सृष्टि का ही यही अर्थ है। जो साहित्य अपने आपके लिए लिखा जाता है, उसकी क्या कीमत है। मैं नहीं जानता।''

6. धारा शैली—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबन्धों में धारा शैली का प्रयोग बड़े उल्लास और सरलता के साथ किया है। इस शैली की प्रमुख विशेषता है कि जिस तीव्र गति से निबन्धकार आगे बढ़ता है वही पीछे व्यक्त किये गये विचारों की गति का भी उसी क्रम और गति से निर्वाह करता है। उदाहरणार्था—''तुमने मनुष्य देवता का अपमान किया है। वे तुमसे रूठ गये हैं। शत-शत शताब्दियों से पद-दलित यह असंख्य जन-समुदाय तुम्हें आगे नहीं बढ़ने देगा। जो नीचे पड़े हैं वे पैर पकड़कर तुम्हारा चलना दुभर कर देंगे। अपमानित, अवहेलित, दलित और निष्पोषित के समान अगर तुम भी नहीं हो जाते तो नाश अवश्यम्भावी है।''

7. सूत्रात्मक शैली—अपनी विचारधारा की अभिव्यक्ति के लिए द्विवेदी जी ने सूत्रात्मक शैली का प्रयोग अपने निबन्धों में किया है। इस शैली के प्रयोग से उनकी चिन्तना, गवेषणा वृत्ति, निरन्तर निर्णय क्षमता का पता लगता है। उदाहरण के लिए सूक्तियाँ देखिये—

1. ''विवेक दाता को पहचानने की शक्ति देता है।''
2. ''ज्ञान की अग्नि समस्त कर्मों को अभिव्यक्त नहीं करना चाहती।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. ''मनुष्य का श्रेष्ठ रूप में प्रकट होना ही उसका स्वाभाविक धर्म है।''

4. ''सच्चाई भी अगर गलत ढंग से देखी जाती है तो उल्लेखनीय लगने लगती है।''

8. अलंकार शैली—कहीं-कहीं पर द्विवेदीजी ने अलंकृत शैली का प्रयोग किया है। इस शैली के प्रयोग से वह भावुकता, आवेग, संवेदना के क्षणों को प्रस्तुत करते हैं। जैसे—''ज्ञान की अग्नि से संचित कर्म जलकर दग्ध बीज की तरह निष्फल होता है और ज्ञानी प्रारम्भ कर्मों के संस्कार वश उसी प्रकार शरीर धारण किये हुए रहता है।'' कुम्हार का चलाया हुआ चक्र चक्र-दण्ड उठा लेने पर भी वेग वश कुछ देर तक चलता रहता है।''

9. व्यंग्य शैली—व्यंग्य शैली का प्रयोग आचार्य जी ने अपने निबन्धों में सहजता के साथ किया है। इस शैली के प्रयोग में शब्द बाहर से सुन्दर और सरस मालूम पड़ते हैं। यह व्यंग्य शैली सम्बन्धित व्यक्ति को तिलमिला कर रख देती है। विनय और बड़ाई के लिए भी यह शैली प्रयुक्त होती है।

उपरोक्त विवेचन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की भाषा शैली अनेक विशेषताओं से युक्त है और सुशोभित होती है। उनके निबन्धों में आई हुई भाषा शैली उनके गम्भीर, स्वच्छ, प्रशस्त व्यक्तित्व को प्रकट करती है और निबन्धों को प्राणवान बना देती है।

प्रश्न- 3. हिन्दी के निबन्ध-साहित्य में द्विवेदी जी का स्थान निर्धारित कीजिए।

अथवा

'हिन्दी निबन्ध साहित्य में द्विवेदी जी का योगदान' विषय पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के एक ग्राम में अगस्त सन् 1907 में हुआ था। इनका देहान्त 1980 में हुआ। इनके बचपन का नाम बैजनाथ द्विवेदी था इन्होंने शिक्षा रेपुर और बसरिकापुरा में पूरी की। 1923 में काशी विश्वविद्यालय से परीक्षा पास की और 1929 में साहित्य की परीक्षा पास की। शास्त्राचार्य की परीक्षा पास करने के पश्चात् 1930 में हिन्दी-अध्यापन के लिए शान्ति निकेतन बुलाया गया।

द्विवेदी ने अपने निबन्धों में संस्कृति, इतिहास, दर्शन, समाज शास्त्र, मनोविज्ञान के विषय उठाये। इन्होंने अपने निबन्धों में आत्मीयता की शैली अपनायी है वह उनकी उत्कृष्ट रूचि का ही द्योतक है। आचार्य द्विवेदी जी प्रसिद्ध ललित निबन्ध लेखक के रूप में साहित्य-जगत में चर्चित रहे। कुटज, अशोक के फूल, देवदास आदि उनके प्रसिद्ध निबन्ध हैं। इन्होंने ललित निबन्धों को आगे बढ़ाने का कार्य भी किया। इनके निबन्ध व्यक्तित्व प्रधान हैं। आचार्य जी ने अपने निबन्धों में प्राचीन और नवीन साहित्य का अपूर्व सामन्जस्य किया है। इनके निबन्ध बहुलता के परिचायक हैं। उन्होंने नैतिकता, ज्योतिष, संस्कृति, इतिहास से सम्बन्धित निबन्ध लिखे हैं। आचार्य जी के निबन्धों की आलोचना करते हुए डॉ. शिवदानसिंह चौहान ने लिखा है कि 'द्विवेदी जी के निबन्धों का अपनी अतिशय गम्भीरता तथा उदात्त मानवबाव के कारण हिन्वी साहित्य में शीर्ष स्थान है।'' वृष्टिकोण की उवारता और व्यापवता के कारण जीवन की अत्यन्त नगण्य सी घटनाओं के प्रति भी, भावजन्य संवेदन की अभिव्यक्ति उनके निबन्धों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। वे अतीत की धूमिलता को चीरते हुए समसामयिकता के सन्दर्भ में मानववादी विचारधारा को पाठक की कल्पना में अभिषिक्त करते रहे हैं।

निबन्ध साहित्य—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध संग्रहों को मुख्य रूप से पाँच भागों में बाँट सकते हैं— 1. समीक्षात्मक निबन्ध, 2. सांस्कृतिक निबन्ध, 3. ऐतिहासिक निबन्ध, 4. वैयक्तिक निबन्ध, 5. गवेषणां प्रधान निबन्ध।

1. समीक्षात्मक निबन्ध—समीक्षात्मक निबन्धों में प्रेमचन्द क महत्त्व, प्रसाद की कामायनी, हिन्दी का भक्ति-साहित्य, दादू, मधुरस की साधना, संस्कृत साहित्य के कलहन्स, भारतीय साहित्य की प्राणशक्ति, नया साहित्यिक दृष्टिकोण, साहित्य निर्माण का लक्ष्य, रस का व्यावहारिक अर्थ, साहित्य का नया रास्ता, रीति-काव्य, इतिहास का सत्य, हिन्दी का वर्तमान और भविष्य, संतमत, भक्तों की परम्परा और कविता का भविष्य आदि प्रमुख हैं। इस निबन्ध संग्रह में लेखक का गहन अध्ययन, प्रकाण्ड पांडित्य प्रदर्शन, उदात्त दृष्टिकोण, विचारों की गूढ़ श्रृंखला और संवेदनशीलता के साथ-साथ नया समन्वयवादी और नूतन सामाजिक मानवतावादी दृष्टिकोण भी मिलता है।

2. सांस्कृतिक निबन्ध—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय संस्कृति-कला और दर्शन को सांस्कृतिक निबन्धों का प्रमुख विषय बनाया है। भारत वर्ष की सांस्कृतिक समस्या, हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली, भारतीय संस्कृति की देन, भारतीय फलित ज्योतिष, शत्रु-साधना, पंडितों की पंचायत, हमारी संस्कृति और साहित्य का सम्बन्ध, मध्युगीन भारतीय संस्कृति और हिन्दी आदि प्रमुख निबन्ध हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. ऐतिहासिक निबन्ध—निबन्धकार द्विवेदी ने ऐतिहासिक निबन्धों की सामग्री प्रस्तुत की है। इन निबन्धों में ''कलाओं की प्राचीन, कलाओं के आश्रय-दाता रईस, मुख प्रक्षालन और दातून, केश, संस्कार, अधर और नाखून की रंगाई, ताम्बूल सेवन, ब्राह्मण का कला से सम्बन्ध, अन्त:पुर की वृक्ष-वाटिका, दोला, विलास, वृक्षवाटिका और क्रीड़ा पर्वत, विनोद के साथी पक्षी, गुफायें और मन्दिर, कल्पवल्ली, भित्ति चित्र, दरबारी लोगों के विनोद, मृगया-विनोद और ऋतु सम्बन्धी उत्सव'' आदि प्रमुख निबन्ध हैं।

4. वैयक्तिक निबन्ध—वैयक्तिक निबन्धों में आचार्य जी के उन निबन्धों को स्थान प्राप्त है जो ''भावना, अनुभूति और कल्पना के मेल से बने हैं, इन निबन्धों में 'बसन्त आ गया, अशोक के फूल, शिरीष के फूल, नव वर्ष आ गया, मेरी जन्मभूमि, नाखून क्यों बढ़ते हैं, जबकि दिमाग खाली है, देवदारु, आत्मदान का सन्देशवाहक बसन्त, कुटज और क्या आपने मेरी रचना पढ़ी' प्रमुख हैं। इस वर्ग के निबन्धों से प्रभावित होकर डॉ. द्वारका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है—''ये सभी निबन्ध भावात्मक हैं। इनमें कल्पना की ऊँची-ऊँची उड़ानें हैं, भावनाओं का क्रीड़ा विनोद है। संवेदनाओं की तीव्र बाढ़ है, अनुभूतियों की उद्दाम झंकार है, कवित्व की अद्भुत मधुरिमा है और वैयक्तिक जीवन की अमिट छाप है।''

5. गवेषण प्रधान निबन्ध—आचार्य द्विवेदी के उन निबन्धों को गवेषणा प्रधान निबन्धों का स्थान प्राप्त है, जो ऐतिहासिक खोज और शोध से सम्बन्धित है। ये निबन्ध 'हिन्दी में शोध का प्रश्न, कलाओं की प्राचीनता, हिन्दी का आदिकाल, संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त परिचय, महाभारत क्या है, रामायण और पुराण बौद्धसाहित्य, जैन साहित्य और कवि प्रसिद्धियाँ इत्यादि मुख्य निबन्ध हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य के निबन्ध भारतीय-दर्शन, संस्कृति, इतिहास, ज्योतिष, विज्ञान, धर्म, कला, साहित्य और लोक जीवन की छवियों से दीप्त हैं।

निबन्ध साहित्य में आचार्य द्विवेदी का स्थान—आचार्य द्विवेदी जी ने अनेक प्रकार के निबन्धों का संग्रह किया है, जिनमें—विविधात्मक, रोचक, ज्ञानवर्धक, भाव कल्पना और अनुभूति से युक्त, वैयक्तिकता से ओत-प्रोत, गम्भीर विचारों से अभिव्यंजक, लोक संस्कृति के प्रतिष्ठापक, कला, धर्म, दर्शन, ज्योतिष और साहित्य की विविध समस्याओं का प्रकाशन किया है। इतने विविध और व्यापक विषयों को अपने पास रखने वाले निबन्धकार महत्त्वपूर्ण क्यों न हों अत: उनका स्थान तो उच्च ही होना चाहिए। द्विवेदी के निबन्ध शैली वैविध्य और विषय वैविध्य के कारण महत्त्वपूर्ण हैं। इस निबन्ध साहित्य के कारण ही आचार्य जी को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अनेक उल्लेख्य कारण है जिनसे द्विवेदी जी की निबन्ध कला प्रकट होती है। जिनमें प्रमुख हैं—

विचारात्मक निबन्धों की परम्परा से आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के निबन्ध अपना एक अलग स्थान रखते हैं। ''विचारात्मक निबन्धों की परम्परा को पल्लवित करते हुए पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने यहाँ भाषा की अव्यावहारिक अशुद्धता और शिथिलता को दूर करके विविध विषयों को निबन्ध के क्षेत्र में प्रवेश दिलाया। डॉ. श्याम सुन्दर ने आलोचना, भाषा, विज्ञान और हिन्दी साहित्य आदि पर निबन्ध लिखकर निबन्ध के क्षेत्र का विस्तार किया। पं. रामचन्द्र शुक्ल ने भावों और विचारों पर अत्यन्त व्यावहारिक और मार्मिक निबन्धों की परम्परा को प्रौढ़ और पुष्ट बनाया। बाबू गुलाब राय ने वैयक्तिक निबन्धों का समावेश करके इस परम्परा को और बढ़ावा दिया। प्रसाद ने इतिहास, दर्शन शास्त्र, साहित्यशास्त्र की त्रिवेणी प्रवाहित करके निबन्ध साहित्य कला का श्रृंगार किया। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने उच्च कोटि के समीक्षात्मक निबन्ध लिखकर भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा पद्धति एवं साहित्य विवादों से हिन्दी पाठकों को अवगत कराते हुए निबन्ध के भण्डार की पूर्ति की, वहाँ आचार्य जी ने इसी परम्परा में विचारात्मक निबन्धों का प्रणयन करके भारतीय संस्कृति और साहित्य की परम्परा को अखण्ड बनाये रखने का स्तुत्य प्रयास किया और आलोचनात्मक एवं व्यक्ति परक निबन्ध लिखकर हिन्दी निबन्ध कला को अधिकाधिक प्रांजल एवं परिमार्जित बनाने का प्रयास किया।''

आचार्य द्विवेदी जी ने निबन्ध-साहित्य के अनेक प्राचीन, अर्वाचीन और विविध विषयों पर निबन्ध लिखकर वृद्धि तो की, किन्तु भारतीय कला, संस्कृति, धर्म और अनुराग के प्रति भी अपनी अनुरागी प्रवृत्ति व रस-ग्राही क्षमता को प्रकट किया। निबन्धकार ने अपने निबन्धों में भारतीय कला और संस्कृति को पूरी तरह अपनाया है। आचार्य जी के निबन्धों में भारतीय जन-जीवन की अनेक झलकियाँ, राष्ट्रीय भावों की व्यंजना, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिवेश का निरूपण किया और राग व बुद्धि का समुचित समायोजन। यही कारण है कि द्विवेदी जी विशिष्ट महत्ता के अधिकारी हैं।

आचार्य जी के निबन्धों में व्यक्तित्व की छाप भी परिलक्षित होती है। इनके निबन्ध गुरुत्वता, गांभीर्य, रसनीयता से युक्त होकर दर्शाये गये हैं। यथा—''सत्य क्या है ? वे जो दो ग्वाल-बाल नग्नप्राय: अवस्था में खड़े हैं। शरीर उनका अस्थिरपंजर मात्र अवशिष्ट है, चेहरा उनका भारतवर्ष का नक्शा है—(दोनों गाल समुद्र हैं और चिबुक कुमारीय अन्तरीप), पेट उनका सारे जगत का अनुकारी ग्लोब है—यही

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

क्या भारतवर्ष है ? यही क्या सत्य है ? हे उच्छल वीर्य कंकाल शेष भारतवर्ष, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ, लेकिन मेरा मन यह नहीं मानता कि इन चर्मचक्षुओं के सामने जो कुछ हिल-डोल रहा है वही सत्य है ''जहाँ घटे ताहो सब सत्य नहे।'' द्विवेदीजी ने विविध शैलियों को अपने निबन्ध साहित्य में स्थान दिया है। उनके निबन्धों में जो प्रमुख शैलियाँ प्रयुक्त हुई वे हैं–''समीक्षात्मक शैली, वार्तालाप शैली, वक्तृत्व शैली, चिन्तन मूलक शैली, विक्षेप शैली, तरंग शैली, गवेषणात्मक शैली, विवरणात्मक शैली, इतिवृत्तात्मक शैली, आत्मपरक शैली, व्यंग्यात्मक शैली।'' शैली के वैविध्य के कारण ही द्विवेदी जी हिन्दी निबन्ध साहित्य परम्परा में अपने महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की भाषा परिष्कृत संस्कृत और शिष्टजनानुमोदित है। इनकी भाषा साहित्य पर पूर्ण रूपेण खरी उतरी है। इनकी भाषा प्रेषणीयता, अर्थ गम्भीरता, उक्तिवक्रता, व्यंग्य विनोद से परिपूर्ण है। यही कारण है कि हिन्दी के निबन्ध साहित्य में ये अग्रणी स्थान के हकदार है।''

18.3 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी निबन्धकारों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनका गद्य साहित्य अप्रतिम, सरस, पाण्डित्यपूर्ण और वैचारिक गांभीर्य से परिपूर्ण है। विश्वम्भरनाथ का कहना है कि ''आचार्य शुक्ल से आचार्य द्विवेदी जी किसी दशा में भी उन्नीस नहीं हैं–न प्रतिभा में, न अध्ययन में, न विद्वता में, न विषय प्रतिपादन में और न हास्य व्यंग्य में।'' शिल्प और भाव की दृष्टि से निबन्ध साहित्य में आचार्य जी का स्थान अद्भुत ही नहीं बल्कि महान व विशिष्ट है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

स्नातक (बी.ए.) द्वितीय वर्ष

विषय– हिन्दी साहित्य

द्वितीय पत्र–नाटक एवं एकांकी

संवर्ग

संवर्ग– 1	हिन्दी नाटक विकास एवं प्रवृत्तियां
संवर्ग– 2	कबीरा खड़ा बाजार में
संवर्ग– 3	दीपदान, धरोहर, हमारा स्वतंत्रता संग्राम, राम–रहमान, समाज दर्पण,
संवर्ग– 4	वीर बल्लू, सिंह जागरण, उजड़े नोआखाली में प्रकाश, हरीतगन्धा, सूर्य बीज
संवर्ग– 5	हिन्दी निबन्ध : विकास और प्रवृत्तियाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. नन्दलाल कल्ला**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

2. **प्रो. वेदप्रकाश शर्मा**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज)

3. **प्रो. जगमालसिंह**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   मेघालय विश्वविद्यालय, मेघालय (आसाम)

4. **डॉ. ममता खाण्डल**
   सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग,
   राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, किशनगढ़ (राज.)

5. **प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी**
   निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
   जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)

6. **प्रो. समणी ऋजुप्रज्ञा**
   आचार्या, जैन विश्वभारती संस्थान,
   लाडनूँ (राज.)

लेखक

कैलाश भट्ट 'आकाश'

संपादक

प्रोफेसर नन्दलाल कल्ला

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 700

प्रकाशक

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341 306 (राज.)

Printed at

M/s Nalanda Offsets, Jaipur

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुक्रम

क्र.सं.	संदर्भ/लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	**भूमिका** (हिन्दी नाटक : विकास एवं प्रवृत्तियाँ)	1
2.	**नाटक—'कबिरा खड़ा बजार में'** (लेखक—डॉ. भीष्म साहनी व प्रस्तुत नाटक परिचय)	8
3.	**हिन्दी एकांकी : संक्षिप्त इतिहास और विशेषताएँ**	74
4.	**दीपदान (डॉ. रामकुमार वर्मा)** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	81
5.	**धरोहर (सेठ गोविन्ददास)** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	93
6.	**हमारा स्वाधीनता संग्राम (विष्णु प्रभाकर)** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्त7र)	106
7.	**राम-रहमान (डॉ. सुधीन्द्र)** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	117
8.	**समाज दर्पण (डॉ. उदयशंकर भट्ट)** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	131
9.	**वीर-बल्लू (देवीलाल सामर)** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	142
10.	**सिंह जागरण (श्री सुदर्शन)** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	151
11.	**उजड़े नौआखाली में प्रकाश (डॉ. रामचरण)** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	162
12.	**हरितगन्धा (हमीदुल्ला)** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	170
13.	**सूर्यबीज (संकलित)** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	180
14.	**भूमिका** (हिन्दी निबन्ध : विकास और प्रवृत्तियाँ)	190
15.	**आलोचना का स्वरूप एवं विकास**	199
16.	**लोक जागरण और भक्ति-काव्य** (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)	205
17.	**तुलसी के सामाजिक मूल्य** (रामविलास शर्मा)	220
18.	**साहित्य के नये मूल्य** (हजारी प्रसाद द्विवेदी)	233

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun